वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्

संसारसागरमें प्रथम अवतरण
करनेके अवसर पर अनुभवहीन
तथा अज्ञ मुझ बालकको जिन्होंने
अपने पितृतुल्य वात्सल्यसे
परिपूर्ण, सुकोमल वरद
हाथोंसे सहारा देकर
सशक्त बनाया, उन
सरल और सुकोमल
हृदयी, पितृवत्
अपनी सुकोमल
छत्रछायामें पालन
कर अपने अन्तरतम
का समस्त प्यार लुटाने
वाले परम पूज्य
पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरके
पुण्य चरणोंमें सादर
सविनय समर्पित
त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये

श्रुतिशील शर्मा

प्रस्तावना

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः
सत्यव्रताः रहितमानमलापहाराः ।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये
धन्याः नराः विहितकर्मपरोपकाराः ॥

" विद्याके विलासमें ही जिनका मन आनन्द पाता है, जो शीलताके आगार हैं, सत्यव्रतका पालन करनेवाले हैं, अभिमानके मलसे रहित हैं, संसारके दुःखको दूर करनेमें ही जो अपने जीवनकी सार्थकता मानते हैं, जो सदा उपकारके कार्योंमें ही व्यस्त रहते हैं, वे मनुष्य धन्य हैं । "

ऐसे स्वनामधन्य महापुरुषोंके कदमोंका अनुकरण करनेकी बात तो दूर रही, दर्शन और गुणगान करना भी पुण्यदायक है । महापुरुषोंका जीवन एक दीपस्तंभके समान होता है, जो जीवन सागरमें भटकते हुए मनुष्योंके लिए मार्गदर्शक होता है । केवल उनके जीवनके अध्ययनसे ही मनुष्य अपना जीवन सुधार सकता है ।

सभी महापुरुषोंके जीवनके कतिपय विशेष पहलू होते हैं और अपने सामने एक उद्देश्य रखकर तदर्थ सम्पूर्ण जीवन लगा देनेके कारण उनका जीवन सामान्यकी अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट और अन्योंके लिए आदर्शभूत हो जाता है ।

ऐसे ही महापुरुषोंमें वेदोंके प्रचार एवं प्रसार द्वारा भारतीयसंस्कृति एवं सभ्यताको पुनरपि समुज्ज्वल और ओजस्वी बनानेके कार्यमें अपना सारा जीवन व्यतीत कर देनेवाले वेदोद्धारक पद्मभूषण वेदमूर्ति पण्डित श्रीपाद दामोदर

सातवलेकरका अपना स्थान भी निराला है। १९ और २० वीं शतीके वेदविद्वानोंमें सिर्फ तीन ही महापुरुष हमारे सामने उपस्थित होते हैं कि जिन्होंने वेदोद्धारके अपने उद्देश्यके सामने सारे सांसारिक सुखों एवं ऐश्वर्योंको तिलांजलि दे दी। वे महापुरुष है प्रा. मोक्षमूलर, महर्षि दयानन्द और पं. श्री. दा सातवलेकर। इन तीनों ही महापुरुषोंका वेदचिन्तनका दृष्टिकोण अपना अपना है। मोक्षमूलरने वेदोंके आधिदैविक पक्ष पर ज्यादा जोर दिया, महर्षिने निरुक्तकी प्रक्रिया अपनाकर वेदोंके आध्यात्मिक पक्षको प्रस्तुत किया और पं. सातवलेकरने वेदोंके आधिभौतिक या राष्ट्रीयपक्षका परिपोषण किया। अत. इन तीनोंमेंसे किसीको प्रक्रियाको असंगत बताना स्वयंमें एक असंगति है।

श्री पं. सातवलेकरजीका व्यक्तित्व कुछ ऐसा अनोखा है कि इसके संपर्कमें जो भी कोई आता है, इसीका होकर रह जाता है "हि कम्स ऍण्ड विन्स" की एक अंग्रेज कविकी उक्ति पण्डितजीके बारेमें पूर्णतया चरितार्थ है। सीधी देहयष्टि, देदीप्यमान मुखमण्डल, गंभीर और बुलंद आवाज, अगाध विद्वत्तासे प्रतिबिम्बित चेहरा, शान्त एवं सौम्यमुद्रा ये सभी पहलू पण्डितजीके आकर्षक व्यक्तित्वमें और श्रीवृद्धि करते हैं।

वेदमूर्तिके रूपमें पण्डितजीकी उछाल एकदम अप्रत्याशित है। चित्रकारके रूपमें जीवन समरमें प्रवेश करके वेदपण्डितके रूपमें जीवनसमरका विजेता बनकर चमकना कल्पनाके परेकी भी बात थी। आज लोग सातवलेकरजीको चित्रकारके रूपमें कम और वेदव्याख्याता और वेदपण्डितके रूपमें ज्यादा जानते हैं।

वेदाध्ययनकी दृष्टिसे हैदराबाद पण्डितजीके लिए "गेट वे ऑफ दि वेदाज" साबित हुआ, यहीं रह कर उन्होंने सर्वप्रथम वेदनगरीमें प्रवेश किया था। हैदराबादका प्राचीन नाम भाग्यनगर है, और वस्तुत यह नगर उनके लिए भाग्य विधायक ही सिद्ध हुआ। यहां आकर पण्डितजीने हर क्षेत्रमें उन्नति की। धनाभावके कारण अत्यन्त कठिनाईसे चित्रकलाकी शिक्षा प्राप्त करनेवाले सातवलेकरजी यहां आकर चित्रकलासे अर्जित ऐश्वर्यांका यथेच्छ उपभोग करने लगे। यहीं रहकर वैदिक प्रवचनोंके कारण पण्डितजी वैदिक पण्डितके रूपमें भी प्रख्यात हो गए।

पण्डितजीका जन्म एवं पालन पोषण परतंत्र भारतमें ही हुआ था, उस समय चारों ओरका वातावरण पारतंत्र्यमय ही था। इस वातावरणने पण्डितजीके हृदयमें भी स्वातंत्र्य-प्रेमका अंकुर उगा दिया, इसीके कारण उन्होंने सभी ग्रंथोंमें राष्ट्रीयताके दर्शन किये और जगह जगह वेदोंके राष्ट्रीयपक्षको ही जनताके सामने प्रस्तुत किया, अपने प्रवचनों द्वारा जनताके हृदयोंमें स्वदेश भक्तिकी भावनायें प्रेरित कीं। स्वदेश प्रेमकी भावनाओंसे लबालब भरे हुए "वैदिकराष्ट्रगीत" और

" वैदिकप्रार्थनाओंकी तेजस्विता " अपने इन दो लेखोंके कारण पण्डितजीको अनेक संकटोंका सामना करना पडा।

ऐसे एक महान् पुरुषके चरित्र लेखनसे अपनी आत्माको पुनीत करनेका मुझे अवसर मिला, इसे मैं परमेश्वरकी कृपा ही समझता हूँ।

यह चरित्र मूलतः मराठीमें मराठी जगत्‌के सुप्रसिद्ध लेखक श्री पुरुषोत्तम पाण्डुरंग गोखलेने महान् परिश्रमसे लिखा था, हिन्दीमें भी इस महापुरुषके ऐसे एक जीवनचरित्र ग्रंथकी आवश्यकता दीर्घकालसे अनुभव की जा रही थी। उपर्युक्त मराठीग्रंथके प्रकाशनके बाद श्री पं. सातवलेकरजीके सुयोग्य पुत्र एवं स्वाध्याय मण्डलके मंत्री एवं व्यवस्थापक श्री वसन्तराव सातवलेकरने उक्त ग्रंथका हिन्दीमें अनुवाद करनेकी मुझे प्रेरणा दी और उन्हींकी प्रेरणासे मैंने यह अनुवाद किया और उन्होंने ही अपनी संस्थाके मार्फत इसका प्रकाशन किया। उनकी इस महती कृपाके लिए मैं आजन्म उनका आभारी रहूँगा। साथ ही मूलग्रंथके प्रणेता श्री पु. पां. गोखलेका भी कृतज्ञ हूँ।

पर इन सबके पीछे पूज्य पण्डित सातवलेकरजीका वरदहस्त रहा है, उनका निस्स्वार्थप्रेम, वात्सल्य और सरलता मेरे लिए हमेशाके लिए एक धरोहर बन गई। उनके ऋणसे मैं आजन्म उऋण नहीं हो सकता। पत्रं पुष्पंके तौर पर यह ग्रंथ उन्हींके चरणोंमें समर्पित है।

एक अहिन्दीभाषाभाषी होनेके कारण हो सकता है कि मेरे द्वारा किए गए इस अनुवादकी भाषा कहीं कहीं कुछ अटपटीसी हो गई हो, पर आशा है कि सहृदय पाठक उसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। इसके साथ ही अन्यान्य त्रुटियोंके लिए भी मैं क्षमाप्रार्थी हू।

विदुषां वशंवदः

श्रुतिशील शर्मा

प्रकाशिकाकी ओरसे

चरित्रसाहित्यके क्षेत्रमें हमारे तीर्थरूप बाबा (हम सब उन्हें बाबा ही कहते थे, इसलिए बाबाके रूपमें ही उनका स्मरण करना मुझे पसन्द है, अतः आगे मैं उन्हें बाबाके नामसेही सम्बोधित करूंगी) वेदविन्मूर्धन्य वेदमहर्षि पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीके चरित्रग्रंथकी कमी सुदीर्घ कालसे महसूस की जा रही थी। पर इस कार्यको करनेका बीडा उठाने वाला कोई नहीं मिल सका। इसका कारण मैं यही समझती हूँ कि बाबाके जीवनके बारेमें जानकारी एकत्रित करना एक बडा कठिन काम था। क्योंकि बाबा अपनी प्रसिद्धिसे सर्वथा दूर रहना चाहते थे। उन्हें यह पसन्द ही नहीं था कि कोई उनके चरित्रलेखन जैसे व्यर्थके कामोंमें अपना अमूल्य समय गंवाये। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार उनके किसी भक्तने उनसे कहा था "पंडितजी आप अपनी आत्मकथा अवश्य लिखकर प्रकाशित करवायें।" इस पर बाबाका उत्तर था- "मैं अपना चरित्र लिखनेकी अपेक्षा मरुतोंका चरित्र लिखना अधिक पसन्द करूंगा।" इस प्रकार प्रसिद्धिसे दूर बाबाके जीवनके बारेमें जानकारी हासिल करना भी एवरेस्ट नापनेसे कम न था। इतना ही नहीं, बाबा अपनी जवानी भी किसीको अपना जीवन बताते नहीं थे। उन्हें अपने मुंहसे अपना गुणगान करनेकी अपेक्षा वेदमहिमाका गान करना अधिक रुचिकर लगता था। इसलिए भी उनका चरित्रलेखन एक बडा ही क्लिष्ट कर्म था। यों तो बाबाके जीवनके अनेक पहलुओंका दर्शन करानेवाले अनेकों छिटपुट लेख विभिन्न समाचार पत्रोंमें छप चुके हैं, पर उनमें ग्रंथकी सौष्ठवता कहां? इसलिए उनके जीवनचरित्रका अभाव खटकता था। इस अभावकी पूर्ति करनेकी दिशामें सर्वप्रथम मराठी-साहित्य जगत्‌के विख्यात लेखक श्री सदानन्द चेंदवणकरने किया और उन्होंने बाबाकी जन्मशताब्दिके अवसर पर एक लघुकाय जीवनी लिखी, जो

निर्णयसागर बम्बईसे प्रकाशित हुई। पर यह भी अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण बाबाके सभी पक्षों पर भरपूर प्रकाश डालनेमें असमर्थ ही रही। मैं चाहती थी कि एक ऐसे चरित्रग्रंथका प्रकाशन हो, जिसमें बाबाका सारेका सारा जीवन झलक उठे। यह अभिलाषा मैं अपने हृदयमें चिरकालसे संजोये बैठी थी कि एक दिन मराठी साहित्य-जगत्‌के जानेमाने लेखक श्री पुरुषोत्तम पांडुरंग गोखले मेरे यहां पधारे, उनसे बातचीतके दौरान मैंने अपनी अभिलाषा व्यक्त की, और मेरी प्रसन्नताकी सीमा न रही जब मैंने जाना कि उन्होंने इस भारको उठाना स्वीकार कर लिया है। श्री गोखलेके अनेक वर्षोंका परिश्रम आज अपना फल लेकर आपके सामने उपस्थित है। इसके लिए मैं श्री गोखलेके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूं।

मेरे श्वसुर होनेके कारण बाबाको समीपसे देखनेका मुझे सौभाग्य मिला। क्या भव्य और उदात्त व्यक्तित्व था!! मैं उनके जीवनके जिस पक्षको भी देखती, मुझे यही प्रतीत होता कि उनका वही पक्ष गौरीशंकरका शिखर है।

मैंने जब उनके परिवारमें कदम रखा, तब वे चित्रकारके रूपमें लोगोंकी नजरसे ओझल होकर एक वेदपण्डितके रूपमें अध्याकाशकी तरफ बढते जा रहे थे। तबसे मैं लगातार उनके जीवनका अध्ययन करती चली आई हूं। चित्रकारके रूपमें उनकी कितनी ख्याति थी, या चित्रकलामें वे कितने निष्णात थे, यह मेरे लिए अनुमानका ही विषय रहा, क्योंकि कूंची नचानेमें उनकी कुशलताको मैं कभी प्रत्यक्ष न देख सकी। हां, एक वेदमहर्षिके रूपमें उनका मैंने साक्षात् दर्शन किया, यह मेरे लिए गर्वकी बात है। मुझे हर पल यही महसूस होता था कि मानों वेद ही शरीर धारण करके मेरे घरमें घूम रहे हैं। जिस वेदकी पवित्रगंगाके दर्शनोंके लिए लोग मीलों दूरसे आते थे, उसीका दर्शन मैं नित्य प्रति प्रातःकाल उठकर करती थी, यह क्या कम अभिमान की बात है?

उनका जीवन सचमुच एक विशाल रत्नाकर था। जो ऊपरसे तो केवल पानी ही पानी दिखाई देता है, पर अन्दर कितने रत्नोंको छिपाये हुए है कौन जानता है? उसकी अगाधताका पता लगाना भी दुश्वार है। उछलती, इठलाती और लहराती हुई नदीकी थाहका पा लेना आसान है, पर निश्चल और शान्त महासागरकी थाह पाना मुश्किल है। " मौनं पण्डितलक्षणं " यह जो कहा है, यह सर्वांशमें सत्य है। बाबा सदा मितभाषी थे। इसलिए उनके विद्वत्ताकी थाहका पता लगाना बड़ा ही कठिन था। यों मैंने तीस वर्षोंका एक लम्बा जीवन उनकी सेवामें काटा, पर फिर भी मैं यह कहनेका साहस नहीं कर सकती कि मैंने उनके जीवनका पूरा अध्ययन कर लिया या उनकी विद्वत्ताकी थाह पा ली। न जाने उनके अन्दर अभी और कितने रत्न भरे पड़े थे! यदि मैं उनकी विद्वत्तासे थोडासा फायदा उठाकर यह कहने लग जाऊं कि मैंने तो उनका सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया तो यह मेरी

बात ऐसी ही हास्यास्पद होगी कि जैसे कोई गोताखोर समुद्रमेंसे ८-१० रत्न निकालकर यह कहने लग जाए कि मैंने रत्नाकरके सभी रत्न हासिल कर लिए हैं। बाबाके बारेमें भी " जिन ढूंढा तिन पाइयां " वाली बात सच ही थी।

बाबाका सारा जीवन चांदनी जैसा शुभ्र और निर्मल तथा स्फटिककी तरह पारदर्शी था। इसका कारण था कि वे ढोंग और पाखण्डवादसे हमेशा दूर रहे। बाबा जैसे महापुरुषोंका जीवन सदा समरस, निश्छल और निष्कपट होता है। इस प्रसंगमें मुझे एक संस्मरण याद आता है- उनकी स्वाध्यायमण्डल-संस्था सदा ही आर्थिकसंकटसे ग्रस्त रहती थी। इसे देखकर उनके एक श्रद्धालुने सुझाव दिया कि- " पण्डितजी ! आप भी जटा और दाढ़ी बढ़ाकर लोगोंको भस्म देना और गुरुमंत्र देना शुरु कर दीजिए, फिर देखिए आपके ऊपर धनकी वर्षा होती है या नहीं ?" इस सुझावको सुनकर बाबा मुस्कराते हुए बोले- " मैं वैदिकमार्गका अनुयायी हूँ, और वेदोंका यही आदेश है सर्वत्र सत्यधर्मका ही प्रचार हो। यजुर्वेदका एक मंत्र है " सत्यका मुंह सोनेके ढक्कनसे ढका हुआ है। हे पोषक प्रभो ! सत्यधर्मके दर्शनके लिए उस ढक्कनको हटाओ। " इसलिए वेद तो पाखण्डवादके विरोधी हैं और तुम मुझसे कहते हो कि मैं उसी पाखण्डवादका मार्ग अपनाऊं। " इस प्रकार बाबाका जीवन पाखण्ड और प्रसिद्धिसे कोसों दूर था।

ऐसे प्रातःस्मरणीय महापुरुषका जीवनचरित्र मराठीमें छपकर जब मेरे सामने आया तो अपने चिरकालकी अभिलाषाको पूरा हुआ देखकर मैं निहाल हो उठी। फिर विचार हुआ कि उसी ग्रंथका हिन्दीमें भी अनुवाद किया जाए, ताकि हिन्दी भाषाभाषी जनता भी पण्डितजीके जीवनसे परिचित हो सके।

श्री. बाबाके वरदहस्तके नीचे गत ७-८ वर्षोंसे उनके सचिवके रूपमें कार्य करनेवाले, मेरे परिवारके एक सदस्यके रूपमें हुए हुए श्री श्रुतिशील शर्माने मेरे कहते ही मराठी-ग्रंथके हिन्दी अनुवादका काम महान् आनन्दसे स्वीकार कर लिया और उसे अत्यन्त सुन्दरतासे पूरा भी किया, इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देती हूं।

मुझे प्रसन्नता है कि मेरी यह इच्छा भी इस हिन्दी-ग्रंथके साथ पूर्ण हो रही है। मुझे पूर्ण आशा है कि पाठकवर्ग इस ग्रंथका हृदयसे स्वागत करेगा।

—सौ. लतिका सातवळेकर
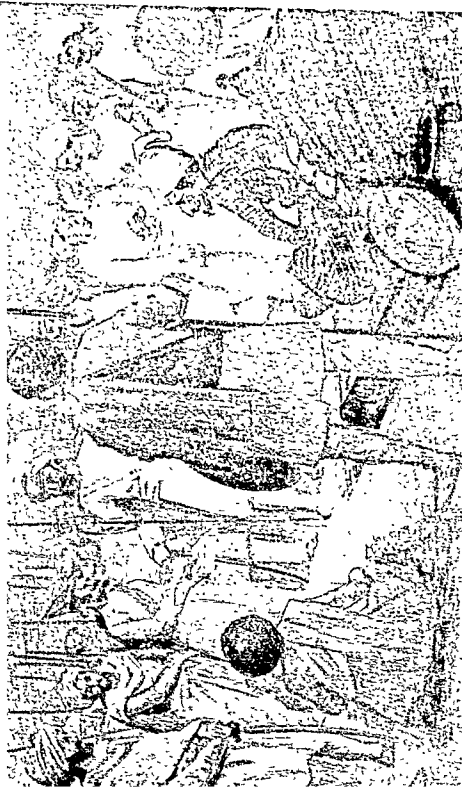
पंडितजीके जीवनकी तालिका

१८६७ सितम्बर १९ (भाद्रपद कृष्ण ६, शक १७८९) सावंतवाडी रियासतके कोलगांवमें जन्म ।

१८७५ नृसिंहवाडीमें यज्ञोपवीत व उपनयन और सावंतवाडीमें शिक्षाके लिए श्री मामा पेंढारकरके पास रहना ।

१८८२ मराठी ६ वीं उत्तीर्ण, ६ दिन हायस्कूलमें रहनेके बाद आर्थिक अडचनके कारण अंग्रेजी शिक्षाको विदा।

१८८३ भाषान्तरपाठमालाके आधारपर श्री लुकतुकेसे अंग्रेजी सीखना ।

१८८४ वे. चिन्तामणिशास्त्री केळकरसे संस्कृतका अध्ययन करना ।

१८८८ सावंतवाडीमें संस्कृतवाग्वार्धिनी सभाकी स्थापना ।

१८८९ माणगांवके साधलेकी पुत्री काशीताईसे विवाह, (२) सावंतवाडीकी चित्रशालामें चित्रकलामें योग्यता प्राप्त करनेका प्रयत्न ।

१८९२ बम्बईके जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्समें प्रवेश । २) ढोंगी योगीकी शास्त्रोंके आधारपर पोल खोलना । (३) पंडितजी द्वारा किए गए ऋचाओंके अर्थोंको लो. तिलक द्वारा अपने पत्र "केसरी" के सम्पादकीयमें लेना । (४) लोकमान्यका अनुयायी होना। (५) चित्रकलामें प्रवीण होनेपर मेयो मैडल प्राप्त करना ।

१८९४–९७ प्रतिवर्ष औंधमें श्रीमंत पंतप्रतिनिधिके पास उत्सवके अवसरपर होनेवाले नाटकोंके परदे रंगना व दूसरे चित्र भी तैयार करना ।

१९०० दक्षिण हैदराबादको प्रयाण और वहां चित्रकला के तथा अन्य सार्वजनिक कामोंकी शुरुआत ।

१९४३ वाइसरायके प्रतिनिधिके द्वारा आळंदगांवमें ग्रामसंरक्षकदलकी अनपेक्षित कसौटी।

१९४५ ब्रिटिश रियासतोंमें चलनेवाले "भारत छोड़ो" आन्दोलनके कुछ सभासदोंको आश्रय देना।

१९४८ गांधीवधके बाद ब्राह्मणोंके विध्वंसकी लहर उठना और उसमेंसे बचकर निकलना। (२) रियासतोंके विलीनीकरणके बाद औंधसे पारडी आना। (३) पारडीमें आकर "वेद–सन्देश" गुजराती मासिकका प्रारंभ।

१९५४ स्वाध्यायमण्डलकी रजत–जयन्ती।

१९५५ गायत्रीमहायज्ञ।

१९५९ संस्कृत पंडितके रूपमें राष्ट्रपतिके द्वारा सम्मान व १५०० रु. का वार्षिक अनुदान।

१९६२ उत्तर भारतके महान् सन्त श्री देवरहवा बाबाके द्वारा ४–४॥ लाख जनसमूहके मध्यमें "महर्षि" पदवी प्रदान।

१९६६ जन्मशताब्दिका समारोह।

: १ :

कुछ प्रशंसा गीत

महाराष्ट्रीय इतिहासका सदासे यह अभिमान रहा है कि भारतकी सेवाके लिए ही उसकी सत्ता है। इसी प्रसंगमें भारतको महाराष्ट्रके द्वारा प्रदान किए गए देदीप्यमान नररत्नोंमें वेदमहर्षि पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरकी भी गणना की जा सकती है। वैशिष्ट्यपूर्ण व्यक्तित्व, मजबूत और स्वस्थ शरीर, प्रशान्त व गंभीर मुद्रा, दुर्दम्य उत्साह, अखण्ड कार्यशीलता, दिखावेसे कोसों दूर, सरलता, निःस्वार्थ स्नेहशीलता, जाज्वल्यमान वैदिकधर्मनिष्ठा, शुद्ध व नियमित जीवनक्रम, विरोधियोंके प्रति भी स्नेह व आदर इत्यादिके साक्षात् मूर्तिके रूपमें महामहोपाध्याय सातवलेकरजीकी सब जगह प्रसिद्धि है।

"भारतवर्षकी सेवा ही जिनका धर्म और व्यवसाय रहा है, ऐसी दुर्लभ विभूतियोंमें पंडित सातवलेकरकी भी गणना करनी पड़ेगी। पंडित सातवलेकर आधुनिक युगके वेदाचार्य हैं। उनके द्वारा हाथमें लिया हुआ वेदोद्धारका व्रत एक महायज्ञ है।" लोकनायक माधवराव अणेका यह कथन पंडितजीके योग्य चरित्रका निदर्शक है। ऐसे इन महापुरुषके चरित्रके "कुछ प्रशंसा गीत" गानेकी मनकी यदि इच्छा हो, तो उसमें आश्चर्य क्या है?

"साहसे श्रीः प्रतिवसति" साहसमें ही लक्ष्मी रहती है (Nothing venture, nothing have) इस संस्कृत-अंग्रेजीके वचनानुसार साहसके साक्षात् प्रतीकके रूपमें महाराष्ट्रके जिन कतिपय वैचारिक शिल्पकारोंपर बुद्धिमानोंकी नजर पड़ती है, उनमें अत्यन्त दक्ष और निपुण शासनमूर्ति पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर इन वेदनारायणका स्थान सबसे आगे है।

भारतका पश्चिमी किनारा और उसके आसपासका भू-भाग (बम्बईको छोड़कर) प्रायः पथरीले और दरिद्रीके रूपमें ही इतिहासमें अंकित है। इस भूभागमें रत्नागिरी

जिलेने बुद्धिमानोंके जो रत्न भारतको प्रदान किए हैं, उन रत्नोंने एक नया इतिहास रचा है। सह्याद्रिके दक्षिणमें हिरण्यकेशी नदी माधवगिरीके बगलमें बहती है। उसके पत्थरोंकी उपत्यकामें दक्षिणकी तरफ जानेवाला मार्ग है, उसपर कदम रखते ही प्रकृतिका भव्य और सुन्दर रूप दीखने लगता है। यह फोंडाघाटका रमणीय प्रदेश ही सावंतवाडी रियासत है। यह सावंतवाडी रियासत बेलगांव जिलेमें था। इसकी वार्षिक आय ६॥ लाख रु. और जनसंख्या दो लाखके करीब थी। वहांकी प्रजा भव्य और स्वस्थ, बुद्धिमती तथा निरलस उद्योगशील थी। उसी प्रदेशमें सातवलेकर घराना था। सावंतवाडीसे १॥ मील दूर कोलगांवमें स्थायी हुए हुए सातवलेकर घरानेमें दामोदर भट्ट और सौ. लक्ष्मीबाई इन दम्पतीके भाद्रपद कृष्णा षष्ठी १७८९ शक संवत तदनुसार १९ सितम्बर १८६७ गुरुवारके दिन जिस कुलदीपकका जन्म हुआ, वही श्रीपाद आगे चलकर अपने घरानेकी वैदिक परम्पराको अटूट रखते हुए पं. सातवलेकरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। महापुरुषोंके जीवनोंकी यह विशेषता होती है कि वे जहां भी जाएँगे वहीं नवजीवनका संदेश देंगे और जिस काममें हाथ डालेंगे उसको समाप्त करके ही सांस लेंगे। उन्हींमेंसे सातवलेकरजी भी एक हैं।

वेदोपनिषदोंके कहने सुननेका अधिकार त्रैवर्णिकोंको ही था, उसमें भी कालकी वक्रगतिके कारण काटछांट होती गई। इसीलिए "उपनिषद्रूपी गायोंको दुहनेवाले गोपालनन्दन" भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको—

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।

(स्त्री, वैश्य तथा शूद्र भी परम गतिको प्राप्त कर सकते हैं।) इस प्रकार आश्वासन देनेवाली गीता सुनाई थी। वही गीता आर्यधर्म-वैदिकधर्मका अद्वितीय ग्रंथ साबित हुई। इसी पर ज्ञानेश्वरने ज्ञानेश्वरी लिखी। उसीको एकनाथने भाद्रपद वद्य षष्ठी १५०६ शक संवत्को शुद्ध किया। भागवतसंप्रदायवाले इसी तिथिको ज्ञानेश्वरी-जयन्ती मनाते हैं। इसी जयन्तीके दिन पं. सातवलेकरजीने जन्म लिया, यह एक संयोग ही तो है।

० ० ०

: २ :

प्रगतिका प्रवाह और कर्तव्यका स्मरण

> नमो महद्भ्यो नमः शिशुभ्यो
> नमो युवभ्यो नम आवटुभ्यः ।
> ये ब्राह्मणा गामवधूतलिंगाः
> चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥ (भागवत ५।१३।२३)

कोलगांव (जि. रत्नागिरी) के सात्विक भट्ट घरानेका सातवलेकर नाम कैसे और कब पड गया, यह एक गूढ ही है। दामोदरपंत और लक्ष्मीबाईके जितने भी बच्चे हुए, सभी अल्पवयी ही हुए। सभी अकाल मृत्युके ग्रास बन जाते थे। स्त्री जन्मकी पूर्णता मातृत्वमें और मातृत्वकी पूर्णता बालसंगोपनमें ही होती है। इस अभिलाषाकी तृप्तिके लिए लक्ष्मी बाईने नरसोबावाडीके भगवान् दत्तात्रेयकी मनौती मनाई कि "यदि मेरा लडका जीवित रहा तो हे देव! उसका उपनयन तेरे ही चरणोंमें आकर करूंगी।" आगे लडका होनेपर मानों मनौतीकी स्मृतिके लिए और बच्चा भी आगे चलकर संस्कारी बने इस अभिलाषासे उसका नाम "श्री-पाद" रखा।

परिस्थितिकी प्रयोगशालामें सर्व प्रथम मनुष्यका आकार बनता है, और इसी आकार-निर्माणके दौरानमें उस मनुष्यमें नई नई शक्तियां भी उत्पन्न होती जाती हैं और एक दिन ऐसा आता है कि इन शक्तियोंका सहारा लेकर वह परिस्थितिका खिलौना मनुष्य परिस्थितिको ही अपने हाथोंका खिलौना बनाकर उसे जैसा चाहे वैसा घड सकता है और अपने, समाजके, राष्ट्रके और सारे संसारके इतिहासका भी वह निर्माण कर सकता है। इसीलिए कर्णका—

'दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं च पौरुषम्'

('मेरा जन्म होना भाग्यके अधीन था और पुरुषार्थ करना मेरे आधीन है)

यह वाक्य अमर हो गया। पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरके जीवनके चित्रपटको नजरोंके सामने जब हम रखते हैं, तो हमें स्थूलदृष्ट्या ही नहीं, इस पर भी विचार करना पड़ता है कि समझबूझकर व्यवहार करनेमें पहले किन परिस्थितियोंने उनका प्राथमिक निर्माण किया था। परिस्थितिके पालनेमें बच्चोंके पांव कैसे दीखते हैं, इसका निरीक्षण करना जितना मनोरंजक है उतना ही उद्बोधक भी होता है। एक शतकसे भी ज्यादा जिसपर ब्रिटिशसत्ता हावी रही, ऐसे सावंतवाडी रियासतके कोलगांव जैसे एक छोटेसे गांवतक भी भारत और महाराष्ट्रमें घटनेवाली ऐतिहासिक घटनाओंका परिणाम पहुंच चुका था। उस समयकी प्रजा राजपूत-सिक्खोंका पराक्रम, शिवसमर्थकी वीरता सभी कुछ भूल चुकी थी।

सत्रहवीं शताब्दीके उषःकालमें अथवा कहा जाये तो १४९८ में ही हिन्दुस्तानके किनारेपर वास्को डि-गामाके पांव पडतेही माल बेचनेके बहाने अंग्रेजोंके झुण्डके झुण्ड भारतमें आने लगे और बलके जोरपर छोटे मोटे तख्तेताऊस भी कायम करने लगे। डच, फ्रेंच और पुर्तगालियोंको अपनी सत्ताके स्थापनमें थोडी सी ही सफलता मिल पाई थी कि अंग्रेज उन सभी पर हावी हो गए। और १७५७ के प्लासीके युद्धके बाद सम्पूर्ण हिन्दुस्तानपर अधिकार करनेकी अंग्रेजोंकी मनीषा इतिहासने पहले ही दर्शा दी थी।

अंग्रेजी राज्य अब अपना वामनरूप छोडकर विशाल रूप धारण करने लग गया था। पर अब भी हिन्दुस्तानियोंका स्वाभिमान शेष था। कोल्हापुरमें जो क्रान्ति हुई उसमें पडोसी होनेके नाते रत्नागिरीको भी भाग लेना ही पडा। सावंतवाडीके पास मनोहरगड और मनसन्तोषगड नामके दो किले हैं। कोल्हापुरमें चलाई जानेवाली क्रांति में इन दोनों किलोंका योगदान भी प्रशंसनीय रहा है। गडकरीके द्वारा चलाई गई कोल्हापुरकी क्रांतिमें मनोहरगड दो महीनेतक अचल खडा रहा। आखिरकार पोर्टेमके द्वारा उसका पराभव हुआ और १८४५ में जनरल डिलामोटीने उसपर अधिकार कर लिया।

१८१८ में पेशवा साम्राज्यके अस्त हो जानेपर अंग्रेजोंने नई पीढीको नवीन पद्धतिसे शिक्षा देनी शुरु की। उन्हें अपना राज्य सुनियंत्रित रूपसे चलानेके लिए नौकरोंकी जरूरत थी। व्यापार करनेकी दृष्टिसे भारतमें आए हुए अंग्रेजव्यापारियोंको अपना व्यापार चलाना था। अतः बौद्धों और मुसलमानोंने जिस प्रकार राज्याश्रय लेकर अपने अपने धर्मका प्रचार किया, उसी प्रकार अब क्रिश्चियन मिशनरियाँ अंग्रेज-अधिकारियोंका आश्रय लेकर अपने धर्मका प्रचार करने लगीं।

इन मिशनरियोंका विरोध उत्तरभारतमें ब्रह्मसमाज और आर्यसमाजने तथा महाराष्ट्रमें प्रार्थनासमाजने किया। उनसे भी अधिक विष्णुबुवा ब्रह्मचारीने हिन्दु-धर्मपर होनेवाले मिशनरियोंके आक्रमणका प्रतिकार करनेका बडा प्रयत्न किया।

इसप्रकार परस्पर विरोधी समाजोंके द्वारा मिलनेवाली शिक्षासे समाजको स्वतंत्र-विचार करनेकी दिशा भी मिलती गई। पंडित सातवलेकरजीके जन्मसे पहले स्वातंत्र्यप्राप्तिके लिए सशस्त्र क्रांति हो चुकी थी। पर पंडितजीके उपनयनके समयके आसपास १८७४ में प्रकाशित हुई विष्णुशास्त्री चिपलूणकरकी निबन्धमालाने लोक जागरण करनेके कार्यमें बहुत बडा पार्ट अदा किया था। जब पंडितजीकी उमर दस वर्षके करीब थी, तब देशीभाषाओंके *समाचारपत्रों पर प्रतिबंध लगानेवाला एक* कायदा तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड लिटनने जारी किया। इसी बीच १८७३ में ज्योतिराव फुलेने ब्राह्मणेतर वर्गको शिक्षित बनाकर उन्हें ब्राह्मणोंके शिकंजेसे छुडानेके लिए सत्यशोधक समाजकी प्रस्थापना की।

लोकशिक्षणके लिए १८४९ में पूनासे "ज्ञानप्रकाश" का प्रकाशन शुरु हुआ और पंडितजीके जन्मके तीन वर्ष पहले ही अर्थात् १८६४ में बम्बईसे "इन्दुप्रकाश" प्रकाशित होने लगा। "इन्दुप्रकाश" के सम्पादक श्री विष्णु परशुराम पंडित ज्योतिराव फुलेकी तरह जिला सताराके सुपुत्र थे। उन्होंने १८७० में श्री शंकराचार्य-के सामने पुनर्विवाहके बारेमें एक शास्त्रार्थकी सभा बुलाई थी। इसके कारण लोगोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा जाग उठी।

पण्डितजीके जन्मतक (१८६६) आवागमनकी सुविधा बहुत थोडी थी। १८७२ में विलायतमें एक पार्लियामेन्टरी समितिकी स्थापना हुई जो भारतके आयव्ययके हिसाबका लेखाजोखा करनेके लिए बनाई गई थी। उस समितिके सामने साक्षी देनेके लिए एक महाराष्ट्रीय प्रतिनिधिको भेजनेका निश्चय पूनाके सार्वजनिक सभाने किया था। पर समुद्रोल्लंघन रूप पापका प्रायश्चित्त करनेके डरसे कोई भी विलायत नहीं गया। इसी समय विलायतमें एक हिन्दुमंदिर बांधनेकी भी एक कल्पना थी। पर जैसे मन्त्र वैसे उनके देव! १८६१ में बम्बईसे कोंकणकी तरफ पहली जहाज यात्रा शुरु हुई, पर वह भी सप्ताह भरमें एक ही जहाज आता था। सारे कोंकण किनारेका प्रवास उन दिनों नावोंसे होता था। तबतक कोंकणके किनारेकी सडक नहीं बन पाई थी।

पेशवाई साम्राज्यके बाद अंग्रेजोंकी नवीन शिक्षापद्धतिके कारण सारा जमाना बदल गया। १८३० से १८७४ तक दो तीन पीढियां सुशिक्षित हो गईं। प्रथम दो सुशिक्षितपीढीके प्रतिनिधिके रूपमें गोपालराव हरि देशमुख और महादेव गोविन्द रानाडेका नाम लिया जा सकता है। अंग्रेजोंकी इस नवीन शिक्षापद्धतिमें शिष्टा, *नीतिमत्ता, धर्मनिष्ठा और स्वकीय आचरण इन सबको सर्वथा तिलांजलि देदी गई* थी। इसका परिणाम यह हुआ कि सबको समाजमें दोष ही दोष दिखाई देने लगे। पर नवीन पीढीके अग्रदूत थे विष्णुशास्त्री चिपलूणकर। वे यह बात अच्छी तरह समझ रहे थे कि जबतक समाजमें दृढ विचार, संकल्प, सदाचरण, नीतिधैर्य और स्वार्थ-त्यागकी भावना जाग्रत नहीं की जाती, तबतक केवल धार्मिक और सामाजिक सुधारसे

राष्ट्रकी उन्नति होनेवाली नहीं है। इसलिए विष्णुशास्त्री चिपलूणकरने सरकारी नौकरीको लात मारकर एक नये कामकी नींव डाली और आगे चलकर इसी नींवपर लोकमान्य तिलक और आगरकरने इमारत बांधा।

अंग्रेजी राज्यके विस्तार करने और उसे स्थिर बनानेके काममें बाइबिलका बहुत बड़ा योग दान है। १८५७ की राज्यक्रान्तिको कुचल देनेवाले अंग्रेजोंने भारतमें अपने राज्यका यथेच्छ विस्तार किया। उसके बाद अपने राज्यको भारतमें स्थिर करनेके लिए अंग्रेजोंने प्रयत्न करने शुरु कर दिये। सम्पूर्ण भारतको ईसाई बनानेके लिए पादरियोंके कारवें पर कारवें भारतमें आने लग गए। लॉर्ड क्लाइवके बाद लॉर्ड मेकॉलेने भारतको ईसाई बनानेका बीड़ा उठाया। १८३५ में अपने पिताको लिखे गए एक पत्रमें मेकॉलेने यह आशा व्यक्त की थी कि २५ वर्षोंमें सारा बंगाल ईसाई हो जाएगा। पर उसकी आशाकी बढ़ती हुई इस बाढको ब्रह्मसमाज और प्रार्थना-समाजने रोक दिया। आर्यसमाज तो इस बाढके लिए "चीनकी दीवार" ही साबित हुआ। परिणामस्वरूप १८८३ मे ही पादरियोंने ब्रिटिश शासनके कान भरने शुरु कर दिए कि यह आर्यसमाज धर्मप्रचारकोंके लिए उतना खतरनाक नहीं है, जितना कि शासनके लिए।

१८५९ सन्में राजा राममोहनरायने शान्तिमय आन्दोलनका श्रीगणेश किया। परिणामतः विद्यालयोंमें और विद्यालयोंके बाहर भी जहां तहां लोकोद्धारका वातावरण तैय्यार होने लगा। विष्णुशास्त्री चिपलूणकरसे लेकर अन्य भी जितने विचारक एवं समाजसुधारक थे, उन सभीका यह मत बन चुका था कि यदि भारतीयोंको सम्मान-पूर्वक जिन्दा रहना है और दूसरे राष्ट्रों की तुलनामें खड़ा होना है, तो भारतीय-समाजको खोखला बनानेवाले सभी विरोधी-तत्वोंको समाजसे निकाल फेंकना पड़ेगा। इसलिए वे सभी समाजसुधारक एक ऐसा वातावरण तैयार करनेकी कोशिशमें लग गए कि जिसमें रहकर सभी नौजवान प्रगतिके बहावको नजरे-अन्दाज न करते हुए अपने कर्तव्य पालनमें मशगूल रहें। अंग्रेज शासक भी सतीबन्दी (१८२९) धर्मा-न्तरितका उत्तराधिकारित्व (१८३२ व १८५०) धोखाधड़ीपर रोक (१८३६) विधवा-विवाहका कायदा (१८५६) इण्डियनपीनलकोड (१८६०) आदि नियम बनाकर भारतीयोंके मनोंको अपनी ओर आकर्षित करनेका प्रयत्न करते थे। ऐसे खतरनाक समयमें भी अनेक हिन्दु वेदान्तके तत्वज्ञानमें और कीर्तन भजन करनेमें ही व्यस्त रहते थे, इस तथ्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

पूनाके सार्वजनिक लोगोंने विदेशी पदार्थोंकी होली जलाकर स्वदेशी पदार्थोंका प्रयोग करना प्रारंभ किया। यह घटना पंडितजीके बचपनकी है। वे १८७७ के राजदरबारमें खादीके कपडे पहनकर गये थे। उस समय श्री पंडितजीकी उमर केवल दस बरसकी थी। इस घटनासे तीन वर्ष पूर्व अर्थात् १८७४ में एक सार्वजनिक

सभाने भारतमें "जबाबदार राज्यपद्धति" प्रारंभ करनेके लिए ब्रिटिश पार्लियामेंटके पास एक अर्जी भेजी थी। उस अर्जीमें उस सभाने कुछ मुद्दे प्रस्तुत किए थे। उनमेंसे एक यह भी था कि विलायतके पार्लियामेण्टमें हिन्दुस्तानके भी प्रतिनिधि हों और हिन्दुस्तानमें किए जानेवाले प्रशासनिक कार्योंका ब्योरा उन प्रतिनिधियोंका सलाह-मशविरा लेकर ही तैय्यार किया जाए। इस अर्जीपर हजारों लोगोंके हस्ताक्षर कराकर उसे भेजा गया था। इस प्रकार उस समय भी भारतमें देशप्रेम और स्वातंत्र्यप्रेमके अंकुर फूट रहे थे।

आगे चलकर सन् १८७५ में पूनामें तथा दूसरे स्थानोंमें वेदशास्त्रोत्तेजक सभायें कायम की गईं। इन सभाओंका उद्देश्य वेदोंको अर्थसहित समझकर दूसरोंको वेदोक्त धर्मकी शिक्षा देकर धार्मिक क्रियाओंमें उत्पन्न हुई भ्रान्तियोंको दूर करना था।

तात्पर्य यह कि १९ वीं शतीके प्रथम पच्चीस वर्षोंमें स्वराज्यका ह्रास और परकीय सत्ताका उत्कर्ष हुआ। दूसरे पच्चीस वर्षोंमें अंग्रेजी राज्यका विस्तार हुआ। साथ ही भारतीयोंका स्वाभिमान भी नष्ट होता गया, लोग किंकर्तव्यविमूढ हो गए। तीसरे पच्चीस वर्षोंमें अंग्रेजी राज्यका वर्चस्व सर्वत्र फैलने लगा और भारतीय जन-जीवन वर्चस्वहीन होने लगा। उस समयतक परकीयसत्ताका गुणगान करनेवालोंका एक अलग ही वर्ग जन्म ले चुका था। परन्तु उसके साथ ही एक तरफ एक ऐसा स्वाभिमानी वर्ग भी विद्यमान था, जिसने १८५७ जैसी राज्यक्रान्तिकी आग लगाकर अंग्रेजी साम्राज्यको उलट देनेका प्रयत्न किया। दूसरी तरफ देशमें विश्वविद्यालयोंकी स्थापना होनेके कारण एक ज्ञानसम्पन्न नवीन पीढीका निर्माण भी हो रहा था। परवशताका भयंकर रूप उस नवीन पीढीकी नजरमें पडा। १९ वीं शतीके अन्तिम २५ वर्षोंके मध्यमें अर्थात् सन् १८८५ में कॉंग्रेसकी स्थापना हुई और जनक्रान्तिको मूर्तस्वरूप प्राप्त होने लगा। न्यायमूर्ति रानाडेका यह विचार था कि अंग्रेजोंके पास भी अनेक ऐसे उत्तम गुण हैं कि जिन्हें सीखकर भारत अपनी उन्नति कर सकता है और उस प्रगति के आधार पर अपने प्राचीन सांस्कृतिक वैभव और कर्तृत्वसे युक्त होकर वह संसारके पुरोगामी राष्ट्रोंकी तुलनामें शामिल हो सकता है। पर उनके इस विचारको देखकर यह धारणा बना लेना कि रानाडे परकीय सत्ताके समर्थक थे, उनके प्रति एक बहुत बडा अन्याय होगा।

ऐसे कालमें पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरका जन्म हुआ। अतः उनके ऊपर भी उस समयकी घटनाओंका प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था।

सन् १८८५ में कॉंग्रेसकी स्थापना हुई और सन् १८८९ में लोकमान्य तिलक और गोपाल कृष्ण गोखले इन दोनोंने कॉंग्रेस पर अपने तेजकी किरणें फैलानी शुरु कीं। इसी दौरानमें सातवलेकरजीने अपनी प्रारंभिक शिक्षा समाप्त करके—

अन्त न पाते नभ का फिर भी
करते विहार गगन में पक्षी

इस उक्तिके अनुसार सातवलेकर भी इस अनन्त विश्वमें विहार करनेके उद्देश्यसे बम्बईमें पहुंचे और वहां चित्रकारीके स्कूलमें दाखिल हो गए। पंडितजी लो. तिलक-के विचारोंसे कितने प्रभावित थे, इसका निदर्शन उन्हींके शब्दोंसे होता है। पंडितजी लिखते हैं– 'केसरी (लो. तिलक द्वारा सम्पादित अखबार) का मैं जबसे पाठक रहा हूँ । तबसे केसरीको राजनैतिक क्षेत्रमें दूसरे अखबारोंकी अपेक्षा सदा आगे ही पाता रहा हूँ।' (केसरी– प्रबोध खण्ड १; पृ. ६२)। केसरी सावंतवाडी रियासतमें भी लोगोंके बीचमें कितना प्रिय था, यह पंडितजीके उपर्युक्त कथनसे अच्छी तरह जाना जा सकता है।

❦ ❦ ❦

: ३ :

वंशपरम्परा और उत्तराधिकार

श्री सातवलेकरके जन्मसे लेकर द्विज अर्थात् उपनयन होनेतक तथा उसके बाद भी जग–जीवन विषयक ज्ञान उन्हें प्राप्त होनेतकके समयके दरम्यान भारतीय परिस्थिति एवं उसकी प्रगति पर विचार करनेपर– सातवलेकरके कौटुम्बिक वंशपरम्परा पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। सातवलेकरका घराना वैदिक था, उनके पास कोलगांव, कुणकेरी और सावंतवाडी इन तीन गांवोंका पौरोहित्याधिकार था। पौरोहित्यकालमें इस घरानेकी विशेषतासे सभी अच्छी तरह परिचित हो चुके थे। वैदिकमंत्रोंके तथा अन्य संस्कृतशब्दोंके उच्चारणकी स्पष्टता एवं शीघ्रतामें सातवलेकर कुटुम्ब किसीसे हार खानेवाला नहीं था। यह परिवार ऐसा था, जो चार पैसे दक्षिणा प्राप्त करनेके लिए मीलों पैदल चलनेमें भी हिचकिचाता नहीं था।

इस प्रकार वसिष्ठ गोत्रीय सातवलेकर (भट्ट) घरानेके यशको अक्षुण्ण बनाये हुए पंडितजीके परदादा दिनभर स्वाध्याय और जप आदि करते हुए धार्मिक कार्योंमें ही समयका सदुपयोग करते थे। सातवलेकर भट्ट घरानेका मूल गांव कोंकणमें और संभवतः रत्नागिरी जिलेमें कहीं होगा। पर सातवलेकर घरानेके किसी भी सदस्यको उसके बारेमें कुछ भी पता नहीं है। न उस गांवको सातवलेकर घरानेके किसी सदस्यने देखा ही और न यह सुना ही कि वह गांव कहां है, और किस जिलेमें है। तथापि जबसे सातवलेकर घरानेने कोलगांवमें अपना स्थान स्थायी बना लिया, तबसे गांवमें कहीं भी कोई धार्मिक विधि होती उस कार्यमें उत्पन्नका आधा भाग सातवलेकर कुटुम्बको अवश्य मिलता था। उस समय कोलगांवमें बाईस घर ब्राह्मणोंके, आठ क्षत्रियोंके और उतने ही वैश्य और शूद्रोंके थे। देवमन्दिर अनेक थे। उनमें कलेश्वर अथवा कलोबाका मन्दिर मुख्य माना जाता था। दूसरा देवता माउली था। इन दोनों देवोंकी धर्मशास्त्रानुसार पूजा अर्चा करना ग्रामीणजन अपना कर्तव्य मानते थे।

उनकी यह मान्यता थी, कि कलेश्वरकी कृपासे लोगोंको जीनेकी कला ज्ञात होती है और सान्तेरीकी कृपासे लोगोंको यह ज्ञान मिलता है कि यह सब जगत् सान्त है अतः मर्यादामें अपने कर्तव्य कर्मोंको करना चाहिए। इस उद्‌बोधनका प्रसाद प्राप्त कर पंडितजीके व्यवहारशील परदादा वेदशास्त्रसम्पन्न श्री कृष्णराव अपनी पत्नीके साथ कोलगांवमें प्रतिष्ठापूर्वक रहते थे। उन्हींकी परम्परा पंडितजीके दादा श्री अनन्तरावने अक्षुण्ण बनाये रखी। और पंडितजीकी दादी सरस्वतीने भी अपनी सज्जनतासे लोगोंके मन जीत लिए थे। अनन्तराव सातवलेकरके दामोदरपंत, कृष्णराव और सीतारामपंत ये तीन पुत्र हुए। उनमें दामोदरपन्त श्री पंडितजीके पिता थे। दामोदरपंतके दो विवाह हुए, उनकी पहिली पत्नीका नाम गोपिकाबाई था। उनके दिवंगत हो जानेपर बालावल गांवके भट्ट घरानेसे उनका सम्बन्ध स्थापित हुआ। वही लक्ष्मीबाई पंडितजीकी माता थीं। बालावलका यह भट्ट घराना अत्रिगोत्रीय था। पंडितजीके नानाका नाम बालकृष्णपंत और मामाका नाम कृष्ण था। कोलगांव और बालावल इन दोनों गांवोंके भट्ट घरानेमें तत्कालीन सामाजिक प्रथाके अनुसार दादाका नाम ही नातीगोतेका होता था। पंडितजीके एक चाचाका नाम कृष्णराव था जो उनके परदादेका भी नाम था। उसी तरह उनके मामाका नाम कृष्णराव था, जो पंडितजीके परनानाके नामके अनुसार रखा गया था। इसी तरह पंडितजीके मामाके पिताका नाम और उनके (मामाके पिताके) दादाके नाम भी एक ही थे। इन दोनोंका नाम बालकृष्ण था। घरानेके यशको अक्षुण्ण बनाये रखने और अपनी सज्जनता और कर्तृत्वसे लोगोंकी वाहवाही पानेके लिए इन कुटुम्बियोंने अपने सारे जीवनका उत्सर्ग कर दिया। पण्डितजी जब बीस वर्षकी उम्रमें बम्बईके चित्रकलाके स्कूलमें प्रविष्ट हुए, तब पंडितजीके पिताजी ८७ वें वर्ष और उनकी माता ६० वें वर्ष परलोक सिधार गई। तबसे पंडित श्रीपादराव सातवलेकर और उनके भाई सीतारामपंत और कृष्णराव उर्फ सखारामपंतको अपने पैरोंपर खड़ा होकर अपने जीवनका निर्माण करना पड़ा।

पिताके द्वारा अर्जित सम्पत्तिका, जो कोलगांवमें थी, इतिहास स्वयं पंडितजीने ही लिखा है। उसे देखनेके पहले यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सातवलेकर घरानेके पास अधिकतर धानके लिए उपयोगी खेत थे। उसकी देखभाल स्वयं घरके सदस्य ही करते थे। दामोदर भट्ट सातवलेकरके चार पुत्रोंके बाद श्रीपाद पैदा हुए। उनके उपनयन होनेतक कोलगांवके सातवलेकर कुटुम्ब ही विशेषकर दामोदर अपने खेतमें स्वयं ही हल चलाते थे।

श्रीपाद (पंडितजी) दो वर्षके हो गए, फिर भी वे अपना सिर ऊंचा नहीं उठा सकते थे। जिस उमरमें बच्चे नागके फनके समान सिर ऊंचा करके चारों ओर देखते हैं, उसी आयुमें श्रीपादका, जिस प्रकार कंपासकी सुई को कागजके एक जगहपर स्थिर करके पेंसिलको चारों ओर घुमाते हैं उसी तरह, सिर एक जगह स्थिर रहता

था और वह चारों ओर घूमता रहता था। चौथे वर्षमें श्रीपाद थोडा बहुत घूमने फिरने लगा। और पांचवें वर्षके आखिरमें इस बालकमें कुछ विशेष स्मरणशक्ति और धारणाशक्तिके चिन्ह लोगोंको दीखने लग गए। उस समय यह बालक श्रीपाद अपनी उमरके बच्चोंकी अपेक्षा स्पष्टाक्षरोंमें अनेक स्तोत्र बोलने लगा था। सातवें वर्षमें वह थोडा लिखने पढने लग गया। उस समयतक घरके उत्पन्नका क्या हुआ, इसके बारेमें पंडितजी स्वयं लिखते हैं—

"आधे गांवपर हमारे पौरोहित्यका अधिकार होनेके कारण गांवमें हमारे कुलकी बहुत प्रतिष्ठा थी। गांवमें लोग हमें 'आडेकर' कहते थे। इसका कारण यह था कि हमारे घरके पास १०-१२ एकड अमराई थी, उसमें उत्तम आम, काजू, नारियल, कटहल आदिके वृक्ष भी थे। उस अमराईके चारों ओर बांस लगाकर हमने कम्पाउण्ड बना दिया था। बांसके कम्पाउण्डको 'आडा' कहते हैं, इसलिए लोग हमें 'आडेकर' कहते थे।"

"हमारा घर मरघटके पास था। कोलरकोंड नामक एक छोटीसी नदी थी। वहीं कोलगांवका श्मशान था और वहींपर हमारा घर और बाग था। पौरोहित्यसे, देवस्थानके द्वारा इनाम रूपमें दी गई तथा अपनी स्वकी भूमिसे पर्याप्त उत्पन्न हो जाता था। घरमें हमेशा २-३ मेहमान रहते ही थे, तथा हम घरके १०-१२ सदस्य थे। इस प्रकार घर हमेशा भरा रहता था। घर बहुत ही बडा था, उसमें चौबीस कमरे थे। जानवर थे, ५-६ गायें हमेशा दूध देनेवाली रहती थीं। भैंस नहीं थी। गायका दूध घी घरमें हमेशा भरपूर रहता था। मेरे पिता दामोदरभट्ट, दादा अनन्त भट्ट, परदादा कृष्णभट्ट सभीकी ऋग्वेदी परम्परा थी। घरमें ऋग्वेदका अध्ययन-अध्यापन हमेशा चलता रहता था। घरमें मेहमान आते और जबतक चाहते टिके रहते थे। मुझे कुछ ऐसे मेहमानोंकी भी याद है, जो दो दो वर्षोतक हमारे घरमें रह चुके हैं। ३-४ मास रहनेमें कोई कठिनाई नहीं होती थी। मेहमानोंके कारण कभी किसीको कोई कठिनाई नहीं हुई। क्योंकि किसी भी चीजकी कमी नहीं थी।"

"अक्कलकोटसे कृष्णभट्ट इलबे नामका एक तरुण हमारे दादाके समय आया, उस समय उस तरुणकी उमर लगभग १६ वर्ष की थी। वह होशियार, कर्तृत्ववान, व्यवहारचतुर तथा हर काम करनेमें कुशल होनेके कारण थोडे ही दिनोंमें हमारे परिवारका एक सदस्य बन गया। अक्कलकोटमें उसका सबकुछ नष्ट हो गया था, अतः वह निराधार होकर हमारे घर आया और वहीं स्थायी हो गया। वह भी हमारे घरको अपना घर मानकर घरके ही एक सदस्यके समान परायापन छोडकर अपनेपनसे व्यवहार करने लग गया। इस कारण मेरे दादाको उससे बहुत प्रीति हो गई। और वे उससे पुत्रके समान प्रेम करने लगे।"

"मेरे दादा बीमार पड़कर अत्यन्त अस्वस्थ हो गए, उस समय उनकी आयु ९६ वर्षकी थी। मेरे पिताजी छोटे थे, इसलिए मेरे दादा कृष्णभट्ट हलबेको पास बुलाकर और मेरे पिताजीका हाथ उसके हाथोंमें देकर बोले कि 'इसकी देखभाल आजसे तू कर', और इतना कहनेके बाद ही उनके प्राणपंखेरू अनन्तमें विलीन हो गए। इन्हीं दिनों कृष्णभट्ट हलबेका विवाह हमारे ही घर एक गोवावासी लड़कीसे हो गया।"

'इस प्रकार घरकी सारी जिम्मेदारी कृष्णभट्ट हलबेपर आ गई और उसने भी घर-संसारके और गांवके व्यवहारके सारे काम उत्तम रीति और चतुरतासे व्यवस्थित रूपसे चलाये।'

'कृष्णभट्ट हलबे बहुत होशियार थे। घरके सारे काम उत्तम रीतिसे करते थे। खेतीकी पैदावार भी उन्होंने बढ़ाई और सरकारी कार्यालयोंमें भी उन्होंने अपने परिचित बना लिए और सरकारी अधिकारियोंको अपना मित्र बना लिया।'

'हमारे पिताजी दामोदरभट्ट उस समय १७।१८ वर्षके थे। घरमें ही वेद और कर्मकाण्डका अध्ययन उन्होंने किया था। वे केवल बालबोध ही लिख और पढ़ सकते थे। मोडी लिपि उन्हें जरासी भी नहीं आती थी। कृष्णभट्ट हलबेको वे अपने बड़े भाईके समान मानते थे और उसपर वे पूरा पूरा विश्वास रखते थे। हलबे पर उनकी इतनी श्रद्धा थी, कि हलबे जो कुछ कहते, उसे मेरे पिताजी बिना किसी ननुनचके कर डालते थे।'

'इस परिस्थितिसे फायदा उठानेका हलबेने निश्चय किया। और 'तुमने हमारे घरकी व्यवस्था बहुत उत्तम प्रकारसे की है, इसलिए हम खुश होकर तुम्हें इतनी जमीन बख्शीश देते हैं' इस प्रकारके कागजात तैय्यार करके उस पर पिताजीके दस्तखत कराकर उनकी जमीनकी अपने नामपर रजिस्ट्री करा ली। इसी प्रकार आधा घर भी अपने नाम करा लिया। केवल देवस्थानकी जमीन वे अपने नाम नहीं करा सके। इसलिए उतनी जमीन मेरे पिताजीके नामपर बची रही और बाकी सारी जमीन, सब जगह और आधा घर तबतक उनके (हलबेके) नामपर हो चुके थे। पिताजी विश्वासपूर्वक रजिस्टर पर सही कर देते थे। पर कागजपर क्या लिखा हुआ है यह समझनेकी कभी कोशिश नहीं की और न ही उन्होंने हलबेसे इस बारेमें कुछ पूछताछ ही की। जब आखिरी कागजात तैय्यार हुआ तब एक क्लर्क मेरे पिताजीको एक तरफ ले गया और उन्हें उसने सब बातें कह सुनाईं और यह भी कहा कि आप इस कागजात पर दस्तखत न करें। पर पिताजीने कहा कि— 'जिसके कारण मेरा सर्वस्व चला गया है, उसके लिए यदि यह भी जा रहा है, तो जाने दो, एक ब्राह्मणको सन्तोष तो भी हो जाएगा।' यह कहकर उन्होंने उस कागजातोंपर दस्तखत कर दिये और इस प्रकार वे अपना सभी कुछ हार बैठे। किसी समय आधे गांवके मालिक मेरे पिताजी इस समय बिलकुल निर्धन हो चुके थे। क्योंकि सब धन, कपड़ा, बर्तन और जेवरात अर्थात् सभी कुछ हलबेके कब्जेमें था, और देव-

: ४ :

जन्मगाथा

जिस प्रकार पर्वतपर कहीं चट्टान, कहीं घाटी, कहीं कंटीली झाडियां, कहीं झरने, कहीं हरियाली और कहीं अपनी ओर आकर्षित करनेवाले छायादार वृक्षोंके कुंज होते हैं, कुछ इसी प्रकारकी उपमा मनुष्यके जीवनके लिए भी दी जा सकती है। मनुष्य जीवनमें भी कभी दुःख है, कभी सुख है, कभी उन्नति है कभी अवनति है, कभी यह जीवन आकर्षक लगता है, तो कभी बोझ बन जाता है। तथापि किसी स्त्रीको मातृपद तो प्राप्त हो, पर परमात्मासे प्राप्त वह कली खिलने भी न पाये और समयसे पूर्व ही सूख जाए, तो उस समय उस स्त्रीपर जो गुजरती है और उस समय उसकी जो मनस्थिति होती है, उसका वर्णन करना सर्वथा असंभव है। उसका थोडा बहुत वर्णन इन्हीं शब्दोंमें किया जा सकता है—

> अबला हाय तेरी यही कहानी।
> आंचलमें है दूध और आंखोंमें पानी।

ऐसी ही कुछ अवस्था सौ. लक्ष्मीबाई सातवलेकरकी भी थी। उनकी चार सन्तानें हुईं, पर दुर्दैवके झपट्टा मारनेके कारण चारों ही सन्तानें अधखिली ही रह गईं। ऐसे आपत्ति एवं निराशाके कालमें यदि सौ. लक्ष्मीबाई सातवलेकरने नृसिंहवाडीके दत्तात्रेयकी शरण ली और वहां जाकर मनौती मानी तो इसमें आश्चर्य क्या ?

श्री लक्ष्मीबाईकी मनौतीके फलस्वरूप भाद्रपद कृष्णा ६, शक संवत् १७८९ को इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'श्रीपाद' रखा गया। उसी दिन उसकी जन्मपत्रिका देखकर एक ज्योतिषीने भविष्यवाणी की कि यह लडका १६ वें वर्ष नहीं तो १८ वें वर्ष तो अवश्य ही प्रभुको प्यारा हो जाएगा। यह सुनकर उस बालकके सम्बन्धियोंके मनोंमें एक प्रकारकी भीतिका निर्माण हो जाना स्वाभा-

विक ही है। पर वह लडका उस निश्चितकाल मर्यादाको पार करके स्वावलम्बी हो गया और अपने कर्तृत्वसे सारी मानवताका हित करने लगा और वही लडका आज पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरके नामसे प्रसिद्ध होकर शताब्दीमें प्रवेशकर गया है। इन सब स्थितियोंपर विचार करनेपर यह ज्ञात होता है कि अपनी इच्छा-शक्ति और तपस्याके जोरपर—

भाग्यको बदलनेमें समर्थ मनुष्य है।

इस भविष्यकी सत्यतासत्यता परखनेके लिए पंडितजीकी जन्मपत्रिकाका आधार चाहिए, जो आज अस्तित्वमें नहीं है। क्योंकि १६ वें या १८ वें वर्षमें अपने लडकेकी मृत्युकी भविष्यवाणी सुनकर पंडितजीके पिताजीने रोषमें आकर उसी समय वह पत्रिका फाड दी थी। पर जब मृत्युकी निश्चित काल मर्यादा निकल गई, तब स्वयं दमोदर भट्टने अथवा हळवे जैसे किसी हितचिन्तकने अपनी स्मृतिके आधारपर अथवा किसीने पंडितजीका चेहरा और हाथकी रेखा देखकर पंडितजीकी जन्मपत्रिका बनाई रही होगी, जो किसी पुरानी पत्रिकामें पंडितजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री वसन्तरावको प्राप्त हुई। वह पत्रिका इस प्रकार है—

"ग्रहदर्शन, शक १७८९ श्री मुखनाम संवत्सरे भाद्रपद कृष्ण ६ भृगुवासरे सूर्योदयात् गतघटि १५ पळ २५।

जन्मलग्न कुंडली

पर जब १७८९ शक संवतका पंचांग निकालकर देखा गया तो उसके साथ यह पत्रिका मिली नहीं। इस पत्रिकामें भाद्रपद कृष्ण ६ का दिन भृगुवार (शुक्रवार) बताया है, पर पंचांगमें वह दिन गुरुवार है, इसी प्रकार दोनोंके संवत्सरके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। इसलिए श्री वसन्तरावके द्वारा प्राप्त जन्मपत्रिका विश्वसनीय नहीं

स्थानकी जमीनका उत्पन्न उसीको मिल सकता था, जो उस पर परिश्रम करता। इस कारण यौवनावस्थामें ही निष्कांचन हो जानेके कारण मेरे पिताजीको बहुत बडी चिन्ताने घेर लिया।'

"इससे पहले मेरे पिताजीकी शादी हुई और उनके पहला लडका भी हुआ। उसी प्रसूतिके दौरानमें उनकी पत्नीका देहान्त हो गया। ५ वर्षके बाद लडका भी चल बसा। इसके बाद पिताजीका दूसरा विवाह हुआ। लडकी वालावलकर उपाध्यों-की थी। इससे भी ४–५ बच्चे हुए, पर सभी मर गए। बच्चे दो–दो वर्षके होकर मर जाते थे। इसलिए मेरे जन्मसे पहले नरसोबावाडीके दत्तात्रेयके सामने मेरे माता पिताने यह मनौती मनाई कि— "यदि यह लडका जिन्दा रहा हो, तो इसका उपनयन संस्कार तेरे ही चरणोंमें आकर करेंगे।" मेरी जन्मपत्रिका मेरे जन्मके बाद १२ वें दिन बनवाकर पढवाई, उसमें १६ वें वर्ष मेरी अपमृत्यु लिखी हुई थी। यह सुनकर मेरे पिताजीको बहुत गुस्सा आया और उन्होंने पत्रिका ली और फाड डाली। इस कारण मेरी जन्मपत्रिका अब मेरे पास नहीं है। पिताजी बोले— "यह लडका १६ वें वर्ष मर जाएगा, यह बहुत दुःखदायी है। भगवान्ने हमारे भाग्यमें पुत्रसुख लिखा ही नहीं है।" मेरा जन्म कोलगांवमें ही हुआ था।"

"मैं बचपनमें बहुत अशक्त था और मेरी इस अशक्ति और बीमारीके कारण घरके लोगोंको बहुत कष्ट होते थे। बचपनमें मैं बीमार पडता था और मेरे बिस्तर-के चारों ओर घरके सभी सदस्य चिन्तित होकर बैठे रहते थे। यह बात मुझे आज भी याद है। ऐसा एक भी सप्ताह नहीं बीतता था कि जिसमें मैं बीमार न पडता होऊं। अनेक तरहकी ज्वरादिक पीडायें मुझे सताती थीं।"

"मैं चार वर्षका रहा होऊंगा। घरमें घूमने फिरने लगा था। इसी बीच कृष्ण-भट हळवे बीमार पड गए और २५ दिनकी बीमारीके बाद वे मर गए। मरते समय उनका देहावसान हमारे पिताजीकी गोदमें ही हुआ क्योंकि उनके दत्तकपुत्र व्यंकटेशभट हळवे महाडमें जाकर पौरोहित्य करते थे। दत्तकपुत्रका अपने पिताके साथ कभी नहीं पटा। अपने पिताका पहलेका व्यवहार इस दत्तकपुत्रको कभी भी पसंद नहीं आया। इसलिए यह दत्तकपुत्र अपने परिवारसहित महाडमें रहता था और वहां उसने पौरोहित्यका धन्धा करके बहुतसी सम्पत्ति प्राप्त कर ली थी और वह वहां आनन्दपूर्वक अपना संसार चलाता था।"

"अपने पिताके देहावसानका समाचार जाननेपर वे १५–२० दिनके बाद पहुंचे। इस कारण कृष्णभट्टकी उत्तरक्रिया हमारे पिताजीने ३०० रु. कर्ज लेकर की, क्योंकि उनको (कृष्णभट्टको) किसीने एक भी पैसा नहीं दिया था। दत्तकपुत्र जब गांव पहुंचा और उसने अपनी सौतेली मांका व्यवहार सुना, तब उसने अपनी मांको बहुत फटकारा। वह ४–५ दिन रहकर वापस महाड चले गए। मां और दत्तकपुत्र-का कभी पटा नहीं।"

विक ही है। पर वह लड़का उस निश्चितकाल मर्यादाको पार करके स्वावलम्बी हो गया और अपने कर्तृत्वसे सारी मानवताका हित करने लगा और वही लड़का आज पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरके नामसे प्रसिद्ध होकर शताब्दीमें प्रवेश कर गया है। इन सब स्थितियोंपर विचार करनेपर यह ज्ञात होता है कि अपनी इच्छाशक्ति और तपस्याके जोरपर—

भाग्यको बदलनेमें समर्थ मनुष्य है।

इस भविष्यकी सत्यतासत्यता परखनेके लिए पंडितजीकी जन्मपत्रिकाका आधार चाहिए, जो आज अस्तित्वमें नहीं है। क्योंकि १६ वें या १८ वें वर्षमें अपने लड़केकी मृत्युकी भविष्यवाणी सुनकर पंडितजीके पिताजीने रोपमें आकर उसी समय वह पत्रिका फाड दी थी। पर जब मृत्युकी निश्चित काल मर्यादा निकल गई, तब स्वयं दमोदर भट्टने अथवा हळवे जैसे किसी हितचिन्तकने अपनी स्मृतिके आधारपर अथवा किसीने पंडितजीका चेहरा और हाथकी रेखा देखकर पंडितजीकी जन्मपत्रिका बनाई रही होगी, जो किसी पुरानी पत्रिकामें पंडितजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री वसन्तरावको प्राप्त हुई। वह पत्रिका इस प्रकार है—

" ग्रहदर्शन, शक १७८९ श्री सुखनाम संवत्सरे भाद्रपद कृष्ण ६ भृगुवासरे सूर्योदयात् गतघटि १५ पळ २५।

जन्मलग्न कुंडली

९
७ के.
१० श
८ म
६
११
५ गु. र बु
१२
२ च.
४ शु.
१ रा
३

पर जब १७८९ शक संवतका पंचांग निकालकर देखा गया तो उसके साथ यह पत्रिका मिली नहीं। इस पत्रिकामें भाद्रपद कृष्ण ६ का दिन भृगुवार (शुक्रवार) बताया है, पर पंचांगमें वह दिन गुरुवार है, इसी प्रकार दोनोंके संवत्सरके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। इसलिए श्री वसन्तरावके द्वारा प्राप्त जन्मपत्रिका विश्वसनीय नहीं

: ४ :

जन्मगाथा

जिस प्रकार पर्वतपर कहीं चट्टान, कहीं घाटी, कहीं कंटीली झाड़ियाँ, कहीं झरने, कहीं हरियाली और कहीं अपनी ओर आकर्षित करनेवाले छायादार वृक्षोंके कुंज होते हैं, कुछ इसी प्रकारकी उपमा मनुष्यके जीवनके लिए भी दी जा सकती है। मनुष्य जीवनमें भी कभी दुःख है, कभी सुख है, कभी उन्नति है कभी अवनति है, कभी यह जीवन आकर्षक लगता है, तो कभी बोझ बन जाता है। तथापि किसी स्त्रीको मातृपद तो प्राप्त हो, पर परमात्मासे प्राप्त वह कली खिलने भी न पाये और समयसे पूर्व ही सूख जाए, तो उस समय उस स्त्रीपर जो गुजरती है और उस समय उसकी जो मनस्थिति होती है, उसका वर्णन करना सर्वथा असंभव है। उसका थोड़ा बहुत वर्णन इन्हीं शब्दोंमें किया जा सकता है—

अबला हाय तेरी यही कहानी।
आंचलमें है दूध और आंखोंमें पानी।

ऐसी ही कुछ अवस्था सौ. लक्ष्मीबाई सातवलेकरकी भी थी। उनकी चार सन्तानें हुईं, पर दुर्दैवके झपट्टा मारनेके कारण चारों ही सन्तानें अधखिली ही रह गईं। ऐसे आपत्ति एवं निराशाके कालमें यदि सौ. लक्ष्मीबाई सातवलेकरने नृसिंहवाडीके दत्तात्रेयकी शरण ली और वहां जाकर मनौती मानी तो इसमें आश्चर्य क्या?

श्री लक्ष्मीबाईकी मनौतीके फलस्वरूप भाद्रपद कृष्णा ६, शक संवत् १७८९ को उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उनका नाम 'श्रीपाद' रखा गया। उसी दिन उसकी जन्मपत्रिका देखकर एक ज्योतिषीने भविष्यवाणी की कि यह लड़का १६ वें वर्ष नहीं तो १८ वें वर्ष तो अवश्य ही प्रभुको प्यारा हो जाएगा। यह सुनकर उस बालकके सम्बन्धियोंके मनोंमें एक प्रकारकी भीतिका निर्माण हो जाना स्वाभा-

विक ही है। पर वह लडका उस निश्चितकाल मर्यादाको पार करके स्वावलम्बी हो गया और अपने कर्तृत्वसे सारी मानवताका हित करने लगा और वही लडका आज पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरके नामसे प्रसिद्ध होकर शताब्दीमें प्रवेश कर गया है। इन सब स्थितियोंपर विचार करनेपर यह ज्ञात होता है कि अपनी इच्छाशक्ति और तपस्याके जोरपर—

भाग्यको बदलनेमें समर्थ मनुष्य है।

इस भविष्यकी सत्यतासत्यता परखनेके लिए पंडितजीकी जन्मपत्रिकाका आधार चाहिए, जो आज अस्तित्वमें नहीं है। क्योंकि १६ वें या १८ वें वर्षमें अपने लडकेकी मृत्युकी भविष्यवाणी सुनकर पंडितजीके पिताजीने रोषमें आकर उसी समय वह पत्रिका फाड दी थी। पर जब मृत्युकी निश्चित काल मर्यादा निकल गई, तब स्वयं दमोदर भट्टने अथवा हळवे जैसे किसी हितचिन्तकने अपनी स्मृतिके आधारपर अथवा किसीने पंडितजीका चेहरा और हाथकी रेखा देखकर पंडितजीकी जन्मपत्रिका बनाई रही होगी, जो किसी पुरानी पत्रिकामें पंडितजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री वसन्तरावको प्राप्त हुई। वह पत्रिका इस प्रकार है—

"प्रहदर्शन, शक १७८९ श्री शुक्लनाम संवत्सरे भाद्रपद कृष्ण ६ भृगुवासरे सूर्योदयात् गतघटि १५ पळ २५।

जन्मलग्न कुंडली

पर जब १७८९ शक संवत्का पंचांग निकालकर देखा गया तो उसके साथ यह पत्रिका मिली नहीं। इस पत्रिकामें भाद्रपद कृष्ण ६ का दिन भृगुवार (शुक्रवार) बताया है, पर पंचांगमें वह दिन गुरुवार है, इसी प्रकार दोनोंके संवत्सरके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। इसलिए श्री वसन्तरावके द्वारा प्राप्त जन्मपत्रिका विश्वसनीय नहीं

मानी जा सकती। अतः ज्योतिर्विद् उद्धव विष्णु रहईकर और उनके पुत्र भालचंद्र तथा पंचांग रचयिता श्री विसापुरकरने शक-तिथि और समयके आधारपर पंडितजीकी एक नवीन पत्रिका तैय्यार की। वह पत्रिका नीचे दी है। इसी प्रकार पूनाके ग्रहनक्षत्र कलादेश संशोधन संस्थाके श्री श्री. वि. केळकरके द्वारा तैय्यार की गई कुंडली भी हम देते हैं। मनुष्य इन कुण्डलियोंके सहारे बैठा न रहे। पर इसके साथ यह भी सच है कि इन ग्रहनक्षत्रोंका प्रभाव मनुष्यके जीवनपर पडता अवश्य है। श्री केळकर द्वारा तैय्यार की गई कुण्डली इस प्रकार है—

जन्म कुंडली
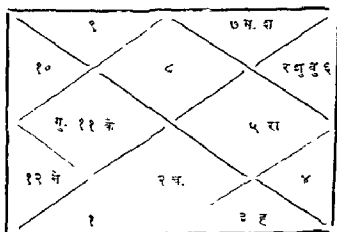
नवमांश कुंडली
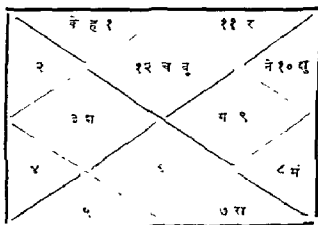
इसीके साथ श्री रईकरके द्वारा तैय्यारकी गई पत्रिका भी देखने योग्य है।

सूर्योदयात् घटी १५ पल २५॥ जन्मसमये–कृत्तिकानक्षत्र। चतुर्थ चरण। वृषभ राशि। मन्त्य नाडी। मेषयोनि। राक्षसगण। वैश्यवर्ण। नाक्षत्रनाम–एकेशशर्मा। व्यावहारिक नाम– श्री श्रीपादराव। घातवार–शनिवार।

लग्न कुंडली
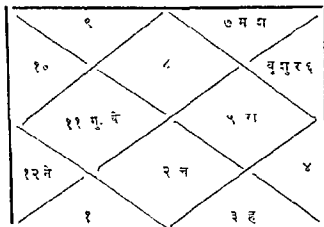
राशि कुंडली
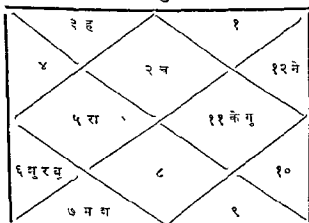
इस कुंडलीका निष्कर्ष यह है कि पंडितजी भाषाशास्त्री ध्येयवादी, महान् कला-कार दीर्घायु और क्रान्तिकारी होंगे पंडितजीकी कुण्डलीमें महापुरुषके लक्षण हैं। दशमबिन्दुके पास दशमराशिमें बुध दशममें है। यह भद्रयोग है। भद्रयोगवाला मनुष्य दीर्घायु, कुशाग्रबुद्धिवाला और वक्ता होता है। उनकी कुण्डलीमें गुरु और

कुंभ शाश्वोयराशिमें हैं। गुरु पंचमेश है। गुरु और मंगल नवमांशमें बलवान् और दशम वर्गमें क्रमशः गोपुर और सिंहासनयोगमें हैं। पंचमेश गुरुका बलवान् होना पंडितजीके बुद्धिवादी होनेका द्योतक है। "पुष्कर" नामक शुभयोग उनकी सुशीलताका निदर्शक है। दशमस्थानमें राहु जैसा ग्रह सिंहराशिमें है, जो उनका कर्तृत्व दिखानेवाला और यशदायक है। व्ययस्थानमें शनिमंगल पापग्रह हैं, जो बंधनयोग दिखाते हैं। भाग्याधिपति चन्द्र सप्तम स्थानमें बलवान् है। यह 'चन्द्रचूड' नामक शुभ योग उदार स्वभावका परिचायक है, पारिवारिक सुखका भी वह सूचक है।

पंडितजीकी कुण्डलीका रहस्य गुरु, बुध और शुक्र इन ग्रहोंमें है। लग्नेश मंगल सिंहासनयोगमें और तुल चर राशिमें है। ये सभी योग दीर्घायु देनेवाले हैं। लग्नाधिपति व्ययस्थानमें स्थूलराशिमें शनियुक्त होनेके कारण यह पंडितजीके दृढनिश्चयता, कष्ट सहनेकी शक्ति, निस्पृह और मितव्ययी स्वभावका द्योतक है। एकादश स्थानमें रहनेवाली रवि-बुध-शुक्रकी युति धार्मिक विषयमें संशोधनका कार्य करानेवाली है।

श्री केळकरने १८ सितम्बर १९६६ को स्पष्ट कह दिया है कि "श्री दा. सातवलेकर" के वृश्चिकलग्नकी पत्रिकामें दशमबिन्दुके पास रवि-बुध-शुक्र आध्यात्मिक युतिमें होनेके कारण चित्रकारके रूपमें पंडितजीने अपने जीवनकी शुरुआत की। उसमें भी ध्येयवाद ही था। पंचमेश गुरु कुंभमें और लग्नेश मण्डलके त्रिकोणमें होनेके कारण वेदसंशोधन, वेदग्रंथ प्रकाशन और वैदिकसंस्कृतिके ग्रंथ प्रकाशनरूप जीवनका ध्येय साकार हुआ। लग्नेश मंगल सिंहासनयोगमें, अष्टमेश बुध गोपुरमें और आयुष्यकारक शनि तुलामें होनेके कारण उन्हे सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त हुई।"

इन सबके अलावा पंडितजीका "मदायत्तं च पौरुषं" की पत्रिका ही मुख्य है।

◌ ◌ ◌

: ५ :

बाल्य-जीवन

बार बार आती है मुझको
मधुर याद बचपन मेरी
गया ले गया तू जीवनकी
सबसे मस्त खुशी मेरी (सुभद्राकुमारी चौहान)

पंडितजीका जन्म एक सात्विक और वैदिक घरानेमें हुआ। मनौतीसे पैदा हुआ यह लडका शुरुआतमें बहुत ही कमजोर था। इस कारण सातवलेकर परिवार इसके लिए हरदम बैचेन सा रहता था। उपनयन होनेके बाद पंडितजीने सावंतवाडी जाकर वहां मठेवाडामें मामा पेंवारकरसे शिक्षा लेनेकी शुरुआत की। इससे ज्यादा और कुछ जानकारी यहां इस विषयमें नहीं मिलती। पर अपने बाल्यजीवनके विषयमें स्वयं पंडितजीने जो कुछ लिखा, वह यहां देखने योग्य है। पंडितजी लिखते हैं—

" मेरे बादमें पैदा होनेवाले मेरे भाई मनौतीके बिना ही जीवित रहे। मेरी छोटी बहिन जन्मसे ही शरीरसे सशक्त और मोटी थी। चौथे वर्षमें होलीके अवसर पर बनाकर आये हुए स्वांगको घरकी एक स्त्रीने दिखलाकर मेरी बहिनको डरा दिया। इस कारण वह डर कर बेहोश हो गई, फिर वह कभी होशमें नहीं आई। हर पांच मिनटमें उसका सारा शरीर थरथर कांपता था। इसी डरसे ग्रस्त होकर वह २४ घंटेके अन्दर ही मर गई। यह मृत्यु मेरे सामने हुई। यह हृदयद्रावक दृश्य आज भी मेरी नजरोंके सामने है। "

" इसके बाद मेरी माताके दो लडके हुए। एक कृष्णा उर्फ सखाराम व दूसरा सीताराम। चि. सखाराम घरकी व्यवस्था देखनेके लिए गांवमें ही रह गया और

सीताराम पूनामें बी. ए. तक पढकर अमेरिका गया और वहां अपने परिश्रमसे पैसा प्राप्त करके अर्थात् आजीविकाका सम्पादन करते हुए साइन्समें डॉक्टर होकर दक्षिण हैदराबादमें " विवेक-वार्धिनी " कॉलेजका प्रधानाचार्य हो गया। "

" बचपनकी यादें अब भी मेरे दिमागमें चक्कर लगाती रहती हैं। तीसरे वर्षतक मैं माताका दूध पीता था। मेरा दूध छुडानेके लिए मेरी माताने बडी कोशिशें कीं। मेरे बादके भाईयोंकी उमरमें ५-५ वर्षका अन्तर है। मेरे बाद मेरी माताके जल्दी जल्दी बच्चे होते थे, ऐसा लोग कहते हैं। "

" चौथे वर्ष मैंने अक्षराभ्यास शुरु किया। लकडीकी तख्ती पर धूल फैलाकर उस पर लिखना पडता था। इसलिए उसे ' धूलाक्षर ' कहते थे। स्कूलोंमें भी यही धूलकी तख्तियां थीं। "

" पांचवें वर्ष में अच्छी तरह पढने लगा। दिनमें और शामको मेरे पिताजी अनेक स्तोत्र और पहाडे याद कराते थे। आधा, पौना, सवाया, डेढ, हैय्या आदि सभी पहाडे मुझे अच्छी तरह याद हो गए थे। उसी तरह पूजाके मंत्र, फलित ज्योतिषके और ग्रामपौरोहित्यके लिए उपयोगी पढनेवाले पंचांगनिरीक्षण भी मैंने सीख लिए थे। रामरक्षा और महिम्न आदि अनेक पौराणिक स्तोत्र भी मुझे याद हो गए थे। महिम्नके द्वारा देवाभिषेक करनेपर उन दिनों ३-४ आने मिलते थे। स्तोत्र और मंत्रादिकोंका अध्ययन उन दिनों आजीविका प्राप्त करनेका एक साधन था। "

नरसोबावाडीके सामने की गई मनौतीके अनुसार श्रीपाद अशक्त होने पर भी सात वर्ष तक जीवित रहे, अतः आठवें वर्ष उनका उपनयन नरसोबावाडीमें जाकर करनेकी उनके पिता दामोदरपंतकी इच्छाका होना स्वाभाविक ही था। तदनुसार श्रीपाद, उसकी माता, घरके दो बडे आदमी, ये सभी एक बैलगाडीमें नरसोबावाडी जानेके लिए निकले। पिताजी लालटैन हाथमें लेकर बैलगाडीके साथ ही पैदल चल रहे थे। दररोज सवेरे ८ बजे चल पडते थे और रातको करीब नौ बजे किसी उपयुक्तस्थान पर पहुंचकर आराम करते थे। इस प्रकार पांचवें दिन सब नरसोबावाडी पहुंचे। उपनयन होनेके बाद श्रीपाद यज्ञोपवीतसे सुशोभित हो गया। अब दिनमें दो बार संध्या और अग्निहोत्र करना श्रीपादके लिए आवश्यक हो गया। ये सब नरसोबावाडीसे कोल्हापुर गए और वहां अपने कुलदेवता अम्बाबाईका चरणरज लेकर फिर अपने घर लौट आए और घर लौट आनेके दो महीने बाद श्रीपादका समावर्तन हुआ।

इस समावर्तनने श्रीपादकी जिम्मेदारियां बढा दीं। अब श्रीपादराव अपने बर्तन एवं कपडे स्वयं मांजने और धोते थे। अपना बिस्तर बिछाना और समेटना आदि छोटे मोटे काम वे नियमित रूपसे करने लग गए। इस प्रकार उनकी शिक्षा अपना रास्ता बनाये जा रही थी। अपनी शिक्षाके बारेमें पं. सातवलेकरजी लिखते हैं—

" पूर्वजन्मके संस्कारोंकी तरह आनुवंशिक संस्कार भी पर्योंके बनने और बिगडनेमें कारण होते हैं। उन दिनों ब्राह्मण वेदपाठी होते थे। ब्राह्मण कुलमें पांचवें वर्ष लगते

ही लडकेको सवेरे नहाकर १२ सूर्यनमस्कार (१०-१२ आसनोंका एक व्यायाम) करना पडता था। उसी तरह मुझे भी पांचवें वर्षसे सूर्यनमस्कार शुरु करना पडा। सूर्यनमस्कार दस आसनोंका एक समूह है। पर इस समय व्यायामके महत्त्वको समझनेकी जितनी अकल मुझमें नहीं थी। तथापि सूर्यकी उपासना समझकर मैंने सूर्यनमस्कार करना शुरु किया। कुछ नौजवान ऐसे भी थे, जो रोज १२०० सूर्यनमस्कार करते थे। उनका शरीर एकदम वज्र समान था। कोई सौ, कोई पचास सूर्यनमस्कार करनेवाले तरुण भी मेरे बालपनमें थे। पर १२ से ज्यादा सूर्यनमस्कारका व्यायाम करके अपने शरीरको सुधारनेकी तरफ मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई।"

"आठवें वर्ष में सावंतवाडीके एक मराठी स्कूलमें जाने लगा। मेरी योग्यता देखकर मेरे अध्यापकने मुझे दूसरी श्रेणीमें बैठनेकी अनुमति दे दी। तबसे लेकर मराठीके ६ ठी श्रेणी तक अपनी कक्षामें मैं हमेशा प्रथम या द्वितीय नम्बरपर आता रहा।"

"इस वक्त मेरी उमर आठ वर्षकी थी। उस समय २०-२० वर्षके लडके दूसरी तीसरी कक्षामें पढने आते थे। उनमें एक शेख मुहम्मद नामका एक काजीका लडका था। जिसकी लम्बी लम्बी दाढी और मूंछें थीं। वह दूसरी कक्षामें मेरे साथ पढता था। उसकी उमर २५ के करीब तो रही ही होगी। वह अरबी भाषामें कुरान पढता था और कुरान पढनेके साथ ही रोता भी जाता था। उस कुरानमें उसके धर्मसंचालकोंके पराभव एवं कत्ल होनेका वर्णन था, जिसे पढकर वह रोया करता था।"

"चौथी श्रेणीमें विठोबा पाटणकर नामक एक अध्यापक थे। वे जब विद्यार्थियोंको छडी मारते थे, तब विद्यार्थी उनकी छडी पकड लिया करते थे। जब वे अध्यापक उसे छुडा नहीं पाते, तो वे "छोड दे रे बाबा, छोड दे" कहकर अनुनय किया करते थे और तब वे विद्यार्थी उस छडीको छोडते थे। उस समय तो छठी कक्षामें पढनेवाले लडकोंके लडके "अ और ब" कक्षामें सीखते थे, (अर्थात् पिता छठीमें पढता था और लडका "अ या ब" में)।"

"चौदहवें वर्षमें मैं मराठीकी छठवीं पास हो गया, और मराठी स्कूलसे विदा ले ली। इसके बाद अंग्रेजी स्कूलमें जानेकी इच्छा हुई। उस समय सावंतवाडी हाईस्कूलके प्रधानाचार्य श्री पाणन्दीकर थे। वे बहुत प्रेमालु, शान्त और विद्यार्थियोंकी हर तरहसे सहायता करनेवाले थे। कई विद्यार्थियोंकी फीस तो वे अपने वेतनमेंसे निकालकर देते थे और कइयोंको वे पुस्तकें भी लाकर देते थे। ये ही आगे चलकर डॉ. रामकृष्ण गोपाल भांडारकरके दामाद बने। इस वक्त अंग्रेजी स्कूलकी फीस ८ आने प्रतिमास थी। मेरे पिताजीने स्पष्ट कह दिया था कि- "हमें अंग्रेजी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है। हम तुम्हारे लिए इतनी फीस नहीं दे सकते।" मैं अंग्रेजी शिक्षासे शिक्षित होकर बिगड न जाऊं, यही उनकी इच्छा थी।"

" मैं श्री पाणंदीकरसे मिला पर उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारी फीस माफ नहीं हो सकती। इस कारण अंग्रेजी स्कूलमें मैं केवल ६ दिन ही रह पाया। और मेरी अंग्रेजी शिक्षा इसप्रकार ६ दिनोंमें ही पूरी हो गई। इस कारण मुझे गुस्सा आया और घर हीमें अंग्रेजी पढनेका मैंने अपने मनमें निश्चय कर लिया। और मित्रोंके पाससे १ से ४ तक रॉयल रीडर्स लाकर घर ही में अंग्रेजी पढनी शुरु की। उन दिनों सावंतवाडीमें श्री बलवन्तराय लुकतुके नामके एक सज्जन रहते थे। उन्होंने मुझे हार्वर्डकी पहिली पुस्तक सिखाई। वह भी इस रीतिसे सिखाया कि उतनी जानकारीसे ही मैं अपने आप रॉयल रीडर पढने लग गया। कुछ न आता तो दूसरेसे पूछ लेता थी। इसप्रकार एक वर्षमें मैंने चार रीडर्स खतम कर लिए और कामके लायक अंग्रेजी मुझे आने लगी। उसके बाद भी अंग्रेजीका स्वयं पठन मैंने चालू ही रखा। साधारण पत्र व्यवहार करने और किसी भी विषयपर अंग्रेजी पुस्तक समझनेकी जितनी अंग्रेजी मैंने घर ही बैठे २-३ वर्षोंमें सीख ली। पर अंग्रेजीमें भाषण मैं नहीं दे सकता था, क्योंकि इतनी अंग्रेजी मुझे आती न थी।"

" घरपर ही कुछ ऋग्वेदिकसूक्त और पौरोहित्यके काममें आनेवाले कुछ प्रयोग सीख लिए थे। उन दिनों हाईस्कूलमें श्री चिन्तामणि केलकर नामक एक संस्कृत शिक्षक थे। उनके पास रहकर मैंने कौमुदी, मनोरमा, शेखर आदि संस्कृतव्याकरणके ग्रंथ पढे। इसी समय मैंने एक " संस्कृत व्याख्यानमण्डल " की स्थापना की। इसकी स्थापनाका उद्देश्य यही था कि सप्ताहमें एक दिन संस्कृतमें व्याख्यान हों और संस्कृतमें वादविवाद भी हों। हमारे उस मण्डलमें करीब ७-८ लोग सदस्य थे। वे सभी सदस्य संस्कृतमें व्याख्यान देते थे। "

" उसी दरम्यान सावंतवाडीमें चित्रकलाका एक स्कूल खुला और मैं वहां जाकर चित्रकला सीखने लगा। प्रथम दो परीक्षायें वहींसे पास कीं और सन् १८९० में मैं बम्बईके आर्टस्कूलमें दाखिल हो गया। "

श्री पं. सातवलेकरजीके पिता श्री दामोदरपंत भी चित्रकारीमें कुशल थे, वही मानों उत्तराधिकारके रूपमें श्रीपादके पास भी आया। इसीलिए सन १८८७ में सावंतवाडीमें जब औद्योगिक स्कूल खुला, तब श्रीपादके कलानैपुण्यमें भी बहार आ गई और उनकी यह कला और भी निखरती चली गई।

कोलगांव और सावंतवाडीके निवासकालमें श्री पंडितजीकी बुद्धि अपनी छटा दिखाने लग गई थी। एक तरफ वेदाभ्यासी तो " अलक्ष्मीर्मे नश्यतु " कहकर दारिद्र्यको दूर भगानेकी बात कहता है, तो दूसरी तरफ द्रोणाचार्य " ब्राह्मणत्व और दारिद्र्य " को पर्यायवाची शब्द मानते हैं। अतः इन दोनों सिद्धान्तोंका समन्वय हो तो कैसे हो? सावंतवाडीमें अपने सम्बन्धी मामा पेंडारकरके पास रहते हुए इन दोनों सिद्धान्तोंके समन्वय करनेके विषयमें श्री पंडितजी हमेशा उनसे जिज्ञासा किया करते थे।

उन दिनों सावंतवाडीमें एक कमरेका किराया एक रुपया वार्षिक था, अतः ड्राइंगमें नैपुण्य प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रीपाद कोलगांव न जाकर वहीं सावंतवाडीमें ही रहकर अपना शौक पूरा करता था। यदि कभी घर जाना भी होता था तो गणेशोत्सव और होलीके अवसरपर दो चार दिनोंके लिए हो आता था। अपने गांवमें भी सावंतवाडीकी तरहही अमराईमें या पडौसके बागमें जाकर वहांके निसर्गरम्य चित्रोंको अंकित करना ही श्रीपादका मुख्य काम रहता थे। उस समय यह चित्रकार अपने चित्रलेखनमें इस प्रकार समाधिस्थ हो जाता था कि खाने पीनेकी भी सुध भूल जाता था। माताके बार बार पुकारने पर भी यह कलाकार तभी उठता था, जब इसका चित्र पूरा हो जाता था।

मराठी ६ वीं उत्तीर्ण होनेके बादमें ही श्रीपादके १६ वें वर्षकी कल्पना माता पिताके आंखोंके आगे नाच उठती थी। कुण्डलीमें लिखे गए श्रीपादकी अकालमृत्युकी कल्पना ही उन दोनोंके लिए महान् चिन्ताका कारण बन गई थी। तो भी उन दोनोंका उस सर्वनियन्तापर भरपूर विश्वास थं। श्रीपादके जन्मके पूर्व दत्तात्रेय भगवानकी मनौती मनाई थी और श्रीपादके आठवें वर्ष नरसोबावाडी जाकर भगवान्के चरणोंमें नतमस्तक होकर दोनोंने श्रीपादके लम्बी उमरकी प्रार्थना की थी। ये थीं कुछ बातें जो ऐसे संकटके अवसरपर उन्हें ढांढस बंधाया करती थीं। श्रीपादकी बुद्धिमत्ता, अपनी श्रेणीमें प्रथम आना, सावंतवाडीमें "संस्कृतवाग्विवर्धिनी" नामक संस्कृत मंडलकी स्थापना ये सब कुछ ऐसी बातें थीं, जो मातापिताको पूरा पूरा विश्वास दिलाती थीं कि यह पुत्र वस्तुतः भगवान्का ही अमूल्य प्रसाद है। प्रसंगवश सावंतवाडीमें संकेश्वरमठके शंकराचार्यकी मौजूदगीमें "धर्म" विषयपर श्रीपादके मुखश्रीसे संस्कृतमें अप्रतिहत वाग्धारा प्रवाहित होते देखकर एवं शंकराचार्यके द्वारा प्रशंसा प्राप्त करते देखकर उसके पिताके हृदयमें हर्षका सागर किस प्रकार उमड पडा होगा, इसके बारेमें तो—

> न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
> स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते

(उसके आनन्दका वर्णन वाणी नहीं कर सकती, उसका अनुभव तो स्वयं हृदय ही कर सकता है) यही कुछ कहा जा सकता है। उस समय श्रीपादकी उमर १७ वर्षकी थी। इसके बाद सभी सम्बन्धियोंने निश्चयपूर्वक समझ लिया कि अब श्रीपादका मृत्युयोग टल गया है। अब दामोदर भट्टका व्यवहार श्रीपादके साथ—

> "प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्"

(सोलहवें वर्षके प्राप्त हो जानेपर पिता पुत्रसे मित्रके समान व्यवहार करे) इस उक्तिके अनुसार मित्रवत् ही हो गया था। अब श्रीपाद भी घरके कामोंमें अपने

*

पिताका हाथ बंटाने लगे। अब रातको पूजापाठ कराने यदि कहीं जाना होता तो वह काम अब श्रीपाद ही कर दिया करते थे।

यद्यपि गांवमें रहते हुए श्रीपाद अपने पिताकी भरपूर सहायता कर सकते थे, पर वहां रहकर उनके गुणोंके विकसित होनेका अवसर नहीं मिल सकता था। और उन गुणोंको विकसित करनेके लिए श्रीपादका सावंतवाडीसे बाहर जाना आवश्यक था। यह महत्त्वाकांक्षी और बुद्धिमान् तरुण अपनी कला एवं गुणोंके विकासके लिए अपनी आयुके बीसवें वर्षमें इस पौरोहित्यके कर्मसे छूटकर बाहर विहार करना चाहता था। पौरोहित्यके आधार पर उदर निर्वाह करनेकी पद्धति उन दिनों भी शिथिल होती जा रही थी। अतः श्रीपादने यह स्पष्ट जान लिया कि उदर निर्वाहके लिए चित्रकलाके अलावा और कोई ऐसा प्रतिष्ठित व्यवसाय नहीं है कि जिसका सहारा लिया जा सके। इसके लिए श्रीपादने बम्बई जैसा योग्य नगर चुना। उस समय कोंकण प्रदेशवासी शिक्षा और व्यवसायके लिए अधिकांशतः बम्बईकी ओर ही दौडते थे। इसलिए श्रीपाद भी बम्बईकी तरफ ही मुड गए। १८९० सन्में वे बम्बई चले गए। अपने कला कौशल्यके बारेमें पंडितजी लिखते हैं—

“फोटो परसे मैं बडे बडे चित्र अपने हाथोंसे बडी कुशलतासे बना लेता था। इससे मुझे आय भी हो जाती थी। ऐसे हर चित्रके लिए मुझे १० रु. मिलते थे, जो मेरे लिए पर्याप्त थे।” इसी आत्मविश्वासका आधार लेकर श्रीपाद बम्बईके सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्समें दाखिल हो गए। स्वावलम्बन और स्वाभिमान ही गरीबोंका धन है। यह धन जिसके पास है, वह समयका सदुपयोग करता हुआ काम करता है और अपने उद्देश्यको पानेमें सफल होता है।”

सावंतवाडीमें श्री पंडितजी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए गरीब और भोली भाली वृत्तिकी बालिकाओंके स्कूलमें शिक्षकका काम करनेवाले मामा पेंढारकर नामक एक सात्विकवृत्तिके सज्जनके पास रहे। दूसरी श्रेणीमें श्रीपादके साथ कुरान पढनेवाला अहमदखान काजी नामका एक बीस वर्षका तरुण था। हिन्दुओंके लडकोंको अपने स्तुति स्तोत्र बिलकुल नहीं आते थे। अतः काजीकी इस धर्मनिष्ठाने पंडितजीके मनमें अपने धर्मके प्रति निष्ठाके बीज बोये। आगे चलकर अंग्रेजी स्कूलमें दाखिल होनेके समय जब उस स्कूलके मुख्याध्यापक श्री पाणंदीकरने फीस माफ करनेसे इन्कार किया और स्कूलकी फीस भरना पंडितजीके पिताजीके बसकी बात नहीं थी, तब पिताजीने पंडितजीको सलाह दी कि वे घर पर ही रहकर पौरोहित्यका कार्य करें। पर वेदाध्ययनमें रुचि होने पर भी पौरोहित्य करके दक्षिणाके लिए हाथ फैलानेकी बात पंडितजीको बिलकुल पसंद नहीं आई। इसीलिए श्री चिन्तामणि केळकरके निरीक्षणमें पंडितजीने अपनी ही श्रेणीमें पढनेवाले साथियोंको लेकर “संस्कृतभाषा प्रसारिणी” नामक एक संस्थाकी स्थापना की। यहां वे सभी सदस्य संस्कृतमें बोलने-

का प्रयत्न करने लगे। इस संस्कृतभाषा विषयक कमाईका उपयोग श्रीपादरावने अपने आगेके जीवनमें बहुत किया।

सावंतवाडीमें रहते हुए श्री पंडितजी चित्रकलामें कुशल हो गए। उनके पिता श्री दामोदरपंत घरकी भित्तियोंपर उत्तम उत्तम रेखाचित्र खींचकर उन्हें रंगते थे। इस तरह जिसप्रकार वेदाध्ययन और संस्कृताध्ययनका उत्तराधिकार श्री पंडितजीको अपने पिताजीसे मिला था, उसी प्रकार चित्रकलामें नैपुण्य भी पितासे मिला था। इस प्रकार चित्रकलामें नैपुण्य भी पितासे प्राप्त हुआ हुआ एक उत्तराधिकार ही था। सावंतवाडीके रेजिडेण्ट वेस्ट्रापके द्वारा सावंतवाडीमें एक चित्रकला स्कूलके खोले जानेपर पंडितजी उसमें दाखिल हो गए।

उस स्कूलमें रहते हुए पंडितजीने अपने शिक्षक श्री मालवणकरकी दृश्य चित्रित करनेकी कुशलता अपनाली। अबतक पंडितजी भी इतने कुशल हो गए थे, कि छोटे-छोटे फोटोपरसे बिल्कुल उसीके समान बडे बडे चित्र तैय्यार कर देते थे और इस प्रकार वे एक एक चित्रपर पांच-पांच रुपये कमा लेते थे। एक रुपयेमें २५-२७ सेर चावल मिलनेवाले उस समयमें पांच रुपये ही बहुत ज्यादा माने जाते थे। सावंतवाडीमें तीन बरस रहकर और चित्रकारीमें निपुणता पाकर दूसरी जगह जाकर अपनी इस कलाको और अधिक विकसित करनेकी श्रीपादकी इच्छा अत्यधिक बलवती हो गई। पर इनके पिताकी इच्छा यह थी कि श्रीपाद घर पर ही रहकर घरका काम देखें। वे श्रीपादको कहीं बाहर जाने देना नहीं चाहते थे। अतः जब श्रीपादने अपने पिताके सामने बाहर जानेकी अभिलाषा प्रकट की तो उनके पिताने कहा कि " यहीं रहकर घरका काम देखो। कहीं दूसरी जगह जानेकी इच्छा मत करो, क्योंकि जो भी इस घरसे बाहर गया, वह फिर कभी लौटकर इस घरमें नहीं आया। " श्रीपादके पिताके ये वचन अक्षरशः सत्य निकले। श्रीपाद अपने गांवसे जो बाहर पडे, तो फिर कभी अपने गांव लौटकर न जा सके। पर ऐसे छोटे मोटे विघ्नोंपर होनहार पुरुष कभी ध्यान नहीं देते। अपने पिताके कहनेपर भी श्रीपाद अपनी मनशाको डावांडोल न कर सके और अपनी किस्मत आजमानेकी हसरत लेकर श्री पंडितजी बम्बईकी तरफ चल पडे।

❀ ❀ ❀

: ६ :

महानगरी बम्बईमें

सावंतवाडीके आर्टस्कूलके अध्यापकोंकी अभिलाषा यह थी कि स्कूलका विद्यार्थी श्रीपाद सावंतवाडीसे चित्रकलाकी दो परीक्षा पास करके आगे पढ़नेके लिए बम्बई जाए। पर इस मार्गमें पंडितजीके घरकी आर्थिक परिस्थिति विघ्नरूप बनकर आई, पर—

क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।

[महापुरुषोंके कार्यकी सिद्धि उनकी शक्ति एवं आत्मविश्वास पर आधारित होती है, साधनों पर नहीं।] इस सुभाषितका यहां भी प्रात्यक्षिक दर्शन हुआ। श्री पंडितजीके पास साधन भले ही न रहे हों, पर आत्मविश्वास अवश्य था। लोगोंकी फोटोको बड़ा बनाकर उससे धनार्जन कर आगे पढ़नेका आत्मविश्वास श्रीपादमें था। इसी समय एक उदार सज्जन श्री दामोदरपंतसे मिले और उन्होंने श्रीपादकी शिक्षाके लिए प्रतिमास दस रुपये देना स्वीकार किया। तब जाकर श्रीपादको परवानगी मिली। परवानगी मिलते ही श्रीपादराव वेंगुर्ला बन्दरगाहसे १ रु. भाड़ा खर्च करके जहाजसे बम्बई आ गए। बम्बईके ग्रांटरोड भागके स्लेटर रोडपर अभ्यंकर चालमें श्रीपादरावके पिताके मित्र श्री बालकृष्णपंत बाबा ओभेकर (प्रसिद्ध उद्योगपति श्री लक्ष्मणराव किर्लोस्करके साले) रहते थे। उन्हींके पास श्रीपादराव रहने लगे। कस्टम खातेमें मिलजुलकर रहनेवाले अधिकारियोंमें श्री ओभेकरका प्रमुखस्थान था। ये ओभेकर श्रीपादको सावंतवाडीके निवासकालमें अंग्रेजी सिखानेवाले श्री बलवन्तराव लुकतुकेके मित्र थे। निर्धन विद्यार्थियोंको सहायता देनेवाले ओभेकरने श्रीपादरावको अपने पास रख लिया और श्रीपादराव भी उनके घरकी सीढ़ियोंके नीचे एक तिकोने कमरेमें रहने लगे। पर उन्हें हमेशा यह चिन्ता रहती थी कि उनके कारण ओभेकरके किसी भी मनुष्यको किसी तरहका कष्ट न पहुंचे।

उन दिनों बम्बईके जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्सके प्रधानाचार्य जॉन ग्रिफिथ (१८६८–१८९५) थे, जो उमरमें पंडितजीसे एक वर्ष छोटे थे। स्कूलमें ठीक ११ बजे जानेसे पूर्व श्रीपादराव रोज सबेरे स्नान आदि करके अपने व्यवसायके लिए चार पांच घर घूम आते थे और १०॥ तक लौटकर भोजन खा पीकर ठीक समयपर स्कूल पहुंच जाते थे। इसके अलावा फुरसतके समय वे संस्कृतमें लेखन आदि करते रहते थे या कभी कभी जांभेकर परिवारमें मेलजोलकर आनन्द प्राप्त करते थे। बादमें जांभेकर ठाकुरद्वारके पास भसराईमें मोहलिकके बंगलेमें रहनेके लिए आए, तब भी श्रीपादराव उनके साथ थे। बम्बई निवासके दौरानमें हुई हुई हकीकतोंको पंडितजीकी कलमसे ही पढिए—

"घरसे १० रु. प्रतिमास मनिऑर्डरसे आ जाते थे। उन रुपयोंका बजट मैंने इसप्रकार बना रखा था– ६ रु. होटल (भोजन), १ रु. रेलभाड़ा, १ रु. स्कूल फीस, २ रु. ऊपरी खर्च। इसके अलावा फोटोको एनलार्ज करके भी पांच दस रु. प्रतिमास कमा लेता था और इस प्रकार मेरा सारा खर्च निकल आता था। उस समय ६ रु. में जैसा उत्तम भोजन मिलता था, वैसा उत्तम भोजन आज ५०–६० रु. में भी नहीं मिल सकता। उन्हीं ६ रु. में भरपूर दही, दूध और घी मिलता था और हर त्योहार पर विशेष भोजन भी मिलता था।"

"मैं अपने घर कोलगांवमें ८ वें वर्षतक रहा और सावंतवाड़ीमें २३ वें वर्ष तक रहा। इस समय वहांका धार्मिक वातावरण बहुत सुन्दर था। अक्कलकोटके स्वामीके शिष्य आकर सावंतवाडीके आत्मेश्वरके मन्दिरमें रहा करते थे। शामके समय देवपूजा और भजनोंका उनका कार्यक्रम होता था। उनका देवतार्चन बहुत बड़े पैमानेपर होता था, इसलिए वहां लोगोंकी उपस्थिति संख्या भी बढती गई और ३–४ महीनेमें शामके भजनके समय २००० के करीब उपस्थिति संख्या भी पहुंच गई। भजनके बाद घिसे हुए नारियल और शक्करका प्रसाद लोगोंको अंजलि भर भरकर दिया जाता था। इतना प्रसाद २००० भक्तोंको दिया जा सके, इतने नारियल रोज भक्तगण लाते थे और वे फोडे जाते थे।"

"मैं इस भजनमें पैरोंमें घुंघरू बांधकर नाचा करता था। घर भी भगवान् दत्तात्रेयके सामने नाच नाच कर भजन गाया करता था। मुझे बचपनसे ही दत्तभगवान्की भक्ति पसन्द थी। इन्हीं दिनों टेम्बे स्वामी प्रसिद्धिकी ओर बढ रहे थे। उनके दर्शनोंके लिए माणगांव (सावंतवाडीसे सात मील दूर) लोगोंकी भीड गाडियोंसे आती जाती थी, इसलिए जंगलोंमें भी रास्ते बन गए थे, दूकानें और बस्तियां स्थापित हो गई थीं। इतने दर्शक यात्रा करते थे। मैं भी टेम्बे स्वामीके दर्शन करनेके लिए अनेकबार गया था। इन दिनों सावंतवाडीसे माणगांव इस ७ मीलके प्रदेशमें कमसे कम २–३ सौ साधु इकट्ठे हो गए थे। बरगद और पीपलके वृक्षोंके नीचे धूनी रमाकर ये साधु रहते थे, वहां पर भी लोगोंकी भीड लगी रहती थी और उनका खाना पीना भक्तोंके दानसे होता था। इसप्रकार ३–४ महीने तक

"उस स्कूलमें मैं तीन वर्षतक अत्यधिक व्यस्त विद्यार्थी रहा। सभी विद्यार्थियोंके द्वारा अभिलषित मेयो–मैडलको मैंने दो बार जीता। यह पदक एकबार चित्रके रंगने पर मिला था और दूसरी बार शिल्पकलामें। इसके बाद मैं उसी स्कूलमें शिक्षक नियुक्त कर दिया गया। स्कूलके आचार्य मि. ग्रिफिथ्स और उपाचार्य मि. ग्रीनवुड क्लासमें कभी कभी ही आते थे। वहां सिखाना, सुधारना अथवा स्वयं चित्र खींच कर विद्यार्थियोंको दिखाना आदि कुछ भी नहीं था। विद्यार्थी स्वयं परिश्रम करके आपसके सहकारसे सीखते थे। मैंने भी दूसरोंके चित्र देख देखकर खींचना और रंगना सीखा। चारों ओर नजर डालना और मनमें जो भी कुछ बैठ जाए, उसीको कागजपर उतार कर उस पर ब्रश मार देना, यही मेरा तरीका था। प्रिन्सिपलका नौकर हमें चित्र रंगनेकी कला देखनेके लिए कभी कभी थोड़ी देर अपने स्वामीके कमरेमें जानेकी इजाजत दे देता था। बस!"

"मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि ऐसे दो ही अवसर हमें प्राप्त हुए थे, जब हमें बाहरके कलाकारोंके चित्र रंगनेका तरीका देखनेको मिला था। एकबार मि. वैनरॉथ नामके एक कलाकार हमारे स्कूलमें आए थे।"

"हम सब विद्यार्थी एक मॉडलके पोर्ट्रेटके चित्रणमें मशगूल थे। हमारा काले रंगमें रंगा हुआ वह चित्र उस कलाकारको इतना पसन्द आया कि वह खुद उसको चित्रित करनेके लिए बैठ गया। उसने चित्र खींचनेके पूर्वपर केनवास (चित्रका कागज या पर्दा) पर लिन्सीड ऑइल (अलसीका तेल) पोत दिया। यह तरीका हमारे लिए नया था। उसने हमें बताया कि इस प्रकार तेल लगा लेनेसे केनवास पर कूंची जल्दी जल्दी और सफाईसे मारी जा सकती है। वह बड़ी और चौड़ी कूंचियोंसे चित्र बनाता था। बादमें हमें पता लगा कि वॉनरॉथ एक कुशल मूर्तिकार था। काठियावाडके महाराजाने उसे कुछ मूर्तियोंको गढनेका काम भी दिया था।"

"मेरी याददाश्तका दूसरा प्रसंग उस समयका है, जब सुप्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा बम्बई आए थे। देशके कलाक्षेत्रमें उनका नाम बहुत गूंज चुका था। चित्र काढनेके समय उनकी कला एवं तरीका देखनेकी हमारी बहुत इच्छा थी। हम डरते डरते उनके पास गए और हकलाते हकलाते हमने अपनी इच्छा उनके सामने रखी। हमारी उत्कट अभिलाषा देखकर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। वह अनुभूति हमारे लिए अविस्मरणीय बन गई। अत्यन्त कुशलतासे उन्होंने चित्र काढे। उनका आत्मविश्वास अतुलनीय और अद्वितीय था।"

"मेरे समकालीन अनेकों विद्यार्थी आगे चलकर बहुत उत्तम चित्रकार साबित हुए। उनमें धुरंधर, पीठावाला और रांगणेकरका नाम बहुत जल्दी याद हो आता है। आगासकर मुझसे एक वर्ष पीछे था। त्रिंदाड निस्संदेह सबसे ज्यादा बुद्धिमान् था। रांगणेकर बहुत चतुर विद्यार्थी था, पर ऐन समय पर उसने चित्रकलाका शौक छोड़ दिया। चित्रकलाके क्षेत्रमें भविष्यकी अन्धकारमयताने उसे निराश कर दिया।"

" त्रिदाड बहुत सफाई एवं शीघ्रतामें काम करनेवाला था। उसके बारेमें अब भी एक प्रसंग मुझे याद आता है। हम सब परीक्षा हॉलमें बैठे हुए थे। उसे आनेमें जरा देर हो गई। नियमका बहुत सख्तीसे पालन करनेवाले अंग्रेज सुपरवाइजरने त्रिदाडको हॉलमें प्रवेश देनेसे इन्कार कर दिया। तब त्रिदाड बोला- कि "मैं देरीसे आया, इसमें नुकसान किसका हुआ? मैं तुमसे जरा भी ज्यादा समय नहीं मांगूगा।" यह कहकर वह हॉलमें चला आया। अन्दर आकर उसने अपना चित्र काढना शुरू किया। हमें तो उस समय आश्चर्य हुआ जब कि उसने समयसे आधा घंटे पहले ही अपनी उत्तर पुस्तक सुपरवाइजरके हाथोंमें पकडा दी। वह वास्तवमें एक स्वयंप्रज्ञ विद्यार्थी था।"

"इन दिनों श्री बाळासाहेब पंत (प्रतिनिधि औन्धरियासत) बम्बईके एक कॉलेजमें पढ रहे थे। उन्हें भी बचपनसे ही चित्रकारीका शौक था। वे बार बार मुझे बुलाकर मेरे तरीकेका बडी बारीकाईसे निरीक्षण करते थे। मुझे अपने चित्रको प्रारंभसे लेकर अन्ततक उन्हींके सामने बैठकर पूर्ण करना पडता था। वे मुझे औन्ध भी बुलाते थे और मैं अपनी सारी छुट्टियां औन्धमें ही बिता देता था।"

"१८९७ की छुट्टियोंका मेरा सारा समय औन्धमें ही बीता। इन्हीं दिनों औन्धमें ही मुझे टाइफाइडने धर दबाया। ६२ दिनतक १०४-१०५ डिग्री बुखार हमेशा रहता था। पर इतने बुखारके बावजूद भी मुझे बेहोशी या कोई दूसरी व्यथा नहीं हुई। औंधमें पूस महीनेके पूनमके आसपासके दिनोंमें यमाई देवीकी पूजा अर्चा विशेष प्रकारसे होती है। सबेरे ४ से लेकर ६ बजेतक यह पूजा अर्चा चलती रहती है। मेरी बीमारीके ६२ वें दिन श्रीमंत महाराज (श्री बाळासाहेबके पिता) देवीकी पूजा कर रहे थे। आधी पूजाके होते ही एक कटोरीमें देवीका तीर्थ भरकर उसे एक ब्राह्मणको देते हुए उन्होंने कहा कि "जाओ, वहां जो तरुण बुखारसे तडप रहा है, उसे जाकर यह दे दो।" सबेरे करीब ५ बजे वह तीर्थ लेकर ब्राह्मण मेरे पास आया और महाराजका संदेश देकर उसने वह तीर्थकी कटोरी मुझे पकडा दी। मैंने बडी श्रद्धासे वह तीर्थ पी डाला।"

"यह तीर्थ दूध, दही, घी, शहद, शक्कर और केलेका मिश्रण होता है। ६२ दिनके बुखारके बाद यह तीर्थ मुझे बहुत मीठा लगा। उसके माधुर्यके स्वादका स्मरण अब भी मुझे अच्छी तरह है। आश्चर्य इस बातका हुआ मुझे कि उसी दिन शामको ६ बजे मुझे बुरी तरह पसीना छूटा और बुखार एकदम उतर गया। तीर्थ लेनेके १२ घंटोंके अन्दर ही अन्दर यह चमत्कार हो गया। पर बुखार एकदम उतर जानेके कारण मुझे बहुत ज्यादा कमजोरी महसूस होने लगी और खडे होने तथा चलने फिरनेमें मुझे १२ दिन लग गए।

इस विषयमें बाळासाहेब पंत प्रतिनिधिके चरित्रमें जो और अधिक जानकारी मिलती है, वह इस प्रकार है—

" सोनबा (श्री पंडितजीका उपनाम) की तबीयत कमजोर थी। श्रीमूलके पर्वत-पर चढ़ना उनसे सहन नहीं होता था। हमारे साथ चलना भी उनकी शक्तिके बाहरकी बात थी। हम चलते थे, पर सोनबा उसे हमारी दौड कहते थे। वे बार बार कहते थे कि यह दौड मुझसे नहीं होगी। अशक्त प्रकृतिके होनेके कारण पटवर्धन कुटुम्बका श्रम उन्हें सहन नहीं हुआ, या ज्यादा हो गया कौन जाने ? सोनबा बीमार पड गए। रावजी शिवराम गोंधलेकर दवाखानाके डॉक्टर बहुत घबरा गए। वे डॉक्टर हमसे रोज आकर कहते थे कि सोनबा बहुत बीमार है, दवाईका कोई उप-योग नहीं हो रहा है, पसीना आता नहीं, दोपहर ५–५॥ डिग्री बुखार रहता है, सबेरे बहुत उतरा तो ३ डिग्री तक उतर जाता है, कुछ खाते नहीं, होश है नहीं ! एक बेगाना मनुष्य हमारे यहां आकर बीमार पड गया, इस बातकी चिन्ता हमें और तात्यासाहब (पंत) को हमेशा लगी रहती थी। बीमारीके १०–१५ दिन बीत गए, तब हमने यह बात माताजीको बताई, इसके बाद उनसे तात्या पागे (पटवर्धन) मिले अथवा किसी कामसे मेरे पिताजीके पास गए, तो सबसे पहले यही पूछते थे कि " अहो ! उस चित्रकारकी कैसी हालत है ? " एकदिन पटवर्धनने कहा– " महाराज ! सोनबा बेहोश है, बहुत बुखार है। " इतनेमें ही महाराज (हमारे पिताजी) बोले, " कल सबेरे आरतीके समय तुम आओ और श्री आई (महाराज-की पूज्य देवता) का तीर्थ सोनबाको ले जाकर पिलाओ। श्री जरूर कृपा करेंगी। " कथनानुसार दूसरे दिन तात्या पटवर्धन सबेरे चार बजे श्री यमाईकी आरतीके समय मन्दिर गए। पंचामृतका तीर्थ स्वयं महाराजने अपने हाथोंसे श्री यमाईके चरणोंमें रखा और उसे पटवर्धनके द्वारा लाए गए बर्तनमें देते हुए कहा कि इसे ले जाकर चित्रकारको पिला दो। तात्या पटवर्धनने तीर्थ ले जाकर सोनबाको पुकारा, सोनबाने प्रत्युत्तर दिया और पटवर्धनने वह तीर्थ सोनबाको पिला दिया। स्वस्थ हो जानेके बाद सोनबाने स्वयं कहा कि महाराजके द्वारा स्वयं अपने हाथोंसे दिए गए एकदम मधुर जगदम्बाका तीर्थ पीनेके साथ ही मुझमें चेतनताका संचार हुआ और मैं ठीक हो गया। श्री यमाईके प्रसादका और एक महापुरुषके हाथका यह गुण था, इसमें हमें कोई संदेह नहीं रहा। "

इसके आगे श्री पंडितजी लिखते हैं—

" औंधमें बीमार पडनेके एक महीने बाद मैं बम्बई आया। बम्बईमें इस बुखारका मुझपर फिर हमला हुआ और २६ दिनोंतक फिर मैं ज्वरसे पीडित रहा। उनमें अन्तिम छै दिनोंमें मैं बिलकुल बेहोश रहा। डॉ. वेलणकरकी दवा चालू थी। वे रात-रातभर मेरे पास बैठे रहते थे। छै दिनके बाद होश आनेपर मैंने आंखें खोलीं। इस दौरानमें मुझे एक स्वप्न दीखा, वह दृश्य अब भी मेरे नजरोंके सामने है।

" आकाशमें एकदम काले बादल घिरे हुए थे, उन बादलोंमें मुझे एक ऋषि दीखे, उनकी सफेद दाढी घुटनोंतक लटक रही थी, उसी तरह लम्बे लंबे बाल पीठ

पर लहरा रहे थे। उस ऋषिने अपना वरद-हस्त मेरे सिर पर रखा और कहा–
" हे पुत्र ! तू डर मत। तू मरेगा नहीं। अभी तुझे बहुतसे काम करने हैं। "
इतने शब्द मैंने स्पष्ट सुने और मैं जग गया। उस दिनसे मुझे आराम आने लगा
और १०–१२ दिनोंमें मैं स्वस्थ हो गया। "

" सन् १९०० में मुझे बम्बईके आर्ट्स स्कूलमें शिक्षणकी नौकरी मिल गई। पर
मैंने वह ६ महीनोंमें छोड दी। और निजाम हैदराबाद जाकर वहां चित्रकारीका काम
शुरु करनेका निश्चय किया। "

अपना व्यवसाय और ध्येयके रूपमें श्रीपादने अभ्यास और व्यवसाय किया।
उन्होंने जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्समें पहला क्रमांक तो प्राप्त किया ही किया, साथ ही
अन्तिम परीक्षामें चांदीका पदक भी प्राप्त किया। उनके कुछ स्केचेज प्रिंसिपल
ग्रिफियको इतने अच्छे लगे कि उन्होंने उन चित्रोंको ५०–५० रु. में खरीद लिए।
चित्र कलाके साथ ही साथ फोटोग्राफी, एन्लार्जमेंट आदि कलायें भी श्रीपादरावने
प्राप्त कीं और प्रतिमास चालीस रुपयोंकी प्राप्ति उन्हें होने लग गई। उसके कारण
उनके सभी अध्यापक उनकी प्रशंसा करते थे। आर्ट्स स्कूलमें होनेवाली अपनी
शिक्षाके बारेमें सातवलेकरजी लिखते हैं—

" हम पोर्ट्रेट पेंटिंग, पुराने चित्र और मॉडलके चित्रणका अभ्यास करते थे।
संयोगीकरण (Composition) जैसा दूसरा कठिन विषय नहीं है। प्रत्येक शनि-
वारको हमारी समयके अन्दर काम करनेका क्लास लगती थी। एक ही बैठकमें चित्र
पूरा करना होता था और उस कसौटीपर हमारी प्रगतिका निश्चय किया जाता था। "

अपने जिज्ञासु पुत्रवधू सौ. कुसुमबाई (माधवराव) सातवलेकरको पंडितजी
द्वारा दिए गए और बॉम्बे आर्ट सोसायटीके " आर्ट जर्नल " (अप्रैल १९६६) में
प्रकाशित हुए हुए इण्टरव्यूमें पंडितजीने अपने अध्यापकोंके बारेमें इस प्रकार जान-
कारी दी है। वे कहते हैं—

" जे. जे. स्कूलमें मैं शिक्षकके रूपमें नियुक्त हो गया और प्रतिमास पचास
रुपये मुझे वेतन मिलता था। उस समयका जीवन ही बिल्कुल निराला था। उस
समयका जीवन बिल्कुल सीधा सादा और सरल था। पर हाथमें आए हुए कामको
हम प्राणपणसे पूरा करते थे, उस वक्त हमें और किसी दूसरे की चिन्ता नहीं रहती
थी। दो बार मैयो मैडल जीतनेके कारण ही मेरी नियुक्ति इस स्कूलमें हुई थी।
जब मैंने छोडकर जानेकी बात अपने प्रिंसिपलको बताई, तब मि. ग्रीनवुडको बहुत
बुरा लगा। उन्हें मेरा काम पसंद था, पर मैंने हैदराबाद जाकर चित्रकारके रूपमें
अपने जीवनकी शुरुआत करनेका निश्चय कर लिया था। उन दिनों चित्रकारोंकी
परिस्थिति क्रमशः सुधरती जा रही थी। पूरे पोर्ट्रेट की कीमत १००० रु. करीब
लगती थी। " चित्रकलाके क्षेत्रमें उनकी निपुणता और ज्ञान मारग्राहता और कमा-

नेकी कार्यक्षमता स्वयं पंडितजीको, उनके रिश्तेदारों और मित्रोंको ज्ञात हो गई थी। चित्रकला सीखनेतक वे बत्तीसवें वर्षको पार कर गए थे। चित्रकला सीखनेमें जितना समय उन्हें लगा; उतना समय वेदज्ञान सीखनेमें भी नहीं लगा। इस बारेमें श्री पंडितजी स्वयं लिखते हैं—

"महाभाष्यतक संस्कृतका अध्ययन घरहीमें हो गया था। इसी कारण मैं संस्कृतमें बोल सकता था। मेरे बम्बई आनेके ३–४ वर्ष बाद यहां एक योगी आया, और एक थियेटरमें अपने खेलोंका उसने प्रदर्शन किया। उसने एक विज्ञापन छपवाया कि– "मैं योगबलसे मुखसे कपडा निगल कर उसे गुदाद्वारसे निकालकर दिखला सकता हूँ।" उसके इस विज्ञापनको पढते ही मैं बम्बईमें योगपर मिलनेवाली सभी पुस्तकें खरीद लाया, उनका गहरा अध्ययन किया और मैंने उसे आह्वान दिया कि वह मेरे द्वारा दिए कपडेको मुंहसे निगलकर गुदाद्वारसे निकालकर दिखलाये। पर इस प्रकार करना संभव नहीं था। थियेटरमें उस योगीके योगसाधनोंका प्रदर्शन होना था। थियेटरमें बहुत भीड थी। योगपुस्तकोंमें यद्यपि "धौति" प्रयोगका वर्णन तो मिला, पर कपडा मुंहसे निगलकर गुदाद्वारसे निकालनेका वर्णन कहीं नहीं मिला। इस कारण योगी कुछ भी न कर सका, और इस प्रकार वहां मेरी विजय हुई। मेरा पक्ष सच्चा निकला और उसका झूठा। उस आह्वानके कारण संस्कृतज्ञ विद्वान्के रूपमें बम्बईमें मैं परिचित हो गया। और बचपनमें सीखे हुए संस्कृतके अध्ययनकी तरफ मेरा ध्यान फिर आकर्षित हुआ। इस कारण वेद, उपनिषद् और गीता आदि ग्रंथोंका वाचन और मनन करना फिरसे शुरु कर दिया। उस आह्वानके दिनसे ही योगासनादि करनेमें मेरी रुचि उत्पन्न हो गई और मैं आसन और प्राणायाम आदि करने लगा। इससे, मेरा स्वास्थ्य सुधरता गया। २५ वें वर्ष मेरा वजन ८७ पौंड था, पर इन आसनोंके प्रयोगसे ३० वें वर्षमें ११० पौंडका हो गया।"

: ७ :

हैदराबादमें

अपने निश्चयके अनुसार १९०९ में सातवलेकर हैदराबाद आ गए और वहाँ उन्होंने अपना एक स्टूडियो खोल लिया। पैसे भी मिलने लग गए। इस चित्र कलाके कारण हैदराबादका सर्वेसर्वा निजाम भी पं. सातवलेकरका भक्त बन गया। बम्बई, पूना, मद्रास और शिमलेमें हुई हुई चित्रप्रदर्शनियोंके कारण पं. सातवलेकरजीके वास्तविक चित्रण, सौन्दर्य और कुशलताकी प्रशंसा फैलती गई, जो फैलती-फैलती निजामके कानोंसे भी जा टकराई। जब निजामने स्टूडियोसे निकलनेवाले पंडितजीके कामोंको देखा, तो उसे पंडितजीकी प्रशंसाकी सत्यताका निश्चय हो गया।

पर इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं थी, क्योंकि उस तरहका यश श्रीपाद सातवलेकरने बम्बईमें रहते हुए ही कमा लिया था। बम्बईमें रहते हुए पंडितजीने जलरंगों (Water Colour) से अनेक ऐसे दृश्य और पोर्ट्रेट्स तैय्यार किए थे, जो बहुत आकर्षक थे। श्री लक्ष्मणराव किर्लोस्करके साथ आए हुए एक अमेरिकन साइकिल कम्पनीके प्रतिनिधिने उन चित्रोंको देखते ही खरीद लिया था, और इस प्रकार श्रीपादरावकी कीर्ति अमेरिकातक पहुंचा दी थी। इस कारण बीसवें शतकमें भारत भरमें सबसे बड़ी रियासत हैदराबादमें उनकी कला और व्यवसायमें भरपूर वृद्धि हो सकेगी, इस विश्वासके साथ श्रीपादने हैदराबादको अपनी कर्मभूमि बनाया। उन्होंने श्री देऊसकरके साथ हैदराबादमें अपना व्यवसाय शुरु किया।

धन्धेकी दृष्टिसे सातवलेकरजीको यह शहर महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ। एक मुस्लिम रियासतमें जितनी नजाकत और मिजाजखोरी होनी चाहिए थी, उतनी हैदराबादमें थी। सुख हो जानेपर बनठीन देनेके रूपमें अपना श्रीमन्तपना दिखलानेमें भी वहांके

लोग कभी चूकते नहीं थे। पर पंडित सातवलेकरको इनमेंसे किसी भी चीजकी गरज नहीं थी। उन्हें तो ऐसे लोगोंकी जरूरत थी जो उनकी कलाको देखकर खुले दिलसे सराह सकें। उन्हें व्यक्ति-स्वातंत्र्यकी आवश्यकता थी। वे ऐसा वातावरण चाहते थे, जिसमें रहकर वे जो चाहें कर सकते और किसी प्रकारकी रुकावट उनके रास्तेमें न आती। उन्हें अपनी आजीविकाके लिए स्वाभिमान खोना पसन्द नहीं था। इसप्रकार वे स्वावलम्बनके द्वारा स्वाभिमान पूर्वक आजीविका कमानेवालोंमेंसे थे। हैदराबादकी रियासत भारतमें सबसे बडी थी। उस रियासतका क्षेत्रफल ८२३१३ वर्गमील और जनसंख्या १३९८९७२३ के करीब थी। यह रियासत दक्षिण पठारका केन्द्र थी। समुद्रकी सतहसे १२५० को ऊंचाईपर स्थित इस रियासतके भूगर्भ-शास्त्रकी दृष्टिसे और मानववंशशास्त्रकी दृष्टिसे दो भाग हैं। पश्चिमोत्तर भागमें काली मिट्टी होनेके कारण कपासकी पैदावार होती है। इसमें मराठी और कन्नड ये दो भाषायें थीं। दूसरा भाग दक्षिणपूर्ववाला है, इस भागमें धावलकी पैदावार बहुत है। लोगोंकी मुख्य भाषा तेलुगु है। बालाघाट, सह्याद्रि और कांडिकलकी गुफायें इस रियासतके मुख्य आकर्षण हैं। इस रियासतमें गोदावरी और कृष्णा ये दो मुख्य नदियां हैं और उनमें मिलनेवाली तुंगभद्रा, पूर्णा, वैनगंगा, मांजरा और भीमा ये नदियां भी बडी ही हैं। इस रियासतका औरंगाबादका जिला बहुत सुन्दर है। उसी जिलेमें अजन्ता और एलोराकी गुफायें हैं और वनसम्पदा भी बहुत है। हैदराबादकी खनिजसम्पत्ति मुख्यतः सोना, कोयला और हीरे हैं। हैदराबादका शहर कृष्णाकी सहायक नदी मुसाके दायें किनारेपर बसा हुआ है। भारतमें यह शहर चौथे नम्बरपर है। मुहम्मद कुली नामक पांचवें कुतुबशाही राजाने सन् १५८९ में इसकी स्थापना की थी। इसका पहलेका नाम भाग्यनगर था। १६८७ में यह मुगलोंके अधिकारमें चला गया। इसके बाद निजामने इसीको अपनी राजधानी बना ली। इस शहरके इमारतोंमें "चार मीनार" दर्शनीय है। इसके अलावा दार-उमशिफा, गोषामहल, जामामस्जिद और मक्कामस्जिद भी देखने योग्य हैं। करीब करीब इन सभी इमारतोंको सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाहने ही बनवाया है। नयी इमारतोंमें निजामका महल देखने योग्य है। हुसेनसागर और मीरआलम सागर ये दो बृहत्काय तालाब भी देखने योग्य हैं। इस प्रकारके सौन्दर्यसम्पन्न शहरमें रहनेके कारण सातवलेकरजीकी कला यदि निखरती चली गई, तो इसमें आश्चर्य किस बात का ?

हैदराबादमें चित्रकलाका व्यवसाय शुरू करनेके बाद पंडितजीका परिचय निजाम, अनेक नवाब तथा अनेक कार्यकर्ता नेताओंसे हुआ। इस कारण पंडितजी अनेक सार्वजनिक संस्थाओंमें भी आने जाने लगे। अवसरके क्षण पंडितजी वेद स्वाध्यायमें लगाते थे। केशवराव कोरटकरके कारण पंडितजी आर्यसमाजके सम्पर्कमें आए। वैदिकधर्मके पुनरुद्धारकी दृष्टि से महर्षि दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्यसमाजकी हैदराबाद शाखामें वेद और दूसरे संस्कृत ग्रंथ पं. सातवलेकरजीको अनायास मिल

गए। वहाँ हिन्दी और अंग्रेजीमें वेदविषयक चर्चायें होती थीं। इसप्रकार पंडितजी भी आर्यसमाजके सदस्य हो गए। समय समयपर वे आर्यसंस्कृतिपर व्याख्यान भी देने लगे। महर्षि दयानन्द कृत " सत्यार्थप्रकाश " और ' ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ' इन ग्रंथोंका पंडितजीने मराठीमें अनुवाद भी किया। उन ग्रंथोंके मराठी अनुवादको देखकर बड़ौदाके महाराज सयाजीराव गायकवाड बहुत खुश हुए। इस कारण आर्यसमाजमें पंडितजीकी प्रतिष्ठा बढ़ गई।

आर्यसमाजके संस्थापक महर्षि दयानंदका जन्म गुजरातके टंकारा ग्राममें हुआ था। वेदोंका पुनरुद्धार इस समाजका मुख्य उद्देश्य है। महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित " सत्यार्थ प्रकाश " को आर्यसमाजी प्रामाणिक ग्रंथ मानते हैं। वेदोंका पुनरुद्धार करके धार्मिक, याज्ञिक तथा शैक्षणिक पद्धतियोंको भारतमें प्रचलित करना ही स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा संस्थापित आर्यसमाजका मुख्य लक्ष्य था। स्वामीजीने वेदों पर भाष्य भी किए। आर्यसमाज मूर्तिपूजाके सिद्धान्तको मान्यता नहीं देता। वह जातिभेद या स्पृश्यास्पृश्यताको नहीं मानता। वह शुद्धिके द्वारा परधर्मावलम्बियोंको भी आर्य बनानेका पोषक है। वह गोरक्षण, अनाथाश्रम, बाल-विवाहनिषेध, आदि सामाजिक उत्कर्षके सिद्धान्तोंका सच्चा समर्थक रहा है। आर्यसमाजके बारेमें श्री पंडितजीके " मेरे और आर्यसमाजके सिद्धान्त " शीर्षकके अन्तर्गत श्री पंडितजीके विचार भी द्रष्टव्य हैं। वे लिखते हैं—

" सन १९०१ से लेकर १९१८ तक आर्यसमाजके अन्दर रहकर मैंने कार्य किया, उसी प्रकार १९०२ से १९०७ तक मैंने थियॉसॉफिकल सोसायटीका भी कार्य किया। हैदराबादमें रहते हुए मैं इन दोनों संस्थाओंमें कार्य करता था। "

" थियॉसाफिकल सोसायटीके कुछ निश्चित सिद्धान्त नहीं हैं। वह तो धर्मग्रंथों पर विचार करनेवाली एक संस्था है। अतः कोई भी मनुष्य, किसी भी सिद्धान्तका मानने वाला हो, इस संस्थाका सदस्य बन सकता है। इसलिए थियॉसॉफिकल सोसायटीका वातावरण मुझे बहुत उदार और विशाल प्रतीत हुआ। इस संस्थाके स्पष्टीकरणकी पद्धतिसे मैं अनेक धर्मग्रंथोंके वचनोंका समधान कर सका। "

" पर आर्यसमाजके सिद्धान्त और नियम निश्चित रहते हैं। उन सिद्धान्तों और नियमोंके बाहर कोई जा नहीं सकता। स्वतंत्र विचारों एवं स्वतंत्र रीतिसे खोज करनेकी इस समाजमें सुविधा नहीं है। मैंने वेद, उपनिषद्, गीता आदि ग्रंथों पर स्वतंत्ररीतिसे विचार किया है, इसलिए मेरे विचार भी कई बार आर्यसमाजी सिद्धान्तोंसे टकरा जाते थे। आर्यसमाजी अपने सिद्धान्तोंके प्रति बड़े कट्टर होते हैं, इन्हीं कारणोंसे वे मुझे आर्यसमाजी नहीं मानते थे। इन मतभेदोंके बावजूद भी मैं आर्यसमाजमें रहा, इसका कारण सिर्फ यही था कि उस समय हैदराबादमें मेरे जैसा वेदज्ञ कोई दूसरा नहीं था। "

" लाहौर जाने पर भी मेरे और आर्यसमाजके बीचमें मतभेद बने ही रहे। इसी कारण कट्टर आर्यसमाजियोंमें मेरी गिनती कभी न हो सकी। तथापि मेरे वेदज्ञानके कारण मेरी प्रतिष्ठा आर्यसमाजमें बढ़ती गई और मेरी प्रतिष्ठामें मेरा मतभेद कुछ धक्का नहीं पहुंचा सका। "

" अपने और आर्यसमाजके बीच मतभेदोंको स्पष्ट करनेके लिए मैं यहां अपने और आर्यसमाजी मतोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ।

१ एकत्व, द्वैत व त्रैत— भारतमें अद्वैत और द्वैतके रूपमें दो तरहके वाद प्रचलित हैं। आर्यसमाजका सिद्धान्त त्रैतवादका है। वेदमें—

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः। (ईश. ७)
एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति। (ऋ. १।१६४।४६)

'जो एक सत् तत्वको सर्वत्र देखता है, उसे न कोई मोह होता है, न शोक होता है। वह सत्तत्व एक है, फिर भी उसे ज्ञानीजन अग्नि, वायु, इन्द्र आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं।" इस प्रकार एक ही सत्तत्वका वर्णन है। यह एक ही वस्तु अग्नि, वायु आदिके रूपमें हमें दिखाई देती है। ऐसे अनेक वचनोंसे वेदोंमें एकत्वका सिद्धान्त प्रतिपादित है, ऐसा मेरा विचार है। क्षर, अक्षर और पुरुषोत्तम ये उसी एक सद्वस्तुके तीन रूप हैं। जैसे शक्कर डली फूटनेके कारण 'क्षर', पर फूटने पर भी उसकी मधुरता नष्ट न होनेके कारण 'अक्षर' रूप दोनों मात्र एक ही स्थानपर दीखते हैं, इस कारण वह शक्करकी डली 'पुरुषोत्तम' है। इस पर विशेष विवेचन मैंने अपनी 'गीता-पुरुषार्थबोधिनी' में अनेक स्थलोंपर किया है। इस प्रकार वेदोंके 'एकत्व' के सिद्धान्तमें त्रैत है, द्वैत है और अद्वैत भी है। पर इस दृष्टिकोणको अपनानेके लिए आर्यसमाजी पण्डित तैय्यार नहीं होते। उनका कहना है कि 'ईश्वर, जीव और प्रकृति' के रूपमें तीन सनातन पदार्थ पृथक् पृथक् हैं।

त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्। (श्वे. उ.)

'प्रकृति, जीव और ईश्वर' ये तीनों पदार्थ जिस तत्वमें आकर एक हो जाते हैं, उस तत्वको ब्रह्म कहते हैं।' यह उपनिषद्का कथन है। उसी प्रकार—

सर्वं खलु इदं ब्रह्म। (छां. उप.)
अयं आत्मा ब्रह्म। (माण्डूक्य. उप.)

"यह सब अर्थात् प्रकृति–जीव–ईश्वर सभी ब्रह्म ही है। यह आत्मा भी ब्रह्म है।' ये उपनिषद्के वचन भी आर्यसमाजियोंको मान्य नहीं। पर मैं यह सब मानता हूँ मेरे और आर्यसमाजके मतमें यह भेद है। आर्यसमाजका पहला नियम इस प्रकार है- "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।" इस नियममें भी विद्या और सभी जानने योग्य पदार्थोंका

आदि मूल एक ही परमेश्वर है, इस प्रकार एक ही तत्त्वका प्रतिपादन किया है। पर इसका अर्थ भी आर्यसमाजी कुछ विचित्र ही करते हैं। "

"२ श्राद्ध— आर्यसमाज मृतकोंके श्राद्धके सिद्धान्तको नहीं मानता। पर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अथर्ववेदके १८ वें काण्डमें श्राद्ध करनेका विधान है। 'यम और पितर' नामक पुस्तकमें मैंने अपना मत दिया है। उसका खण्डन करनेके लिए स्वतंत्र पुस्तक लिखकर 'सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा दिल्ली' ने हजार रुपये खर्च करके उसे प्रकाशित किया। पर वह खण्डन सयुक्तिक है, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। "

'ऐसे अनेक मतभेद हैं। इतना होनेपर भी मैं आर्यसमाजको हिन्दुओंके लिए अत्यन्त उपकारक संस्था मानता हूँ। आर्यसमाजके सिद्धान्तोंमें थोडासा परिवर्तन होकर उस संस्थाका प्रचार यदि भारतभरमें हो, तो सारी हिन्दु जाति बलवान् हो सकती है इसमें कोई शंका नहीं है। आजके युगमें ऋषि दयानन्द सरस्वती बहुत बडे महापुरुष हो गए हैं। उन्होंने हिन्दुसमाजके सारे दोषोंको खोज निकाला और उन्हें दूर करके इस समाजको बलवान् करनेके लिए मार्ग दिखाया। यह महर्षिका हिन्दुसमाजपर बहुत बडा उपकार है। "

पं. सातवलेकर जिस प्रकार आर्यसमाजके अग्रगण्योंमें गिने जाते थे, उसी प्रकार एक दूसरी संस्था और भी थी, जिसमें ये सोत्साह भाग लेते थे। वह संस्था थी हैदराबादमें थियॉसॉफिकल सोसायटीकी शाखा। 'माझे रामायण' के लेखक दत्तो अप्पाजी तुलजापुरकर लोकमान्य तिलकके परम भक्त थे। उनका सम्बन्ध थियॉसॉफिकल सोसायटीके साथ था, और उनके साथ रहनेके कारण पंडितजी भी इस संस्थामें आने जाने लगे। योगविद्यामें निपुण होनेके कारण पंडितजी थियॉसॉफिकल सोसायटीमें सलाहगारके रूपमें नियुक्त हो गए। तथापि तुलजापुरकर या पंडितजीने स्वयं को कभी थियॉसॉफिस्ट नहीं माना।

थियॉसॉफिको बिना किसी कारणके ही एक अर्वाचीन धर्मपंथ माना जाता है। यूनानी भाषामें इस शब्दका अर्थ आध्यात्मवाद या अध्यात्मज्ञान होता है। मीनार-पर चढकर मनुष्य जिस प्रकार चारों तरफके दृश्य देख सकता है उसी प्रकार थियॉसॉफिका ज्ञाता सभी विषयोंको हस्तामलकवत् देख सकता है। थियॉसॉफिका कहना है कि अदृश्य सृष्टिका अवलोकन या निरीक्षण करके जो अदृश्य सृष्टिशास्त्रका निर्माण होता है, वही वास्तवमें धर्म है। इस संसारमें जितने भी धर्म हैं, उन सबका मूलभूत सिद्धान्त एक ही है। थियॉसॉफिके दो महत्त्वपूर्ण और मूलभूत सिद्धान्त इस प्रकार हैं– सृष्टिके सब तरहके व्यवहार और परिवर्तनके पीछे एक सुदृढ और प्रभावशाली योजना है और सारी सृष्टि उसी योजनाके अनुसार आगे बढ रही है और जो श्रीकृष्ण आदि अतिमानव जीवन्मुक्त हो गए हैं, उनका शिष्य बनकर मनुष्य आज भी अपना उद्धार कर सकता है।

थियॉसॉफिकल सोसायटीकी स्थापना १८७५ में मैडम एच. पी. ब्लैवट्स्की और कर्नल ऑल्कॉटने की थी। संसारके सभी सभ्य और सुसंस्कृत देशोंमें इस संस्थाकी शाखायें हैं। विश्वबन्धुत्वकी भावनाका प्रसार करना, तत्वज्ञान और शास्त्रोंका तुलनात्मक अध्ययन करना, सृष्टि और मानवीय रहस्योंका संशोधन करना ये तीन मुख्य उद्देश्य इस संस्थाके हैं।

इसप्रकार आर्यसमाज और थियॉसॉफिकल सोसायटी इन दोनों संस्थाओंमें पंडितजीकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। इस विषयमें श्री पंडितजी स्वयं लिखते हैं—

"अपनी निश्चित योजनाके अनुसार १९०१ के प्रारम्भमें हैदराबाद आकर मैंने अपने चित्रकारीका व्यवसाय शुरु किया। पर यह वर्ष हैदराबादके लिए अच्छा नहीं था। अंग्रेज रेजिडेण्टसे मिल मिलाकर कुछ हिन्दु मुसलमान अमीर उमरावोंने निज़ामको राजगद्दीसे उतारनेका षड्यन्त्र रचा था। वे उसके छोटे लड़केको गद्दीपर बिठलाना चाहते थे। लॉर्ड कर्जनके पास इस प्रकारकी एक दरख्वास्त भी इन अमीर उमरावोंने भेजी थी। लॉर्ड कर्जन निज़ामसे वऱ्हाड प्रान्त लेना चाहता था, इसलिए निज़ामको खुश करनेकी दृष्टिसे उसने वह अरज़ी निज़ामको दिखा दी। यह देखते ही निज़ामने चक्र चलाकर उन सभी षड्यन्त्रकारियोंको पकड़ लिया और अपने रियासतसे निर्वासित कर दिया, इसका प्रभाव मेरे धन्धेपर भी पड़ा। इन अमीर उमरावोंसे मुझे जो चित्रकारीका काम मिलता था, वह सब बंद हो गया। सब वातावरण अस्थिर हो गया।"

"यहाँ आनेके बाद मैंने बड़े बड़े आदमियोंकी सम्मतिसे एक व्यायामशाला, एक लड़के लड़कियोंका स्कूल और एक व्याख्यान मण्डल स्थापित किया। श्री केशवराव कोरटकर वकील और वामनराव नाईकको मुझे काफी मदद मिली।"

"हमारे पास ऐसे सहायक थे, जो कहनेके साथ ही दस-दस हजार रुपये तक लाकर देते थे। (बादमें १९०९ सन्के दिसम्बरमें हुए हुए) जॅक्सन हत्याके मुकदमेके अनन्त कान्हेरे और (१९५५) में पूना सवारगेटके पास रहनेवाले सन्त स्वामी शिवानन्द हमारे ही अखाडेमें तैय्यार हुए थे।"

"हमारी व्यायामशालामें हैदराबाद, बंगाल, मध्यप्रान्त आदि प्रान्तोंसे क्रान्तिकारी आकर आश्रय लेते थे। 'युगान्तर' संगठनके सदस्य निर्भीक होकर हैदराबादमें रहते थे। एकबार तो १२०० क्रान्तिकारी हैदराबादमें आकर इकट्ठे हो गए थे। उस समय हैदराबादमें एक रुपयेमें ३२ सेर चावल मिलते थे, इसीलिए वहांके लोग सम्पन्न थे। इसी सस्ताईके कारण हैदराबादमें लोग भाग भागकर आते थे।"

"खास हैदराबादमें ही नवजवानोंका संघटन बहुत उत्तम था। विवेकवर्धिनीके अखाडेमें ३००-३५० जवान रोज खेलने आते थे। कुछ तरुण गोलाबारूद बनानेमें भी सिद्धहस्त थे। कुछ भी काम करना होता तो एक ही पुकार पर सौ सवासौ तरुण झट इकट्ठे हो जाते थे।"

*

" इसप्रकार यह विवेकवर्धिनी संस्था मानों देशभक्तोंका एक अतिथिगृह ही था। कालप्रवाहके अनुसार वह बढते बढते आज एक बडा कॉलेज बन गया है। आगे जाकर मेरे तीसरे भाई डॉ. सीतारामपंत इस कॉलेजके प्रिंसिपल और संचालक सूत्रधार हो गए।"

" व्याख्यानमंडलका काम जोरसे चालू था। मैंने हैदराबाद और निजामराज्यके बडे बडे गांवोंमें स्वदेशभक्ति परक व्याख्यानोंकी एक श्रृंखलासी शुरू कर दी। डॉ. अघोरनाथ चट्टोपाध्याय (भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडूके पिता) मेरी सभाओंके अध्यक्ष होते थे। मैं व्याख्याता होता था। और सभा बुलाना तथा अन्य कामोंकी योजना करना आदि सभी कामोंकी जिम्मेदारी केशवराव वकीलपर थी। श्री दत्तो अप्पाजी तुळजापुरकर वकील भी इन कामोंमें हिस्सा लेते थे।"

हैदराबाद आनेसे पहले पं. सातवलेकरजीने वैदिक ऋचाओंके अर्थसे युक्त एक लेख लोकमान्य तिलकके पास भेजा था। लोकमान्यने अपने पत्र "केसरी" के सम्पादकीयमें उसका समावेश किया था, इससे पंडितजीमें आत्मविश्वास पैदा हुआ। इसके साथ ही लोकमान्यके राजनैतिक क्रांति विषयक स्वावलम्बी और स्वाभिमानी रुखका भी पंडितजी पर बहुत प्रभाव पडा। इसीने पंडितजीको तिलकका अनुयायी बना दिया। हैदराबादमें पंडितजीको जो स्नेही और सहकारी मिले, वे भी लोकमान्यके अनुगामी होनेके कारण पंडितजी उनके साथ समरस हो गए। विक्टोरिया महारानीके राज्यारोहणका हीरक महोत्सव १८९७ सन्‌में प्लेग और अकालसे पीडित भारतीय प्रजापर जबर्दस्ती लादे जानेके कारण भारतीय प्रजा चिढी हुई बैठी थी। इसके अलावा प्लेगकी रोकथाम करनेके नामपर पूनामें रैंडसाहबने जो मनमाना किया, उसका प्रायश्चित्त करानेके लिए राज्याभिषेकके हीरक महोत्सवके दिन ही पूनामें चाफेकर बन्धुओंने पूनाके कलेक्टर रैंडको स्वर्ग भेज दिया। इन चाफेकर बन्धुओंमेंसे बालकृष्ण चाफेकर हैदराबाद जाकर अण्डरग्राउण्ड हो गए थे, उस समय हैदराबादमें उनकी देखरेख लोकमान्यके कथनानुसार केशवराव कोरटकर ही करते थे। हैदराबाद पहुंचनेपर यह बात पंडितजीके कानोंसे भी जा टकराई। चाफेकर बन्धु जैसे अनाचारियोंको केसरीके लेखोंके कारण उत्तेजना मिलती है, यह आरोप लगाकर १८९७ सन्‌में अंग्रेजोंने लोकमान्यपर राजद्रोहका मुकदमा चालू किया। वेदव्यासंगी तिलकके प्रति आदरयुक्त सहानुभूति रखनेवाले प्रो. मेक्समूलरसाहबकी स्वयंप्रेरित मध्यस्थीके कारण तिलकको हुई हुई सजामें छै महीने कम कर दिए गए थे, पर उसके साथ यह शर्त लगा दी गई थी कि यदि तिलक फिर राजद्रोह करेंगे, तो यह छै महीने की सजा उन्हें फिर भोगनी पडेगी। सजा भोगकर तिलकने फिर जो क्रांतिका प्रारंभ किया, वह और ज्यादा उत्तेजक साबित हुई। १९ वीं सदीके अन्तमें प्रारंभ हुए बोअरयुद्धमें "शत्रुओंके छलकपटकी लडाई" नामसे प्रकाशित होनेवाली कृष्णाजीपंत खाडिलकरकी लेखमाला तरुणोंके मनोंको बहुत प्रभावित कर

रही थी। योरोपीय राष्ट्रोंमेंसे रूस जैसे महान् राष्ट्रको जापान जैसा छोटा देश कड़ा कड़ा मुकाबला दे रहा था। इससे भारतीय तरुणोंके रोंगटे खड़े हो जाते थे। इसी समय तिलकने स्वराज्यकी चतुःसूत्री कल्पना लोगोंके सामने रखी।

डॉ. पट्टाभिसीतारमय्याने एक जगह लिखा है कि लोकमान्य लोगोंके सामने आधा ही बोलते थे और बाकीका आधा भाग जनता अपने आप समझ जाती थी। स्वराज्य, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षण यह चतुःसूत्री योजना थी। जो लोकमान्यने लोगोंके सामने रखी। उसमें परकीय सत्ता और पारतंत्र्यके प्रतिकारका उपाय तरुणोंने समझ लिया। हैदराबादमें भी पं. सातवलेकरजी और डॉ. अघोरनाथ चट्टोपाध्यायने स्वदेशीका प्रचार करना शुरु किया। पंडितजी लिखते हैं—

"हमारे स्वदेशी मालकी क्रांति इतनी प्रभावोत्पादक थी, कि हुजुर रामचंद्ररावके सुपुत्र जरीकी मूल्यवान् टोपियोंको फेंककर चार चार आनेकी सादी टोपियाँ पहनने लगे।"

"व्याख्यानोंकी यह श्रृंखला १९०४ से १९०६ तक चलती रही। पर रेजिडेंण्ट इन व्याख्यानोंसे बिगड गया और निजामसे कहकर डॉ. चट्टोपाध्याय, केशवराव वकील, मुळे और तुळजापुरकर इन चारोंको हद्दपार करानेका षड्यंत्र रचा। हममेंसे किसीपर भी निजाम सरकारका क्रोध नहीं था। पर रेजिडेण्टके आगे उसका कुछ भी नहीं चलता था। आखिरकार १९०५ सनूमें एक रात निजाम सरकारके रीडर हुजूर रामचंद्रराव मेरे पास आए और बोले कि- "निजामने आपको एक सन्देश देनेके लिए कहा है, वह यह कि आप यहां रहें और चित्रकारीसे धनार्जन करें। पर आप जो स्वदेशी विषयक व्याख्यान देते हैं, वह रेजिडेण्टको बिल्कुल पसन्द नहीं है। अतः उसका डण्डा हमेशा हमारे पीछे लगा रहता है, वह कहता है कि पं. सातवलेकरको निर्वासित कर दो। यदि आपने अपना व्याख्यान देना जारी ही रखा, तो पसन्द न होते हुए भी हमें आपको निर्वासित करना पडेगा। अतः यदि आप व्याख्यान देना बंद कर दें, तो बहुत उत्तम होगा।"

"यह सन्देश निजामने मेरे पास बिल्कुल व्यक्तिगत रूपसे भिजवाया था। उसपर मैंने उत्तर दिया कि- "हम तो स्वदेशपर व्याख्यान देते हैं। निजामकी प्रजाओंकी इसके कारण व्यापारवृद्धि होती है। इन व्याख्यानोंको देनेसे प्रजाका हित होता है, इसलिए हम देंगे ही। सरकारको जो करना हो, वह कर ले।"

"इस उत्तरको भेजनेके बाद हमें यह पूरी तरह निश्चय हो गया कि हम चारोंको हद्दपार होना ही पडेगा। हम चारोंमें इस बारेमें बातचीत हुई। उसमें यह निश्चय हुआ कि निजामकी आज्ञा होनेसे पहले ही मैं हैदराबाद छोड दूं। मेरे यहांसे चले जाने पर बाकी तीनोंपर यह आफत नहीं आएगी। उस निर्णयके अनुसार मैंने १९०७ में हैदराबाद छोड दिया। श्री तुळजापुरकर बम्बईमें आकर वकालत करने लगे। इस

कारण बाकीके दो हैदराबादमें रह सके। मेरे हैदराबाद छोड देनेके कारण हद्दपारीकी आज्ञा नहीं निकाली गई।

" भृगुपत्रिका " (जन्मपत्रिका) बनानेवाला उत्तर प्रदेशका एक पंडित उन दिनों हैदराबाद आया हुआ था। उसे २० रु. देकर श्री बालासाहेब पंत प्रतिनिधिकी और मेरी जन्मपत्रिका बनवाई गई। उसमें लिखा हुआ था कि श्री बालासाहेब यद्यपि द्वितीय पुत्र हैं, तथापि उनकी आयुके ४१ वें वर्षमें उन्हें राजगद्दी अवश्य मिलेगी। वह राजगद्दी उन्हें ४३ वें वर्षमें मिली। मेरी पत्रिकामें हर दस वर्षके बाद स्थान त्याग और कारावास लिखा था। उसी प्रकार मेरे जीवनकी घटनायें घटती भी गई। कुछ ठिकानोंके समयमें १-२ वर्षोंका अन्तर अवश्य पडा। "

" हैदराबाद राज्य क्रान्तिकारकोंके लिए बिल्कुल सुविधा जनक राज्य था। क्रान्तिकारी आकर वहां जितने चाहे, उतने दिन रहते थे, हथियार इकट्ठा करते थे, परेड करते थे, नये-नये षड्‌यंत्र रचते थे और मनचाहे प्रयोग किया करते थे। ऐसे क्रान्तिकारी हैदराबाद रियासतमें यथेष्ट कालतक रहते थे। आसपासके गांवोंमें कौन कितने दिन रह गया या रहा है, आदि बातोंका कुछ भी पता नहीं लगता था। उस समय इटली और जर्मनीसे भी हथियार हैदराबाद रियासतमें मंगाये जाते थे और वे हथियार जिनके लिए मंगाये जाते, उनके पास पहुंचा भी दिए जाते थे। १००-१५० मनुष्य गुप्त रूपसे रह सकें, इतनी सुविधा उस रियासतमें थी। आसपासके गांवोंमें पुरातन संस्कारसे युक्त मराठवाडाके कई अनुभवशील घराने थे। उनके अधीन हुआ हुआ मनुष्य जितना दिन चाहे उतने दिन आराममें रह सकता था। पूना, नासिक आदि जगहोंपर कार्यान्वित की गई षड्‌यंत्रकी योजनायें सर्वप्रथम हैदराबादमें ही तैय्यार हुई थीं। फिर वहांसे ये षड्‌यंत्रकारी विभिन्न स्थलोंपर गए।

" इन कामोंके साथ मेरा भी थोडा बहुत सम्बन्ध था। हमारा इन कामोंके साथ उसी प्रकारका सम्बन्ध था, जिस प्रकारका सम्बन्ध एक पीछे रहनेवाले रक्षकका आगेवालेसे होता है। कुछ बंगाली क्रांतिकारी हैदराबाद राज्यमें आकर रहने लग गए थे और कुछ दूसरे आतेजाते रहते थे। हैदराबाद रियासतके कुछ बडे बडे शहरोंको छोड दिया जाए, तो बाकीके छोटे गांव और पहाडी प्रदेश क्रान्तिकारियोंके लिए मनचाहा था। क्रान्तिकारी उसका फायदा भी भरपूर लेते थे। "

" तत्कालीन निजाम यदि किसी अंग्रेजसे मिलना चाहते, तो वे घडीके कांटेके समान एक एक सेकण्ड नियमित रहते। पर दूसरोंसे भेंट देना बडा मुश्किल हो जाता था। निजामकी रेल और स्टेशन भी स्वतंत्र थे। एक बार वे रेलगाडीमें कहीं जानेवाले थे। अतः उनकी गाडी तैय्यार हुई और वह स्टेशन पर २६ दिन तक खडी रही। निजामके साथ जानेवाले भी २६ दिन तक स्टेशन पर ही आरामकी नींद लेते रहे। इस गाडीके लिए रेल्वे कम्पनीको ६२००० रु. देने पडे। एक बार वार्षिक दरबार

लगना था। दरबारके लिए आमंत्रित गण ८ दिन तक दरबारमें ही रहे। नववें दिन निजामके दर्शन हुए। इसप्रकार अन्धाधुन्दीका व्यापार वहां चलता था। निजामके नाईको २०० रु. प्रति मास वेतन मिलता था। निजामकी दाढी मूंछ होनेके कारण उस नाईका काम नहीं के बराबर था। पर २०० रु. वेतन होने पर भी २-२ दिन तक खडे रहनेके कारण तंग आकर वह नौकरी छोडकर चलता बना। ऐसी ही स्थिति राज्यभरमें थी। इस स्थितिके कारण उस राज्यमें क्रान्तिकारी सुखसे रहते थे। ''

'' हम प्रायः काँग्रेसमें भी आया करते थे। श्री केशवराव वकील, वामनराव नाईक और मैं एक ही जगह रहते थे। केशवराव गोखलेपक्षके अनुयायी था, जिनका विचार था कि हम प्रयत्न करते रहें, और धीरे धीरे स्वराज्यकी प्राप्ति होती रहेगी। हम दोनों तिलकपक्षके थे, जो प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करके शीघ्रातिशीघ्र स्वराज्य हस्तगत करनेके पक्षपाती थे। सूरतके काँग्रेसमें मद्रासियोंको आगेका स्थान दिया गया था। वहां श्री अरविन्द घोष, तिलक आदि सभायें किया करते थे। दादा-साहब खापर्डे कॉंग्रेस अधिवेशनके एक मास पहले ही सूरत चले गए थे और वहां जाकर उन्होंने गुजराती सीखकर उस भाषामें अनेक भाषण दिए और इस प्रकार उन्होंने लोगोंको तिलक मतके अनुकूल बनाया। ''

'' मद्रासी होनेके कारण हमें मुख्य मण्डपमें सबसे पहिली पंक्तिमें बैठनेके लिए कुर्सियां दी गईं। लो. तिलक अध्यक्षके प्रस्तावका विरोध करनेवाले थे, इसलिए वे शीघ्र ही मंच पर जा सकें, इस वजहसे वे हमारी पंक्तिमें ही बैठ गए। अध्यक्षीय भाषणके समाप्त होनेके दूसरे ही क्षण मंच पर जाकर उन्होंने उस प्रस्तावका विरोध किया। इस प्रकार उस अधिवेशनमें खलबली मच गई। जूतोंकी बरसात होने लगी और थोडा लाठीका भी प्रसाद हमें मिला। ''

'' दूसरे दिन सिर्फ गोखले पक्षवालोंकी ही सभा हुई। उस सभामें केशवराव वकील गए। पर चूंकि वे पहलेवाले दिन हमारी पंक्तिमें बैठे हुए थे, इसलिए उन्हें गोखल पक्षके लोगोंने समझा कि ये भी तिलक पक्षके हैं, इसलिए उन लोगोंने उन्हें सभामें घुसने नहीं दिया। और हमारे लिए तो उस सभामें घुसना संभव ही नहीं था। उस समय मैं तिलक दलका अनुयायी था और हैदराबादमें तिलकके कार्यक्रम चलाया करता था। इसी कारण हद्‌पारीके संकटका सामना मुझे करना पडा था। ''

'' हैदराबादसे निकलकर हरिद्वारके गुरुकुल कांगडीमें स्थायीरूपसे रहनेका मैंने निश्चय किया और मैं हैदराबादसे चल पडा। पर बीचमें ही जयपुर महाराजाकी ओरसे चित्र रंगनेका काम मुझे मिल गया, इसलिए ५-६ महीने जयपुरमें मुझे रहना पडा। वहां चित्रकारीके दूसरे भी कुछ काम किए और उसके बाद गुरुकुलमें ही रहनेका निश्चय कर लिया। इस उद्देश्यसे मैंने जानेकी तैय्यारी भी कर ली। वहां रहते हुए एक सरदारसे मेरा अच्छा परिचय हो गया था। उसने मुझे भोजन पर बुलाया। ''

" १०॥ बजे भोजनका समय था। ठीक समयपर सरदार की गाडी आई और मैं उसकी गाडीसे उसके निवासस्थान पर गया। पांच दालान पार करके मैं छठे दालानमें गया, जहां सरदार एक पन्द्रह फुट कमरेके दरवाजेपर एक कुर्सीपर नंगी तलवार हाथमें लेकर मेरी प्रतीक्षा करते हुए बैठे थे। मेरे पहुंचते ही उन्होंने एक सरदारी बांका सलाम किया और भोजनके कमरेमें जानेके लिए मुझसे कहा। "

" इस कमरेमें एक उत्तम चौकीपर रखी हुई एक चांदीकी थालीमें २–३ सेर भातका ढेर रखा हुआ था। बैठने और टेकनेके लिए उत्तम पटले थे। बैठनेवाले पटलेपर उत्तम आसन बिछाया गया था, पास ही पीनेके पानीका लोटा और गिलास सभी चांदीके थे। इस चौकीके तीनों ओर करीब ३०–४० चांदीकी कटोरियां रखी हुई थीं, किसीमें शाग, किसीमें मुरब्बा, किसीमें अचार, किसीमें रायता, किसीमें चटनी, किसीमें भाजी, किसीमें अनेक तरहकी मिठाईयां थीं। इनके अलावा और भी जो कुछ शाकाहारी पदार्थ हो सकते थे, वे सब इन कटोरियोंमें थे। प्रत्येक कटोरीमें प्रत्येक पदार्थ करीब २० तोला था। ४–५ सेवक दीवारके पास खडे हुए थे। जो चाहिए उसे चमचेसे उठाकर थालीमें रखनेके लिए वे तैनात थे, क्योंकि खानेवालेका हाथ १२ फुट तक पहुंच नहीं सकता था। "

" इसप्रकार भोजन करनेकी हमारी कभी आदत नहीं थी। हम तो हमेशासे यही देखते आए हैं कि अतिथि और यजमान सब एक ही पंक्तिमें अथवा भिन्न पंक्तिमें बैठकर घरमें बने पदार्थोंको खाते हैं। पर यहां तो थालीमें २–३ सेर भातका ढेर, भिन्न भिन्न पदार्थोंसे भरी हुई ३०–४० कटोरियां, नंगी तलवार लेकर सरदार साहबका बैठना, सभी कुछ अजीब। मनमें शंका हुई कि कहीं ये सरदार मेरी बलि तो नहीं लेना चाहते। यदि कहीं खुदा न खास्ता ये मेरी बलि लेनेपर उतारु भी हो गए, तो मैं कितना भी चिल्लाऊं, इन ६ दालानोंको फोडकर मेरी आवाज बाहर जाएगी भी किस तरह ? और मेरी आवाज सुनेगा भी कौन ? पर मैं ऐसी स्थितिमें कर भी क्या सकता था ?

" विचार करनेके लिए मुझे थोडा समय मिल जाए इस लिए मैंने हाथ पैर धोनेका बहाना बनाया और सरदारजीसे गुसलखानेका रास्ता पूछा। पर वहीं तो सरदारकी आज्ञासे पानी, लोटा और तौलिया सभी कुछ वहीं हाजिर कर दिए गए। इस प्रकार अपनी इस नाजुक परिस्थिति पर विचार करनेका भी अवसर न मिल पाया। अतः उसीतरह हाथ पैर धोकर मैं भोजनके पटले पर बैठ गया। "

" इतने बडे भातके ढेरको जूठा करनेका साहस मुझे नहीं हुआ। अतः दो तीन मिनट विचार करके एक थाली मंगवाई। उसमें मैंने थोडा सा भात निकालकर अलग रखनेका प्रयत्न किया। इतनेमें ही सामने खडे हुए सेवकोंमेंसे एक बोला– 'पंडितजी! आप हमारे पेट पर लात क्यों मार रहे हैं।' यह सुनते ही मैंने समझ

लिया कि जूठा अन्न इन सेवकोंको मिलता है। अतः मैंने अलग भात न निकालकर उसीमेंसे जितना खाया जा सका खालिया और बचा हुआ अन्न उन सेवकोंने आपसमें बांट लिया। "

" इस भोजन पर सरदारने सौ रुपये तो खर्च किए ही होंगे। इस प्रकार भोजन करनेकी परिस्थिति किसीके भी सामने न आई होगी। "

" जयपुरकी ही एक दूसरी भी घटना है। वहां सम्राट्‌जी नामक एक महाराष्ट्रीय विद्वान् थे। ३०० वर्ष पूर्व जयपुरके महाराजाने अश्वमेध यज्ञ किया था, उसमें सम्राट्-जीके पुरखे मुख्य अध्वर्युके रूपमें महाराजाके द्वारा निमंत्रित होकर आए थे, और तबसे वे राज्यके ही होकर रह गए। उन्होंने मुझे भोजन पर बुलाया। १०॥ का समय दिया। जयपुरमें एक महाराष्ट्र क्लब था। उसके सदस्य भी आनेवाले थे, इसलिए १० के करीब मैं क्लबमें जा पहुंचा। मेरे पहुंचने पर वे बोले कि आज दोपहर और रात्रीका भोजन कर लीजिए, फिर रात १०॥ बजे हम यहांसे चलें। मैंने उसी प्रकार किया। हम सब रातके ११॥ बजे सम्राट्‌जीके घर गए। उसवक्त उनके घरमें भोजन बन रहा था। सब आमंत्रित भी अभी नहीं आ पाए थे। उन सबके आते आते सुबहके ३॥ बज गए। तब हम सब भोजन करने बैठे और खा पीकर घर लौटनेमें ५॥ बज गए। हमारी उपस्थितिमें सम्राट्‌जी अपनी स्त्रियोंसे कहने लगे कि— " आज महाराष्ट्रकी मंडली आई है, इसलिए तुम सब मराठीमें ही बोलो। " वे मराठी भूल गए थे, पर उनके घरकी स्त्रियां मराठीमें ही बोलें, यह उनकी अभिलाषा थी। "

" मैं १९११ की शुरुआतमें हैदराबाद गया। वहां जाते ही मेरा परिचय केशवराव वकीलसे हो गया। और शीघ्र ही मैं वहांके आर्यसमाजमें आने जाने लगा। मुझे संस्कृत आती थी। षड्दर्शन, स्मृति, गीता, वेद, उपनिषद् आदि ग्रंथोंके अध्ययनके कारण पंडितके रूपमें मुझे प्रतिष्ठा प्राप्त होनेमें कोई अड़चन नही पड़ी। आर्यसमाजमें मेरे धार्मिकप्रवचन होने लगे। ' वैदिक धर्म अत्युत्तम है, उस धर्ममें सामाजिक, राजकीय और आध्यात्मिक उन्नतिके उत्तम उत्तम उपदेश मिलते हैं, स्व. दयानन्द सरस्वतीके इस कथनका मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा और यहां आर्यसमाजी वाङ्मयका मेरा अध्ययन नियमित रूपसे चलने लगा। मुझे पूरी तरह निश्चय हो गया कि वैदिक धर्म पूर्ण मानव धर्म है। अतः वैदिक धर्म पर मैंने व्याख्यान देने शुरु किए। इन प्रवचनोंके कारण मुझे पूरी रियासतमें घूमनेका भी अवसर मिला। '

" हैदराबादमें थियॉसाफिकल सोसायटी भी थी। श्री नारायण स्वामी जैसे मंजे हुए वक्ता इस सोसायटीकी तरफसे व्याख्यान देते थे, मैं भी उनके व्याख्यान सुनने जाता था। वे शास्त्रीय प्रमाणोंके आधार पर हिन्दुधर्मके आचार विचारों का समर्थन

करते थे। वे मुझे बहुत पसन्द आए, इसलिए मैं थियॉसॉफीका भी सदस्य बन गया। मैं आर्यसमाज और थियॉसाफी इन दोनों संस्थाओंकी पुस्तकें पढता था, इस लिए दोनों ही विचारधाराओंका मेरे मन पर अच्छा प्रभाव पडा।"

"आर्यसमाज और थियॉसाफी इन दोनों संस्थाओंके अनुयायी एक दूसरेको पसन्द नहीं करते थे। पर इन दोनों ही संस्थाओंके ग्रंथोंके अध्ययनसे मुझे बडा लाभ हुआ, यह बात मैं कभी नहीं भूल सकता। पर इसकारण आर्यसमाजमें मेरे बारेमें अनेक गलतफहमियां पैदा हो गईं, यह गलतफहमियां इस हदतक पहुंच गईं कि आर्यसमाजकी अन्तरंग सभामें एक ऐसा प्रस्ताव आया जिसमें यह माग की गई थी कि आर्यसमाजके सदस्योंकी सूचीमेंसे पं. सातवलेकरका नाम काट दिया जाए। केदारावने बहुत कोशिश की कि यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो। उसमें वे सफल भी हुए। तथापि कई सदस्योंके मनमें बहुत दिनों तक मेरे बारेमें शंका बनी ही रही। बादमें जाकर मेरे धर्म विषयक व्याख्यानोंके कारण ये सभी शंकायें दूर होती गईं और एक समय वह आया जब कि मैं आर्यसमाजका एक प्रमुख पंडित माना जाने लगा।"

"वामनराव नाईकके भाईने रायचूरमें सोमयज्ञ किया। वहां मैं भी गया। उस यज्ञमें तीन बकरोंकी बलि दी गई। इस कारण वहीं पर 'यज्ञोंमें पशुवध इष्ट या अनिष्ट' पर वादविवाद छिड गया। आर्यसमाजकी तरफसे निर्मांस यज्ञका समर्थक मैं था। समांस यज्ञके समर्थक कुछ सनातनी पंडित थे। व्याख्यानों और अखबारोंमें छपनेवाले लेखोंके कारण इस शास्त्रार्थको एक बडे भारी वाक्युद्धका स्वरूप प्राप्त हो गया। आर्यसमाजने उत्तर भारतसे पंडित बुलाये और दूसरी तरफ सनातनियोंने भी पंडितोंको इकट्ठा किया। सभामें ५–५ हजारकी भीड इकट्ठी होती थी। अन्तमें जनताको यह विश्वास हो गया कि निर्मांसवादी पक्ष ही बलवान् है।"

"आगे चलकर शास्त्रार्थोंकी ये सभायें बहुत बडी बडी होने लगीं और उन सभाओंमें जब मारने पीटनेके लक्षण दिखाई देने लगे, तब पोलिसने ऐसी सभाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसकारण अन्तमें शास्त्रार्थ न हो सका। पर जनता पर निर्मांसवादी अर्थात् आर्यसमाजी पक्षका जो प्रभाव पडा, वह स्थायी हो गया। जनता निर्मांस पक्षके ही अनुकूल थी।"

"इसके बाद जब शास्त्रार्थ नहीं हो पाया, तो मैंने 'वैदिक यज्ञसंस्था' नामकी हिन्दीमें तीन पुस्तकें निकालीं।"

"इन्हीं दिनों मेरे कुछ लेख ज्ञान प्रकाशमें छपे। उनका विषय जातिव्यवस्था, वर्णव्यवस्था और अस्पृश्यता निवारण था। इन व्यवस्थाओंमें कितनी प्रगति हो सकती है, यह बात मैंने धर्मग्रंथोंके आधार पर विशद की थी। यह लेख श्री सयाजीराव महाराजकी नजरोंमें भी पडा। और ज्ञान प्रकाशके सम्पादकके मार्फत उनका एक पत्र मेरे पास आया, जिसमें उन्होंने मुझे इस विषय पर एक विस्तृत ग्रंथ लिखनेको

लिखा था। इस प्रेरणासे मैंने 'स्पर्शास्पर्श' ग्रंथ लिखा। उसके लिए पारितोषिक रूपमें बड़ौदा सरकारकी तरफसे मुझे ५०० रु. मिले और वह ग्रंथ प्रसिद्ध भी हो गया। आगे चलकर उसका हिंदी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ।"

"इसके बाद श्री सयाजीरावने आर्यसमाजके ग्रंथोंका मराठीमें अनुवाद करनेका काम मुझे दिया। 'सत्यार्थ प्रकाश' 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' तथा 'योग-तत्त्वादर्श' इन तीन पुस्तकोंका मराठीमें अनुवाद किया। उनका प्रकाशन बम्बईके श्यामराव कृष्ण मण्डलने किया। इसके बाद उसकी अनेक आवृत्तियां भी छपीं। इसके लिए सयाजीरावकी तरफसे द्रव्य सहायता भी प्राप्त हुई।"

"हैदराबादमें रहनेके लिए हमने एक नवाबका घर भाडे पर लिया था। वह भूतिया घरके रूपमें लोगोंमें प्रसिद्ध था। उस घरमें रात्रीके समय भूत नाचते हैं और दूसरी मंजिल परकी अलमारियां और मेजें नीचे फेंकी जातीं हैं, यह लोगोंकी समझ थी। इसलिए १५ वर्षोंसे कोई भी उस घरमें नहीं रहता था। अंदर जंगल बढ गया था। १०–१२ वर्षोंसे दरवाजा खुला नहीं था। अतः उस घरके लिए हम नवाबसे मिलने गए। तब उसने भी हमसे यही कहा कि तुम इस घरमें न रहो। पर मैंने कहा कि मैं गायत्री मंत्रका जप करता हूँ, मेरे पास मंत्रसामर्थ्य है, अतः भूत मेरा कुछ नहीं बिगाड सकता। आखिरकार वह घर २० रु. प्रतिमासके भाडेसे हमें मिल गया। उस घरका पहला दरवाजा इतना बडा था, कि हाथी पर बैठकर उस-मेंसे निकला जा सकता था। बढइयोंको बुला कर उसे खुलवाया। अन्दरकी गन्दगी, जंगल आदिको निकालने और साफसूफ करके पुतवानेमें ही ६०० रु. उठ गए। १५ दिनके परिश्रमके बाद हम उस घरमें रहने गए। वह घर क्या था एक महल ही था। हजार बारह सौ लोग इकट्ठे हो सकें ऐसे बडे बडे कमरे उस घरमें थे। करीब करीब ३० कमरे थे। उस घरके लिए ५०० रु. प्रतिमास भी थोडे ही होते। पर भूतकी कृपासे वही घर हमें २० रु भाडे पर मिलगया। हम तीन परिवार उसमें रहते थे। गलीचा बनानेका कारखाना भी उसमें था। हैदराबादमें रहनेतक वह घर हमारे कब्जेमें था। पर उस निवास कालमें एक भी दिन भूतने हमें कष्ट नहीं दिया। बच्चे, स्त्रियां, अतिथि आदि सब आते और यहां रहते थे। हमारा इस घरमें रहना अत्यन्त आनन्द और उत्कर्षका रहा।"

"या तो उस घरमें भूत ही नहीं थे, अथवा उन दिनों मैं गायत्रीका जप विशेष करता था, कारण कुछ भी हो, बहरहाल यह कि उस घरमें रहते हुए हमें भूतका जरा भी कष्ट नहीं हुआ।"

"तेरह वर्षोंके दीर्घकालतक वह घर हमारे कब्जेमें रहा। मेरे चले जानेके बाद भी मेरे मित्र वहां रहे। तेरह वर्ष बीत जानेपर उस नवाबको भी निश्चय हो गया कि अब उस घरमें रहना आपत्तिकारक नहीं है। इसलिए वह स्वयं उस घरमें आकर रहने लग गया। इसप्रकार वह भूतका घर हमारे रहनेसे पवित्र बन गया।"

×

उन दिनों सभी जगह भारतीय स्वातंत्र्यक्रान्तिका वातावरण फैल रहा था। चारों ओर देशभक्तिकी ज्वालायें भडक रही थीं। उसी यज्ञाग्निमें पंडितजीने भी अपने व्याख्यानों एवं लेखोंसे आहुतियां देनी प्रारंभ कीं। प्रथम उन्होंने कोल्हापुरके "विश्ववृत्त" में तदनन्तर स्वतंत्र पुस्तकके रूपमें "वैदिक राष्ट्रगीत" प्रकाशित करवाया। उसी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद इलाहाबादसे प्रकाशित हुआ। पर जिस प्रकार एक बाघ अपने शिकारपर झपट्टा मार कर उसे धर दबोचता है, उसी प्रकार अंग्रेज सरकारने झपट्टा मार कर उस पुस्तक की सारी प्रतियां जब्त करके जला दीं। उस "वैदिक राष्ट्रगीत" पुस्तकके भाव इस प्रकार थे।

वैदिक-राष्ट्रगीत

किसी भी राष्ट्र अथवा जातिकी राष्ट्रीय आकांक्षा यदि देखनी हो, तो उस राष्ट्रके "राष्ट्रगीत" को देखना चाहिए। राष्ट्रगीत उस राष्ट्रकी प्रजाकी राष्ट्रीय आकांक्षाका द्योतक होता है। इस प्रकारका यह 'वैदिक राष्ट्रगीत' अथर्ववेदके १२वें काण्डका पहला सूक्त है। इस सूक्तका विनियोग सूत्रकारोंने इस प्रकार बताया है—

ग्रामपत्तनादिरक्षणार्थम् (कौ. ५।२)
पार्थिवी भूमिकामस्य (न. कल्प १७)
पार्थिव्यां महाशान्तौ अस्य सूक्तस्य विनियोगः पुष्टिकामः (३३)
पुत्रधनादिसर्वफलप्राप्त्यर्थं (३८-५०)
व्रीहियवाद्यकामः (४२)
मणि-हिरण्यकामः (४४-४५) (कौ. ३७)

इस सूक्तमें कुल ६३ मन्त्र हैं। उनमेंसे विभिन्न मंत्र विभिन्न समयमें कहे जाने योग्य हैं। कुछ मंत्र ग्राम, पत्तन, नगर, राष्ट्रके संरक्षणके समय बोले जानेवाले हैं। कुछ मंत्र पृथ्वी पर शान्ति स्थापनाके हैं अर्थात् जिस समय राष्ट्रमें अराजकता फैल जाए, उस समय राष्ट्रमें शांति स्थापनाके लिए ये मंत्र बोले जायें। कुछ मंत्र पुष्टि, धन, अन्न और पुत्र आदियोंकी प्राप्तिके लिए बोले जाएं, इस प्रकार इस राष्ट्रगीतका वर्गीकरण किया है।

यह एक ही राष्ट्रगीत है, यह बात सत्य है, पर यह पूर्ण राष्ट्रगीत एक ही समय बोलनेके लिए नहीं है, अपितु समय और आवश्यकताके अनुसार उन उन विशिष्ट मंत्रोंको बोलना चाहिए। यह व्यवस्था कौशीतकी सूत्रके पहलेसे चली आई है, उसी व्यवस्थाको इस सूत्रकारने सूत्रबद्ध किया है।

मुख्य करके 'ग्रामपत्तनादिकी रक्षाके लिए' इस राष्ट्रगीतको बोलना चाहिए। ग्रामपत्तनादिमें ही राष्ट्ररक्षणका अन्तर्भाव हो गया है। हम आज जो राष्ट्रगीत गाते हैं, उसे ग्राम, पत्तन, नगर और राष्ट्रकी रक्षाके समय ही न गाकर किसी भी

उत्सवके आखिरमें गाते हैं। पर अमुक मंत्र अमुक अवसर पर ही बोला जाए, यह जो विनियोग सूत्रकारोंने किया है, वह महत्त्वका है। यह व्यवस्था मंत्रके अर्थके अनुसार है। जिस समय संस्कृतभाषा प्रचारमें थी, उस समय कौनसा मंत्र किस समय बोला जाए, यह सब लोगोंको ज्ञात था।

इस रूपमें यह राष्ट्रगीत वैदिककालमें प्रचलित था। उसी गीतका विचार आज हमें करना है। आजका राष्ट्रगीत चारपांच मिनिटमें गाकर समाप्त कर देते हैं। पर वैदिक राष्ट्रगीत ६३ मन्त्रोंका है। कुछ लोगोंका यह आक्षेप है कि वैदिक राष्ट्रगीत बहुत लम्बा होनेके कारण इसे राष्ट्रगीत नहीं कहा जा सकता। इस आक्षेपका निरसन सूत्रकारने मंत्रोंको विभिन्न वर्गोंके अन्तर्गत समाविष्ट करके कर दिया है। यदि इस बातको ध्यानमें रखा जाए, तो इसकी लम्बाईका आक्षेप दूर हो सकता है।

अब इस सूक्तका अथर्ववेदमें स्थान क्या है, इसे देखेंगे—

अथर्ववेद १० वां काण्ड, सूक्त (१) कृत्यानाशन, (२) केन सूक्त (ब्रह्मविद्या); (३-६) शत्रुनाशन, विजय प्राप्ति, मणिधारण, (७-८) ज्येष्ठ ब्रह्म, (९-१०) गौ रक्षण।

अथर्ववेद ११ वां काण्ड, सूक्त (१) ब्रह्मौदन (अन्न) (२) रुद्रसूक्त युद्ध-देवता वर्णन, (३) ओदन (अन्न), (४) प्राण, (५) ब्रह्मचर्य, (६) कालचक्र, (७-८) ब्रह्म वर्णन (९-१०) युद्ध, शत्रुनाशन।

अथर्ववेद १२ वां काण्ड (१) मातृभूमिसूक्त (राष्ट्रगीत)

इस सूक्तका क्रम देखने योग्य है। ब्रह्मविद्या, प्राणविद्या, ब्रह्मचर्य, कालचक्र आदिके वर्णनोंमें अन्न और युद्धसूक्त हैं और युद्धसूक्तके बाद ही यह मातृभूमिसूक्त अर्थात् राष्ट्रगीत आया है। इन सूक्तोंके क्रमसे यह ज्ञात होता है कि यदि युद्ध करना आवश्यक हो ही जाए, तो युद्धका कार्यक्रम ब्रह्मविद्या को जाननेवाले ही निश्चित करें। युद्धपिपासु लोग निश्चित न करें। ब्रह्मविद्याके कारण पवित्र, शांत और समवृत्तिवाले मनके द्वारा ही वह निश्चित किया जाए। ब्रह्मविद्याके सूक्तोंमें युद्धसूक्त फिर राष्ट्रगीत इस प्रकार रचना करनेमें संभवतः यही हेतु रहा होगा।

आज युद्धको निश्चित करनेवालोंसे अध्यात्मविद्या कोसों दूर रहती है। इसलिए युद्धपर युद्ध होते जाते हैं। अतः यदि इस समय राष्ट्रके सभी नौजवानोंका अध्यात्मविद्यासे परिचय कराया जाए, और ब्रह्मविद्यासे उन नवयुवकोंके मन पवित्र हो जाएं, तो युद्धका अनर्थ टल सकता है और बहुत अंशमें कम हो सकता है। अब हम इस राष्ट्रगीतपर विचार करें—

मातृभूमिकी कल्पना

इस सूक्तके अनेक मंत्रोंमें मातृभूमिकी स्पष्ट कल्पना है—

(१) माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः (अथर्व. १२।१।१२)

(२) भूमे मातः निधेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठम् (अथर्व. १२।१।६३)

(३) सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः (अथर्व. १२।१।१०)

(४) मातरं भूमिं धर्मणा धृताम् (अथर्व. १२।१।१७)

(१) भूमि मेरी माता है और मैं उस मातृभूमिका पुत्र हूँ।

(२) हे मातृभूमे ! हमें उत्तम रीतिसे सुरक्षित और कल्याणकारक परिस्थितिमें रख।

(३) वह हमारी मातृभूमि पुत्ररूपी मुझे दूध आदि पेय देवे।

(४) हमारी मातृभूमिका धारण धर्मसे होता है।

इन वचनोंमें "मातृभूमि" की कल्पना बिलकुल स्पष्ट शब्दोंमें वर्णित है। यह भूमि अनेकोंकी माता है, यह दिखानेके लिए—

(१) सा नः माता भूमिः।

(२) पुत्राय मे पयः विसृजतां

(१) वह हमारी मातृभूमि (२) मेरे जैसे एक एक पुत्रको दूध आदि पेय प्रदान करे। 'हमारी मातृभूमि' यह शब्द प्रयोग राष्ट्रके सभी व्यक्तियोंके लिए है। ऐसे प्रयोग इस राष्ट्रगानके अनेक मंत्रोंमें आए हैं—

नः पृथिवी (मं. १–३.५,३६)

नोः भूमिः (मं. ३–४, ६, ८–९, १३, १८, २२, ३२, ३४, ४०–४१ आदि)

इस वचनका अर्थ यह है कि यह मातृभूमि हम सबका है। यह अर्थ यहां सामुदायिक और संगठनात्मक एकताके भावका द्योतक है। यही भाव राष्ट्रीय एकताका पोषक है। 'मेरा भारत' कहनेके बजाय 'हमारा भारत' कहनेमें राष्ट्रीय एकताका जो भाव है, वही भाव "नः माता भूमिः" इस वचनमें है। माताकी उत्तम प्रकारसे रक्षा करना उसके पुत्रका कर्तव्य ही है। कुपुत्र भले ही अपनी माताकी रक्षा न करे, पर जो सुपुत्र होगा, वह सर्वस्व देकर भी माताकी रक्षा करेगा और अपनी माताकी प्रतिष्ठा सुरक्षित रखेगा, इसमें तिलमात्र भी संशय नहीं।

मातृभूमिकी सेवा

मातृभूमिकी सेवा करनेका आदेश राष्ट्रगीतमें है। वह मंत्र इस प्रकार है—

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे (अथ. १२।१।८)

' जो हमारी मातृभूमि एक समय महासागरके पानीमें डूबी हुई थी, मननशील

लोग अपनी कुशलतापूर्ण राजनीतिसे जिस मातृभूमिकी सेवा करते आए हैं, वह हमारी मातृभूमि हमारे उत्तम राष्ट्रमें तेज और बल बढावे।"

इस मंत्रमें "**मनीषिणः यां मायाभिः अन्वचरन्**" (मननशील लोग जिस मातृभूमिकी अपनी उत्तम उत्तम योजनाओंसे सेवा करते हैं) यह वाक्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

'माया' शब्दके दो अर्थ हैं- १) कुशलता, कार्य करनेमें प्रवीणता, चातुर्य, (२) कपट, छल, राजनैतिक कुशलता, दांवपेच, शत्रुको हरानेकी नीति। ये दोनों प्रकारके भाव यहां अभीष्ट हैं।

शत्रुका नाश, जहांतक हो सके, सरल उपायोंसे ही किया जाए, पर यदि सरल उपायोंसे न हो सके, तो कपटपूर्ण राजनीतिका आसरा लिया जाए। पर किसी भी प्रकार शत्रुका नाश किया ही जाए, यही एक मुख्य उद्देश्य यहांपर है।

भगवान् रामचन्द्रके लिए देशोद्धारकी दृष्टिसे रावणको मारना आवश्यक हो गया। रावणकी शक्ति क्षीण करनेके लिए वालीका वध भी आवश्यक ही था। पर वह वाली एक बहुत बडी सेनाका स्वामी था, अतः उसे मारना सरल नहीं था, इसलिए वृक्षके पीछे छिपकर रामने वालीको मारा। इसी प्रकार भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि शत्रु वीरोंका नाश पाण्डवोंने कपटसे ही किया। ये सभी उपाय इस सूक्तके 'माया' शब्दके अन्तर्गत आते हैं।

मातृभूमिका धारण

किन गुणोंसे मातृभूमिका उद्धार और कौनसे दुर्गुणोंसे मातृभूमिकी अवनति होती है, उसका विवरण इस सूक्तके प्रथम मंत्रमें ऋषिने दिया है—

> सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षातपो ब्रह्मयज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
> सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥
> (अथर्व. १२।१।१)

"सत्य, ऋत, उग्रत्व, दाक्षिण्य, तप, ब्रह्म और यज्ञ ये गुण मातृभूमिको धारण करते हैं। यह हमारी मातृभूमि भूत और भविष्यका आधार है। यह हमें अपने देशमें विस्तृत कार्यक्षेत्र प्रदान करे।"

जिन सद्गुणोंसे अपने मातृभूमिकी उन्नति हो सकती है, उनको इस प्रथम मंत्रमें क्रमसे गिनाया है। उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) सत्यं— राष्ट्रके प्रत्येक नागरिकके आचारविचारोंमें सत्यता हो।

(२) बृहत् ऋत— सरलता, सरल स्वभाव, सरल व्यवहार।

(३) उग्रं— उग्रता, वीरता, शौर्य, धैर्य, शत्रुओंसे युद्ध करनेका सामर्थ्य।

(४) दीक्षा— चतुरता, सावधानता, निर्दोष कार्य करनेकी शक्ति, कर्तव्यमें दीनता न लाना।

(५) तप— सत्कार्य करते हुए शीतोष्ण, सुखदुःखादि द्वन्द्वोंको सहना, हानि-लाभ सहना।

(६) ब्रह्म— ज्ञान प्राप्त करना, ज्ञान और विज्ञानकी दृष्टिसे राष्ट्रको उन्नत बनाना।

(७) यज्ञ— यज्ञ करना, यज्ञीय जीवन बनाना। यज्ञमें तीन मुख्य कर्तव्य होते हैं— (पूजा) श्रेष्ठोंका सत्कार (संगतिकरण) परस्पर संगठना, (दान) दीनोंकी दीनता दूर करनेके लिए दान देना। इस प्रकार "सत्कार-संगति-दानात्मक" यज्ञ होता है। प्रत्येक यज्ञमें ये तीन कार्य सिद्ध होने ही चाहिए। बडोंका सत्कार और आपसकी संघटना ये दोनों बातें आसानीसे समझने लायक हैं। दीनताको दूर करनेके लिए दान किस प्रकारका दिया जावे, यह समझना आवश्यक है। अज्ञानता के कारण उत्पन्न हुई दीनताको ज्ञान देकर, निर्बलताके कारण उत्पन्न हुई दीनताको बल देकर और गरीबीके कारण उत्पन्न हुई दीनताको धन देकर दूर करना ही सच्चा दान है। कर्ममें अकुशलताको कुशलता प्रदान करके दीनता दूर करनी चाहिए। इस प्रकार दानके अनेक प्रकार हो सकते हैं।

आजकी यज्ञ विधिमें हवनादि कर्म ही मुख्य माने जाते हैं। पर यज्ञके वास्तविक उद्देशसे सभी अनभिज्ञ हैं, यही दुर्भाग्य है।

इस दृष्टिसे विचार करनेपर आसानीसे यह बात समझमें आ जाएगी, कि उपर्युक्त सात गुण राष्ट्रकी सुरक्षाके लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। सत्य, सरलता, वीरता, दक्षता, ज्ञान, विज्ञान और यज्ञरूप जीवन ये सभी गुण राष्ट्रके नागरिकोंमें बढ़ें, इसकी व्यवस्था राष्ट्रमें होनी चाहिए। यही राष्ट्रीय शिक्षण है। जिस शिक्षासे व्यक्तियोंमें ये राष्ट्रीय गुण उन्नत होते हैं, वही सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा है।

: ८ :

यल्लिखितं तदाचरितम्

हैदराबादमें इतनी झंझटोंके होने पर भी कभी भी दैन्य व निराशाकी छाया अपने चेहरे पर न लानेवाले पंडितजी एक सच्चे वैदिक हैं। यदि यह कहा जाए कि दैन्य और निराशा ये दोनों शब्द पंडितजीके शब्दकोषमें लापता हैं, तो संभवतः कोई अतिशयोक्ति न होगी। जो विचार भव्य और उत्कृष्ट हो उसी तरफ लोगोंको आकर्षित करना यही एक स्वभाव पंडितजीका सदासे रहा है। अपने जीवन-निर्वाहके लिए लोगोंके सामने हाथ पसारना पंडितजीके लिए मरण समान था। यह याचकता इतनी बुरी है कि यह बड़ों बड़ोंका सिर भी नीचा कर देती है। इस याचकताने विष्णुको भी वामन बनाकर राजा बलिके सामने नतशिरस्क कर दिया था—

> रहिमन जाचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात।
> नारायण हूं को भयो बावन अंगुर गात॥

अतः उपस्थित सुविधासे ही आनन्दपूर्वक जीवन बिताना पंडितजीके रक्तमें घुल-मिल गया था।

पंडितजी वैदिकवृत्तिके चिरतरुण हैं। घड़ीकी सुईके समान नियमित दिनचर्या। यदि कभी अनियमितता हुई भी तो वह लोकसेवाके कार्यमें मग्न होनेके कारण ही। उनका अन्तरंग और बहिरंग दर्शन दोनों ही खिले हुए फूलके समान प्रफुल्लित। सादगी और नम्रता रोमरोममें भरी हुई। ऐसे उत्साही कार्यकर्ता पंडितजी पर महात्मा मुंशीराम [स्वामी श्रद्धानन्द] की नजर पड़ी और अपने गुरुकुल कांगड़ीमें पंडितजीको बुला लेनेकी उनकी इच्छा बलवती हो गई। स्वामी श्रद्धानन्द लेखोंकी मार्फत पंडितजीसे पहले ही परिचित हो चुके थे। महात्मा मुंशीरामके चरित्रके बारेमें पंडितजी लिखते हैं—

" यह बात पुलिसके कानोंसे जा टकराई। गुरुकुलके विद्यार्थियोंको यह सूचना मिल गई थी कि किसी भी दिन एकदम छापा मार कर निरीक्षण किया जा सकता है। जिस प्रकार गुप्त पुलिसके जासूस हमारे बीचमें रह कर अपना काम करते थे, उसी प्रकार हमारे भी कुछ हितचिन्तक गुप्त पुलिसके कार्यालयोंमें थे। इसलिए अगले चार पांच दिनोंमें जो होनेवाला होता, उसकी खबर गुरुकुलतक उड़ती हुई चली आती और ब्रह्मचारिगण अपने कमरोंको साफसूफ कर देते थे। इसी प्रकार जो सन्देहास्पद अध्यापक थे, उन्हें भी समय समय पर सूचना मिल जाया करती थी। मैं भी सन्देहास्पद अध्यापकोंमेंसे एक था। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक रात हमने बम तैय्यार करनेकी पद्धति बतानेवाले सब ग्रन्थ जमीनमें गाढ दिए थे और सब कमरे साफ कर दिए थे। "

" ब्रह्मचारिगण शूर, राष्ट्रसेवी और उत्तम काम करनेमें हमेशा आगे रहनेवाले थे। जंगलमें रहनेके कारण वे निडर भी थे। एकबार सिन्धकी तरफके एक अध्यापक आए थे। एकबार छुट्टीके दिन उन्हें साथमें लेकर ब्रह्मचारियों सहित हम जंगलमें घूमने निकल गए। सबेरे ९-१० का समय रहा होगा। गुरुकुलसे ३-४ मीलकी दूरी पर स्थित एक घने जंगलमें हम जा पहुंचे। जंगलमें बहुत ऊंची ऊंची घास उगी हुई थी। एक छोटीसी पहाडी पर घासमें एक बाघ छिपकर बैठा हुआ था। दुर्भाग्यवश वे सिन्धी अध्यापक महाशय उसी तरफ जा निकले और बाघ यमदूतके समान इन महाशयके सामने आकर खडा हो गया। बिचारे अध्यापक अकेले ही बाघके सामने गए थे। इसलिए उनके डरकी कोई सीमा ही नहीं थी। वे अपने प्राण बचानेके लिए पासके ही पेड पर किसी तरह चढ गए। पैरोंमें जो जूते थे वे पैरोंमेंसे निकल कर गिर गए। ऊपर अध्यापक और नीचे बाघ। ऊपर बैठे बैठे अध्यापक महोदय " बाघ बाघ " कह कर चिल्लाने लगे। किसी ब्रह्मचारीने उनकी पुकार सुनी और थोडीसी देरमें ही सब ब्रह्मचारी लाठी लेकर वहां पहुंच गए और उन्होंने बाघको मार कर भगा दिया। उन अध्यापककी आंखोंके आगे बाघ ही बाघ चमक रहे थे। उन महाशयको चारों ओर बाघ ही बाघ नजर आ रहे थे। ब्रह्मचारियोंने उन्हें नीचे उतारा, तब भी वे " बाघ बाघ " चिल्ला रहे थे। पूरे दो घंटेके बाद वे महाशय होशमें आए। उनकी चिकित्सा हुई। वे बेहोशीकी अवस्थामें भी " बाघ बाघ " चिल्लाते थे। गुरुकुलके ब्रह्मचारी कैसे निर्भीक थे और शहरी अध्यापक कैसे डरपोक थे, उसका यह एक नमूना है। "

" गुरुकुल कांगडीसे ४ मील दूर गंगाके बीचमें सप्ततीर्थ नामका एक स्थान है। स्थान बहुत रमणीय है। ४०-५० ब्रह्मचारियोंके साथ मैं वह स्थान देखने गया। जाते हुए हम पैदल ही गए थे। उस स्थान पर हम करीब १० बजे पहुंचे। शामतक वहां रहे। वहीं खाया पिया। शामको ४ बजेके करीब वहांसे लौट चले। गर्मीके दिन थे। गंगा बढने लग गई थी और सबेरे जहां जमीन थी, वहां शामको बडे बडे जलप्रवाह चल रहे थे और वे प्रवाह बराबर बढते चले जा रहे थे। "

"गंगामें तैरनेका अभ्यास मुझे नहीं था। मेरे जैसे ही दूसरे भी ३-४ अतिथि थे। हम सब हताश होकर बैठ गए। पर ब्रह्मचारी बोले— "डरिए मत! हम आप सबको उस पार पहुंचा देंगे।" ब्रह्मचारी गंगाकी बाढमें भी तैरनेवाले थे। अतः दो दो ब्रह्मचारी एक एक हाथसे तैरने लगे और एक एक हाथसे हम जैसोंको संभालते ए नदी पार करने लगे। करीब एक मीलका नदीका पाट था, पर प्रवाहके कारण उसे पार करना सरल नहीं था। यदि ब्रह्मचारी न होते तो हमारे लिए वह काल "अन्तकाल" ही साबित होता।"

"एकबार हम गुरुकुलमें थे। भादोंका महीना था। पानी बरस रहा था। कनखलके पास एक सरकारी बांध टूट गया। पानी गुरुकुलके चारों ओर भरने लग गया। चारों तरफ मानों समुद्र ही उछाल लेने लगा था। वह पानी भरता ही जा रहा था। गुरुकुलकी इमारत भी पानीमें ढह गई। फिर भी ब्रह्मचारी बडे प्रसन्न थे। वे तैर कर उस पार जानेके लिए तैय्यार बैठे थे। आठ दस घंटेके बाद बरसात बन्द हो गई, बाढ भी उतरने लगी और सब कुछ ठीक हो गया। पर ऐसी संकटकालीन स्थितिमें भी ब्रह्मचारियोंका उत्साह अविचलित रहा।"

इस प्रकार चेतनासे भरे हुए आश्रमोंसे युक्त गुरुकुलमें पंडित सातवलेकर रमने लगे, प्राकृतिक सम्पत्तिसे भरपूर इस स्थानमें अपनी चित्रकलाको और अधिक मार्मिक, उद्बोधक और आकर्षक बनानेके लिए पंडितजीको अनेक शुभ संयोग प्राप्त हुए। उसी प्रकार अपनी वेदविद्याकी प्रौढप्रज्ञासे तरुण पीढीको तेजस्वी बनाकर उनकी कृतज्ञता एवं यशको संपादन करनेका सुअवसर भी पंडितजीको प्राप्त हुआ। मुंशीरामजीके कथनानुसार पंडितजी अपनी तूलिकासे कांगडीके सुरम्य चित्र उतारा करते थे। और पंडितजीकी तूलिकासे उतरे चित्रोंके प्रतिचित्र गुरुकुलके विद्यार्थी बनाया करते थे। महर्षि दयानन्दका एक बडा तैलचित्र पंडितजीने गुरुकुलके लिए विशेषरीतिसे तैय्यार करके दिया। इसी प्रकार महर्षि दयानन्दके गुरु स्वामी विरजानन्दजीका भी एक बडासा तैलचित्र पंडितजीने तैय्यार करके दिया। पंडितजीको योगसाधनाका अभ्यास करनेके लिए भी यहां उत्तम अवसर मिला। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, स्वाध्याय, चित्रकला और ब्रह्मचारियोंके साथ समरस जीवन इन्हीं कार्योंमें पंडितजीका सारा दिन बीत जाता था।

इस प्रकार आनन्दसे बीतनेवाले जीवनको एक और प्रचण्ड वायुका धक्का लगा। पंडितजीने कोल्हापुरके एक मासिक विश्ववृत्तमें "वैदिक प्रार्थनाओंकी तेजस्विता" नामक एक लेख लिखा। उस लेखके कारण अंग्रेज सरकारने पंडितजी पर दावा दायर करनेका निश्चय किया। इस बातकी सूचना पंडितजीको अखबारसे मिल गई। साथ ही उन्हें इस बातका भी पता लग गया कि पकडनेके लिए उनके नाम एक वारंट जारी कर दिया गया है। तब हैदराबाद छोडते ही आसरा देनेवाली एक राष्ट्रीय संस्था पर किसी प्रकारका संकट न आ पडे, यह सोचकर उन्होंने महात्मा मुंशीरामसे

सलाह मशविरा किया और सपत्नीक हरिद्वारसे चल पड़े। इस विषयमें स्वयं पंडित-जीकी लेखनीसे निःसृत ये शब्द हैं—

"मैं १९०८ में गुरुकुल आश्रम शिक्षकरूपमें शिक्षकरूपमें नियुक्त हो गया। वहां रहते हुए मैंने "वैदिक प्रार्थनाओंकी तेजस्विता" नामक एक लेख लिखा, जो प्रो. विजापुरकरके द्वारा सम्पादित एवं कोल्हापुरसे प्रकाशित होनेवाले "विश्ववृत्त" नामक मासिकमें छपा। छपते ही उसकी तरफ बम्बई सरकारका ध्यान दौड़ा। इससे पूर्व हैदराबादमें प्रकाशित मेरे "वैदिक राष्ट्रगीत" नामक पुस्तकको बम्बई सरकारने जब्त करके उसकी सारी प्रतियां जला दी थीं। इस पुस्तककी २००० प्रति-योंमें ५०० प्रतियां ही मैं लोगोंमें बांट सका था, बाकी १५०० प्रतियां सरकारने जब्त करके जला दी थीं, इस प्रकार सरकारके देशद्रोहियों (Black list) की सूचीमें मेरा भी नाम था। इस लेखमें मैंने "सेना समाम खेल, शमशेर बहादुर, गोब्राह्मण प्रतिपालक" आदि विशेषणोंके साथ बड़ौदाके महाराज सयाजीराव गायकवाड़का उल्लेख किया था। अतः इस लेखके छपते ही ब्रिटिश सरकारने बड़ौदा महाराजको ताकीद दी कि वे इस लेखकी तरफ ध्यान दें। पर मुझसे परिचित होनेके कारण महाराजने मुझ पर मुकदमा चलानेसे इन्कार कर दिया। तब बम्बई सरकारने कोल्हापुरके शाहू महाराजको लिखा। शाहू महाराजने मुझ पर मुकदमा चला दिया।"

जिस लेखके कारण पंडितजी पर मुकदमा चला, वह लेख इस प्रकार है—

⊘ वैदिक प्रार्थनाओंकी तेजस्विता

कुछ कमजोरवृत्तिक लोग इस बातका प्रचार करते हैं कि "शत्रु हमें कितना भी दुःख दें अथवा हानि करें, उसकी व्याजसहित भरपाई न करके अथवा उसका बदला न लेकर न्यायके दिनकी प्रतीक्षा करते हुए और मक्खी मारते हुए आरामसे बैठे रहें।" कई लोगोंका यह भी विचार है कि इस तरहकी कमजोरी भी एक सद्गुण ही है। पर एक अनुभवशील और वेदोपदेशका अनुगामी कभी यह नहीं कहेगा। उसकी दृष्टिमें तो उपर्युक्त कथन मनुष्यके लिए विनाशक ही है।

हम यदि अपने देदीप्यमान प्राचीन इतिहासकी तरफ नजर फेंके, तो वह इतिहास हमें वैदिक उपदेशोंकी तेजस्वितासे सराबोर ही दिखाई देगा। स्वार्थी, अधार्मिक, नास्तिक और आततायी वेन राजाको मारते समय तत्कालीन ऋषियोंने वेनको दण्ड

⊘ विश्ववृत्त— मार्च १९०८ [समर्थ छापखाना, कोल्हापुर] वर्ष २, अंक २; पृ. १–१६। यह लेख केसरीमंडाराके भूतपूर्व पुस्तकालयाध्यक्ष, इतिहाससंशोधक श्री दि. वि. काळेके सौजन्यसे और उनके सहायक श्री शंकरराव बर्वेकी सहायतासे प्राप्त हुआ। उनके हम आभारी हैं　　　　　　　　　　— लेखक

देकर न्याय करनेका भार परमेश्वर पर न सौंप कर वह काम उन्होंने अपने हाथोंमें ही ले लिया था। स्वराज्यका हरण करके पारतंत्र्यके घोर नरकमें पिसने मरनेके लिए छोड देनेवाले तथा दूसरोंके पदार्थोंको हथियानेवाले दुष्ट शत्रुओंको तहस नहस करके पुरुषार्थसे अपने स्वराज्यको कायम करनेके लिए अपने पुत्रको वीरोचित उपदेश देने-वाली विदुला और उसका इतिहास लिखनेवाले व्यासने जो वैदिक आदर्श अपने सामने रखा था, वह कमजोरवृत्ति और अधार्मिकवृत्तिके 'मक्खी मारते हुए चुपचाप बैठे रहनेवाले' सिद्धान्तसे बिलकुल अलग था। भाग्य पर भरोसा रख कर चुपचाप बैठे रहनेवाले भाग्यवादी रामको "उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये छै सद्गुण जिसके अन्दर होंगे, उसे इस त्रिभुवनमें कुछ भी अप्राप्य नहीं है" कह कर अपनी ओजस्वी वाणीसे उपदेश देकर परम पुरुषार्थी बनानेकी इच्छा करनेवाले महर्षि वसिष्ठने जिन आत्मविश्वासके तत्त्वोंका सब लोगोंके उद्धारके लिए प्रतिपादन किया, वह केवल इसलिए नहीं किया कि लोग आपत्कालमें चुपचाप बैठे रहें। श्री कृष्ण भगवान्ने सब वैदिकसिद्धान्तोंका सार निकाल कर और उपनिषदोंका मंथन करके जो भगवद्गीता रूप मक्खन निकाला और उस गीताके द्वारा स्वराज्यभ्रष्ट होकर भी आनन्द मानकर जंगलमें जाकर कन्दमूल खाकर रहनेकी इच्छा करनेवाले अर्जुनको "उठ, अपने शत्रुओं और उनकी मदद करनेवाले गुरुओंको भी मार, कमजोरी छोड और युद्धकी तैय्यारी कर" आदि जो उपदेश दिए, वह इसलिए नहीं कि लोग शत्रुके द्वारा दिए गए संकटोंको आरामसे बैठे सहते रहें। अपितु यह उपदेश इसके लिए ही है कि शत्रुको बिलकुल तहसनहस कर दिया जाए।

अपनी रक्षा करना, स्वावलम्बी बनना, अपना अपमान न होने देना और अपनी उन्नति करना आदि बातोंका समावेश मनुष्योंके सामान्य धर्ममें होता है। "सर्वतः आत्मानं गोपायीत" इस श्रुतिमें आत्मरक्षणका प्राधान्य वर्णित है। इसी आधार पर स्मृतिकारों और धर्मशास्त्रकारोंने यह सिद्धान्त निश्चित किया था, कि आतता-यियोंको मारनेमें कोई पाप नहीं है और इसीलिए आततायीके वध करनेवालेके लिए किसी प्रकारके प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं है। धर्मशास्त्रोंका कथन है—

> अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
> क्षेत्रदारापहारी च षडेते आततायिनः ॥ (विष्णुस्मृति)
> पिशुनं चैव राजसु । (कात्यायन
> उद्यतानां तु पापानां हन्तुर्दोषो न विद्यते । (कात्यायनः)
> शस्त्रं द्विजातिभिर्ग्राह्यं धर्मो यत्रोपरुध्यते । (कात्यायनः)
> आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ।
> नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ (मनुस्मृति)

"अग्निसे जलानेवाला, विष पिलाकर मारनेवाला, शस्त्रसे घात करनेवाला, धनका अपहरण करनेवाला, देशका अपहरण करनेवाला, स्त्रियोंको भगा ले जानेवाला, राजासे

चुगली करनेवाला ये सभी आततायी हैं। ऐसे प्रबल पापियोंको मारने पर भी मारनेवालेको कोई पाप नहीं लगता। उनका विनाश करनेके लिए जब क्षत्रिय और वैश्य तैय्यार न हों, तो उस समय ब्राह्मण ही हाथोंमें शस्त्र धारण करके धर्मकी रक्षा करें। उपर्युक्त आततायी यदि सामनेसे आते दिखाई पडें तो बिना किसी सोच विचारके उनको मार दे। उनके वधसे वध करनेवालेको किसी प्रकारका पाप नहीं लगता।" ये वचन कात्यायन, विष्णु और मनु आदि स्मृतिकारोंके हैं। इसको देखकर कोई भी यह आसानीसे जान सकता है कि उपर्युक्त स्मृतिकारोंका उपदेश चुपचाप बैठकर अत्याचार सहन करनेका उपदेश देनेवालोंके सिद्धान्तके सर्वथा विपरीत है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बुद्धिमान्‌के लिए इन वचनोंका एक एक अक्षर तेजस्वितासे भीगा हुआ प्रतीत होगा। इन वचनों परसे यह बात भी अनुभवमें आ सकती है कि आर्योंके प्राचीन इतिहासकी घटनाओंमें और इन स्मृतियोंके उपदेशोंमें पूर्ण एकमत था।

वेदोंमें और ब्राह्मणग्रन्थोंमें ऐसी अनेक आज्ञायें हैं, जो अपने अनुयायियोंको शत्रुके विनाश करनेके लिए प्रोत्साहन देती हैं। पर आज इस लेखमें मैं उन आज्ञाओंका निरीक्षण न करके केवल प्रार्थनाओंका निरीक्षण करना चाहता हूँ और इसके द्वारा मैं यह दर्शाना चाहता हूँ कि वैदिक प्रार्थनासे उपासकोंकी मनोवृत्ति किस ओर झुकती है। ताकि इससे मनुष्यमात्रको वैदिक आदर्शोंके अनुसार चलनेकी प्रेरणा मिले। सर्वप्रथम हम सामान्यप्रार्थनाका विचार करें।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु। फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ (यजु. २२।२२)
भाष्यम्– नः राष्ट्रे इति सर्वत्र सम्बन्धः। न राष्ट्रे अस्मद्देशे।

अर्थ— हे ब्रह्मन्! हे परमात्मन्! हमारे राष्ट्रमें सब ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञानसम्पन्न हों। हमारे देशके क्षत्रिय अत्यन्त पराक्रमी, शस्त्रास्त्रोंसे लडनेवाले, अचूक लक्ष्य बींधनेवाले, हजारों शत्रुओंसे लडनेवाले महारथी शूरवीर हों। हमारे राष्ट्रमें दुधारु गायें, बोझ ढोनेमें समर्थ बैल, वेगवान् घोडे और स्त्रियां सर्वगुणसम्पन्न हों। युद्धकी इच्छा करनेवाले वीर विजयी हों। यजमानका पुत्र [सभेयः] सभामें जाने योग्य अर्थात् विद्वान् और [वीरः] शूरवीर हो। हमारे राष्ट्रमें समय पर वृष्टि हो और उसकी सहायतासे सब ओषधियाँ उत्तम फलवाली हों और हमारे राष्ट्रमें हमारा योगक्षेम उत्तम रीतिसे हो।"

यह राष्ट्रीय प्रार्थना मनुष्यमात्रके और हर राष्ट्रके पूर्ण और उच्च उद्देश्यकी द्योतक है। मनुष्यकी उन्नतिके लिए किन किन बातोंकी जरूरत होती है और किन किन राष्ट्रीय सद्‌गुणोंसे राष्ट्रका सौभाग्य बढता है, ये सभी बातें इस मन्त्रमें बताई गई

हैं। ज्ञान, शौर्य, वीर्य और धनधान्यादि सम्पत्ति इन बातों पर राष्ट्रकी उन्नति आधारित होती है। अतः हमारे राष्ट्रमें इन सभी गुणोंकी उन्नति होनी चाहिए। यही इच्छा सब नागरिकोंकी होनी चाहिए। नागरिकोंकी इन इच्छाओंका वर्णन इस मंत्रमें बहुत सुन्दर रीतिसे किया है। स्वावलम्बनके लिए किन बातोंकी जरूरत होती है, इसका ज्ञान भी इस मन्त्रके मननसे हो सकता है। इन सद्गुणोंका परिणाम किन कार्योंमें होना चाहिए, यह बात अथर्ववेदके राष्ट्रगीत [पृथिवीसूक्त] में स्पष्ट की गई है—

> यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्यात्
> यो अभिदासान्मनसा यो वधेन।
> तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि (अथर्व. १२।१।१४)

अर्थ— हे हमारी मातृभूमे! जो हमसे द्वेष करता है, जो हम पर सेना भेजकर हमारा नाश करना चाहता है, जो हमें गुलाम बनाना चाहता है, जो मनसे या शस्त्रोंसे हमें कष्ट देना चाहता है, उसका तू समूल नाश कर।"

पिछले मंत्र और इस मंत्रकी संगति लगाने पर इनका मनुष्योंके लिए अत्यन्त उपयोगी भावार्थ निकलता है। पिछले मन्त्रमें इस प्रकार प्रार्थना की गई है कि— "हमारे देशमें विद्वान् ब्राह्मण, धैर्यवान्, शूर और तेजस्वी क्षत्रिय, उत्तम गायें, बैल, घोडे और धनधान्यसे सम्पन्न वैश्य हों।" और इस मन्त्रमें ऐसी अभिलाषा प्रदर्शित की है कि— "हमसे द्वेष करनेवालोंका, सेना लेकर हम पर आक्रमण करनेवालोंका, हमें गुलाम बनानेकी इच्छा करनेवालोंका और हमारा अहित चाहनेवालोंका नाश हो।" इन दोनों मंत्रोंकी संगति लगाने पर इस प्रकार अभिप्राय निकलता है, कि पूर्वोक्त मंत्रमें बताये हुए सद्गुण सिर्फ इसीलिए बढाने चाहिए, कि दूसरे मन्त्रमें बताये गए शत्रुओंको हम नष्ट कर सकें।

स्पष्ट है कि जो विद्वान् अपने राष्ट्रके प्रति होनेवाले शाब्दिक द्वेषको शब्दशास्त्रकी सहायता एवं अपनी वाणीकी युक्तिसे खण्डित नहीं करता और सभाओंमें और लेखोंमें अपने राष्ट्रकी उत्तमता स्थापित नहीं करता, उस विद्वान्का राष्ट्रके लिए क्या उपयोग है? इसी प्रकार जो क्षत्रिय शत्रुकी सेनाका एवं गुलामीका नाश नहीं करता, तो उसके छत्रपतित्व और शमशेर बहादुरीका राष्ट्रको क्या लाभ? और इसी प्रकार -जो वैश्य व्यापार क्षेत्रमें अपने राष्ट्रको आगे नहीं बढाता, उसके पास यदि हजारों गायें, हजारों घोडे आदि भी हों, तो भी उससे राष्ट्रका क्या फायदा? तात्पर्य यह है कि पहले मंत्रमें श्रद्धालु भक्तोंने परमेश्वरसे जिन सद्गुणोंको अपने राष्ट्रमें बढानेकी प्रार्थना की है दूसरे मंत्रमें उन्हीं सद्गुणोंका उपयोग राष्ट्रके फायदेके लिए करनेकी प्रार्थना की है।

इतिहासज्ञ भी इस बातको मानते हैं कि ज्ञानके सिवाय क्षात्रतेज व्यर्थ है और क्षात्रतेज और तेजस्विताके बिना ज्ञान व्यर्थ है। इस प्रकार मनुष्य ज्ञानशक्ति और

क्षात्रशक्ति दोनोंसे सम्पन्न हों। जिस राष्ट्रमें दोनों ही शक्तियां उत्तम होंगी, वह राष्ट्र सौभाग्यशाली होगा। इन दोनों शक्तियोंके विषयमें वेद कहते हैं—

मदेम शतहिमाः सुवीराः। (अथर्व. १९।१२।१)
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये। (अथर्व. २०।९।३)

भाष्य— यामि याचामि। पूर्वचित्तये अपूर्वप्रज्ञानाय।

अर्थ— उत्तम वीरोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षोंतक आनन्दित और उन्नत हों। हे परमेश्वर! हम तुझसे प्रार्थना करते हैं कि वह (सुवीर्यं) तेजस्वी क्षात्रबल और ओजस्वी ज्ञानबल हमारे अन्दर पूरी तरहसे रहे।"

इस प्रार्थना मंत्रमें [१] विद्वत्व, [२] क्षत्रियत्व, [३] पूर्णायुकी प्राप्तिकी प्रबल इच्छा दिखाई देती है। जिस राष्ट्रके नागरिकोंमें ये तीन इच्छायें बलवती होती हैं, और *उन इच्छाओंके अनुरूप कार्य किया जाता है, वही समाज जीवित रहता है।* पर जिस समाजमें [१] गुलामीके लिए ज्ञानका व्यय, [२] दास्यत्वकी वृद्धिके लिए क्षात्रशक्तिका व्यय और [३] व्यसनोंमें आयुका क्षय होता हो, उस समाजको व्याधिग्रस्त समझना चाहिए। ऐसे रोगी समाजमें पुनः तेजस्विता लानेके लिए रोगके अनुकूल उपचार एवं पथ्यका पालन करके ज्ञान, क्षात्र और आयुकी क्षीणताको रोककर उन्हें अन्तर्मुख करके फिरसे उन्हें उत्तम बनाना चाहिए। समाजके अधिकांश व्यक्तियोंमें ये विचार जागृत होने चाहिए कि "मैं स्वयंके लिए न होकर समाज, देश एवं राष्ट्रके लिए हूँ।" इन विचारोंसे देशकी समस्त शक्तियां अन्तर्मुखी हो जाती हैं। जितने अन्तःकरणोंमें यह शक्ति जिस प्रमाणसे बढेगी, उस प्रमाणसे उस राष्ट्रमें जीवन पैदा होगा। जो मनुष्य चाहे कि यह विचार जागृति राष्ट्रमें पैदा हो, तो उसे चाहिए कि वह किसी भी पदार्थको स्वीकार करनेसे पूर्व निम्न मन्त्रके भावों पर अपने हृदयमें विचार करे—

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा।
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय॥
(अथर्व. १९।३७।३)

भाष्य— ऊर्जे अन्नाय। अभिभूयाय शत्रुजयाय।

अर्थ— हे पदार्थ! अन्न, बल, ओजस्विता, सहनशक्ति, शत्रुओंका निर्दलन, राष्ट्रका पोषण और सौ वर्षकी आयु आदि तमाम उत्तम गुणोंके लिए तुझे मैं ग्रहण करता हूँ।

इस मन्त्रमें यद्यपि पदार्थको लक्ष्य करके बात कही गई है, तो भी उसमें निहितभाव आसानीसे समझनेके योग्य हैं। इस मन्त्रसे अनेक बोध मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं— [१] *जिसको ग्रहण करना हो, वह पदार्थ अन्नरूप और बलवर्धक* होना चाहिए। अर्थात् शराब, भांग, अफीम, चरस, गांजा, तम्बाकू और वेश्या

आदि अनेक पदार्थ, जो राष्ट्रवासियोंको अवनत करते हैं, और स्वयं भी अन्नरूप एवं बलोत्पादक नहीं होते, इसके विपरीत राष्ट्रवासियोंकी वीर्यशक्तिको कमजोर करते हैं, छोड देने चाहिए। [२] ओजस्विता और सहनशक्ति राष्ट्रके पोषणके लिए आवश्यक हैं। शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करनेकी शक्तिसे युक्त मनुष्य ही ज्ञान और ओजकी सहायतासे जनसमाजको उन्नत कर सकता है। इसलिए ऐसे पदार्थोंका संग्रह करना चाहिए कि जिसकी सहायतासे ज्ञान, तेज और सहनशक्तिको वृद्धि हो। [३] लोग अन्न खाकर पुष्ट हो गए, व्यायाम करके बलवान् हो गए, पुस्तकें पढ कर ज्ञानी हो गए और अनेक प्रकारसे सहनशील भी हो गए, पर यह तो वैयक्तिक उन्नति हुई। वैयक्तिक उन्नति राष्ट्रकी उन्नति नहीं कही जा सकती। व्यक्तियोंमें ज्ञान, शौर्य, बल और सहनशक्ति होनेपर भी राष्ट्रके अवनत होनेके अनेक उदाहरण इतिहासमें देखे जा सकते हैं। इसका कारण यही है कि इस मंत्रमें वर्णित दो गुणोंका उन व्यक्तियोंमें अभाव होता है। इसलिए अपने राष्ट्रको जीवित रखनेकी अभिलाषा करनेवालोंको चाहिए कि वे शत्रुका नाश और अपने राष्ट्रका पोषण करनेके लिए पूर्वोक्त गुणोंका उपयोग करें। इस प्रकार इस मंत्रसे अनेक बोध मिलते हैं। राष्ट्रके अवयव रूप मनुष्य जो कुछ भी करें सिर्फ इसीलिए करें, कि अन्न मिले, बल बढे, ज्ञान और तेजकी वृद्धि हो, सहनशक्ति प्राप्त हो, शत्रुओंको हराकर राष्ट्रको उन्नतिके शिखर पर चढायें और कोई भी अकाल मृत्युसे न मरे। यही भाव उपर्युक्त मंत्रका है। कितने उदात्त उपदेश वेदोंमें हैं। इस प्रकार उदात्त भावोंसे भरे हुए अनेक वेदमंत्र हैं। पर उन मंत्रोंके पठनमात्रसे ही कुछ होनेवाला नहीं है, जब उन उपदेशोंको आचरणमें लाया जाएगा, तभी मनुष्यमात्रकी उन्नति हो सकेगी।

इस मंत्रमें "राष्ट्रभृत्याय" शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। "राष्ट्रकी सेवा करनेके लिए ही मैं इस पदार्थको स्वीकार करता हूँ," यह भाव इस शब्दका है। इस शब्दके द्वारा मानों मनुष्य यह प्रतिज्ञा करता है कि "मैं इन पदार्थोंका सेवन करके जो शक्ति और आयु अपनेमें बढाऊंगा, उसका उपयोग मैं राष्ट्रकी सेवाके कार्यमें ही करूंगा।" पाश्चात्य विद्वान् तथा उनके कदमोंपर चलनेवाले कई भारतीय विद्वान् भी जो यह कहते हैं कि वैदिक वाङ्मयमें राष्ट्रीय ऐक्यकी कल्पना, राष्ट्रसेवाके भाव, राष्ट्रसेवाके लिए आत्मसमर्पणकी भावना आदि कुछ भी नहीं है, वे उपर्युक्त मंत्रमें वर्णित "राष्ट्रभृत्य" की कल्पनाको आंख खोलकर देखें। वेदोंमें अनेक उदात्त भावनायें हैं। वेद कहते हैं कि मनुष्योंका अपने राष्ट्रके साथ सम्बन्ध दृढ हो, उनके वैयक्तिकहित राष्ट्रहितके लिए रोडे न बनें। वधूवरको उपदेश देते हुए वेद कहता है—

अभि वर्धतां पयसाऽभि राष्ट्रेण वर्धताम्।
रय्या सहस्रवर्चसेमौ स्तामनुपक्षितौ ॥ (अथर्व. ६।७८।२)

"ये वधूवर दूध पीकर पुष्ट हों, वे अपने राष्ट्रके साथ बढते होते रहें। वे अनेक तरहकी सम्पत्तियोंसे युक्त होकर तेजस्वी बनकर कभी भी अवनत न हों।"

×

इस मंत्रमें आए हुए "स्त्री-पुरुष दूध पीकर पुष्ट हों" इन शब्दोंका तात्पर्य यही है कि शराबखोरी आदि दुर्व्यसन उस परिवारमें न हों। यह वैदिक उपदेश सार्वत्रिक सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। "स्त्री-पुरुष राष्ट्रके साथ साथ उन्नत हों" इन शब्दोंके द्वारा वेद यह उपदेश देना चाहता है कि मनुष्य राष्ट्रोन्नतिके लिए हानिकारक कोई भी काम न करें।

वैदिक कालके स्त्री-पुरुष राष्ट्रकी उन्नतिमें ही अपनी उन्नति समझते थे। राष्ट्रके स्वयंसेवक बननेके लिए ही अन्नादिका उपभोग करते थे। इस पर भी पाश्चात्योंका यह कहना कि उस समय राष्ट्रीय कल्पना नहीं थी, आर्योंके सनातन धर्ममें "राष्ट्रीय स्वयं सेवक" की कल्पना नहीं थी और उस समयके लोग भी राष्ट्रके प्रति अपने कर्तव्योंसे अनभिज्ञ थे, आदि आदि, एक आश्चर्य ही तो है। उस पर भी तुर्रा यह कि ये विद्वान् कहते हैं कि राष्ट्राभिमानकी कल्पना भारतीयोंको विदेशियोंने दी। वेद स्पष्ट कहता है—

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमानाः वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥
(अथर्व. १२।१।६२)

"हे पृथिवि! (हे मेरे देश) तुझसे उत्पन्न हुए हम सब लोग आरोग्यसम्पन्न, क्षयादि रोगरहित और पूर्णायुषी होकर तेरे ऊपर आत्मसर्वस्वको भी न्योछावर करनेवाले हों।"

इस रीतिसे प्राचीन आर्य राष्ट्रसेवक बना करते थे, देशके लिए आत्मसमर्पण किया करते थे, अपने देहकी बलि भी चढ़ा दिया करते थे। ऐसे राष्ट्रहितमें तत्पर राष्ट्र सेवक यदि परमात्मासे—

स मे राष्ट्रं च क्षत्रं च पशूनोजश्च मे दधत्। (अथर्व. १०।३।१२)

(वह परमेश्वर हमें उत्तम राज्य, क्षात्रतेज, उत्तम ज्ञान और उत्तम पशु आदि देवे) ऐसी प्रार्थना करें, तो परमेश्वर भी क्या उस प्रार्थनाको अस्वीकार कर सकता है? आलसी और आत्मघातकी लोगोंकी प्रार्थनाओंका सम्मान परमेश्वर नहीं करता। पर उत्साही, उद्योगी और तेजस्वी लोग जब अपना कर्तव्य पूरा करके परमेश्वरसे प्रार्थना करते हैं, तो परमेश्वर भी उनकी प्रार्थनाको तत्काल सफल करता है। अबतक दिए गए मंत्रोंके आधार परसे यह स्पष्ट हो गया होगा, कि वैदिक धर्ममें राष्ट्रसेवाकी घुट्टीका वर्णन बड़े पैमानेपर है। आवश्यकता केवल इस बातकी है कि इस घुट्टीको पिटारीमें बन्द न करके उसे उबाल उबाल कर देशके बच्चोंको पिलाया जाए। अब हम इस बातपर विचार करेंगे, कि राष्ट्रभृत्योंकी कौन कौनसी इच्छायें होती हैं अथवा उनमें कौन कौनसी इच्छायें होनी चाहिए—

असमं क्षत्रमसमा मनीषा। (ऋ. १।५४।८)

"निस्सीम शूरवीरता और अतुल बुद्धि" इन दोनोंकी इच्छा राष्ट्रसेवक करते हैं।

सामान्य मनुष्य अपने अथवा राष्ट्रकी उन्नतिके लिए बहुतसे धनकी इच्छा करते हैं। पर जिस राष्ट्रके व्यक्तियोंमें निस्सीम शौर्य और अतुल बुद्धि होगी, उनके पास लक्ष्मी अपने आप दौडती हुई चली आएगी। इस तरह उत्साही राष्ट्रभृत्योंके लिए शत्रुओंपर आक्रमण करनेके समय वेद किस तरहकी प्रेरणा देता है, यह भी यहां द्रष्टव्य है–

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं उदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत॥ (अथर्व. ११।१०।१)

"उठो, तैय्यार होओ, हे उदार लोगों एवं दूसरे रक्षक गणो! अपने अपने झण्डोंके साथ शत्रुओंपर चढते चले जाओ।"

अपने राष्ट्रपर शत्रुओंके आक्रमण करनेके समय और धनादिके अपहरण करते समय जो लोग अपनी ही खुशीमें डूबकर अपने समय, बुद्धि और पैसेका अपव्यय करते हैं, वे नीच होते हैं। पर जो समय पडनेपर राष्ट्रके लिए अपना तन–मन–धन भी न्योछावर करनेके लिए तय्यार रहते हैं, वे उदार होते हैं। ऐसे उदार लोगोंपर ही राष्ट्रके वैभवकी स्थिति आश्रित रहती है। ऐसे उदार लोग अपने अपने राष्ट्रीय झण्डोंको लेकर अपने देशके शत्रुओंपर आक्रमण करके उनकी धज्जी धज्जी उडा दें, यही भाव इस मंत्रका है। इस मंत्रमें आए हुए "अमित्र" शब्द पर ध्यान देना जरूरी है। जो हमारा हित करता है और हमारा मान करता है, वह मित्र है, इसके विपरीत जो हमारा अहित करता है और हमारा अपमान करता है, वह हमारा अमित्र है। ऐसे अहित करनेवालोंपर चढाई करनेके लिए और राष्ट्रोद्धार करनेके लिए सभी उदार राष्ट्रभृत्योंको अपना सर्वस्व अर्पण करनेके लिए भी सदा तैय्यार रहना चाहिए और साथ ही सदा जागृत रहना चाहिए।

यह भाव "उत्तिष्ठत" (उठो) और "संनह्यध्वं" (संघटित हो जाओ) इन दो पदोंके द्वारा दिखलाया है। अगला मंत्र लडाईमें जानेके समय सैनिकोंको प्रोत्साहन देनेवाला है—

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत संनह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम्।
इमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् (अथर्व. ११।१२।२६)

अर्थ– हे मित्रो! तुम सब साक्षात् देव गण हो और उन सब देवोंके भी तुम स्वामी हो। उठो और तैय्यार होओ और इस युद्धमें विजय प्राप्त करके अपनी इच्छानुसार लोकोंको प्राप्त करो।

इस मंत्रमें ऐसा कहा है कि जो लोग पहले मंत्रमें वर्णित राष्ट्रभृत्य–राष्ट्रीय स्वधर्म-सेवक हैं, वे मित्र सचमुच "देवजन" हैं। राष्ट्र पर आई हुई आपत्तिको नष्ट कर-

नेके लिए अपना बलिदान देनेवाले निस्सन्देह देव होते हैं। इसी प्रकार युद्धमें अपना अपना कर्तव्य करके मनुष्य इह लोक और परलोकमें सुख प्राप्त करता है। इस वैदिक उपदेशको लक्ष्यमें रखकर ही भगवान्ने अर्जुनसे कहा था कि—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

(यदि तू युद्धमें मारा गया तो स्वर्ग प्राप्त करेगा और यदि जीत गया तो इस पृथ्वीका भोग करेगा)। सब इस बातको अच्छी तरह समझ लें कि राष्ट्रके लिए बलिदान देनेसे सब सुखोंके द्वार खुल जाते हैं। धर्म इस सिद्धान्तको हमेशा प्रोत्साहन देता है सच्चे धर्मसे मनुष्य कभी भी निरुत्साही और निराश नहीं होता। युद्धमें जानेवाले सैनिकोंकी क्या अभिलाषा हो, उसका वर्णन निम्न मंत्रमें है—

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम्।
विविद्धा ककजाकृता। (अथर्व. ११।१०।२५)

अर्थ— (आजके) युद्धमें (हमारे द्वारा) मारे गए शत्रुओंकी हजारों लाशें, (हमारे शस्त्रास्त्रोंके प्रहारोंसे) छिन्न भिन्न होनेके कारण हुए कुरूप हुए शत्रु युद्धक्षेत्रमें पड़े रहें।

प्रत्येक वीरके हृदयमें शत्रुको नष्ट करनेकी अभिलाषा होनी चाहिए। उसी तरह—

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु।
शौष्कास्यमनु वर्ततामामित्रान् मोत मित्रिणः॥ (अथर्व. ११।९।२१)

अर्थ— (हमारे शस्त्रास्त्रोंके प्रहारसे) शत्रुओंके हृदय फट जाएं और उनके प्राण निकल जायें। (घायल होनेके कारण रक्तस्राव होने पर) उनके मुंह सूख जायें। यह दुर्दशा हमारे शत्रुओंकी ही हो, हमारा हित चाहनेवाले मित्रोंकी नहीं।

युद्धमें अथवा अन्यत्र भी हर तरहसे शत्रुओंको जर्जरित करें। पर जो शत्रु न हों, उनके रास्तेका रोडा न बने। निम्न मंत्र भी शत्रुनाशके कार्य पर जोर देता है—

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः।
सर्वानदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः॥
(अथर्व. ११।१०।२४)

अर्थ— रथमें बैठे हुए, रथसे रहित, घोडेपर बैठे और बिना घोडेके पैदल चलने वाले सभी शत्रु हमारे द्वारा मारे जाकर गिद्ध, बाज आदि पक्षियोंका भोजन बनें।

वैदिक उपदेश सदा उत्साह और वीरता उत्पन्न करनेवाले होते हैं, उनमें ओजस्विता और तेजस्विता भरपूर भरी हुई होती है। मनुष्योंके द्वारा जो जो काम अनिवार्यतया करणीय हैं, उन कर्तव्य कर्मोंका बोध वेदमंत्र द्वारा उनके स्वाध्याय करनेवालेको हो सकता है। आजके लेखमें मेरा उद्देश्य वैदिक मंत्रोंका विशेष आलोचन करना नहीं था, अपितु यही दिखाना मेरा उद्देश्य था कि वैदिक प्रार्थनाओंमें कितनी तेजस्विता भरी हुई है और राष्ट्र तथा व्यक्ति उन मंत्रोंसे क्या शिक्षा ले

सकता है। उसका थोडा सा दिग्दर्शन यहां कराया गया है, पर संक्षिप्त दिग्दर्शनसे भी वैदिक मंत्रोंकी ओजस्विताकी कल्पना की जा सकती है। वैदिक धर्म कभी यह नहीं कहता कि "कोई तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, तो दूसरा भी आगे कर दो" यह तो कमजोरोंका उपदेश है। वैदिक उपदेशोंका सार तो यह है-- "आततायियों पर दया मत करो, ज्ञान, वीर्य और सम्पत्ति प्राप्त करके अपनी उन्नति करो, अपने तन, मन और धनको राष्ट्र कार्यके लिए सौंप दो, जिस प्रकार समाजद्वेषी या राष्ट्रद्वेषी शत्रुओंको नष्ट करना मनुष्यका कर्तव्य है, उसी प्रकार मानवताके शत्रुओं-का नाश करके मनुष्यमात्रको सुख और शान्ति प्रदान करना भी मनुष्यका कर्तव्य है।" "सर्वभूतहिते रतः" होना सब मनुष्योंका कर्तव्य है। यहां कोई यह भी कह सकता है कि "सर्वभूत" में तो शत्रुका भी समावेश हो जाता है, पर उसका यह "कह सकना" ही उसकी मूर्खताका निदर्शक है। मनुष्योंके अहित करनेवालोंका नाश करके लोगोंको सुखी करनेका तत्व सर्वभूतोंके कल्याणमें ही निहित है, इसीलिए दुष्टोंका नाश करके सज्जनोंकी रक्षा करनेवाली विभूतियोंका महात्म्य वर्णित होता है।

इस वैदिक उपदेशका स्मरण करके ही भगवान् रामने सज्जनोंका संरक्षण करते समय प्रजाके शत्रु राक्षसों पर रत्तीभर भी दया नहीं की। भगवान् श्री कृष्ण भी कंस, कालीय और दुर्योधनादियोंका संहार करते समय पीछे नहीं हटे। यह वेदोंके तेजस्वी उपदेशोंका ही परिणाम था। एक दूसरी दृष्टिसे देखा जाए तो शत्रुओंको यथाशीघ्र नष्ट करना उन पर एक तरहसे अहसान करना ही है। क्योंकि लोगोंको सतानेवाले, उन पर अत्याचार करनेवाले मनुष्यमात्रके शत्रु जबतक जीवित रहेंगे, तबतक वे लोगों पर जुल्म करके अपने पापोंका घडा भरते चले जायेंगे। इसलिए उनके द्वारा और अधिक पाप न हों और उनके द्वारा सज्जनोंपर और ज्यादा जुल्म न हों, इस लिए ऐसे अमित्रोंको इस संसारसे जल्दीसे जल्दी रवाना कर देना ही मुनासिब है। इस प्रकार दुष्टोंको मारना मानों उन पर उपकार करना ही है। जो पुनर्जन्म नहीं मानते वे इस उपकारको नहीं समझ सकेंगे, पर जो पुनर्जन्मको मानते हैं, वे आसानीसे मेरी इस बातको समझ लेंगे। शत्रुओं और मित्रों पर उपकार करनेकी यही पद्धति है। इस पद्धतिसे सभीका हित होता है। यही वैदिक उपदेशोंका लक्ष्य है। जो शत्रुओंका नाश करते हुए और सज्जनोंकी रक्षा करते हुए अपना कर्तव्य करते जायेंगे, वे दोनों लोकोंमें उच्चपद प्राप्त करेंगे, इसमें शंका नहीं। परमेश्वर इस तेजस्वी बुद्धिको सबमें प्रकाशित करें और उसके कारण सभीके प्रयत्नोंसे केवल व्यक्ति और राष्ट्रका ही नहीं अपितु समस्त संसारके दुःख दूर हों।

० ० ०

: ९ :

खोदा पहाड निकली चुहिया

पंडितजीके इस लेखको पढकर अंग्रेजसरकारकी नींद हराम हो गई। उसने प्रथम बडौदा महाराज सयाजीराव गायकवाडका पल्ला पकडा कि तुम पंडितजीपर मुकदमा चलाओ। पर उस देशभक्त और संस्कृतिप्रिय महाराजने टका सा जवाब दे दिया। तब सरकारने कोल्हापूर महाराज शाहूकी तरफ आशा भरी निगाहें फेंकीं और वहां उसका काम बन गया। शाहूमहाराज अंग्रेज सरकारसे जरा दबते थे। इस दब्बूपनका अंग्रेज सरकारने फायदा उठाया। उस समय कोल्हापुरमें सभी देशभक्तों पर आफत बरपा हो रही थी। किन्हींको फांसी देकर, किन्हींको देशनिकाला देकर बहरहाल यह कि सारे देशभक्तोंका सफाया किया जा रहा था और इस प्रकार प्रजामें जो देशके लिए जनून पैदा हो रहे थे, उन्हें दबाया जा रहा था। इस समयके पृष्ठभूमिका चित्रण श्री विश्वनाथ अनन्तने अपने ग्रंथ "संस्थानांतील लोकशाहीचा लढा"× में इस प्रकार किया है— "सन् १९०८ व १९०९ इन दो वर्षोंमें कोल्हापुरमें राजद्रोह और बमप्रकरणकी लहरें अचानक उठने लगीं और शाहु छत्रपति और उनके अधीनस्थ लोगोंने एंग्लो इण्डियन पत्रोंके द्वारा उसका सारा विवरण विलायत तक पहुंचा दिया। अपनी राजभक्ति दिखानेके लिए यही उत्तम अवसर जानकर–शाहुने निरुपद्रवी सात्विकवृत्तिके तथा उद्योग आदिकी वृद्धिके लिए कार्य करनेवाले निरपराधी नागरिकोंपर भी देशद्रोहका मुकदमा चलाकर उन्हें लम्बे समयकी सख्त कैदकी सजा दिलवाकर इस संसारसे ही उठा देनेकी कोशिशें कीं। जिनके विरुद्ध पूरे प्रमाण नहीं मिल सके, उन सम्मान्य और निरपराधी नागरिकोंको करवीर इलाकेसे बाहर निकलवा दिया। इसी समय "विश्ववृत्त" मासिकपत्र पर राजद्रोहका मुकदमा चलाकर उसे अपने शिकंजेमें कस लिया।

× रियासतोंमें प्रजातंत्रकी लडाई।

हरिद्वारसे विश्ववृत्तके मुकदमेके लिए आते हुए रास्तेमें पंडितजी अपने मित्रोंसे और वकीलोंसे मिले। उन सभीने पंडितजीको यही सलाह दी कि वे स्वयं सरकारके पिंजरेमें जाकर बंद न हों। जिसको गरज होगी वह स्वयं ढूंढ लेगा। यह ठीक है कि संकटसे डरना नहीं चाहिए पर स्वयं उसे क्यों बुलायें? "आ बैल मुझे मार" का काम ठीक नहीं है। राजनीति और राजदरबारोंमें घूमनेवाले वकीलोंकी यह सलाह सुनकर पंडितजी दुविधामें पड गए। अपने लेखके मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक पर अपने लेखके कारण आई हुई आफतको आंखोंसे देखकर भी अपनी चमडीको बचाते रहनेकी बात पंडितजीको कुछ भायी नहीं। तो भी वे सीधे कोल्हापुर न जाकर अपने मित्र मोरोपंत मराठेकी सलाह लेनेके लिए बेलगांव चले गए।

अंग्रेजोंने अपने शत्रुओंको नष्ट करनेका निश्चय कर लिया था। विश्ववृत्तमें छपे हुए लेखके कारण अंग्रेजोंको शिकार फांसनेका अवसर मिल गया। इस विषयमें पण्डितजी "आत्मकथा" में लिखते हैं—

"कोल्हापुरकी आंखोंमें प्रो. विजापुरकर खटक रहे थे, अतः उनको दबानेके लिए शाहू उन पर मुकदमा भरनेके लिए तैय्यार हो गए। प्रो. विजापुरकर (सम्पादक); विनायक नारायण जोशीराव (मुद्रक); प्रो. वामन मल्हार जोशी (प्रकाशक); और मैं (लेखक) इन चारोंके नाम वारंट जारी कर दिये गये। प्रथम तीन तो स्वयं हाजिर हो गए और उन पर मुकदमा चालू हो गया। इस मुकदमेके लिए किंकेडसाहबको जानबूझकर बाहरसे बुलाया गया और वे जज बनाये गए।"

"गुरुकुल जाकर मुझे ५-६ महीने ही हुए थे कि इतनेमें ही इस लेखके कारण मेरे नामसे वारंट निकला। यह देखकर गुरुकुलके व्यवस्थापकोंको अच्छा नहीं लगा। मैं भी अदालतमें हाजिर होनेकी इच्छासे गुरुकुलसे निकल पडा और निकलते निकलते मैंने एक और लेख लिखा जिसमें मैंने शाहूको शंखासुर कहकर उनका उपहास किया था। यह लेख 'इन्दुप्रकाश' (बम्बईके एक दैनिक) में छपा। इसके छपनेसे शाहूका पारा और चढ गया, जो स्वाभाविक ही था। ऐसे समय ऐसा लेख लिखना मेरे लिए यद्यपि उचित नहीं था, पर तारुण्यका उन्माद जो होता है, वह जो कुछ भी करवा दे, कम ही है। बम्बई सरकारने मुझे फरार करार दे दिया।"

"मैं हरिद्वारसे निकला और अहमदनगर, पूना, बेलगांव जाकर अपने मित्रोंसे मिला और उन्हें मैंने बताया कि मैं हाजिर होनेके लिए कोल्हापुर जा रहा हूँ। यह सुनकर सभी मित्रोंने सलाह दी कि तुम स्वयं हाजिर मत होओ, अपना काम करते रहो, जब वे स्वयं आकर तुम्हें पकडें, तब हाजिर होना। उसके अनुसार मैं कोल्हापुर न जाकर बेलगांवके पास अनगोल नामक गांवमें मराठे नामके एक धनवान् जमींदारके यहां रहने लगा। उनकी सलाहसे प्रसंगानुसार काम करनेका मैंने निश्चय कर लिया।"

कुरुंदवाडे रियासतके बडा भाग और छोटा भागके रूपमें दो भाग थे, उनमें छोटे भागमें हंगिरगे नामक गांवमें पंडितजी अनगोल गांवके श्री मराठेके घरमें "श्रीदास" के नाममें रहे। उनपर ब्रिटिश सरकारकी नजर थी ही। अतः उसने कुरुंदवाड रियासतकी मार्फत पंडितजीको पकडनेकी तय्यारी की, पर यह बात कानमें पडते ही पंडितजी छुपते छुपाते कुरुंदवाडके बडे भागमें पहुंच गए। इन दोनों भागोंके शासक भिन्न भिन्न थे। इस प्रकार बहुत दिनोंतक पंडितजी राज्यकर्ताओंकी आंखोंमें धूल झोंकते रहे। बेलगांवके आसपास तीन चार रियासतोंकी सरहदें आकर मिलती थीं, वे सरहदें पंडितजीके लिए बहुत सुविधाजनक साबित हुईं। विदेशी सत्ताके सभी गुप्त समाचार पंडितजीको मिलते रहें, पर पंडितजीके कार्यक्रमसे सरकार परिचित न होने पाये, और यदि ज्ञात हो भी जाए, तो भी वह पंडितजीको पकड न पाये, इस प्रकारकी चालबाजियां पंडितजी खेल रहे थे। पंडितजीकी ये चालबाजियां आशातीत रूपसे सफल हुईं। पंडितजी आगे लिखते हैं—

"प्रो. विजापुरकर पर मुकदमा शुरु हो गया और उन पर ६ मासतक मुकदमा चला, अन्तमें उन्हें ३ वर्षकी सख्त कैदकी सजा दी गई। तबतक मैं अनगोल गांवमें ही रहा। इस मुद्दतमें मैंने श्रीमद्भागवत, महाभारत और रामायणका अध्ययन किया और "ज्ञानप्रकाश" के लिए कुछ लेख भी लिखे।"

"प्रो. विजापुरकरके मुकदमेका निर्णय हो जानेके बाद मेरे सामने यह प्रश्न उठ खडा हुआ कि अब मैं क्या करूं? बम्बई, पूना या हैदराबाद जाकर रहना असंभव था। गुरुकुलमें आकर रहना भी असंभव था। इस कारण मद्रासकी तरफ जानेका मैंने निश्चय किया और गोदावरी जिलेके पीठापुर नामक स्थानपर जा पहुंचा। यह स्थान कोकोनाडसे ६ मील दूर है। वहां जाकर मैं पीठापुरके महाराजासे मिला, उन्हें अपनी चित्रकारीके कुछ नमूने भी दिखाये। वे उन्हें पसन्द आ गए और उन्होंने अपने पिता आदियोंके चित्र बनानेका काम मुझे दिया। नोर्दर्न सरकार नामके जो प्रान्त थे, वह यही प्रान्त थे। यहांके राजा बहुत धनवान् थे। उन्हें शासन करनेका जरासा भी अधिकार नहीं था, राजधानीमें भी उन्हें कोई पूछता नहीं था, पर एक एकका वार्षिक उत्पन्न १०-२० लाखके करीब होता था। इस कारण यह प्रान्त मेरे चित्रकलाके कामके लिए बडा उपयुक्त रहेगा, यह सोचकर यहीं रहनेका मैंने निश्चय कर लिया। पहले ही वर्ष पीठापुरके राजासाहबने मुझे ५-६ हजार रु. का काम दिया। काम पूरा करके मैंने पैसे लिए, पर जब हिसाब लगाया तो पता चला कि पिछले दो तीन वर्षोंमें मुझपर कर्ज इतना लद गया था कि उन कर्जोंको अदा करनेपर मेरे पास कुल ३०० रु. बाकी रहते थे।"

"इस समय गुरुकुल वापस जानेका विचार फिर मेरे मनमें आया। निश्चय करके मैं कलकत्ता होता हुआ गुरुकुल जा पहुंचा. वहां पहुंचकर स्वामी श्रद्धानन्दजीसे मिला, सभीको आनन्द हुआ।"

"पर गुरुकुलमें आकर पत्र बांटनेवाला पोस्टमेन सरकारी जासूस था। उसने मेरे आनेकी सूचना कलेक्टरको दे दी। उसके द्वारा जारी किए गए वारंटको लेकर ३०० सिपाही, १० घुड़सवार और ५० बन्दूकधारी पुलिसके आदमी आए और चारों ओरसे उन्होंने गुरुकुलको घेर लिया। स्टेशन रोड पर स्टेशनतक सिपाही खड़े कर दिए गए। दोपहर एक बजेके करीब गुरुकुलको पूरी तरह घेर कर उनका मुख्य घुड़सवार गुरुकुलमें आया और गुरुकुलके संचालकोंसे बोला कि पंडितजीको मेरे कब्जेमें दे दो। यह सब इतनी शीघ्रतासे हुआ कि सबको आश्चर्य हुआ। मेरे आनेके ४८ घंटोंके अन्दर ही अन्दर यह सब कांड हो गया। अंग्रेजोंका सूत्र संचालन इतनी शीघ्रतासे होता था। गुरुकुल पर भी उनका रोष था ही।"

गुरुकुलका सरकारसे बिलकुल स्वतंत्र होना ही उनके सन्देहके लिए पर्याप्त था। आर्यसमाजपर द्रोही होनेका जो सन्देह था, उसमें भी गुरुकुलके सम्बन्धमें इस सन्देहको विशेष पुष्टि मिली। उस सन्देहकी उत्पत्तिके इतिहासमें न जाकर यहां एक गुप्त सरकारी लेखकी कुछ पंक्तियां इस लिए दी जाती हैं जिससे उस सन्देहका रूप पाठकोंके सामने आ जाए।

"आर्यसमाजके संगठनमें अभी जो महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है, वह वास्तवमें सरकारके लिए बहुत बड़े संकटका स्रोत है। वह विकास है गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली। इस प्रांतमें आर्यसमाजकी धर्मके रूपमें आलोचना करते हुए भी उसकी ओर निर्देश करना आवश्यक है। इस प्रणालीमें चाहे कितने ही दोष क्यों न हों, किंतु भक्तिभाव और बलिदानके उच्चभावसे प्रेरित जोशीले धर्मपरायण व्यक्तियोंका दल तैय्यार करनेका यह सबसे सुगम और उपयुक्त साधन है। क्योंकि यहां आठ बरसकी आयुमें बालकोंको माता पिताके प्रभावसे भी बिलकुल दूर रखकर त्याग, तपस्या और भक्तिभावके वायुमण्डलमें उनके जीवनको कुछ निश्चित सिद्धान्तोंके अनुसार ढाला जाता है, जिससे उनके रगरगमें श्रद्धा और आत्मोत्सर्गकी भावना घर कर जाती है। यदि इस प्रकारकी शिक्षाका क्रम आर्यसमाजके सुयोग्य और उत्साही नेताओंकी सीधी देखरेखमें बालकोंकी सत्रह बरसकी आयुतक बराबर जारी रहा, जो कि मनुष्यके जीवनमें सबसे अधिक प्रभाव शाली समय है, तो इस पद्धतिसे जो युवक तैय्यार होंगे, वे सरकारके लिए अत्यन्त भयानक होंगे। उनमें वह शक्ति होगी, जो इस समयके आर्यसमाजी उपदेशकोंमें भी नहीं है। उनमें पैदा हुआ व्यक्तिगत दृढ विश्वास और अपने सिद्धान्तके लिए कष्ट सहन करनेकी भावना, समय आने पर प्राणोंतकको न्योछावर कर देना साधारण जनता पर बहुत गहरा प्रभाव डालेगा। इससे उनको अनायास ही ऐसे अनगिनत साथी मिल जाएंगे, जो उनके मार्गका अवलम्बन करेंगे और उनसे भी अधिक उत्साहसे काम करेंगे। यह याद रखना चाहिए कि उनका उद्देश्य सारे भारतमें एक ऐसे जातिधर्मकी स्थापना करना होगा जिससे सारे हिंदु एक भ्रातृभावकी शृंखलामें बंध जाएंगे। वे सब दयानन्दके सत्यार्थप्रकाशके ग्यारहवें

समुल्लासकी इस आज्ञाका पालन करेंगे कि श्रद्धा और प्रेमसे अपने तन-मन-धन सर्वस्वको देशहितके लिए अर्पण कर दो । ”

इसी सरकारी लेखमें गुरुकुल कांगडीके बारेमें आगे इस प्रकार लिखा है—

‘ सरकारके लिये सबसे अधिक विचारणीय प्रश्न यह है कि इस समय आर्यसमाजके गुरुकुलमें शिक्षा प्राप्त करनेवाले उपदेशकोंका शिक्षा समाप्त करनेके बाद सरकारके प्रति क्या रुख होगा ? इस समयके उपदेशकोंकी अपेक्षा वे किसी और सांचेमें ढले हुए होंगे। जिस धर्मका वे प्रचार करेंगे, उसका आधार व्यक्तिगत विश्वास एवं श्रद्धा होगी, जिसका जनता पर सहजमें बहुत प्रभाव पडेगा । उनके प्रचारमें मक्कारी, सन्देह, समझौता और भयकी गंध भी न होगी और सर्व साधारणके हृदयपर उसका सीधा असर पडेगा । पंजाबकी पुलिसकी रिपोर्टोंमें यह दर्ज है कि सन् १८९९ में जब लाला मुंशीराम अमृतसरके पंडित रामभजदत्तके साथ गुजरात, सियालकोट और गुजरांवालाका दौरा करते हुए धनसंग्रह कर रहे थे, तब उन्होंने सरकारकी निन्दा शरारतसे भरे हुए शब्दोंमें अन्य बातोंके साथ यह कहते हुए की थी कि सिपाही कितने मूर्ख है जो सत्रह-अठारह रुपयोंपर भरती होकर अपना सिर कटवाते हैं । गुरुकुलमें शिक्षित होनेके बाद ऐसा करनेवाले आदमी सरकारको नहीं मिलेंगे । कांगडीमें मनाये जानेवाले गुरुकुलके वार्षिकोत्सवपर कोई साठसत्तर हजार आदमी प्रतिवर्ष इकट्ठा होते हैं । कई दिनोंतक यह उत्सव होता है । पुलिस, स्वास्थ्यरक्षा आदिका सब प्रबंध गुरुकुलके अधिकारी स्वयं करते हैं। बंगालमें मेलोंपर जिस प्रकार स्वयंसेवक सब प्रबंध करते है, वैसे ही यहां ब्रह्मचारी स्वयंसेवकोंका सब काम करते है । संगठनकी दृष्टिसे यह काम बिलकुल त्रुटिरहित है । उत्सवपर इकट्ठा होनेवाले लोगोंका उत्साह भी आश्चर्यजनक होता है । बडी बडी रकमें दानमें दी जाती है और अच्छी संख्यामें उपस्थित होनेवाली स्त्रियां आभूषणतक देती हैं। विचारणीय विषय यह है कि गुरुकुलसे निकले हुए इन संन्यासियोंका राजनीतिके साथ क्या संबंध रहेगा ? इस सम्बन्धमें गुरुकुलकी, महाशय रामदेवकी लिखी हुई एक रिपोर्टकी भूमिका बडी रोचक है । इसके अन्तमें लिखा है कि गुरुकुलमें दी जानेवाली शिक्षा सर्वांशमें राष्ट्रीय है । आर्यसमाजियोंका बायबिल ‘ सत्यार्थप्रकाश ’ है । जो देशभक्तिके भावोंसे ओतप्रोत है। गुरुकुलमें इतिहास इस प्रकार पढाया जाता है, जिससे ब्रह्मचारियोंमें देशभक्तिकी भावना उद्दीप्त हो । उनमें उपदेश और उदाहरण दोनोंसे देशके लिये उत्कट प्रेम पैदा किया जाता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि गुरुकुलमें यत्नपूर्वक ऐसे राजनीतिक संन्यासियोंका दल तैयार किया जा रहा है, जिसका मिशन सरकारके अस्तित्वके लिये भयानक संकट पैदा कर देगा। गुरुकुलकी दीवारोंपर ऐसे चित्र लगे हुए हैं, जिनमें अंग्रेजी राजसे पहलेका भारतकी अवस्था दिखाई गई है । लखनऊके सन् १८५७ के राजविद्रोहके चित्र भी लगाये गये है । बिजनौरके डिस्ट्रिक्ट मॅजिस्ट्रेट मि. एफ्. फोर्डने जोन ऑफ् आर्कका भी वह बडा चित्र गुरुकुलमें लगा हुआ देखा था, जिसमें वह अंग्रेजोंके विरुद्ध सेनाका संचालन कर रही है । ’

[स्वामी श्रद्धानन्द— लेखक सत्यदेव विद्यालंकार, पृ. ३४१ से ३४६]।

इसके आगे पंडितजी लिखते हैं—

"गुरुकुलके सभी विद्यार्थी तरुण, सशक्त और राष्ट्रीय वृत्तिके थे। उन्होंने कहा कि हम पंडितजीको नहीं देंगे। यह सब नीचे चल रहा था और मैं ऊपर आराम कर रहा था। वहींसे मैंने पुलिस और घुडसवारोंको देखा। इसी बीचमें मुझे मालूम पडा कि मेरी खोज करनेके लिए ही सरकारकी इतनी बडी तैयारी है। मैंने गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंसे कहा कि "मैं स्वयं पुलिसके हवाले होता हूं, तुममेंसे कोई भी पुलिस-को न रोके।" उन्होंने मेरी बात मान ली और मैं पुलिसके हवाले हो गया। इसी समय सिपाही मेरे हाथोंमें हथकडियां और बाहुओंमें डोरी बांधकर मुझे कलक्टरके कार्यालयमें ले गये। मुझपर (१) खून करनेका और (२) राजद्रोह करनेका इस प्रकार दो आरोप थे। इसलिए मुझे थानेमें रातभर बंद करके दूसरे दिन बिजनौर सेन्ट्रल जेल ले गए और वहां बेडियां पहनाकर मुझे बंद कर दिया गया।"

"बिजनौरका जेल बहुत बडा था। मुझे कुछ ऐसा याद आता है कि उस जेलमें करीब करीब ६–७ सौ कैदी तो अवश्य ही रहे होंगे। मुझे खूनी कैदियोंके बीचमें रखा गया। रातको आठ बजे सब कैदियोंकी गिनती होती थी, फिर सबकी बेडियोंमें एक बडी मोटी लोहेकी जंजीर पिरोकर उस जंजीरके दोनों तरफ बडे बडे ताले ठोक दिए जाते थे। एक एक जंजीरमें ३०–३० कैदी पिरो दिए जाते थे और रातभर उन्हें उसी प्रकार बांधकर रखा जाता था। पेशाब टट्टीके लिए वहां बर्तन रखे होते थे। हर तीन घण्टोंके बाद कैदियोंकी गिनती की जाती थी। रातके १॥ बजे सबको खडा करके गिना जाता था। इतना कडा बन्दोबस्त होनेपर भी कई कैदी लोहेको बेडी तोडकर, खिडकीकी बारियां तोडकर और दीवार फांदकर भाग जाते थे। ऐसे साहसी कैदियोंके बीचमें मुझे एक महीना रहना पडा।"

"कोल्हापुरसे एक आदमी मुझे पहचाननेके लिए आया। उसने मुझे पहचान लिया और कोल्हापुरके लिए मेरी रवानगी हो गई। चलते समय बेडियां निकाल दी थीं। पर कोल्हापुरतक हाथोंमें हथकडियां और भुजाओंमें रस्सियां पडी रहीं। हर एक बडे बडे स्टेशनोंपर उनका प्रदर्शन होता था। यह ऐसा समय था कि जब इस प्रकारके राजद्रोही कैदियोंपर चारों ओरसे सम्मान बरसता था। हम बिजनौरसे निकले, आगरा होते हुए कल्याण पहुंचनेतक अक्सर स्टेशनोंपर दूध, फल और मिठाई आदि लोग हमें दे जाते थे और कोई कोई तो आकर कुशल समाचार भी पूछ जाते थे। गुरुकुलमें पकडा गया राजद्रोहका कैदी इस समय सम्मानका विषय था। कोई एक मनुष्य अगले स्टेशनके लिए तार दे देता था, जिससे अगले स्टेशनपर भी सम्मानके लिए लोग हाजिर रहते। मेरे साथ तीन सिपाही थे, उन्हें भी यह सब देखकर आश्चर्य होता था। पर उन्हें भी वे सरकारके पदार्थ मुफ्तमें खानेके लिए मिलते थे, इस-लिए वे भी आनन्दमें थे।"

" बिजनौर जेलमें एक मास बिताना पड़ा। उस समय भी वहां किसी सज्जनने मेरे नामपर कुछ रकम जमा करके रोज रातको मेरे लिए उत्तम दूधका इन्तजाम कर दिया था। इस प्रकार खाने पीनेके बारेमें मुझे बिजनौरमें कोई ज्यादा कष्ट नहीं हुए। मेरे काम भी दूसरे कैदी स्वेच्छासे कर देते थे। वे बिचारे कैदी समझते थे कि " मैं पंडित हूँ, इसलिए मुझे जरा भी कष्ट नहीं हो " और इसी दृष्टिसे वे मेरी सहायता करते थे।"

" रेल्का प्रवास करते करते हम कल्याणसे पूना आ पहुंचे और मीरज जानेवाली गाड़ीमें जा बैठे। वहां इन पंजाबी सिपाहियोंकी भाषा कोई समझता नहीं था और मुझे बोलनेकी मनाई थी। वहां पूनाके कॉलेजके कुछ तरुण विद्यार्थी आए और जिस कम्पार्टमेंटमें मैं था, उसीमें वे भी घुसने लगे। सिपाहियोंने उन्हें मना किया। इस पर विद्यार्थियों और सिपाहियोंमें लड़ाई शुरु हो गई, तब एक विद्यार्थीने एक सिपाहीका गला पकड़कर ऐसा धोबीपाट लगाया कि वह चारों खाने चित्त दिखाई पड़ा। भीड़ जुट गई। स्टेशनके अधिकारी आए। तब मैंने विद्यार्थियोंसे कहा कि " मैं एक कैदी हूँ, ये पुलिसके सिपाही हैं। इसका विचार करके तुम्हें जो करना हो करो। " इस प्रकार कह सुनकर वह लड़ाई खत्म हुई। दूसरे दिन शाम हम कोल्हापुर पहुंचे और थानेदारके कार्यालयमें मुझे हाजिर किया गया। इसके बादमें बेड़ियां, हथकड़ियां और भुजाओंकी रस्सियां हटा दी गईं।"

" दूसरे दिनसे मेरे लिए होटलसे उत्तम भोजन मिलने लगा। पढ़नेके लिए वेदभाष्य और अखबार मिलने लगे। तीसरे दिन शाहू महाराज अपने राजमहलमें मुझे ले गए और वहां करीब ३ घंटे तक मेरे साथ बातचीत करते रहे। मुझे चाय और बिस्किट खानेके लिए दिए।" (पंडितजीका यह चायपान अपने जीवनमें प्रथम और अन्तिम साबित हुआ— अनुवादक)

" उन्होंने मुझे सलाह दी कि तुम अपना कोई वकील करके अपने बचावका प्रयत्न करो।"

" मैं थियॉसॉफिकल सोसायटीकी अन्तरंग सभाका सदस्य था, इसलिए श्रीमती एनीबेसेन्टने अपने हस्ताक्षरसे युक्त एक पत्र महाराजको भेजा जिसमें श्रीमती एनीबेसेन्टने लिखा था कि पंडितजीके साथ सहानुभूतिका व्यवहार किया जाए। इस पत्रको देखकर महाराज समझ गए कि मेरा (पंडितजी) का परिचय बड़े बड़े लोगोंसे है। महाराजको यह भी पता था कि ग्रंथ लिखनेके कारण महाराज सयाजीरावसे भी मेरा सम्बन्ध है। इन सभी कारणोंसे महाराजने मुझे ऐसे वातावरणमें रखा कि मेरा वहांका निवास सुखकर हो सका।"

" पहले पहल मेरा मुकदमा श्री भास्करराव जाधवकी अदालतमें चला। उन्होंने झूठके आरोपको अप्रमाणित ठहरा कर उस आरोपसे मुझे निर्दोष छुड़वाकर राज-

द्रोहके आरोपका मुकदमा सेशन जजके पास भेज दिया। पर न्यायाधीश श्री पंडितरावकी अदालतमें राजद्रोहका दूसरा आरोप भी सिद्ध न हो सका, इसलिए उन्होंने भी मुझे निर्दोष करार देकर छोड दिया।"

अपना बचाव करते समय पंडितजीने अदालतमें जवाब देते हुए कहा था कि—

"न्यायमूर्ति! मैं वेदोंका पुजारी हूँ, उनका कट्टर भक्त हूँ। उन वेदोंकी आज्ञा है कि यदि देश परतंत्र हो जाए, तो क्षत्रियको जागृत करके देशको पारतंत्र्यसे मुक्त कराना ही सच्चे ब्राह्मणका काम है। मैं ब्राह्मण हूँ। आप जो कहते हैं, वह सब मैंने लिखा है। पर वह सब मैंने क्षत्रियको जागृत करनेके लिए लिखा है। अतः उसे लिखनेके बारेमें न मुझे पश्चात्ताप हुआ, न है और न होगा। अतः आपको मेरे बारेमें जो निर्णय देना हो, खुशीसे दें।"

इसके बाद पंडितजी लिखते हैं—

"पर इतना सब होनेके लिए कोल्हापुरमें एक वर्ष लग गया। मेरी मुक्तता होते ही मैं स्टेशन पर आया और बेलगांव रवाना हो गया, क्योंकि मुझे यह मालूम पडा कि कोल्हापुरमें रहनेसे मुझे फिर गिरफ्तार किया जा सकता है।

"सेशन्स जज श्री पंडितरावने न केवल मुझे मुक्त ही किया, अपितु (प्रो. विजापुरकर आदियोंको सख्त कैदकी सजा देनेवाले) अंग्रेज न्यायाधीश किंकेडसाहबके निर्णयकी आलोचना भी की, परिणाम यह हुआ कि उन्हें न्यायाधीशके पदसे च्युत कर दिया गया। वास्तवमें उनपर यह अन्याय ही हुआ। प्रो. विजापुरकर, जोशीराव और जोशीको मेरे लेखके कारण बिना बात कष्ट भोगने पडे। पर वह समय ही ऐसा था।"

कोल्हापुरसे निकलनेके बाद पंडितजीके सामने एक यक्ष प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि अब कहां जाकर अपना पडाव डाला जाए। पूना—बम्बई या कहूँ कि सम्पूर्ण महाराष्ट्र पंडितजीके लिए अनुकूल नहीं था। १९०९ में नासिकमें शारदा नाटकके प्रयोगके दौरान ही जक्सनकी हत्या कर दी गई थी। इस हत्याके कारण सारे महाराष्ट्रमें सरकार चौकन्नी हो गई थी और उसने बडे पैमानेपर धरपकड करना शुरु कर दी थी। इसलिए पंडितजीका महाराष्ट्रमें रहना आगे जाकर उनके लिए खतरनाक साबित हो सकता था। उस समयकी राजनैतिक परिस्थिति कुछ शिथिलसी हो गई थी। लोकमान्य मांडलेमें बंद हो चुके थे। बंगालके अरविन्द बाबू पांडिचेरी जाकर बैठ गए थे, अनेक पिस्तोलबाज तरुण अण्डमानकी हवा खानेके लिए भेज दिये गए थे। केवल पंजाबमें एक ज्योति जगमगा रही थी और वह ज्योति थी— पंजाब केसरी लाला लाजपतराय। लालाजीकी छत्रछायामें दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता हुआ आर्यसमाज पंजाबका सिरमौर बना हुआ था। अतः पंडितजीको वही प्रान्त अपने लिए अनुकूल प्रतीत हुआ।

पंडितजीको इस समय दो वस्तुस्थितियोंका सामना करना था। एक उदरपालन–इसके लिए पंडितजीके पास चित्रकलाका हुकमी इक्केका पत्ता था। चित्रकारके रूपमें उनकी कीर्ति हवा पर सवार होकर जयपुरतक पहुंच गई थी। हैदराबादमें रहनेके कारण मुसलमान भी उन पर विश्वास करते थे। दूसरा था– उनका ध्येय। वैदिक ऋषियोंके आदेशोंको घर घरतक पहुंचाना ही उनका उद्देश्य था। लाहौरमें आर्यसमाजी होनेके कारण वेदाध्ययन और वेद प्रचारके लिए परिस्थिति पंडितजीको अनुकूल प्रतीत हुई। अब भी यदि पंडितजी गुरुकुल कांगड़ी गए होते तो स्वामी श्रद्धानंदजी एवं अन्य गुरुकुलवासी उनका हार्दिक स्वागत करते। पर पंडितजीको यह डर था कि उनके कारण गुरुकुल पर फिर किसी प्रकारकी आंच न आए। इसलिए उन्होंने लाहौर जानेका निश्चय किया। इस बारेमें पंडितजी लिखते हैं—

"(कोल्हापुरकी आपत्तिसे मुक्त होनेके बाद) मेरे सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि अब मैं कहां जाऊं और कहां रहूँ। हैदराबादसे तो मैं पहले ही निर्वासित हो चुका था। कोल्हापुरमें मुकदमा चला। बम्बई-पूना पहलेसे ही मेरे लिए प्रतिकूल, क्योंकि बम्बई सरकार मुझ पर पहलेसे ही रुष्ट थी। उसीने मेरी पुस्तकें जब्त करके जला दी थीं और मेरे लेखके कारण मेरे ऊपर मुकद्दमा चलाया था। इसलिए मैंने पंजाब जाकर रहनेका निश्चय किया और श्री स्वामी श्रद्धानन्दजीकी सम्मति लेकर १९०९ के अन्तमें मैं लाहौरके लिए चल पड़ा।"

० • ०

: १० :

लाहौरका लाक्षागृह

लाहौर उन दिनों आर्यसमाजका गढ माना जाता था। यहां आर्यसमाजने चतुर्दिक् क्रान्ति फैला रखी थी। उसमें देशभक्तिकी भावना भी बडे जोरसे लहरा रही थी। इस कारण आर्यसमाज भी अंग्रेजोंकी नजरोंसे न बच सका। प्रजाओंमें भी कुछ व्यक्ति आर्यसमाजके विरोधी थे। उन विरोधियोंमेंसे आत्माराम सनातनी बहुत गन्दे शब्दोंमें आर्यसमाजके विरोधमें प्रचार किया करते थे। अतः उनको पाठ पढानेके लिए सरकारकी तरफसे सन् १९०२ में इलाहाबादमें और १९०५ में करांचीमें उन पर दावा दायर किया गया। करांचीमें दाखिल किए गए मुकदमेमें आत्मारामने अपना बचाव करते हुए यह कहा कि आर्यसमाज एक राजद्रोही संस्था है और उसका सर्वमान्य ग्रंथ "सत्यार्थप्रकाश" राजद्रोहको उत्तेजना देनेवाला ग्रंथ है। पर वहां उसकी दाल न गली। पर श्यामजी कृष्ण वर्मा इंग्लैण्डमें और फ्रांसमें रहकर जो क्रान्तिका कार्य कर रहे थे, उनके उन राजनैतिक कार्योंको उन्हें आर्यसमाजी बताकर आर्यसमाजके सिर पर लाद दिया गया। लाला लाजपतरायको देशसे बाहर निकाल दिया गया। यद्यपि सरदार अजीतसिंह (सरदार भगतसिंहके चाचा) का आर्यसमाजके साथ तिलभर भी संबन्ध नहीं था, पर उपनिवेशवादके प्रस्तावके विरोधमें क्रान्ति करते ही उन्हें लोग आर्यसमाजी मानने लगे। भाई परमानन्दके घरकी तलाशी लेनेके बाद अंग्रेज सरकारको आर्यसमाजके राजद्रोही होनेमें जरा भी शंका न रही। इसी बीच महर्षि दयानन्दने गोवध-बन्दीके लिए प्रयत्न करने शुरु किए, पर महर्षिके इस अराजनैतिक कार्यमें भी सर वैलेण्टाइन चिरोलको राजनीतिकी बू आई। १९०७ सन्में रावलपिण्डीमें हुए दंगेमें पकडे गए आर्यसमाजी यद्यपि निर्दोष छूट गए थे, पर फिर भी आर्यसमाज पर पंजाब और उत्तरप्रदेशमें राजद्रोही आन्दोलन चलानेका

आरोप "सिरोल" नामक पत्रने लगा ही तो दिया। सोलहवीं शतीके प्रारंभमें गुरु नानकके द्वारा शुरु किये गये धार्मिक आन्दोलनने आगे जाकर हरगोविन्दसिंहके कारण जिस प्रकार एक राजनैतिक आन्दोलनका रूप धारण कर लिया था, उसी प्रकार आर्यसमाजकी भी दशा होगी, ऐसी कुछ भविष्यकालीन कल्पना लोगोंके दिमागमें घर करती जा रही थी। डी. ए. वी. कॉलेज लाहौरमें एक बंगाली प्राध्यापककी नियुक्ति और जंगलके एकान्तमें गुरुकुलकी स्थापना ये सब बातें सरकारकी कल्पनाको और ज्यादा दृढमूल बना रही थीं।

आर्यसमाज, उनके कार्यकर्ता और उनके द्वारा चलाई गई सभी संस्थाओंपर सरकार क्रुद्ध थी। अंग्रेज सरकार इस बात पर भी नाराज थी कि ये गुरुकुलवाले सरकारी मदद क्यों नहीं स्वीकार करते। पर यह बात भी सहज बुद्धिगम्य थी कि स्वतंत्र रीतिसे स्वसंस्कृति एवं राष्ट्रकी शिक्षा प्राप्त करनेवाले गुरुकुलीय ब्रह्मचारी शिक्षाके साथ साथ राष्ट्रसेवाके कार्यमें भी पूरी तरह दक्ष एवं सावधान थे। १९०७ के अकालमें इन ब्रह्मचारियोंने अपना दूध बन्द करके वह सब अकालग्रस्तोंको दे दिया था। सन् १९०८ में दक्षिण हैदराबादके अकालग्रस्त लोगोंकी सहायताके लिए ब्रह्मचारियोंने धान्य और पैसे एकत्रित करके भेजे थे। १९११ सन्में उन्होंने गुजराती भाइयोंकी तरफ अपनी सहायताका हाथ बढाया था। १९१३ सन् में अफ्रीकामें गाँधीजी द्वारा चलाये गए सत्याग्रहके लिए गोपालकृष्ण गोखलेने सभी देशवासियोंसे मदद माँगी, तो गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंने अपने एक समयका भोजन बचाकर तथा मजदूरी करके १५०० रु. इकट्ठे करके अफ्रीका सत्याग्रहके लिये भेजे थे। यह ब्रह्मचारियोंका सेवाभाव ही था, कि जो गोखलेके गुरुकुलपर अपार प्रेमका कारण बना। इसीलिए उन्होंने इलाहाबाद कॉंग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष सर वेडर्नबर्नको गुरुकुलके इतिहासकी जानकारी दी, उससे प्रभावित होकर कॉंग्रेस अध्यक्षने कलकत्तेके बडे लाटको समझाया। पर उससे गुरुकुलपर सरकारी रोषमें कुछ कमी आ गई हो, ऐसी कोई बात नहीं हुई। १९१३ में गुरुकुलपर पुलिसकी बडी कडी नजर थी, यह देखकर सबको दुःख हुआ। ऐसी स्थितिमें अपने कारण भूलकर भी गुरुकुलको कष्ट न हो, इसीलिए पंडित सातवलेकरजी लाहौर चले गए। पर बीच बीचमें वे गुरुकुल भी हो आते थे। म. गांधी तथा पंडितजीका परिचय वहीं पर दृढ हुआ।

चित्रकार और वैदिकविद्वान्के रूपमें पंडितजीके लाहौर आकर रहनेपर डॉ. सत्यपाल, डॉ. किचलू, लाला लाजपतराय, लाला हरकिशनलाल आदि सहयोगी पंडितजीको मिल गए। उनके चित्र काश्मीर, पटियाला, जयपुर, ग्वालियर आदि स्थानोंपर अभिनन्दनीय माने गए, उसी प्रकार उनके व्याख्यान भी मुलतान, रावलपिंडी, पेशावर आदि स्थानोंपर और पूरे पंजाबके लोगों पर प्रभावशाली साबित हुए।

महर्षिके आदर्श थे कि आर्यसमाजके धर्मके अनुसार राज्यशासनमें परिवर्तन हों, गुरुकुलोंको स्थापित करके तरुण पीढियोंको तैय्यार किया जाए, इन तरुणों और

जनताको वैदिकधर्मका तत्त्व समझाया जाए और "समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्या एकराट्" इस ऐतरेय ब्राह्मणके वचनानुसार आर्योंका चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया जाए। ऐसे उत्तम आदर्शोंको माननेवाले आर्यसमाजमें पंडितजी एक श्रेष्ठ विद्वान्के रूपमें माने जाने लगे। हैदराबादमें रहते हुए पंडितजी अपने "यज्ञविषयक-शास्त्रार्थ" के कारण पहले ही प्रथितयश हो चुके थे। अतः लाहौर पहुंचने पर लाहौर-वासियोंकी तरफसे उनका बड़ा भावभीना स्वागत किया गया। उनके व्याख्यानोंने पंजाब भरमें वैदिकधर्मका शंख फूंक दिया। इस विषयमें पंडितजीकी वाणी सुनिए—

"(लाहौर पहुंचनेके) प्रथम सप्ताहमेंही मेरे व्याख्यान आर्यसमाज एवं अन्य स्थानोंमें होने लगे। उस समय जो आर्यसमाजमें प्रसिद्ध हो जाता उसे लोग पूरे पंजाबमें प्रसिद्ध हुआ मानते थे। इस कारण छै महीनोंमें ही पंजाब भरमें एक उत्तम पंडितके रूपमें मेरी प्रसिद्धि हो गई।"

"एक तरफ मैंने चित्रकला और फोटोग्राफीका उद्योग करना शुरु किया। मैंने एक तरहसे यह निश्चय ही कर लिया था कि इस व्यापारमें मुझे जो पैसे मिलेंगे, उन्हें मैं ग्रंथलेखन एवं उनके प्रकाशनके कार्यमें खर्च कर दूंगा। इस चित्रकलाके व्यवसायके कारण उन दिनों मेरी मासिक आय करीब डेढ हजार रुपये हो गई थी। काश्मीर, पटियाला आदि रियासतोंसे मुझे बहुत सा काम मिला और फोटोग्राफीका व्यवसाय भी दिनोंदिन बढता गया। फोटोग्राफीके विषयमें अनेक पत्र-पत्रिकायें अमेरिकासे मंगवा कर मैं पढता था और उनके आधार पर मैं फोटोग्राफीमें नये नये प्रयोग भी करता था, इस कारण लोगोंका मेरी तरफ आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था।"

"उन दिनों लाला लाजपतराय और उनकी अपेक्षा भी बढे चढे क्रान्तिकारी पंजाबमें सर्वत्र फैले हुए थे। पंजाब एक ऐसा प्रान्त था कि वहांके लोगोंको एक बार उत्तेजित कर दिए जाने पर वे लोग क्या कर बैठें, कुछ कहा नहीं जा सकता था। अम्बाप्रसाद सूफी, लाला हरदयाल आदि नेता उस समय पंजाबमें थे और वे सब उत्कृष्ट क्रान्तिकारी माने जाते थे।"

"एक बार १९१२ के नवम्बर महीनेमें लाहौरमें एक बडी भारी सभा हुई, उस सभामें इन नेताओंको आगके शोले बरसानेवाली तकरीरें हुईं। सुबहका वक्त था। ९ बजे तक अर्थात् तकरीबन दो घण्टे तक यह सभा चली। उन तकरीरोंको सुनकर जनता इतनी भडकी, कि उसने सभामेंसे निकल कर पहला काम जो किया, वह था मिशन स्कूलको जलाना। इतने पर ही जनताकी भडक ठण्डी नहीं हुई, माल्रोड पर जाकर जनताने यूरोपियनोंकी दूकानें लूटीं और तोड फोड कर अधिदेवताको तृप्त किया। तकरीबन ५० हजार लोगोंकी झुण्ड दुपहर २ बजे तक इस प्रकार रावणके अशोक वनका ध्वंस करती रही। पर आगे जाकर इस जनताको गोलियोंका सामना

करना पडा और तब जाकर शान्ति स्थापित हुई। पर इस दौरानमें यूरोपियनोंको करीब १५ लाख रु. का नुकसान सहना पडा। "

"पंजाबमें रहते हुए मेरे व्याख्यान आर्यसमाजमें हमेशा होते थे। आर्यसमाजके वार्षिक उत्सवों और गुरुकुलके उत्सवोंमें मेरे व्याख्यान होनेके कारण पंजाबभरमें मेरी प्रसिद्धि अनायास ही हो गई। मैंने देखा कि वेदोंमें राज्यशासन, समाजशासन, राज्यक्रान्ति, प्रजाकी उन्नति, राजाको पदच्युत करना, विजयकी तैय्यारी आदि विषयों पर यथेष्ट मंत्र मिल सकते हैं। अतः उन मंत्रोंके आधार पर मैंने नये नये विषय लोगोंके सामने प्रस्तुत करने शुरु किए। इस कारण वैदिक व्याख्यानोंमें लोगोंकी रुचि बढने लगी। मैं वेद और धर्मको छोडकर केवल राजनीति पर कभी नहीं बोलता था। वेदमंत्रोंके आधारपर किसी भी विषयपर भाषण दिया जा सकता था, इसलिए दूसरे विषयोंपर बोलनेकी आवश्यकता ही नहीं पडती थी। "

"लाला लाजपतराय उपाधिधारी पर आगसे भरे हुए क्रान्तिकारीके रूपमें पंजाबमें सर्वमान्य थे। भाई परमानन्द अन्दर और बाहर एक जैसे थे, और स्पष्ट वक्ता एवं सत्यवक्ता थे। इसी कारण उनके अनुयायियोंका एक पृथक् दल न बन सका। लाला हरदयाल और अम्बाप्रसाद सूफी आदियोंके अपने अपने अलग अलग क्रान्तिकारी दल थे, और वे अपनी उत्तेजक भाषासे जनसमुदायको जिस काममें प्रवृत्त करना चाहते, कर देते थे। उनका मत था कि दंगोंसे देशभरमें अराजकता निर्माण कर दी जाए, तभी उसमेंसे एक नई राज्यव्यवस्थाकी स्थापना की जा सकेगी है। अन्तमें लाला हरदयालको सरकारने देशनिकाला दे दिया और वे अमेरिका चले गए। "

"गुरुकुलों एवं आर्यसमाजोंपर अंग्रेज सरकारकी क्रूरदृष्टि थी। मुझे आर्यसमाजमें रहकर आर्यसमाजी पद्धतिसे राष्ट्रको उन्नत करना पसन्द था, + इसलिए पंजाबमें मैंने दौरा करना शुरु किया। "

"गुरुकुलके उत्सवमें करीब २५००० लोगोंकी भीड जुट जाया करती थी। और वह सारा जनसमुदाय तीन दिन तक सर्दी गर्मी सहन किया करता था। इस उत्सवमें २-२ लाख रु. गुरुकुलके कोषमें जमा हो जाते थे। स्वामी श्रद्धानन्द सरकारी अधिकारियोंको कभी नहीं बुलाते थे। तरुणोंको १२ वर्षतक एकान्तमें रखकर शिक्षा दिया करते थे। ये तरुण भी इतने निर्भीक थे कि बाघ और हाथीसे भी लडनेमें नहीं डरते थे। यह सब देखकर अंग्रेज सरकारका सिर दर्द करता था। "

"मैं गुरुकुलमें अध्यापक था। मुझपर सरकारने राजद्रोहका मुकदमा चलाया,

---

+ आर्यसमाजकी पद्धति थी– धर्मानुसार राज्यशासन परिवर्तन, गुरुकुलोंकी स्थापना, तरुण पीढीको वैदिकधर्मके तत्त्वोंसे अवगत कराना और इस प्रकार आर्योंके चक्रवर्ती राज्यकी स्थापना।

मेरी वैदिक पुस्तकें जब्त कर लीं और मैं ऐसी संस्थाओंमें रहकर वैदिक राज्यस्थापनाका प्रचार करता हूँ, इस कारण मैं सरकारकी क्रूरदृष्टिका शिकार बना और इसी कारण मुझे सरकारकी तरफसे चित्रकारीका काम मिलना बंद हो गया और दूसरे भी तरीकोंसे मुझपर अनेक प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे।"

"इन दिनों पंजाबमें बैंक, बीमा कम्पनियां तथा दूसरे भी कारखाने खोलकर लोगोंके औद्योगिक जीवनका स्तर चढानेकी दृष्टिसे काम करनेवाले लाला हरकिसनलाल बहुत बड़े व्यक्ति माने जाते थे। उन्होंने पंजाबमें बैंक आदि खोलकर हजारों जवानोंको काम दिलाया, पर सरकारको उनका यह काम भी पसन्द न था।"

"डॉ. सत्यपाल एक दूसरे दलके नेता थे। इनका विचार था कि हिन्दु मुसलमानोंकी एकता स्थापित करके प्रजाशक्तिके संगठनके आधार पर स्वराज्यकी स्थापना की जाए। इनके साथ मुसलमान नेता डॉ. किचलू भी थे। डॉ. किचलू मुसलमानोंको हिन्दुओंसे दोस्ती करनेके लिए प्रोत्साहित किया करते थे, जो सरकारको बिल्कुल नापसन्द था।"

"मैं आर्यसमाजी दलका था। उस समय आर्यसमाजकी शक्ति पंजाबमें आकाश चूम रही थी। अतः ऐसी संस्थामें शामिल हो जानेके कारण अंग्रेजसरकार मुझ पर भी रुष्ट थी। पर वास्तविकता यह थी कि राजनैतिक आन्दोलनोंसे तिलमात्र भी मेरा सम्बन्ध न था।"

"विभिन्न कारणोंसे लाला लाजपतराय, लाला हरकिसन लाल, डॉ. सत्यपाल और किचलू आदि नेताओं पर सरकारका गुस्सा दिन-ब-दिन बढता गया और उनमें मेरा नाम भी सरकारने बिना किसी कारणके शामिल कर लिया। इन नेताओंमें केवल लाला लाजपतरायका ही राजनैतिक आन्दोलनोंसे सम्बन्ध था। बाकीके तीनों राजनैतिक आन्दोलनोंसे दूर ही रहते थे और मैं तो फक्त धार्मिक आन्दोलनोंमें ही सहभागी होता था। पर सरकारने उपरोक्त पांचोंको ही पकड़नेका निश्चय किया। लाला लाजपतराय अमेरिका चले गए।"

"मेरे घर पर भी १९१७ के अक्टूबर महीनेमें सरकारी पहरा बैठा दिया गया और मेरे पास आनेजानेवालोंके नाम तथा वे मेरे घरमें कब घुसते हैं और कब वहांसे निकलते हैं वगैरह वगैरह सभी बातोंको नोट किया जाने लगा। मेरे घर और स्टूडियो दोनों जगहों पर रात दिन पहरा रहता था। तीन तीन घण्टेके बाद पहरेदार बदल दिए जाते थे। उपरोक्त चारों नेताओंके घरों पर इस प्रकार पहरा बिठला दिया गया था। लाला लाजपतराय पंजाबके अनभिषिक्त राजा थे। राजनैतिक आन्दोलनोंके प्राण थे, अतः उन पर सरकारका नाराज होना स्वाभाविक ही था। पर वे अमेरिका चले गये थे। धनकी दृष्टिसे बहुत बड़े ला. हरकिसन लाल

राजनैतिक आन्दोलनकारियोंसे बोलने तकके लिए तैय्यार न थे। डॉ. सत्यपाल विभिन्न जातियोंमें प्रेम बढानेके लिए काम करनेवाले थे और डॉ. किचलू तो केवल सत्यपालके सहकारी ही थे। और मैं तो आर्यसमाजके धार्मिक क्षेत्रसे कभी बाहर नहीं गया। लाला लाजपतराय एक बार गुरुकुल आए थे तब हम दोनों एक ही मंचसे बोले थे। इस प्रकार राजनैतिक आन्दोलनोंसे कोसों दूर रहनेवाले भी पंजाबके ओडवायर सरकारकी आंखोंके लिए कांटे बने हुए थे। आज भी मुझे रह रह कर इसका आश्चर्य होता है। ओडवायर इस प्रकार सरकारी शक्तिका बिना कारण अपव्यय करनेमें लगा हुआ था। "

" लाला लाजपतराय और मैं दोनों आपसमें मिलते और बोलते भी थे पर हम दोनोंके भाषणोंके क्षेत्र पृथक् पृथक् थे। राष्ट्रीयतिका हम दोनोंका ध्येय यद्यपि समान था, पर कार्यपद्धति बिल्कुल अलग अलग थी। तथापि ओडवायरने पकडकर हमें कैदमें डालनेका विचार किया।

" सरकारी कार्यालयोंमें हमारे आदमी थे और उन कार्यालयोंमें होनेवाली गुप्त बातोंकी सूचना हमें मिल जाती थी। इसके अलावा हमारे घर जो पहरा बैठा दिया गया था उससे भी हमारा माथा ठनक गया था कि भविष्यमें कुछ न कुछ गुल जरूर खिलनेवाला है।"

"अब इस अवस्थामें मेरे सामने बडा भारी प्रश्न तो यह था कि यदि मैं पकडा गया तो इस परप्रान्तमें मेरी स्त्री और बच्चोंकी देखभाल कौन करेगा? मेरे साथ पकडे जाने वाले बाकी नेताओंके लिए वहांकी परिस्थिति अनुकूल थी, अतः उनका परिवार वहां सुरक्षित रह सकता था, पर मेरी स्थिति वैसी न थी। अतः "क्या करने और कहां जानेका" जो प्रश्न मेरे सामने था, वह आसानीसे हल होनेवाला नहीं था। इन सभी परिस्थितियोंका विचार करके मैंने स्वयं पंजाब छोड देनेका निश्चय किया और उस निश्चयके अनुसार अपनी चलती हुई दूकान अपने एक शिष्य ला. हेमराज सब्बरवालको बेच दी और पंजाब छोडनेके अपने निश्चयसे अपने मित्रोंको अवगत करा दिया।"

"मेरे पंजाबी मित्रोंको मेरे इस निश्चयसे बहुत दुःख हुआ। मैं जो आर्यसमाजका काम करता था, उसे करनेवाला मेरे मुकाबलेका पंडित वहां कोई नहीं था। पर अपनी परिस्थितिका विचार करनेपर मुझे कोई दूसरा उपाय नहीं दीखा। इस कारण पंजाब छोडनेका मेरा निश्चय अटल रहा।"

"पंजाबियोंकी मनोवृत्ति उत्साही, साहसी और निश्चय किए कार्यको शीघ्रसे शीघ्र पूर्ण करनेवाली होनेके कारण मुझे बहुत पसन्द आई और पंजाबके बडे शहर लाहौरमें मेरे हजारों मित्र बन गए। पंजाबी मित्र इतने पक्के होते हैं कि वे समय पडने पर अपने मित्रके लिए जान भी देनेसे नहीं हिचकिचाते। यह दिलदारी

उनके व्यवहारमें भी स्पष्ट झलकती है। मैं यद्यपि अनेक प्रान्तोंमें घूमा और रहा भी हूँ पर पंजाबके समान समरसता मुझे दूसरी जगह देखनेको नहीं मिली। इस कारण मैं पंजाबके लाहौरके एक उपनगरमें जगह लेकर एवं घर बांधकर वहीं स्थायी-रूपसे रहना चाहता था, पर मुझे ऐसा दिखाई दिया कि सरकार मुझे वहां रहने नहीं देगी। इसलिए पंजाब छोडनेके सिवाय और कोई उपाय मुझे नहीं दीखा।"

"१०–१२ वर्षके लडके स्कूलसे आते जाते थे और उनमें किन्हीं किन्हीं लडकोंमें जरासा झगडा हो जाता तो वे दोनों लडके रास्तेपर ही बस्ता फेंककर ताल ठोककर द्वन्द्व युद्धके लिए तैय्यार हो जाते। जब यह द्वन्द्व शुरु हो जाता तो गाडियोंका आना जाना भी बन्द हो जाता और उस रास्ते परसे जानेवाले लोग चारों ओर खडे होकर उसे अखाडेका रूप दे देते थे। कुछ लोग एक लडकेकी तरफ तो कुछ लोग दूसरे लडकेकी तरफ होकर उन लडकोंको उत्साहित किया करते थे। जबतक वे लडके अच्छी तरह थक नहीं जाते थे, तब तक लोग भी उन्हें छुडानेका प्रयत्न नहीं करते थे। इतना ही नहीं वे लोग उन लडकोंको "यह पेच लगाओ यह दांव लगाओ" यह कहकर दांवपेच भी बताते जाते थे। इस प्रकारके द्वन्द्व मैंने पंजाबमें अनेकों बार देखे। बचपनसे ही इस प्रकारकी वीरवृत्ति बढानेकी तरफ लोगोंकी प्रवृत्ति थी और यह प्रवृत्ति मुझे बहुत पसन्द आई।"

"रास्तेपर दौडनेवाले तांगे और गाडियां ऐसे समय दूसरे रास्तोंपरसे जाती थीं अथवा दर्शकगण ही आधा रास्ता खुला कर देते थे, पर कुश्ती लडनेवाले बच्चोंको छुडाते नहीं थे। इस प्रकारकी हजारों घटनायें पंजाबमें होती थीं।"

"आर्यसमाजके चुनावोंमें वस्तुतः झगडे होनेके कुछ भी कारण न थे, पर स्वा. श्रद्धानन्द गुरुकुल पक्षके नेता थे और ला. हंसराज कालेज पक्षके नेता थे, चुनावोंके दौरान इन दोनों नेताओंके अनुयायियोंके बीचमें लाठियां चल जाती थीं और विद्वानोंकी सभाओंमें भी मारपीट होकर रक्त बहता था। ऐसी दुर्घटनायें भी मैंने पंजाबमें कई जगह देखीं।"

"पंजाब छोडनेका मेरा निश्चय होते ही श्री कृष्णजीने अपने "प्रकाश" नामक उर्दू पत्रमें मेरे जानेके सम्बन्धमें अनेक लेख लिखे और पंजाबमें मेरे द्वारा किए गए कामोंकी बहुत बहुत प्रशंसा की। साथमें उन्होंने यह भी लिखा कि मेरी विदाई उत्तम प्रकारसे की जाए। उसके अनुसार लाहौरमें एक सार्वजनिक सभा हुई और उसमें पंजाब निवासियोंने मेरा सम्मान किया और मेरे ५–६ सौ मित्र मुझे पहुँचानेके लिए स्टेशन पर भी आए। उन्होंने मेरे उस दिन कमसे कम नहीं तो ८०–९० हार तो अवश्य ही पहनाये होंगे। पर इतने हार एकदम पहनाना संभव नहीं था, अतः एक हार निकालकर दूसरा पहनाना पडता था। यह ठाठ–बाटकी विदाई किसी किसीकी ही होती है। इस प्रकार उस दिन लाहौर स्टेशनपर एक अपूर्व समारंभ हुआ। मैंने ये हार अपने डिब्बेमें बैठे हुए लोगोंमें बांट दिए।"

" हमारे डिब्बेमें हमारे साथ दिल्लीतक पुलिस आई। दिल्लीमें गाडी बदलकर मैं बम्बई आ गया। इस कारण दिल्लीके आगे मुझे पुलिसके आदमी दिखाई नहीं पडे। मैं बम्बईसे औंध आ गया और वहीं रहने लगा। औंधके राजा श्री बालासाहेब पंतने मुझे औंधमें आकर रहनेके लिए बुलाया, इसलिए उनके कथनको स्वीकार करके मैं औंध आ गया।"

बीसवीं सदीके प्रारंभमेंसे ही लाहौर अनेक प्रसिद्धनेताओंका कार्यक्षेत्र बन चुका था। सुप्रसिद्ध गायक शिरोमणि पं. विष्णु दिगम्बर पलुसकरने लाहौरमें गान्धर्व महाविद्यालयकी स्थापना की, वहाई और कालान्तरमें वह संस्था एक लोकप्रिय संस्था बन गई। सर्वश्री सप्रे और आठवलेने " हिन्दी केसरी " नामक एक पत्र निकालकर लोकमान्यके राजनैतिक विचारोंको पंजाब तक पहुंचाया और वहां प्रत्येक पंजाबी भाईके हृदयमें इन राजनैतिक विचारोंने घर कर लिया। पंडित सातवलेकरजीकी चित्रकला लाहौरमें लोकप्रिय हो ही गई थी, पर उसकी भी अपेक्षा उनकी वेदविद्यामें निपुणताका प्रभाव लोगोंपर अच्छा पडा। हैदराबादमें रहते हुए आर्यसमाजमें वेद तथा अन्य संस्कृत ग्रंथोंका गहरा अध्ययन करके वैदिक धर्मको पुनरुज्जीवित करनेके लिए पंडितजी आर्यसमाजके सदस्य हो गए। महर्षि दयानन्दने पंजाबमें आर्यसमाजके द्वारा वैदिकधर्मकी प्रतिष्ठा करके ईसाई और मुसलमानोंके धर्म प्रचारके आक्रमणात्मक कार्योंके वेगको रोक दिया और वेदोक्तधर्मका प्रचार कार्य करके लोगोंको वैदिकधर्मके पथका पथिक बनाया, और अपने अनुयायियोंको " कृण्वन्तो विश्वमार्यम् " (सारे संसारको आर्य बनाओ) का सन्देश दिया। उन्हींके मार्गपर चलते हुए पंडितजी भी सद्धर्म वैदिकधर्मका प्रचारक बनकर असद्धर्मकी जड खोदनेके कार्यमें रातदिन प्रयत्नशील रहने लगे। वैदिक ग्रंथोंके गहरे अध्ययनके बाद पंडितजी इस निष्कर्षपर पहुंचे कि संसारके सभी धर्म स्वतंत्र न होकर एक ही धर्मरूपी वृक्षकी भिन्न भिन्न शाखायें हैं और यदि उन धर्मोंपर संशोधन किया जाए तो पता पडेगा कि सभी धर्मोंका समावेश वैदिक धर्ममें किया जा सकता है। संसारके सभी धर्म उसी वैदिक धर्मसे निकले हैं। मनुजीने भी कहा है कि " वेदोऽखिलो धर्ममूलम् " अर्थात् वेद ही सब धर्मोंकी जड हैं। इसलिए—

" धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः "

जो धर्मको जानना चाहते हैं उनके लिए वेद ही एकमात्र प्रमाण ग्रंथ हैं। इस प्रकार संसारके सभी ग्रंथोंका समावेश वैदिक धर्ममें हो सकता है।

पंडितजी अपनी वैदिकनिष्ठा, वैदिकग्रंथोंके अध्ययनका व्यसन और हरकिसनलाल, रामभुजदत्त चौधरी और साईंदास आदि पंजाबी नेताओंके साथ मिलजुलकर व्यवहार आदि लोकसंग्राहक वृत्तियोंके कारण लाहौरके आर्यसमाजी विद्वानोंमें शीघ्र ही प्रिय हो गए। लाहौरमें पंडितजीका " सातवलेकर आर्ट स्टूडियो " अनार-

कलीके रास्तेपर था और उनके निवासगृहका नाम "सुखप्रकाश" था। एक कला-कार एवं वेदविद्वान्‌के रूपमें पंडितजीके यशःसौरभसे पंजाब पेशावर, काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और हरिद्वार सुरभित हो चुका था। अंग्रेज, मुसलमान, बड़े बड़े अधिकारी और मिशनरियाँ भी पंडितजीसे सुपरिचित हो चुकीं थीं। उनके लिए पंडितजी और सातवलेकर पर्यायवाची शब्द बन गए थे। अपने व्याख्यानोंसे श्रोताओंको प्रभावित करते हुए पंडितजीने पंजाबका तूफानी दौरा किया।

लाहौरमें रहते हुए पंडितजी बच्छोवाली आर्यसमाजमें जाते थे। उनके प्रवचन उस आर्यसमाजमें होने लगे। स्वयं पंडितजीका कहना है कि उनके आनेसे पूर्व उस आर्यसमाजमें केवल ४०-५० श्रोता आते थे, पर उनके व्याख्यानोंके शुरु होनेपर उस समाजमें आनेवालोंकी संख्या ४०० तक पहुंच गई। उसके बाद सारे पंजाबमें उनके व्याख्यानोंका तूफानी दौर शुरु हो गया।

उन्हीं दिनों मोर्लेमिण्टोका सुधार एवं प्रेसऍक्टके अन्तर्गत कई नये नये कायदे बनाये जाने लगे, जो लोगों पर जबरन थोप दिए गए। सरकारकी राजधानी कलकत्तेसे दिल्ली आ गई, बंगभंगका कायदा रद्द हो गया। तो भी आन्दोलनकारियोंके राष्ट्रीय कार्योंमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न हो पाई। इसके विपरीत लाल-बाल-पालकी त्रिमूर्तिको दीर्घ कालके लिए नजरबंद कर दिए जानेके कारण प्रजाका क्षोभ अपनी चोटी तक पहुंच गया था। १९११ में दिल्ली दरबार हुआ और १९१२ में लॉर्ड हार्डिंग्जने दिल्लीमें प्रवेश किया, उस समय प्रजाका यह क्षोभ थोड़ा शान्त हुआ।

लाहौरके निवास कालके दस वर्षोंमें प्रतिवर्ष अगस्त-सितम्बरमें पंडितजी हिमा-लयकी यात्रा करके निसर्गरम्य चित्रोंको देखते और उनके आधार पर पेंटिंग्स किया करते थे। उसी प्रकार कॉंग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें भी प्रतिवर्ष उपस्थित होते थे। १९१४-१९१५ के मद्रास-बम्बई कॉंग्रेस अधिवेशनके समान ही लखनऊमें १९१६ में संगठित कॉंग्रेस अधिवेशन भी महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। बॅरिस्टर जिन्नाको तिलक समझाकर ठीक रास्ते पर ले आए थे और इस लखनऊ पॅक्ट (समझौते) को लखनऊके कॉंग्रेस अधिवेशनमें राष्ट्रकी संमति भी मिल गई थी। वह समय ऐसा था कि यद्यपि दिल्लीके सिंहासन पर जॉर्ज पंचम बैठा हुआ था, पर प्रजाके हृदयों पर तो लोकप्रिय स्वातंत्र्यसमरके नेताओंका ही राज्य था। उस समय तो इंग्लैण्डके ऊपर किसी आपत्तिका आना भारतीयोंके लिए पुत्रजन्मोत्सवके समान

आनन्ददायी होता था। लखनऊ कॉंग्रेसमें तिलकके आह्वान पर अनेकों तरुण भारत-संरक्षणसेनामें शामिल हो गए। उसी अधिवेशनमें पंडितजीकी तिलकसे बातचीत हुई और वहीं पर दक्षिण अफ्रीका और चम्पारनका मैदान मारकर महात्मा गांधीजी आए थे, उसी समय पंडितजी और महात्माजीकी मुलाकात हुई।

पंडितजीका यह कार्य सरकारकी आंखोंमें खटकने लगा। उस समय पंजाबका राज्यपाल ओडवायर था। उसने पंडितजीके चारों ओर गुप्तचर तैनात कर रखे थे। अंग्रेज यह समझने लगे थे कि पंडितजी धर्मके नाम पर राजद्रोहकी आग भडकाते हैं। इसलिए उसने १९१७से पंडितजी पर पहरा बैठा दिया था।

पांडव वारणावतमें जाकर लाक्षागृहमें रहे और कौरवोंने उसमें आग लगा दी, पर पांडव सुरक्षित रूपसे उसमेंसे बच निकले। उसी प्रकार पंडितजी लाहौरमें जाकर रहे, पर अंग्रेज सरकारने उन्हें कैद करना चाहा, पर पंडितजी बडी चतुरतासे बच निकले। यही था लाहौरका लाक्षागृह।

ø ø ø

: ११ :

हिमालयकी गोदमें

“अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः” को अपने महाकाव्यमें गूंथनेवाले संस्कृतके उद्‌भट कवि कालिदासको प्रेरणा देनेवाले, भगवती शारदाकी प्रथम विलास–भूमि, प्राकृतिक सुषमाके आगार, रंगबिरंगे परिधान पहनकर सौन्दर्यकी मूर्ति बनी हुई प्रकृति नटीकी क्रीडाभूमि, आर्योंकी जन्म-भूमि, यज्ञोंके प्रवर्तक, अमृतजल प्रवाहिनी सुरसरीके उद्‌गमस्थान, अप्सराओंकी क्रीडास्थली नगाधिराज हिमालय किस संवेदनाशील मानवका हृदय आकर्षित नहीं करते? और फिर एक चित्रकारका हृदय ‘मृदूनि कुसुमादपि’ होता ही है, अतः यदि पंडित सातवलेकर भी उस पर्वतराजके सौन्दर्यकी ओर आकृष्ट हुए, तो इसमें आश्चर्य क्या? हिमालयकी तरफ कदम बढानेमें पंडितजीका उद्देश्य विलास करना नहीं था, अपितु भारतीय एकताका असाधारण अवलम्ब एवं तीर्थराज अमरनाथमें जाकर भगवान् शिवलिंगका दर्शन ही था। उनकी हिमालय–यात्राका सरस वर्णन उन्हींकी जबानी सुनिए—

“पंजाबमें मैं ९ बरस रहा और उस दौरानमें मैंने श्रीनगर, अमरनाथ, गुलमर्ग, कैलास, चम्बा आदि अनेक स्थानोंकी यात्रा की। प्रायः हरवर्ष अगस्तके महीनेमें कहीं न कहीं यात्रा पर निकल जाता और सितम्बर–अक्टूबरमें वापस आ जाता।”

“अमरनाथकी गुफामें ७–८ फीट ऊंचाईका शिवलिङ्ग बर्फसे बनता है। पर्वतसे पानी झरता है और उस पानीके बाहर आते ही उसका बर्फ बन जाता है और आगे चलकर वही बर्फ लिङ्ग बन जाता है। इस विषयकी सत्यता परखनेके लिए यह आवश्यक है कि कोई १–२ महीने पहलेसे ही इस गुहामें आकर रहे और देखे कि यह लिंग अपने आप बनता है या वहांके पण्डे उसे पहलेसे ही आकर बना देते हैं।”

×

" अमरनाथकी गुफा इतनी बड़ी है कि उस गुफामें ७–८ हजार मनुष्य आसानीसे समा सकते हैं। यहां बड़ी कड़ाके- की सर्दी होती है। गुफाके पास ही अमरगंगा २–३ सौ फुटकी ऊंचाईसे गिरती है। हम कपडे उतारकर इस गंगामें नहाये। आधे क्षणके लिए इस झरनेके नीचे बैठ कर बाहर आ जाना ही स्नान है। स्नान करके पोंछपाछ कर एकदम कपडे पहन लेने पडते हैं। बर्फके पानीमें स्नान करनेसे उत्साह बढता है, इसमें कोई शंका नहीं है। "

" प्रतिवर्ष काश्मीर सरकार इस यात्राकी व्यवस्था करती है। अन्य यात्रियोंके साथही जाना सुविधाजनक होता है पर हम दृश्य चितारने और फोटो लेनेके उद्देश्यसे १–२ दिन पहलेही चल पडे। पर इस प्रकार पहले जाना ठीक नहीं, क्योंकि वहांके जंगलोंमें हिंसक पशु भी रहते हैं और नदियां या नालोंमें भी अचानक बाढ आ जाती है। इसलिए यात्रियोंको चाहिए कि वे श्रीनगरसे सरकारी सवारियोंसे ही यात्रा करें। "

" रास्तेमें शीशनागकी बर्फीली चोटियां और उनके नीचे निर्मल और दर्पणके समान चमचमाते तालाब भी प्रेक्षणीय होते हैं। यहां १०–१० मील तक फूल उगे हुए होते हैं, उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो किसीने फूलोंका गलीचा बिछा दिया हो। फूलोंके कारण वहांका दृश्य बडा ही सुन्दर दिखाई देता है। "

" मेरी यह यात्रा १९१४ में हुई थी। इस अमरनाथकी गुहामें प्रसाद आदिके रूपमें यात्रियोंसे जो कुछ भी प्राप्त होता है, उसके भागीदार हिन्दू पंडोंके साथ साथ मुसलमान भी होते हैं। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि ये भागीदार मुसलमान मूलतः हिन्दू पंडे ही रहे होंगे, जो बादमें जाकर मुसलमान हो गए। तो भी प्रसाद पर उनका हक काश्मीर सरकार एवं हिन्दू भी स्वीकार करते हैं। ये मुसलमान एक तरफ खडे रहते हैं और इकट्ठी हुई रकममेंसे अपना हिस्सा लेकर चले जाते हैं। "

" काश्मीरमें मजदूर प्रायः मुसलमान ही मिलेंगे। यहांके या कहूं कि हिमालय–प्रदेशोंमें रहनेवाले सभी मजदूर बडे ईमानदार होते हैं। हिमालयमें कहीं भी चोरी नहीं होती। प्राचीन हिन्दू सभ्यताके दर्शन यहां आज भी किए जा सकते हैं। "

" काश्मीरमें श्रीनगरके पासके एक टेकरी पर भगवान् शंकराचार्यका पवित्र स्थान है। इसे मुसलमान " तख्ते सुलेमान " कहते हैं। काश्मीर एक स्वर्गीय नन्दनवन है। यहांके लोग भी शरीरसे स्वस्थ, सशक्त और शीलवान् होते हैं। यहां हिन्दुओंके पवित्र स्थान सैकडोंकी संख्यामें हैं, पर यवनोंने उन सबके मुसलमानी नाम रख दिए हैं। इसका मुख्य कारण अपने पवित्र स्थानोंके प्रति हिन्दुओंकी उदासीनता ही है। "

" काश्मीरमें गुल्मर्ग आदि ऐसे अनेकों स्थान हैं कि जो विदेशियोंके लिए प्रेक्षणीय बन सकते हैं। मैं काश्मीर सर्वप्रथम १९१४ में गया और जम्मूसे १६० मील पैदल यात्रा की। १० दिन लगे। इस वर्ष अत्यधिक बरसातके कारण सब पुल टूट

गए थे। इस कारण जगह जगह हमें मुश्किलोंका सामना करना पडा। एक जगह तो हमारा खच्चर एक नालेमें गिर पडा, लिहाजा हमारे बिस्तर तथा ट्रंकोंमें भरे हुए कपडे सब पानीसे तर हो गए और उस रात हमें सर्दीमें ठिठुर कर रह जाना पडा।"

"एक जगह हमारे पहुंचनेसे पहलेही वहां किस्तवाडके एक सरदारने अपना डेरा डाल दिया। किस्तवाडके लोग बिल्कुल पठान होते हैं। यह सरदार छे फुटे शरीरका दानव जैसा था। उसके साथ १४ बरसका एक नौकर था, वह भी ५॥ फुटका और छोटा मोटा पहाड जैसा था। हमारे उतरनेकी जगह पर पहले ही उस पट्ठेने अपना तम्बू गाड दिया था और किसीको उस जगह पर आने भी नहीं देता था। एक प्रवासीने जबरन आनेकी जो कोशिश की तो उसके मुंह पर उस पठानका वज्र जैसा थप्पड इतने जोरसे पडा कि उस प्रवासीकी आंखें उलटती उलटती बचीं। यह देखकर हम सभी भीगी बिल्ली बन गए और चुपचाप आकर खुलेमें हमने अपनी खाटें बिछा लीं। हम चार और एक रसोइया इस प्रकार हम पांच आदमी थे।"

"रात्रीके करीब आठ बजे थे। पासमें ही एक मनुष्य पर एक पहाडी बिच्छुने अपना डंक आजमाया और उसको तडपता हुआ छोडकर वृश्चिकमहाराज नौ दो ग्यारह हो गये। वहां मैं गया, थोडी राख ली और हस्तस्पर्शसे उसके विषको मैंने १० मिनटमें उतार दिया। वह तडपनेवाला मनुष्य भी उठकर काम करने लग गया। यह देखकर उस पठानने समझा कि यह मांत्रिक है। अतः उसने हम सबसे अन्दर आकर सोनेके लिए कहा। पर अन्दर बडी गर्मी थी, इसलिए हमने बाहर सोना ही पसन्द किया। रातको करीब १ बजे बडे जोर की बरसात शुरु हो गई। तब उस सरदारने अपने नौकरको भेजकर हमारा सारा सामान अन्दर रखवा लिया और हमारे बिस्तर अन्दर ही बिछवा कर हम सबके सोनेकी व्यवस्था कर दी। यह सब उस वृश्चिक महाराजकी कृपा थी, नहीं तो वह पठान भला हमें कभी पूछनेवाला था?"

"उधमपुरका निवास भी हमारे लिए अविस्मरणीय हो गया। हम एक नाला पार करके जानेवाले थे कि, दूरसे एक बूढा चल्लाया कि- 'रुको, पीछे आजाओ, बाढ आ रही है।' हमारा ख्याल तो यह था कि पानी थोडा है, अतः पैदल ही हम नाला पार कर जाएंगे। पानी भी वास्तवमें दो फुटसे ज्यादा न रहा होगा।"

"हम पीछे हट गए और एक छप्परके नीचे बैठ गए। धीरे धीरे वहां करीब ५०-६० यात्री आ गए। पानी भी धीरे धीरे बढता जा रहा था और थोडी ही देरमें उस नालेमें इतना पानी भर गया और वह नाला इतने जोरसे बहने लगा कि यदि बीचमें कोई हाथी भी आ जाता तो वह भी बह जाता। उस बाढके उतरते उतरते २४ घंटे लग गए। अतः हमें उसी झोपडीमें रात बितानी पडी। वह झोपडी भी पानी पर तैरनेवाली थी। ऊपर धामधूम, नीचे पानी और उस पानी

पर तैरते हुए लकडीके पट्टे। इन्हीं पट्टों पर हम रात भर रहे। सभी यात्रीगण इसी झोपडीमें रात भर रहे और वे बीचमें ' जय अमरनाथ जय अमरनाथ ' का जयघोष भी करते रहते थे। हम यदि उस अनुभवी वृद्धकी बात न मानते तो हम निश्चय रूपसे उस नदीमें बह जाते। हिमालयके नाले ऐसे ही होते हैं। उन नालोंका प्रवाह भी बडा वेगवान् होता है। इसलिए जानकार गाइड साथमें हो तो अच्छा है।"

"हिमालयमें रामपुर नामकी एक रियासत है, उसकी राजधानीका नाम भी रामपुर ही है। लोगोंकी मान्यता है कि यह बाणासुरका स्थान है। लोग बाणासुरके रहनेकी जगह आज भी यहां दिखाते हैं। यहां उषाके अनेकों मन्दिर हैं। जहां बाणासुरका सिंहासन था, वहां आज एक पाठशाला है। इसी स्थान पर हम आठ दिन तक रहे। उसके सामने ही कैलास है। इसके बारेमें कुछ ऐसी आख्यायिका प्रसिद्ध है- कि बाणासुर जब बूढा हो गया, तब सच्चे कैलास पर जाना उसके लिए असंभव हो गया। तब बाणासुरकी प्रार्थना पर शंकर यहीं रहनेके लिए आ गए। जिस पर्वतमालामें कैलासकी चोटी है, उस पर बर्फ नहीं होती, और बाकी सभी चोटियां बर्फसे ढकी रहती हैं। इस पर्वत पर चढनेकी हमने कोशिश की, पर ऊपरसे बर्फके गोलोंके बरसनेके कारण चढना असंभव हो गया और हमें आधे रास्तेसे ही लौट आना पडा। सच्चा कैलास यहांसे १५० मील दूर है और वहां तक जाना असंभव है, ऐसा लोगोंका कहना है।"

"इस पर्वत पर शामको ४ से ६ तक सूर्यकिरणें पडती हैं उन सूर्यकिरणोंके प्रतिबिम्बित होकर लौटनेपर जो शोभा होती है, वह प्रत्यक्ष देखने योग्य होती है।"

"बादलोंके आनेपर यह पर्वत जब पूरी तरह ढक जाता है, तब २-३ दिन तक कुछ भी नहीं दीखता, पर एक बार जो खुल जाता है, तो ४-४ दिन तक सारा वातावरण एकदम साफ हो जाता है। इसलिए वातावरणके साफ होने पर एक दिन हम अपना रंग, कूंची आदि सब सामान लेकर दृश्यका चित्रण करने बैठे, तो एक आध घण्टेके भीतर ही पता नहीं कहांसे बादल आगए, और उन प्राकृतिक दृश्यों पर एक प्रकारसे पर्दा पड गया, जो दो दिन तक पडा ही रहा। जब तीसरे दिन साफ हुआ तब शामके ४॥ बजे थे। यद्यपि बाकीका सारा आकाश बादलसे ढका हुआ था, पर कैलासकी चोटीका उतना भाग बिल्कुल साफ था। उस समय जो शोभा दिखाई पडी, उसका वर्णन शब्दोंसे करना असंभव है। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों हीरे, मणियों और मोतियोंसे बनी कोई माला ही चमक रही हो। करीब १ घण्टे तक यह दृश्य रहा। १ घण्टेके बाद फिर उस पर जवनिकापात हो गया। उस समयका दृश्य मैंने चितारा तो सही, पर वह नैसर्गिक कांति और चमक उस चित्रमें न आ सकी।"

"इस स्थान पर एक ईसाई पादरी अपनी स्त्री सहित पिछले २५ वर्षोंसे रह रहा था। उसकी यही महत्वाकांक्षा थी, कि सारा हिमालय प्रदेश ईसाई हो जाए। उस पादरीने भी मुझसे कहा कि कैलासका इतना सुन्दर दृश्य १०–१२ वर्षोंमें भी नहीं दीखा था।"

"यह पादरी ईसाईधर्मके प्रचारके लिए इतने घने हिमालयमें पिछले पच्चीस वर्षोंसे रहता आया था। लोग आते थे। २०–३० रु. लेते और ईसाई हो जाते, महीने दो महीने ईसाई रहते फिर २–३ बकरोंको हलाल करके अपने जातिबान्धवोंको भोज देते और कहते कि अब हम फिरसे हिंदु हो गए। इस प्रकार २५ वर्षोंसे चलता आ रहा था। उसके निमंत्रण पर मैं रविवारकी प्रार्थनामें शामिल हुआ। पर उस दिन कोई नहीं आया लिहाजा उस दिन प्रार्थना भी नहीं हुई और मैं भी दो घण्टे वहां बैठकर वापस आ गया।"

"बाणासुर और उषाकी जो आख्यायिकायें हैं, वे सब इसी भागसे संम्बधित हैं। इन स्थानोंको देखकर इन कथाओंका अध्ययन करना चाहिए। हम इसी रास्तेसे तिब्बत गए, पर वह समय युद्धका समय होनेके कारण हम आगे न जासके।"

"अगले वर्ष हम फिर बौद्धभिक्षुओंके साथ सच्चे कैलास तक गए। वह यात्रा बड़ी ही आनन्ददायक रही। "नवयुग" नामका एक मासिक पत्र बम्बईसे प्रकाशित होता था, उसमें इस यात्राका वृत्तान्त छपा था।"

"चम्बा नामक स्थान भी हिमालयमें एक अद्भुत स्थान है। चम्बा नामक एक रियासत है, जिसकी राजधानी भी चम्बा ही है। इस गांवके पास ऊंची ऊंची गगन-चुम्बी बर्फीली चोटियां हैं। यहांके सभी पर्वत बर्फसे ढके रहते हैं। उनकी शोभा अवर्णनीय है। इन पर्वतोंके कारण इस स्थान पर सख्त सर्दी रहती है। पर इस ठंडीके कारण शरीर बड़ा उत्साहित रहता है। २५–३० मील चलने पर भी थकावट नहीं मालूम होती। गर्म चाय पीते रहनेपर भी मूंछोंपर बर्फ जमती रहती है और उसके गोले बनते रहते हैं। बिलकुल गरम पानी भी यदि शरीरपर डाला जाए तो शरीरपर पड़ते पड़ते तक वह ठंडा हो जाता है। इस कारण रोज नहाना कठिन होता है।"

"इस जगहपर हम बादलोंके ऊपर तैर रहे थे। इस कारण हमारे शरीरपर सूखी बर्फ बारीक रूईके धागेके समान गिर रही थी। झाड़नेपर सब बर्फ कपड़ों परसे झड़ जाती थी पर कपड़े गीले नहीं होते थे।"

"यही गन्धर्वलोक कहलाता है। मर्त्यलोकमें सभी मनुष्य छाते लेकर इस समय चल रहे होंगे। क्योंकि मर्त्यलोकमें इस समय मूसलाधार बरसात हो रही होगी पर गन्धर्वलोकमें इस समय बरसातकी एक भी बूंद नहीं थी। ऐसे दृश्य हमने अनेक बार

देखे । इतनी ऊंचाईपर जो बर्फ गिरती है, वही नीचे आकर बरसातके रूपमें बदल जाती है । ऊपर बर्फका गिरना और नीचे आकर पानी बनकर उसका बरस जाना आदि सभी कुछ हम गंधर्वलोकमें खडे होकर देख रहे थे । "

" हम सरकारी कैदखाने डहरेमें हुए थे। (वस्तुतः था तो यह कैदखाना, पर उस समय उसमें कोई कैदी न होनेके कारण पर्यटक भी आकर ठहर जाते थे) । पासकी दीवारमें बनी भट्टीमें हररात ३ मन देवदारुकी लकडियां जलाई जाती थीं, ताकि कमरा गरम रहे, उसपर ५-६ कम्बल ओढने पडते थे । इतनी लकडियां जलाने परभी मध्यरात्रिमें मैंने जब सबसे ऊपरके कम्बलपर हाथ लगाया तो वह बर्फके समान ठंडा लगा । सबेरे उठकर मैंने देखा कि उस रात दो फुट बर्फ पडी थी। यहांके जंगलमें जानेपर देवदारुकी लकडियां यथेच्छ और वह भी बिना मूल्य मिल जाती हैं । इस कारण ईंधनपर एक पैसा भी खर्च करना नहीं पडता । "

" होशियारपुर (पंजाब) जिलेमें ज्वालामुखी नामक एक स्थान है । वहां एक मंदिर है और उस मंदिरके अन्दरके भागमें आठ-दस छोटी बडी ज्वालायें हैं उन्हें देखनेके लिए हजारों यात्री आते हैं । उस समय होशियारपुरसे वहां तक यात्राका एकमात्र साधन तांगा ही था, पर अब मोटरकी भी सुविधा हो गई है । कहते हैं कि यहांकी जमीनमें मिट्टीका तेल है, उसकी गैस बाहर निकलती है और वह जलती है। इसका नाम ज्वालादेवी है । इस ज्वाला की पूजा यहां होती है । यहां सप्तशतीका पाठ चलता रहता है। यहांके देव शंकर हैं । सबसे बडी ज्वाला १-१॥ फुटकी है, कुछ ज्वालायें बहुत ही छोटी हैं । "

" इस ज्वालामुखीको ' छोटी माई ' कहते हैं । बडी माई रूसमें बाकू नामक स्थानपर है, वहांकी जमीन भी मिट्टीके तेलकी जमीन है । इस स्थानपर ४-४ फुटकी ज्वालायें हैं । इस स्थानपर जो मन्दिर है, वह एक हिन्दु मंदिर है, और उसका पुजारी एक पंजाबी हिन्दू है । "

सत्रहवीं शताब्दीमें इस मन्दिरकी मरम्मत हुई थी । उसका उल्लेख इसी मंदिरके एक शिलालेखमें देवनागरी लिपिमें है। उसकी फोटो मैंने देखी है । बाकूकी ' बडी माई ' और पंजाबके ज्वालामुखीकी ' छोटी माई ' विख्यात हैं । यह स्थान सचमुच दर्शनीय है । "

" यहां शिलाजीत आदि जडीबूटियां तथा सुगंधी धूप मिलती हैं । इस प्रकार पंजाबमें रहते हुए मैंने हिमालयके अनेक प्रेक्षणीय स्थलोंको देखा है । "

" रामपुरके पास रोगी नामक एक गांव है। यहां कस्तूरी मृग होते हैं और मृगके नाभिमेंसे निकलनेवाली कस्तूरी मिलती है । यहां कस्तूरीका अच्छा भण्डार है । "

" हमारे रास्ते और रहनेकी जगह या तो पर्वतकी चोटीपर होती थी अथवा पर्वतके बीचके हिस्सेपर, नीचेकी वादियोंमें नदियां रेंगती थीं । ये वादियां बडी गहरी होती

थी, इसलिए पीनेके लिए पानी भी नहीं मिलता था। ऊपर जो बर्फ गिरती थी, उसीका पानी पीना पडता था। नदियोंके किनारे अंगूरोंके बाग होते हैं। वहां एक-बार एक मनुष्यको भेजकर अंगूर मंगवाये। उस मनुष्यके सवेरे नीचे जाकर ऊपर आते आते तक शाम हो गई। उसे मजदूरी सिर्फ चार आने दी। बारह आनेके अंगूर मँगवाये थे, बारह आनोंमें ही वह एक टोकरी भरके अंगूर ले आया। बम्बईमें इतने अंगूरोंके लिए कमसे कम ४० रु. तो जरूर ही देने पडेंगे। हम दो जन उन अंगूरोंको ५-६ दिन तक खाते रहे, उसपर भी जो बचे वे हमने लोगोंमें बांट दिए। इतना सस्तापन यहां है। यहांके निवासी इन अंगूरोंकी शराब बनाकर पीते हैं।"

रसिकतासे भरपूर पंडितजीकी खोजपूर्ण नजरोंने हिमालयकी गोदमें जो कुछ खूब-सूरती देखी, उसका वर्णन पंडितजीने किया है। इस यात्राका वर्णन पंडितजीने लिखा था, जो १९१५ के "नवयुग" मासिकमें छपा था। पर यदि जन्नतकी खूब-सूरती देखनी हो या वहांके इठलाते हुए चश्मोंका दीदार करना हो तो अपनी ही नजरोंसे करना चाहिए, तभी वास्तविक आनन्दका अनुभव किया जा सकता है। हिमालयकी ऊंचाई भी गौरवभरी है। ऊंचाईमें हिमालयकी चोटियाँ अद्वितीय हैं। हिमालय विचारधाराओं, काव्यकल्पनाओं और शुभ्र भारतीयसंस्कृतिका प्रेरणा स्रोत है। आदिम आर्योंका मूलस्थान है। महाकवि कालिदासके शब्दोंमें तो यह नगाधिराज हिमालय पृथिवीका एक मानदण्ड है, जो पूर्व समुद्रसे पश्चिमी समुद्रतक फैला हुआ है। भगवती शारदाकी अवतारभूमि है "उपह्वरे गिरीणां धिया विप्रो अजायत" का साक्षात् उदाहरण है। अनेक योगियों और मुनियोंका आश्रयस्थान, अनेक तरहके पशुओंका शरण्य, अनेक वीरुधोंकी जन्मभूमि इस हिमालयने तत्रापि भूनन्दनवन काश्मीरने किस रसिक हृदयको आकर्षित नहीं किया? इसी आकर्षणने यदि सुकुमार हृदयके चित्रकार और निसर्गप्रेमी पंडितजीको भी खींच लिया, तो आश्चर्य क्या?

इस प्रकार लाहौरका वास्तव्य पंडितजीके जीवनमें सर्वोत्तम था। आज भी पंडितजी इस बातको स्वीकार करते हैं कि लाहौरमें व्यतीत उनके दस वर्ष सुखातिशयके वर्ष थे। धन-मान-स्वास्थ्य-मित्रपरिसर-चित्रकारी आदि सभी दृष्टियोंसे लाहौरका यह वास्तव्य सर्वतोपरि लाभदायक सिद्ध हुआ।

पर तत्कालीन राजनैतिक उथलपुथलके कारण सर्वत्र अराजकताकी स्थिति सी छाई हुई थी। सारा पंजाब ज्वालामुखी बनकर अन्दर ही अन्दर उबल रहा था, सिर्फ फटने भरकी देर थी। पंजाबमें सब जगह सरफरोशीकी तमन्ना लिए हुए नौजवान क्रान्तिकारियोंका जाल सा बिछा हुआ था। गवर्नर ओडवायरके अत्याचारोंसे प्रजा तंग आ चुकी थी। विस्फोटकी सारी सामग्री इकट्ठी की जा चुकी थी, सिर्फ एक काम बाकी

था और वह था इस विस्फोटक सामग्रीको दियासलाई दिखानेका। यह काम किया काले कारनामोंवाले जनरल डायरके जलियांवाले बागके कुकृत्यने। अनगिनत बच्चे स्त्रियां और पुरुष बिना कारण भून दिए गए। इससे जो भड़का उठा, उसकी लहर लन्दन तक भी जा पहुंची और शेरदिल ऊधमसिंहकी एक ही गोली खाकर डायर " ओह गॉड ओह गॉड " करता हुआ परलोक सिधार गया।

इसी समय पंजाबकी अस्तव्यस्त स्थितिमें पंडित सातवलेकरजीके भाषण क्रान्तिकारियोंको और अधिक भड़का कर अग्निमें घीकी आहुतिका काम न करें, इस दृष्टिसे पंडितजी तथा उनके अन्य चार-पांच साथियोंको पंजाबसे निर्वासित करनेका निश्चय सरकारने किया। पर उससे पूर्व ही पंडितजीने पंजाबसे चले जानेका निश्चय कर लिया था और तदनुसार औंध रियासतके राजासाहबका निमंत्रण पाकर पंडितजीके पैर औंधकी तरफ मुड गए।

: १२ :

औंधके दर्शन

पंडितजी पंजाबसे निकलकर सीधे औंध जा पहुंचे। औंध गांव महाराष्ट्र प्रान्तके सतारा जिलेमें सताराकी पश्चिमोत्तर दिशामें वहांसे २६ मीलकी दूरीपर है। औंध एक छोटीसी रियासतकी राजधानी था। इस रियासतके रियासतदार सताराके छत्रपति घरानेके वंशधर हैं। इस राजधानीके पूर्व और उत्तरमें पहाडियां हैं और उन पहाडोंकी उपत्यकामें यह गांव बसा हुआ है। इसका क्षेत्रफल ५०१ वर्ग मील थी। जनसंख्या नब्बे हजार थी। इस रियासतकी आय कुल ३ से १२ लाख रु. वार्षिक थी। रियासतके मुख्य प्रतिनिधि मूलतः किन्हईके कुलकर्णी थे। परशुराम त्रिंबक कुलकर्णीको छत्रपति साहू (१७०७-१७४९) ने प्रतिनिधि पदकी सनद वंशपरम्परासे प्रदान की थी। उस समय राजापुरसे लेकर दाभोलतक कोंकण प्रदेश, सतारा, वाई, मेढे, माण, खटाव, मिरज, कोल्हापुर आदि प्रदेश प्रतिनिधि जागीरदारी मानी जाती थी। बादमें कोल्हापुरकी रियासत अलग हो जानेके कारण कोल्हापुर, पन्हाला और विशालगढ प्रतिनिधिके इलाकेसे जुदा हो गए। १८१२ सन्‌में जब पंढरपुर अंग्रेजोंके अधिकारमें चला गया, तब बहत्तर गांवोंको सम्मिलित रूपमें औंध रियासतका नाम दे दिया गया। यह रियासत आर्थिकदृष्ट्या इतनी सशक्त (?) थी कि एक गांवमें वसूल करके प्रतिनिधि जब तक दूसरे गांव तक जाता; तब तक उसका वसूल किया सब कुछ खर्च हो जाता। रियासतकी राजधानी औंधमें दो पुराने तालाब और राज-महलके बाईं तरफ राजासाहबके कुलदैवत यमाईका एक सुन्दर मन्दिर है। गांवके पास ही आठ सौ फुट ऊंचाईकी एक टेकरीपर यमाईका एक प्राचीन मन्दिर है, उसे मूलपीठ कहते हैं। इसी मन्दिरके पास ही प्रतिनिधि (राजासाहब) ने एक प्राचीन पदार्थ संग्रहालय तैय्यार किया है।

पंतप्रतिनिधि कलारसिक थे, इसलिए १८९२ से १८९७ में पंडितजी औंधमें नाटकोंके पर्दे रंगने आए थे। चित्रकलाको सीखते हुए बम्बईमें बालासाहेब पंतप्रतिनिधि के साथ हुआ हुआ पंडितजीका परिचय पारस्परिक स्नेह और प्रेममें परिणित हो गया था। इसी कारण १९१८ में पंडितजी औंध आ सके। नहीं तो पंडितजीको बड़ी भारी कठिनाईका सामना करना पड़ जाता। बीसवें शतकके प्रथम दशकमें पूनासे लेकर कोल्हापुर तक अंग्रेजी शासनको उलट देनेके लिए नवयुवकोंके जो प्रयत्न थे, उसकी हवा औंध तक भी पहुंच चुकी थी। वहांके माधवराव हिंगे आदि क्रान्तिकारियोंने चारों ओर दहशत फैला रखी थी। औंध बमकांड उन्हीं दिनों अपनी करामात दिखा चुका था। चारों ओर क्रान्तिकी ज्वालायें भड़क रही थीं। ऐसे समयमें पंडितजीने औंधमें प्रवेश किया।

" १९१८ सन्के मई महीनेमें औंध आनेके बाद मैंने वेदोंके अनुवादका काम शुरु किया। मैं लिखता औंधमें था, पर उसकी छपाई निर्णयसागर अथवा मुम्बई वैभवप्रेसमें होती थी। बिक्री भी औंधसेही पोस्टके द्वारा की जाती थी। पंजाब और उत्तरप्रदेशमें आर्यसमाजके कारण मेरे बहुतसे परिचित थे। इसलिए इन दोनों प्रान्तोंमें मेरे पुस्तकोंकी अच्छी खपत होती थी। मैं गुरुकुलके वार्षिक उत्सवोंमें शामिल होता था उस समय जाते और आते हुए विभिन्न शहरोंमें भी घूमता था। इस प्रकार वेदप्रकाशनके लिए दान भी मिलते थे और पुस्तकोंकी बिक्री भी होती थी और सारा व्यवहार उत्तम रीतिसे चलता था। "

" पंजाब सरकारको यह भी पता नहीं चला कि मैं कहां गया; इसलिए वह मेरी खोज कर रही थी। छे महीनेके बाद जाकर उसे पता चला कि मैं औंधमें हूं। तब बम्बई सरकारके मार्फत औंध दरबारमें पूछताछ हुई। राजासाहबसे पूछा गया कि वे पं. सातवलेकरको अपनी रियासतमें क्यों रहने देते है? इस समयतक ला. हरकिसनलाल डॉ. सत्यपाल और डॉ. किचलू आदि सभी जेलमें बंद कर दिए गए थे। मैं जल्दी निकल आया, इसलिए पकड़ा नहीं गया। औंध दरबारको मेरे बारेमें सिर्फ इतनाही पता था कि मैं वेदोंका अनुवाद छापता हूँ। इसलिए उसकी तरफसे अंग्रेज सरकार-को यह उत्तर दिया गया कि- " पं. सातवलेकर यहां रहकर केवल वेदोंका अनुवाद करके उसे प्रकाशित करते है। इसके अलावा और किसी तरहका कार्य वे नहीं करते। " इस उत्तरके कारण यह प्रकरण वहीं दब गया। पर बम्बई सरकारके पास मेरे हैदराबादका निवास, कोल्हापुरका मुकदमा, पंजाबका निवास आदि सभी वृत्तान्त पहुंच चुके थे। इन वृत्तान्तोंमे, यदि वास्तविकदृष्या देखा जाए, तो कुछ भी राजद्रोहात्मक नहीं था। तथापि जो कुछ वास्तविकता थी, वह भी सरकारको पसन्द न थी। अंग्रेज सरकारको धार्मिक आन्दोलन भी नापसन्द थे। "

"महात्मा गांधी १९१४ में अफ्रीकासे लौट आए थे और भारत ही उनका कार्यक्षेत्र बन गया था उनके आने तक मेरे सामने लोकमान्य तिलकका आदर्श था। मैं जो कुछ करता वह सब तिलकके द्वारा प्रदर्शित पद्धतिसे ही करता। लोकमान्य मेरी कार्यपद्धतिको जानते थे। और मैं बीच बीचमें उनसे मिलने भी जाता था। षड्यंत्र, शस्त्रोंको इकट्ठा करना सशस्त्रान्दोलन आदि आन्दोलन उस समय अपनी पूरी गति पर थे। काँग्रेसके अधिवेशनोंमें भी मैं सम्मिलित होता था। इसलिए मेरे मनमें एक विचार हमेशा घूम जाया करता था कि कोई बहुत बडी क्रान्ति हो।"

"सन् १९१५ और १९१६ में महात्माजी गुरुकुलमें दो बार आए और दो दो दिनतक रहे। उस समय उनकी रातदिन सेवा करनेका काम मुझे सौंपा गया था। इसकारण उनसे मेरी बहुत बातें हुईं। उस समय भी महात्माजी लोगोंसे यही कहा करते थे की गुरुकुल जैसी संस्थायें स्थापित की जायें, तरुण पीढियोंमें नये विचारोंको भरा जाए। क्योंकि जबतक तरुणोंको नये विचारोंसे ओतप्रोत नहीं किया जाएगा, तब तक राष्ट्र उन्नत नहीं हो सकता। षड्यन्त्रोंकी जरूरत नहीं है, हमें शस्त्र हाथमें लेनेकी आवश्यकता नहीं है, हम अपने दृढनिश्चयसे ही सरकारको झुका देंगे, और इस प्रकार हम जो चाहते हैं वह सरकारसे करवा लेंगे। अभीतक लोग महात्माजीकी कार्य पद्धतिसे परिचित नहीं हो पाए थे, पर मैं इतना तो अच्छी तरह समझ गया था कि इस पद्धतिमें कुछ नवीन तेज अवश्य है। इस अल्प-कालके सहवासमें ही मैं महात्माजीके आन्दोलनकी तरफ आकर्षित हो गया था।"

"मैंने हरिद्वारमें एक दिन महात्माजीसे पूछा कि "आपके विचारोंसे तिलक सहमत हैं कि नहीं?" तब वे बोले कि "मैंने उन्हें समझानेके लिए बहुत कोशिशें कीं, पर मेरी पद्धतिपर उन्हें विश्वास नहीं है।" तिलकसे जहां कहीं संघर्ष या विरोध होनेकी संभावना होती, महात्माजी उस प्रसंगको ही साफ टाल देते थे और अपनी सत्याग्रहकी पद्धतिसे अपना आन्दोलन धीरे धीरे बढाते थे। १९२० में तिलक दिवंगत हो गए और उसी समय महात्माजीने सत्याग्रहकी घोषणा की और आगे चलकर उनका आन्दोलन बढता गया।"

"पंजाबमें लाला लाजपतराय प्रथम प्रतिकूल थे, पर बादमें अनुकूल हो गए। सब आर्यसमाजी कांग्रेसमें शामिल हो गए और इस कारण पंजाबमें आर्यसमाजका जोर क्रमशः क्षीण होने लगा। बहुतसे आर्यसमाजी नेता महात्माजीके अनुयायी हो गए। आर्यसमाजकी प्रवृत्तियां अंग्रेजोंको सख्त नापसन्द थीं इस कारण सरकारको भी आर्यसमाजका यह क्षय होना बहुत अच्छा लगा।"

"पंजाबके औद्योगिक जीवनके नेता लाला हरकिसनलाल महात्माजीके अनुयायी नहीं बने। इस कारण आगे जाकर धीरे धीरे उनका पतन होने लगा, आखिरमें एक समयके करोडपति लालाजीको अपने अन्तिम समयमें अत्यन्त दीनावस्थामें अपना जीवन गुजारना पडा और उसी स्थितिमें उनका अन्त भी हो गया।"

" पं. मोतीलाल नेहरु और जवाहरलाल महात्माजीके साथ समरस होकर काम करने लगे और सार्वजनिक रूपसे उनका यश फैलने लगा। "

" इधर बंगालमें भी महात्माजीके द्वारा चलाये गए आन्दोलनका प्रभाव पडा और इसीके कारण वहांके क्रान्तिकारियोंका आन्दोलन शान्त हो गया और वे सब महात्माजीके दलमें आकर शामिल हो गए। इस प्रकार १९३० तक सशस्त्र क्रान्ति पूरी तरहसे नष्ट हो गई। इस प्रकार राष्ट्रके सामने महात्माजीका तत्त्वज्ञान ही रह गया और वह भी धीरे धीरे बढता गया। *इस कारण मैं भी महात्माजीका एक भक्त* होकर काम करने लगा। "

" औंधमें आकर रहनेके बाद सतारा के प्रान्तीय कांग्रेस अधिवेशनके कार्याध्यक्षके रूपमें मुझे चुना गया। इस कारण एक वर्ष तक सतारा जिलेमें आसपास घूम घूम कर महात्माजीकी नई तत्त्वप्रणालीको लोगोंमें जागृत करनेका काम मुझे करना पडा। मैं इस कामके लिए अनेक गांवोंमें घूमा। इसके फलस्वरूप बम्बई सरकार-की यह धारणा हो गई कि औंधके राजासाहब पं. सातवलेकरजीके आश्रयदाता बनकर उनके द्वारा अंग्रेजी इलाकोंमें कांग्रेसका आन्दोलन फैलानेमें मददगार होते हैं। पर यह आरोप अक्षरशः असत्य था। बम्बईके गवर्नरने राजासाहबको बम्बई बुलाया और उनसे जवाब मांगा। यद्यपि राजासाहबका मेरे कार्यसे जरा भी सम्बन्ध न था फिर भी गवर्नरके सामने ज्यादा बोलना उनके लिए असंभव था। "

" गवर्नरसे मिलकर वापस आनेपर औंधके राजासाहबने मेरे नाम एक नोटिस निकाली कि " आठ दिनके अन्दर ही अन्दर औंधसे बाहर हो जाओ। " इसके उत्तरमें मैंने उन्हें लिखा कि मैं औंधरियासतके बाहर किसी भी आन्दोलनमें भाग न लूंगा। जो कुछ करना होगा इस रियासतकी प्रजाकी उन्नतिके लिए ही करूंगा। इस प्रकार हम दोनोंमें सन्धि हो गई और मैं औंधमें ही रहा। इस संधिके कारण मेरे कार्यक्षेत्रकी मर्यादा सीमित हो गई, पर इस सीमित क्षेत्रमें भी मेरे करनेके लिए काम कुछ कम न था। "

" दक्षिणी रियासतमें मैंने प्रजापरिषदोंकी स्थापना की और सब दक्षिण रियासतोंकी जो परिषद् थी उसको फिरसे सजीव करनेका मैंने प्रयत्न किया। औंध रियासतके अन्तर्गत ७२ गांवोंको जागृत करनेका काम कोई छोटा काम नहीं था। "

" औंधदरबारका मैं मुख्य पंडित बन गया और औंधकी प्रातिनिधिक सभाका सभासद् हो गया। औंधमें औंध, आटपाडी, गुणदाळ, इन तीन स्थानोंपर प्रजा-परिषद्के अधिवेशन हुए और महात्माजीका सूत, चर्खा, हाथकरघा, ग्रामोद्धार और ग्रामपंचायतोंकी सुधारका कार्यक्रम शुरू किया। इन सब कार्यक्रमोंमें राजासाहब भी प्रजाओंके सुधारके कामोंमें हमेशा आगे रहते थे। इस कारण घटनात्मक सुधारके

कार्योंमें कोई भी विघ्न उपस्थित नहीं होता था। हर पांच या सात वर्षोंमें ग्राम-पंचायतके अधिकारोंमें वृद्धि, सब प्रतिनिधियोंको नियुक्त करना आदि सुधार होते गए, अब यदि कोई बात शेष रह गई थी तो वह था पूर्ण स्वराज्यका आगमन। औंधरियासतमें जो सुधार होते थे, उनका परिणाम अन्य संस्थानोंपर भी होता था।"

"सन् १९४३ में जमखंडीमें अखिल महाराष्ट्र रियासत परिषद्का अधिवेशन हुआ, श्री अणे उसके अध्यक्ष चुने गए। सब प्रतिनिधि इकट्ठे हुए, दो दिन हो गए पर अध्यक्ष महोदयके दर्शन न हुए। तब सभी प्रतिनिधियोंने मुझे अध्यक्ष बनाया और रातके ९ बजे परिषद्का अधिवेशन शुरु हुआ। दूसरे दिन सबेरे तक अधिवेशनको समाप्त करना जरूरी था। सब कार्य उत्तम रीतिसे हो गया। इस परिषद्में एक प्रस्ताव यह पास हुआ कि दक्षिणी रियासतोंके कार्योंका निरीक्षण किया जाए। इसके कारण एक वर्षतक सब रियासतोंमें अध्यक्षके रूपमें घूमनेका मुझे अवसर मिला। दूसरे वर्ष यही परिषद् सांगलीमें हुई और उसके अध्यक्ष बाळासाहब खेर और मैं उपाध्यक्ष था। इसलिए एक वर्षतक उपाध्यक्षकी हैसियतसे सब रियासतोंमें घूमा। उससे अगले वर्ष यह परिषद् मोरसें हुई और तब श्री मावलंकर अध्यक्ष, ना. गो. चापेकर और गुप्ते इनकी एक समितिने एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें भोर रियासतके कार्यका निरीक्षण करके रिपोर्ट देनेके लिए कहा था। परीक्षणके कामके शुरु होनेपर सब रियासतदार घबराये और मेरे पास अनेक प्रकारके प्रलोभन आने लगे। पर हमारी समितिमें ऐसा कोई भी सदस्य न था, जो इन प्रलोभनोंका शिकार होता। इस मावलंकरसमितिने भोररियासतके बारेमें अपनी रिपोर्ट पेश की और उस कार्यके अध्यक्षके रूपमें उसे मैंने प्रकाशित भी किया। दूसरी रियासतोंकी रिपोर्टें भी क्रमशः प्रकाशित होती थीं।"

"इधर महात्माजीने औंधमें नमक बनानेकी आज्ञा दी। और नमक बनाने का काम मिलनेके कारण बेकारीके कारण उध्वस्त हुए हुए ४–५ गांव पुनः बस गए। महात्माजीके नमक सत्याग्रहके कारण औंध रियासतको यह लाभ हुआ। इसी सिलसिलेमें मुझे महात्माजीके पास बार बार जाना पडता था। इसके और उनका कार्यक्रम रियासत भरमें चालू रहनेके कारण महात्माजीको औंध रियासत एवं मेरे बारेमें अच्छी जानकारी हो गई। स्कूलोंमें खादी निर्माणका काम शुरु हो गया। दरबारी पोशाक भी खादीकी निश्चित कर दी गई। महाराज भी खादीके अलावा और किसी कपडेका उपयोग नहीं करते थे। इसके बाद यह निश्चित किया गया कि औंध रियासतको पूर्ण स्वराज्य प्रदान किया जाए, और उस स्वराज्यकी रूपरेखा बनाकर उसे महात्माजीको दिखाने औंधसे एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा गया। उस मण्डलमें सर्वश्री अप्पासाहेब पंत, मॉरिस फ्रीडमॅन और मैं इस प्रकार तीन प्रतिनिधि थे। महात्माजीने हमें यह उत्तर दिया कि महाराजके लिए होनेवाला खर्च कम करो,

तब मैं तुम्हारे साथ बातचीत करूंगा। यह सुनकर महाराज स्वयं वर्धा गए और स्वयका विवरण निश्चित हुआ और इस प्रकार अन्तमें महात्माजीकी सम्मतिमें स्वराज्यकी रूपरेखा तय्यार हुई।"

"यह रूपरेखा रियासतमें क्रियान्वित भी हो गई। रियासतके इतिहासमें यह घटना अविस्मरणीय बन गई। इन सब कामोंमें अधिक हिस्सा तो महाराज एवं उनके सुपुत्र अप्पासाहेब पंतका था और मेरा हिस्सा तो थोडासा ही था।"

"इसके कारण औंध रियासतका मान बढा और कुछ काल तक प्रातिनिधिक सभाका सदस्य रहनेके कारण मेरा भी मान बढा। यह सब सन् १९३९ में हुआ।"

"एक कायदेके अनुसार इस रियासतमें संरक्षकदलकी स्थापना हुई। १३ से ४५ तककी उमरवाले सब लोग इसमें शामिल हो गए। उनका नियामक मैं था। यह दल ७२ गांवोंमें स्थापित हुआ। गांवोंमें, ग्रामपंचायतोंमें और स्कूलोंमें घंटे लटके हुए होते थे। वे जब एक विशेषरीतिसे बजाए जाते थे, तब सभी स्वयंसेवक उस घंटास्थलपर इकट्ठे हो जाते थे। औंधमें ५-६ बार ऐसे प्रसंग आ पडे थे। उन प्रसंगोंपर घंटेके बजते ही १०० स्वयंसेवक जमा हो जाते थे और औंधपर आई हुई आपत्ति टल जाती थी। इस प्रकार यह संरक्षकदल रियासतभरमें स्थापित हो गए। इस कारण यह रियासत अत्यन्त सुरक्षित हो गई, लिहाजा दंगे, चोरी और डाकेका नामोनिशान न रहा। इसी कारण अनेक अंग्रेज परिवार भी इस रियासतमें आकर रहने लगे। यह बात उडते उडते वाइसरायतक भी पहुंची। उन्होंने अपना एक निरीक्षक भेजा। उसने सारी व्यवस्था देखकर यह रिपोर्ट दी कि यदि इस प्रकारके संरक्षकदल भारतभरमें स्थापित हो जाएं, तो अंग्रेजोंको यहांसे भागना पडेगा। इन दलोंके कारण इस रियासतके बारेमें अंग्रेजोंका मत अनुकूल नहीं था। पर एक तरफ महात्माजीकी शक्ति क्रमशः बढती जा रही थी और दूसरी तरफ अंग्रेजोंकी शक्ति घटती जा रही थी, इस कारण इस संरक्षकदलको कोई नुकसान नहीं पहुंचा।"

"ग्रामपंचायतके निरीक्षकके रूपमें मुझे प्रति सप्ताह रियासतमें घूमना पडता था। उस समय मैं ग्रामपंचायत, संरक्षकदल आदिका निरीक्षण किया करता था। इस निरीक्षक समितिका मैं अध्यक्ष, दो सदस्य, डॉक्टर और की सदस्योंसे युक्त एक मण्डल घूमा करता था। इस कारण ग्रामपंचायत और संरक्षकदलके कार्य उत्तम रीतिसे चलते थे।"

"१९४२ में महात्माजीका आन्दोलन शुरू हो गया। चारों ओर क्रान्ति फैली। औंधरियासतने भी इन आन्दोलनकारियोंको अपने रियासतमें बहुत आश्रय दिया था। हजारों लोग अंग्रेजी प्रदेशमें आन्दोलन करते और औंधरियासतमें आसरा लेकर रहते थे। औंधमें मेरा घर इन आन्दोलनकारियोंसे हमेशा भरा रहता था।

उनकी सभायें मेरे ही घरमें हुआ करती थीं। कार्यक्रम भी वहीं निश्चित किए जाते थे। मेरे छापखानेमें ही उनके पेम्फ्लेट्स और हेन्डबिल्स छापे जाते थे। यह सब बम्बई सरकार जानती थी। पर प्रमाणोंके अभावमें वह मेरा कुछ कर नहीं पाती थी। सतारा जिलेमें यह आन्दोलन बहुत बडे पैमानेपर चला। औंधसे मिलनेवाली सहायता ही उसका कारण था। यह सब महात्माजी जानते थे इसलिए औंध रियासतपर एवं औंधका होनेके कारण मुझपर भी उनका अभयहस्त था।"

"आखिरकार भारतमें स्वराज्य स्थापित हुआ और उसी समय गांधी हत्याकी दुर्दैवी घटना हो गई। इस कारण महाराष्ट्रमें सर्वत्र उपद्रव मच गया। और इस उपद्रवमें महात्माजीके नामपर ऐसी भी वारदातें हुईं जो होने लायक नहीं थीं। आगे जाकर रियासतें विलीन हो गईं और उस समय जो सभा हुई उसमें कलेक्टरकी अध्यक्षतामें मेरा भाषण हुआ। रियासतका आधार टूट जाने पर मैंने सोचा कि इस प्रकारके छोटेसे गांवमें रहनेसे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होगी और यह सोचकर मैंने औंध छोडनेका निश्चय कर लिया। पूना बम्बईसे लेकर बडौदेतक अनेक जगहें देखीं, अन्तमें पारडीमें ईसाई मिशनरियोंकी जगह पसन्द की और औंधसे स्वाध्यायमण्डलको हटाया और उसे पारडी लाकर फिरसे काम शुरू किया।"

पंडितजीके द्वारा संक्षेपमें लिखे गए औंधमें निवासकालके वृत्तान्तको पढकर कोई भी आसानीसे यह समझ जाएगा कि-

पंडितजीके व्यक्तित्वसे औंधका वातावरण अतिशय प्रभावित था, वहांका राजकीय, सामाजिक और धार्मिकक्षेत्र प्रफुल्लित हो गया था। औंधमें रहते हुए उन्होंने स्वयंको वेदकार्यके लिए पूर्णतया समर्पित कर दिया था। स्वयंको हिन्दु और वेदानुयायी माननेवाले करोडों मनुष्योंके घरोंमें वेदोंकी संहितायें नहीं दिखाई देतीं, यह कितनी लज्जाकी बात है? इसलिए वेदग्रंथोंके प्रकाशनके कार्यमें श्रीमन्त बालासाहेब और पंतप्रतिनिधिने भरपूरसहायता दी। राजासाहबकी सर्वांगीण दृष्टिके कारण संगीत, नाटक आदि सभी कलाओंको अच्छी प्रेरणा मिलती थी। बाहरसे कलाकार औंधमें आते थे, प्रदर्शनियां होतीं, स्पर्धायें होतीं और इस प्रकार छोटेसे लेकर बडे तक सभी हृदयोंमें कलाके लिए आदर एवं प्रेम निर्माण होता था। पंडितजी यद्यपि वेदसंशोधनके लिए स्वयंको समर्पित कर चुके थे, पर वे इतने अरसिक नहीं थे कि कलाकी तरफसे अपना मुंह मोड लेते। उन्होंने चित्रकारीसे अपना हाथ खींच तो लिया था, पर फिर भी हर रविवार कूंची हाथमें पकड अवश्य लेते थे। उन्होंने भीष्मप्रतिज्ञासी कर ली कि अब चित्रकलाके लिए समय नहीं देंगे और धीरे धीरे करके उन्होंने यह प्रतिज्ञा पूरी कर डाली। पर इस 'भीष्म-प्रतिज्ञा' का एक चित्र केनवासपर उतर आया। पंडितजीके घरमें उनके एवं उनके पुत्र माधवरावके द्वारा चित्रित हुए अनेक नयनरम्य चित्र टंगे हुए थे। वेदाभ्यासके गम्भीर कार्यमें

व्यापृत पंडितजीका हृदय कितना सौन्दर्य-प्रेमी था, इसका अनुमान इन चित्रों परसे लगाया जा सकता था। उनकी रसभरी कूंचीने अनेक सुन्दर कलाकृतियोंको कला जगत्में अमर कर दिया। पंडितजी वस्तुतः एक अद्भुत संगम हैं, जिनमें सागर सदृश गंभीर ज्ञान और नाना रंगोंसे खेलनेवाली चित्रकला दोनोंका संगम होता है। विपत्तिमें धैर्य, अनासक्तिभावसे कर्म करना, क्रान्ति करनेकी कुशलता एवं क्रान्तिकारियोंकी सुरक्षाके कार्यमें चतुरता, उत्तम प्रचारकता आदि गुण हैदराबाद और लाहौर के निवास कालमें सर्व-प्रात्यक्षिक हो गए थे। इन्हीं गुणोंको लेकर पंडितजीने औंधमें पदार्पण किया था। राजनीतिका कार्य पंडितजीका स्वभाव बन चुका था। वे स्वयं स्वीकार करते हुए आत्मकथामें लिखते हैं।

" १९२० सन्में मुझे सोमण (लोकप्रिय भाऊसाहेब सोमण, सतारा) ने जिला कॉंग्रेस कमेटीका अध्यक्ष बनाया, उसके फलस्वरूप मेरा दौरा भी शुरु हो गया। "

इससे सताराके कलेक्टर मोयर्सकी आंखोंमें सरसों फूल रही और उसने औंध रियासतके राजासे इसके बारेमें पूछताछ की, पर पंडितजी रियासती प्रजाकी और वेदोंकी सेवा करनेका बहाना बनाकर बडी कुशलतासे बच निकले। आगे जाकर जिला कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष आठपुत्रे वकील हो गए और पंडितजी अब मुख्यतः औंध रियासतकी प्रजाओंकी सेवामें लग गए। १९२१ से रियासतके अर्थसंकल्पपर अर्थशास्त्रियोंकी सलाह पंत प्रतिनिधि लेने लग गए थे। वस्तुतः इसका प्रारम्भ तो पंडितजीके स्नेहपूर्ण और प्रकल्पक (Constructive) सलाहोंसे ही हुआ था। उसके बाद तो ग्रामपचांयतको संगठित करनेका एक महान् कार्य पंडितजीने सम्हाल लिया और इस कार्यके लिए वे रियासत भरमें घूमने लग गये। इधर एक तरफ पंडितजी अपने प्रात्यक्षिक प्रयत्नोंसे ग्रामसुधारका कार्य करने लगे और उधर दूसरी तरफ सोलापुरके श्री त्र्यं. ना. आत्रेने अपने " गावगाडा "नामक ग्रंथके द्वारा इस सुधार कार्यको और ज्यादा प्रोत्साहित किया। सतारा जिलेके अंग्रेजी इलाकोंमें परचुरे शास्त्रीने सुप्त लोगोंको जाग्रत करनेके लिए गांवोंमें पदयात्रा करनी शुरु की। बीसवें शतकके प्रारंभके २५ वर्षोंमें यह कार्य बहुत वेगपर था, उसी समय " आमचा गाँव-बदलापुर " (हमारा गाँव-बदलापुर) के रचयिता श्री नारायण गोविन्द चापेकर औंधके उच्च न्यायालयमें न्यायाधीश नियुक्त होकर औंध पधारे, उनके आनेसे ग्राम-सुधारका कार्य और जोर पकड गया। फलस्वरूप गांवोंको हर दृष्टिसे स्वावलम्बी बनानेकी योजनाओंपर अत्यधिक बल दिया गया। इसी बीचमें औंधके राजपुत्र श्री अप्पासाहेब पंत बैरिस्टर होकर नये विचारोंसे सम्पन्न होकर आए। इन सबोंने मिलकर औंध रियासतको पूरी तरह बदल दिया। एक ग्रंथकारने तत्कालीन औंधकी स्थितिका चित्रण इस प्रकार किया है—

" केवल दक्षिणी रियासतोंमें ही नहीं अपितु सकल भारतीय रियासतोंमें औंध अग्रणी था। १९२१ में जब कि दूसरी रियासतोंमें राजकीयसुधारका नामोनिशान

भी नहीं था, औंधके प्रगतिशील बाळासाहब पंत प्रतिनिधिने रियासतके वार्षिक बजटपर नेताओंकी सलाह लेकर राजकीयसुधार योजनाकी नींव डाली। इस तरहकी प्रथा शुरू करनेवाले ये प्रथम राजा थे और आगे आनेवाले अठारह वर्षके कालमें अपनी रियासतमें उत्तरदायित्व पूर्ण राज्यपद्धतिकी स्थापना करनेवाले ये प्रथम राजा थे। १९३९ में ग्राम पंचायतके आधारपर राज्यपद्धति स्थापित की गई और वहांकी प्रजाओंको पूर्णरूपसे स्वतंत्रता दे दी गई। श्री बालासाहबको उनके पुत्र बैरिस्टर अप्पा साहब पन्तकी प्रकल्पक सहायता मिलनेके कारण राजासाहबकी अपनी रियासतमें सम्पूर्ण उत्तरदायित्वसे पूर्ण राज्यपद्धतिकी स्थापना करना सरल हो गया। औंधके स्वराज्यकी रूपरेखाको म. गांधी, पं. जवाहरलाल नेहरु आदि महापुरुषोंका आशीर्वाद प्राप्त होगया था। औंधमें नये प्रयोग की सफलतामें कई लोगोंको सन्देह था। पर अनुभवमें आने पर यह शंका बिल्कुल थोथी साबित हुई। ग्राम पंचायतका कारभार बहुत उत्तम हुआ। औंध रियासतके राजकीय सुधारके कामोंमें श्री लक्ष्मणराव किर्लोस्कर, पण्डित सातवलेकर, बै. अप्पासाहब पन्त इन तीनोंका परिश्रम बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। औंधकी प्रतिनिधि सभाके अधिवेशन अपने अपने समयपर होते थे। १९३१–१९३७ तकके दरम्यान औंध प्रजापरिषद्के चार अधिवेशन हुए और लोगोंको मानों इस प्रकार अपनी अपनी शिकायतें प्रस्तुत करनेके लिए वाणी मिली।" (दक्षिण महाराष्ट्रमें विलीनीकरणकी कथा)

पंजाबके ओदवायरी शिकंजेसे छूटकर पंडितजीने औंधके स्नेहछायाका आश्रय लिया। वहां आकर भी उन्होंने अपने लोक जागृतिके कामको जारी ही रखा। औंधके विधिमण्डलमें पंडितजी सलाहकारके रूपमें नियुक्त किए गए। वहां भी उन्होंने उस सभाके अन्य सभासदोंको काम करनेकी शिक्षा दी।

औंध रियासतके इस प्रातिनिधिक सभाके अधिकारोंमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और १९२६ में संविधान बनाने और राज्यके कार्यादिके बारेमें सर्वसाधारण प्रस्ताव प्रस्तुत करनेके अधिकार इसे मिल गए। इसी वर्षसे दिसम्बर और जूनके महीनेमें यह सभा बुलानेकी प्रथा शुरु हो गई। १९२६ की पहिली ही सभामें पंडितजीने एक सुझाव पेश किया कि "कम खर्च करनेसे और अनावश्यक नौकरोंको निकालनेके कारणसे बची हुई रकम रियासतके ऊपर लदे हुए कर्जेको चुकानेमें लगाई जाए" (रियासतोंमें लोकतंत्रीय आन्दोलन पृ. ८६)। उन्होंने लोगोंके सामने यह प्रश्न रखा कि– "यदि इस रियासतकी आय पहलेकी अपेक्षा बढ गई है, तो फिर इस रियासतकी यह दुर्दशा क्यों है? इसकी आय सत्तर हजार रुपये ज्यादा हो गई है और हमें यह भी आश्वासन दिया गया है, कि इस बढी हुई रकमका उपयोग कर्ज अदा करनेमें किया जाएगा, पर हमें यह संभव प्रतीत नहीं होता।" इस सभामें पंडितजीने एक मांग रखी कि इस सारे कार्यकी जांचके लिए एक कमीशन नियुक्त किया जाए और उनका यह प्रस्ताव पास भी होगया। इसके अलावा पंडितजीने

×

मार्गदर्शनका भी काम किया। १९२६ में दिसम्बरके अधिवेशनमें पंडितजीने अपने भाषणमें स्पष्ट कहा कि– " प्रजाके प्रतिनिधि अब यह अच्छी तरह समझ गए हैं कि अब हमारी कोई सुनता नहीं है। लोगोंने अब हमें चुना, तब उन्होंने हमसे यही पूछा कि तुम्हें हमने पिछले तीन वर्ष चुनकर भेजा वह क्या केवल इसीलिए कि तुम हमारी जमीनका लगान डेढगुना कर दो ? पिछले वर्ष निश्चित किए गए बजटके अनुसार व्यय न करके पैंतीस हजार रुपये ज्यादा खर्च कर डाले और प्रातिनिधिक सभाकी सम्मतिके बिना ही लगान डेढगुना बढा दिया, यह सब क्यों और कैसे हुआ ? "

सन् १९२९ के दिसम्बर महीनेमें १९३० के औंधरियासतके राज्यकी पुनर्घटनाके बारेमें एक विधेयक सभाके आगे प्रस्तुत किया है। उसकी मुक्तकंठसे स्तुति करते हुए पंडितजी ने कहा कि यदि इस विधेयकके अनुसार सब कार्य किया जाए तो इस रियासतमें निस्सन्देह रामराज्य स्थापित हो जाएगा।

सन् १९२८ और १९३५ में इनकम टॅक्सका बिल आनेपर अ. वि. पटवर्धन, ल. का. किर्लोस्कर, ओगले और दर्शनेके समान पंडितजीने भी उसका बडा जोरदार विरोध किया। क्योंकि उस समय रियासतमें प्रत्येक व्यक्तिसे लिये जानेवाले करकी औसत साढे छै रुपये पडती थी। इस प्रस्तावपर बोलते हुए पंडितजीने कहा था कि– " पिछले पांच वर्षोंके उत्पन्नके औसतपर विचार करके आगेकी योजनायें बनाई जाए *और उस आयसे कर्ज उतारकर बाकी बची हुई रकम विभिन्न विभागोंको खर्चके* लिए दे दी जाए। " सन् १९३३ में पंडितजीने खेतीके लगानको कम करनेके विषयमें विचार करनेके लिए एक कमेटी स्थापित करनेका एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, जो अस्वीकृत हो गया था। १९३४ में पंडितजी फिर चुन लिए गए। १९३६ में आटपाडी और महालमें अकाल पडा और वहांके करीब दोहजार किसान २९ अगस्त १९३८ के दिन औंध आए। उस समय अप्पासाहब पंत, रामभाऊ इंगळे और पंडितजी उनसे मिले, अकालके बारेमें उनकी दर्दभरी कहानी सुनी और उनके दुःखोंको दूर करनेके लिए उन्होंने प्रयत्न भी किए।

लोगोंकी दृष्टिमें भले ही औंध रियासत छोटीसी प्रतीत होती हो, और उस रियासतमें पंडितजीके द्वारा किया हुआ काम भी अन्य महापुरुषोंके द्वारा किये गए कामकी तुलनामें थोडा ही प्रतीत हो, पर पंडितजीने जो भी कुछ किया वह स्वयंमें एक आदर्शभूत है। हो सकता है कि सूर्यकी तुलनामें चन्द्रका प्रकाश नगण्यसा हो, पर फिर भी चन्द्रके प्रकाशकी सत्तासे इन्कार नहीं किया जासकता। रातके समय जब सूर्य अस्ताचलके जाचुका होता है तब प्रकाशके लिए केवलमात्र चन्द्रका ही सहारा लेना पडता है। इसी प्रकार अन्य महापुरुषोंके कार्य की तुलनामें पंडितजीके प्रयत्न भले ही इतने विशद न हों पर फिर भी उनके प्रयत्न स्वयंमें उतने ही

तेजस्वी और प्रेरक हैं। यदि हम उस समयके अनेक रियासतोंकी तुलना करें तो उस तुलनाकी पृष्ठभूमिपर औंधकी रियासत और उस रियासतकी उन्नतिके लिए पंडितजी द्वारा किए गए प्रयत्न देदीप्यमान ही प्रतीत होंगे।

महाराष्ट्रमें उस समय औंध रियासत बहुत प्रगतिशील और उन्नतिशील मानी जाती थी। उसी समय भोर रियासत भी औंध रियासतके प्रतिगामी रियासतके रूपमें नजर आ रही थी। भोर रियासतमें प्रथम आन्दोलन सन् १९२१ में प्रारंभ हुआ और उस आन्दोलनकी शुरुआत समाबन्दीके कायदेको तोड़नेसे हुई। इस आन्दोलनके सर्वप्रथम प्रवर्तक थे सर्वश्री न. चि. केलकर और वामनराव पटवर्धन। इस परसे भोर रियासतके राज्यशासनकी कल्पना आसानीसे की जा सकती है। भोरमें प्रजातंत्रीय आन्दोलन बहुत जोरदार था, और उसने इस क्षेत्रमें अन्य सभी रियासतोंको पछाड़ दिया था। सर्वश्री गोपीनाथपंत पोतनीस और भाऊसाहब शेटये भोर रियासतके आन्दोलनके कर्णधार थे। इन दोनों नेताओंका अपने अनुयायियोंपर इतना अधिक प्रभाव था कि इनकी एक पुकारपर हजारों लोग आकर इकट्ठा हो जाते थे। पोतनीस अनेकबार भोर राजदरबारके कोपभाजन बने। इनके अलावा और भी अनेक कार्यकर्ता सीखचोंके पीछे डाल दिए गए। पर इसके बावजूद भी प्रजाओंमें वही उत्साह और वही जोश कायम रहा। राजदरबारने नेताओंको तो बन्द कर दिया, पर वह प्रजाओंके उत्साहको ठण्डा न कर सका। कुछ लोगोंने इस प्रजापरिषद्के विरुद्ध अपने एक स्वतंत्र लोकपक्षकी स्थापना की और उस लोकपक्षको राजदरबारका वरद हस्त भी प्राप्त हो गया था, पर प्रजा परिषद्के सामने यह लोकपक्ष ज्यादा समय तक टिक न पाया और अन्तमें उसी प्रजापरिषद्में वह विलीन भी हो गया। इस लोकपक्षके कर्णधारोंमेंसे चन्द्रशेखरराव आगाशे और ग. मा. पानसे विशेषतः उल्लेखनीय हैं। १९२२ से लेकर १९३९ तक अर्थात् इन सत्रह वर्षोंमें भोज परिषद्के बारह अधिवेशन हुए। १९२८ में परिषद्से बाध्य होकर एक विधिमंडलकी स्थापना की गई। पर मंत्रियोंकी राजकीय वृत्ति बहुत संकुचित होने और अदूरदर्शिताके कारण राजकीय सुधारके क्षेत्रमें वह रियासत पिछड़ी ही रही। यदि वहांके अधिकारियोंने वहांके बुद्धिमानों, विचारकों और दूर दृष्टिवालोंकी सलाह ली होती और उसके अनुसार कार्य किया होता तो उस रियासतकी कायापलट हो गई होती। पर वैसा न हो सका। ये रियासतदार ब्रिटिश साम्राज्य और उसके रेजिडेण्टके आगे हमेशा भीगीबिल्ली बने रहते थे, क्योंकि उन्हें हमेशा यह डर लगा रहता था, कि रेजिडेण्ट उनसे खफा होकर कहीं उनका अधिकार न छीन ले। इसीलिए ब्रिटिश अधिकारियोंका प्रिय बननेके लिए ये आन्दोलनकारियोंपर मनमाना जुल्म करते थे। इसी कारण ये राजा ज्यादा लोकप्रिय नहीं हो पाये। इन्हीं कतिपय कारणोंसे भोर रियासतमें जितने ज्यादा आन्दोलन उठे और जिन अत्याचारपूर्ण उपायोंसे उन आन्दोलनोंको दबा दिया, उतना जुल्म दक्षिणी महाराष्ट्रके और किसी भी रियासतमें नहीं हुआ।

दक्षिणी महाराष्ट्रके चौदह रियासतोंमें कोल्हापुरकी रियासत सबसे बड़ी थी कोल्हापुरमें छत्रपति शिवाजीकी गद्दी होनेके कारण सारे महाराष्ट्रीय लोगोंके हृदयमें इस गद्दीके प्रति आदरकी भावना थी और उसके प्रति लोगोंमें अपनत्वके भाव भी थे। बीसवीं शताब्दीके प्रारंभमें कोल्हापुरमें भी राजकीय आन्दोलनका प्रारंभ हुआ, पर अत्याचारोंके द्वारा उसे दबा दिया गया। उस समयके आन्दोलनकारियोंमें इस अत्याचारके शिकार प्रो. विजापुरकर, प्रो. वा. म. जोशी और पं. सातवलेकर बने। कोल्हापुरमें जब जब यह राजनैतिक जागरणका काम प्रारंभ किया गया, तब तब वह बड़ी ही निर्दयतासे दबा दिया गया। कोल्हापुरके शाहू छत्रपति बहुत कर्तव्यपरायण थे, पर उनका सारा प्रयत्न ब्रिटिश रेजिडेण्टको खुश करनेके लिए ही होता था। अतः इन आन्दोलनोंसे ब्रिटिश अधिकारियोंको उनकी स्वामिभक्तिमें सन्देह न हो जाए, इसलिए वे इन आन्दोलनोंको यथासंभव दबा देनेका ही प्रयत्न करते थे। कोल्हापुरमें महाराजा और सर राजारामने शिक्षण क्षेत्रमें बड़े प्रशंसनीय प्रयत्न किए, सामाजिक समतावाद स्थापित किया, पर राजनैतिक सुधारके क्षेत्रमें उन्होंने अपनी प्रजाओंको पिछड़ा हुआ ही रखा। दूसरी रियासतोंका प्रजाओंमें यह राजनैतिक सुधार थोड़े बहुत अंशमें अवश्य दृष्टिगोचर होता था। और औंध जैसी छोटीसी रियासतमें तो यह लोकतंत्रीय राज्य पूर्णरूपसे अमलमें लाया जा चुका था। पर कोल्हापुरमें शाहूकी तानाशाही अपने पूरे जोरपर थी। १९३८ में श्री माधवराव बागलने इस निरंकुश राज्यसत्तापर बड़ा प्रबल प्रहार किया, फलतः ६।२।१९३९ के दिन जयसिंहपुरमें कोल्हापुर प्रजापरिषद्की विधिवत् स्थापना हो गई। आगे चलकर इस परिषद् और दरबारमें एक वैमनस्य उत्पन्न हो गया। रत्नाप्पा कुम्भारने इस परिषद्के संगठनको और ज्यादा बलशाली किया, परिणामस्वरूप अल्प समयमें ही यह परिषद् एक प्रभावशाली संस्था बन गई। इस परिषद्का प्रथम अधिवेशन डॉ. पट्टाभि सीतारमैय्याकी अध्यक्षतामें दिनांक १५।४।१९३९ को करनेका निश्चय हुआ। पर जिस प्रकार औंध प्रजापरिषद्के अधिवेशन रियासतकी सीमामें ही होते थे, उस प्रकार कोल्हापुरकी राज्यसीमामें इस अधिवेशनको करनेकी सुविधा न होनेके कारण उसके संयोजकोंने यह सभा कोल्हापुरसे तीस मील दूर सांगलीके पास कुपवाड़में संयोजित की। इस परिषद्की प्रतिदिन उन्नति होती गई, इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि इस समयकी परिषद्के नेता ब्राह्मण न होकर श्री बागल जैसे छत्रपती वंशीय ही थे। श्री बागल एक बड़े प्रभावशाली वक्ता माने जाते थे। वे बहुजन समाजकी भाषामें बहुजनहिताय और बहुजनसुखाय ही बोलते थे, इसीलिए वे अल्प समयमें ही एक लोकप्रिय नेता हो गए। सभाबन्दीका हुक्म तोड़नेके कारण उन्हें दरबारके रोषका शिकार बनना पड़ा। पर उसका परिणाम यह हुआ कि यह परिषद् प्रतिदिन लोकप्रिय बनती चली गई। इस प्रकार सर्वश्री बागल और कुम्भारने मिलकर कोल्हापुरकी सुदृढ राज्यसत्ताकी जड़ें हिलाकर

रख दीं। इनके इस कार्यमें सर्वश्री शंकररावदेव, ह. मो. जोशी, और बा. वि. शिखरे आदि अन्य नेताओंकी भी बहुत सहायता मिली।

अक्कलकोट रियासतमें १९२३, १९२४ और १९२९ इन तीन वर्षोंमें प्रजापरिषद्के अधिवेशन हुए। इस परिषद् के प्रति राजदरबारकी नजर सहानुभूतिपूर्ण न होकर रोषभरी थी। इस परिषद्के कार्यकर्ताओंको बहुत कष्ट दिए गए। इस कारण अगले कई वर्षोंतक इस परिषद्के अधिवेशन ही न हो सके। पर आखिरकार १९३८ में दशहरेके मुहूर्तपर अक्कलकोटके राजदरबारने राजनैतिक सुधार करनेकी अनुज्ञा प्रदान कर दी।

मुधोल रियासतमें भी इस प्रकारके आन्दोलनोंको कुचलनेके प्रयत्न होते ही रहे। पर १९३७ में तत्कालीन राजाके अवसानके पश्चात् उस रियासतमें भी राजकीय जीवनकी शुरुआत हो गई। मुधोलकी परिषद्के प्रथम अधिवेशन करनेमें, लोगोंमें जागृति फैलानेमें और प्रजाओंका सहकार्य प्राप्त करनेमें ही तीन बरस गुजर गए और ता. १८।४।१९४० को डॉ. नागनगौडकी अध्यक्षतामें मुधोलराज्यकी प्रजा परिषद्का सर्वप्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

जंजिरा और सावनूर इन दो मुसलमानी रियासतोंमेंसे जंजिरा राज्यमें १९२६, १९२७ और १९३२ में परिषद्के तीन अधिवेशन हुए। इस कारण उस रियासतका राजदरबार भी हड़बड़ाकर उठ बैठा और उसने भी अत्याचारका मार्ग अपना लिया। लिहाजा करीब करीब सभी कार्यकर्ता बन्दी बना लिए गए। इसके कारण वह आन्दोलन जो पिछड़ता गया, वह पिछड़ता ही चला गया। सावनूर रियासतमें कोई आन्दोलन उठा ही नहीं। —(रियासतोंके विलीनीकरणकी कथा)

अपनी प्रजाके विषयमें बेदरकार रहनेवाली और बेमुरौव्वत रियासतोंकी तुलनामें औंध बहुत प्रगतिशील था। इसका कारण यह था कि उस रियासतको पंडितजी जैसे मार्गदर्शक और नेता प्राप्त हुए थे।

औंध रियासतमें १९३२ में ही स्वराज्य स्थापित हो गया था। फलटण और सांगली इन दोनों रियासतोंमें दो दलोंकी राज्यपद्धति चल रही थी, इस कारण इन रियासतोंके राज्यशासनमें प्रजातंत्रीय नेताओंका भी थोड़ा बहुत हाथ रहता था। मीरज और मीरजमळा रियासतोंमें अधिकारियोंका एक विधिमण्डल स्थापित हो गया था। कुरुन्दवाड (छोटाभाग) में राजकीय सुधारोंका आश्वासन मात्र था और कुरुन्दवाड (बड़ाभाग) और कोल्हापुरमें वह आश्वासन भी नहीं था। ऐसी स्थितिमें ग्रामोंको स्वावलम्बी बनानेकी जो राज्यपद्धति औंधमें शुरु हुई, उसे महात्माजीका आशीर्वाद मिल जानेसे ब्रिटिश सरकार चौकन्नी हो गई थी। पर पंडितजीके मार्गदर्शनमें स्थापित ग्रामरक्षक दलको देखकर वाइसरायका प्रतिनिधि किस प्रकार प्रभावित हुआ, उसका वर्णन पीछे किया ही जा चुका है।

ग्रामपंचायतके स्वराज्यका यही अर्थ था कि गांवोंको और किसानोंको स्वावलम्बी तथा समृद्ध बनानेके लिए सर्वप्रथम बेकारीको समाप्त करनी चाहिए। उत्पादनको विकसित करनेमें धनार्जनका लोभ उपयोगी नहीं होता। दरिद्रतासे ग्रस्त किसानोंकी मनोवृत्ति बदलनी पड़ती है। इसके लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक होता है कि उनके मनमें सुखी और समृद्ध जीवन की चेतना जगाकर उनके जीवनमें एक नई आशा, एक नई अभिलाषा और एक नई उमंगका संचार किया जाए। गांवके हर किसानोंको नवीन नवीन कृषियंत्र दिए जाने चाहिए, इसके अलावा अन्य साहित्य भी उन्हें भरपूर प्रमाणमें उपलब्ध होने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रोंमें छोटे मोटे उद्योग धन्दे भी स्थापित किए जाने चाहिए और इस प्रकार श्रमिकोंके अर्जनमें उत्तरोत्तर प्रगति करनी चाहिए। औंधके इस राजकीय सुधारके बारेमें पंडितजीका अभिप्राय स्वागतार्ह था। वे कहते हैं कि—

" रियासती शासन निरंकुश था। निरंकुशशासनके दोष प्रजाओंकी नजरमें आचुके थे। रियासतके सर्वेसर्वा राजाओंका इस निरंकुशताको समाप्त करने और प्रजाके नेताओंको राज्य शासनमें अधिकार दिलानेके लिए रियासतकी प्रजाओंमें आन्दोलन चल रहे थे। इन आन्दोलनोंका औंध रियासत पर जो परिणाम हुआ, वह द्रष्टव्य था।"

औन्धकी प्रजाकी क्रान्तिको मद्देनजर रखते हुए वहांके राजा साहबने वहांकी प्रजाओंको निम्नलिखित अधिकार प्रदान कर दिए—

(१) प्रत्येक गांवमें प्रजाद्वारा नियुक्त ग्रामपंचायतकी स्थापना।

(२) ग्रामपंचायतमें ही सभी झगडोंका निर्णय।

(३) प्रत्येक गांवमें ग्रामरक्षकदलकी स्थापना, हर रात गांवमें पहरा देना और इस प्रकार गांवकी सुरक्षा करना।

(४) गांवको स्वच्छ रखकर अन्य भी आरोग्यके साधनोंके द्वारा गांवको स्वस्थ बनाना।

(५) गांवके सभी मुकदमोंका निर्णय तथा अन्य भी काम यथायोग्य रीतिसे करनेका संरक्षकदलको अधिकार।

इस प्रकार अधिकार मिल जानेपर हरएक गांवमें समाधान और शान्तिकी लहर फैल गई।

स्वराज्यकी उत्तमताको परखनेकी कसौटी यही है कि उस देशकी प्रजा यह समझे कि उसके द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंके द्वारा चलाया गया शासन उनका कल्याण करनेवाला है। इस कसौटी पर खरा उतरनेवाला स्वराज्य ही वास्तविक स्वराज्य है।

: १२ :

स्वयंसेवक पंडितजी

डॉ. हेडगेवार द्वारा संस्थापित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संस्था एक देशभक्त संस्था है। इस संस्थाने अनेक बार राष्ट्रको संकटोंसे बचाया है। यह शुद्ध भारतीय संस्कृतिका अनुकरण करनेवाली है। पंडित सातवलेकरजी इस संस्थाके अनेकों वर्षों तक सदस्य रहे हैं और अपना सहकार्य इस संस्थाको प्रदान करते आए हैं। इस विषयमें पंडितजी स्वयं लिखते हैं—

"सन् १९३६ में सातारामें मैं राष्ट्रीयस्वयंसेवकका सदस्य बना और उसी समय मैंने संघकी प्रतिज्ञा की और तदनुसार औंध रियासतमें शाखाप्रमुख और शाखासंचालकके रूपमें मैं काम करने लगा। मैंने १६ वर्ष तक इस संघमें काम किया और सोलह वर्षोंके इस प्रदीर्घ कालमें मैंने यह अच्छी तरह जान लिया है कि यह संघ हिन्दुजातिको संघटित करके बलवान् बनानेवाली एक संस्था है। इस संघके कार्यका निरीक्षण करनेके लिए मैं सारा हिन्दुस्तान घूमा हूँ। क्वेटा, पेशावर, रावलपिंडी, मुलतान, अमृतसर, लाहौर, सियालकोट, जम्मू, होशियारपुर, पटियाला, दिल्ली आदि शाखाओंका कार्य देखकर मुझे बड़ा समाधान मिला। पंजाबका उत्साह अवर्णनीय था। पंजाबमें इस संघने अनेकों ऐसे कार्य किए हैं, कि जिससे इस संघकी राष्ट्रभक्ति व्यक्त होती है। पाकिस्तान बननेके बाद भागदौड़में इस संघके स्वयंसेवकोंने प्राणोंको हथेलीपर रखकर अनेक हिन्दुओंके प्राण बचाये। इस काममें डेढसौ स्वयं सेवक अपनी जानसे हाथ भी धो बैठे। सेवाका यह अपूर्व कार्य स्वयंसेवकोंने किया।"

"उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, राजस्थान, काठियावाड, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्नाटक आदि प्रान्तोंमें भी संघ शाखाओंका मैंने निरीक्षण किया, पर

पंजाबी स्वयंसेवक मुझे सबसे ज्यादा पसन्द आए। इतना घूमने फिरने और संघका काम प्रत्यक्ष करनेके बाद मेरा यह निश्चित मत हो गया कि यह संघ हिन्दुओंको संघटित करनेवाली एक संस्था है।"

"इस प्रकार निश्चय हो जानेके बाद मैं संघका काम करने लगा। औंधकी हमारी शाखा सम्पूर्ण सतारा जिलेमें महत्त्वपूर्ण समझी जाती थी।"

"महात्मा गांधीकी हत्याके बाद बिना किसी कारण सरकारने इस संघ पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इस समय अनेकोंको कैदखानेमें बन्द कर दिया गया। यह एक बहुत गलत काम था। महात्मा गांधीके सुपुत्रने गांधीवधके अगले दिन ही रेडियो पर यह कहा था कि यदि राष्ट्रीयसंघके स्वयंसेवकोंको गांधीवधकी पूर्ण सूचना मिल जाती, तो वे अपने जानकी बाजी लगाकर भी महात्माजीको बचा लेते।"

"संघ पूर्णतया निर्दोष था। इतना ही नहीं, अपितु दिल्लीमें भारतसरकारके विरुद्ध नियोजित मुसलमानी षड्यन्त्रको निष्फल करके भारतीय काँग्रेस सरकारको सुरक्षित करनेके कार्यमें इस संघने बड़ा ही महत्त्वपूर्ण योगदान किया था। यह सब लोहपुरुष सरदार पटेल जानते थे। इसलिए इस संघ पर उनका अपार प्रेम था। यह सब देखनेके कारण संघकी निर्दोषता पर मुझे पूरा पूरा विश्वास था।

"महात्माजीके वधके बाद महाराष्ट्रमें स्वार्थी लोगोंने जो दंगा खड़ा कर दिया, उसके कारण महाराष्ट्रमें स्थिति तेजीसे पलटने लग गई और मेरे वेदग्रंथोंके प्रकाशनके कार्यमें विघ्न उपस्थित होने लगे। इस कारण औंध छोड़कर मैं पारडी जि. बलसाड आ गया और वहीं स्थायी हो गया।"

"यहां संघकी शाखा न होनेके कारण इस संघके साथ मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रह गया, पर इसके कारण संघ पर मेरा प्रेम जरा भी कम नहीं हुआ।"

जबसे पंडितजीने संघका काम करनेका एकबार निश्चय कर लिया, तबसे पंडितजीका शामका छै बजेका समय कभी नहीं चूका। निश्चित मार्गसे आते, एक घण्टा वहां रहते और फिर वापस चले जाते। संघस्थान पर आकर यदि मालूम पड़ता कि किसी सदस्यकी तबीयत खराब हो गई है, तो उसी समय अथवा अगले दिन उसके घर जाकर उसके स्वास्थ्यके बारेमें अवश्य पूछताछ करते। उसे औषध बताते, यदि अपने पास होता तो नौकरके हाथों उसे भिजवा देते। औंध जैसे ढाई-तीन हजारकी लोकसंख्यावाले गांवमें पंडितजी संघकी तीन बड़ी बड़ी शाखाओंका सञ्चालन करते थे, उनमेंसे एक शाखा वहांकी हरिजनबस्तीमें थी।

सतारा जिलेके उत्तरी भागके संघका शिबिर एकबार औंधके हवाई अड्डेके पास सम्पन्न हुआ। बहुत ही जल्दी उसने एक छावनीका रूप धारण कर लिया। औंधके वस्तुसंग्रहालयमेंसे शिवाजी और राणाप्रतापके पुतले लाकर छावनीके ध्वजस्तम्भके पास प्रस्थापित किए गए। उसके पीछे बड़े बड़े और छोटे छोटे तम्बू गाड़े गए।

शिबिरके उद्घाटनके समय तत्कालीन महाराज श्री बालासाहब पंत प्रतिनिधि भी हाज़िर थे। शिबिरका अनुशासित कार्यक्रम अपने समयपत्रकके अनुसार चलता था। दूसरे दिन शामके समय अचानक सारा आकाश बादलोंसे घिर गया। रातमें सोनेका बिगुल बजा। संघ संचालकके साथ पंडितजी भी अपने तम्बूमें चले गए। रातके करीब एक बजेसे जो मूसलाधार बरसात शुरू हुई उसने चारों ओर पानी ही पानी कर दिया।

तो भी किसी प्रकारकी अव्यवस्था वहां दृष्टिगोचर नहीं हुई। सभी स्वयंसेवक अपना सामान लेकर किसी न किसी स्थानका सहारा लिए हुए थे। किसी तरह रात कटी और एकदम सवेरे सभी स्वयंसेवकोंको चलनेका संकेत दे दिया गया। सबसे आगे पंडितजी चल रहे थे। उन्होंने औंध बेंकके मैनेजरको बुलाकर पांच सात आदमियोंकी व्यवस्था की। उसके बाद सभी धर्मशालायें, स्कूल और मन्दिर स्वयंसेवकोंसे भर गए। विभागीय प्रमुखोंके ऊपर कामका भार सौंप कर पंडितजी अपने घर गए और सवेरे ठीक ६॥ बजे फिर कार्यालयमें हाजिर। पर शिबिरके कार्यक्रममें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित नहीं हुआ।

इसी प्रकारका एक और अविस्मरणीय प्रसंग यहां उल्लेखनीय है। औंध संघशाखाके एक उत्सवके प्रसंग पर औंधके राजासाहब भी निमंत्रित थे। समय ५॥ बजेका था। सभी संघस्थल पर एकत्रित हो चुके थे। पर राजासाहबके आनेका कोई चिन्ह अभीतक दिखाई नहीं पडा था। तो भी बिलकुल ठीक समय पर ध्वजारोहण हो गया, प्रार्थना भी हो गई और स्वयंसेवकोंको "आराम" की स्थितिमें खडा कर दिया गया। इतनेमें ही घोडोंके टापोंकी आवाज़ सुनाई दी। "सावधान! दक्ष!" के साथ प्रणाम करवाया गया। राजासाहबने आते ही पूछा कि मेरे आनेसे पहले झण्डा क्यों फहरा दिया गया?

इसपर पंडितजीका निर्भीकतापूर्ण उत्तर था—"वाटरलूकी लडाईमें नेपोलियनकी सेना कुछ ही मिनट देरसे पहुंची थी इसलिए उसकी पराजय हो गई। यह आप जानते ही हैं न?"

इसके बाद समय पत्रकके अनुसार सारा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। पंडितजीने तरुणोंमें "अबका काम अभी" और "जिसका काम उसीको" करनेकी आदत डाल दी। इस आदतका उपयोग सन् १९३९ में औंध संस्थानके अन्तर्गत ग्रामरक्षकदलकी स्थापनाके समय हुआ। इस अनुशासनको देखकर वाइसरायके प्रतिनिधिके मुंहसे निकल पडा था कि फिर यहां अंग्रेज़ोंका क्या काम है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके कार्यकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनेके विषयमें पंडितजीने स्वयं स्पष्टीकरण किया है। वे इस संघके एक आधारस्तंभ थे, वे इसके प्राण थे। इसीलिए पंडितजीने इस संघकी यथाशक्ति सहायता की और वैदिक ऋचाओंके आधारपर

संघके अभिप्रेत ध्येयका सर्वत्र प्रचार भी किया। पंडितजीमें नेतृत्व करनेकी कुशलता थी। उनके सामने संघका उज्ज्वल रूप चमक रहा था, इसी चमकसे आकर्षित होकर पंडितजीने स्वयंसेवक संघकी कार्यधुरा वहन की।

अपनी इच्छासे राष्ट्रकी सेवा करनेकी अभिलाषा करनेवालोंके समुदायका नाम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। यह संस्था डॉ. केशव बलिराम हेडगेवारने (१८९०-१९४०) ने सन् १९२५ में विजयादशमीके शुभावसरपर नागपुरमें स्थापित की थी। उनका यह निश्चित विचार था कि हिन्दुओंमें यदि एक नई जाग्रति और एक नई चेतना जगानी हो, तो सर्वप्रथम उन्हें संघटित करना पडेगा। इसी दृष्टिसे उन्होंने इस संघकी स्थापना की थी। संघका ध्वज भगवा है और इस संघमें अनुशासनपर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाता है। इस संघमें हिन्दू संस्कृतिको समझानेके लिए समय समयपर भाषण भी होते हैं। १९३२ में सर्वप्रथम यह संघ मध्यप्रान्तके सरकारके रोषपूर्ण दृष्टिका शिकार बना, उसके बाद अन्य प्रान्तीय सरकारोंने भी उसका अनुसरण किया। इसके बावजूद भी संघका काम बढता गया। गुरुदक्षिणाके रूपमें पैसेकी और स्वयंसेवकोंके रूपमें तरुणोंकी इस संघमें कभी कमी नहीं रही। संघने हिन्दु जनताके हृदयमें अपना घर कर लिया। इसकी इस बढती हुई लोकप्रियता सरकारकी आंखोंमें खटकने लगी। वह इसे दबाने और सर्वथा नष्ट कर देनेकी कोशिशें करती रहीं, पर इसके विपरीत यह दिनोंदिन बढता चला गया। इस संघका एक ही ध्येय है और वह है हिन्दु जातिकी उन्नति। इस कामके लिए यह संघ समर्पित हो चुका है। इस संघका राजनीतिसे राई भरका भी सम्बन्ध नहीं, फिर भी सरकार इसकी तरफ वक्रदृष्टिसे देखे, यह एक आश्चर्य नहीं तो और क्या है?

❁ ❁ ❁

: १३ :

तीन परिषदें

रियासतकी प्रजाकी उन्नतिके कामके सिवाय और कोई काम मैं नहीं करूंगा, इस प्रकारका आश्वासन देकर श्री पंडितजी बीसवें शतकके तीसरे दशकमें औंधमें आकर स्थिर हो गए। औंध रियासतकी प्रजाजनोंकी उन्नतिका लक्ष्य सामने रखकर काम करनेवाले पंडितजीके कार्योंका क्षेत्र क्रमशः विस्तृत होता गया और अन्तमें दक्षिण महाराष्ट्रकी सभी रियासतें उनका कार्यक्षेत्र बन गईं। पुराणके मनुकी मछलीके समान आदिमें सूक्ष्म रूप धारण करनेवाला पंडितजीका कार्य धीरे धीरे अपना कलेवर बढाने लगा। पंडितजी इस दृष्टिकोणके थे कि ब्रिटिशराज्यमें रहनेवाले भारतीय और रियासतोंमें रहनेवाले भारतीय वस्तुतः एक ही हैं। इसी दृष्टिसे उन्होंने सब कार्य किया। १९२० में महात्माजीका असहयोग आन्दोलनका जब श्रीगणेश हुआ, तब सतारा जिलेकी जनताने अपना उत्तम योगदान किया। उस समय भाउसाहब सोमणके कहनेपर पंडितजीने जिला कॉंग्रेस कमेटीकी कार्यधुरा सम्हाल ली। महात्माजीने नमक सत्याग्रहका प्रारंभ करके ब्रिटिश सरकारको ललकारा। इस भारतव्यापी आन्दोलनको ठीक रास्तेपर सतत रूपसे चलानेके लिए स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता थी। महाराष्ट्रमें भी उस तरहके स्वयंसेवक निर्माण करनेके लिए सैनिक छावनियोंके समान शिबिर चलानेका निश्चय वहांके नेताओंने किया। कोई भी काम जनता जनार्दनके अनन्त हाथोंकी मददके बिना पूरा नहीं हो सकता, यह एक सर्वसम्मत बात है। इसलिए महात्माजीके इस आन्दोलनके पीछे सतारा जिला भी अपनी जनताके साथ दृढतासे स्थित है, यह दर्शानेके लिए जिला परिषद्की सम्मति आवश्यक हो गई। उसी समय जिला परिषद्का नेतृत्व करनेके लिए पंडितजीके पास प्रस्ताव आया और वह प्रस्ताव उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपने सिरमाथे चढाया। इस प्रकार वे जिला परिषद्के वार्षिक अधिवेशनके अध्यक्ष मनोनीत हो गये।

शनिवार ता. ५ अप्रैल १९३० को साताराके न्यू इंग्लिश स्कूलमें सतारा जिला परिषद्‌का पांचवां अधिवेशन हुआ। यह अधिवेशन स्थल प्रतिनिधियों एवं दर्शकोंसे पूरी तरह व्याप्त था। परिषद्‌का मंडप तिलक, गांधी, पटेल आदि अनेकों नेताओंके चित्रोंसे सजाया गया था। स्वागताध्यक्ष श्री गो. वा. जोशी ने अपने भाषणमें गांधीजीके दाण्डीसत्याग्रहका गुण गाकर, महाराष्ट्रके उत्साही कार्यकर्ता श्री शिवरामपंतको श्रद्धांजलि अर्पित कर, यतीन्द्रनाथका अन्नत्याग करने एवं बैरिस्टर सेन गुप्त एवं सरदार पटेलके बन्दी होनेके उपलक्ष्यमें उनका अभिनन्दन कर तरुणोंको इस सत्याग्रहमें शामिल होनेके लिए आह्वान दिया। अन्तमें स्वागताध्यक्षने " गांधीके कट्टर अनुयायी पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर इस परिषद्‌के अध्यक्षपदको स्वीकार करें " इन शब्दोंके साथ पंडितजीको अध्यक्ष-पदकेलिए निमंत्रित किया।

स्वागताध्यक्षके इस प्रस्तावका लोकप्रिय नेता भाऊसाहब सोमण, सांगलीके विठ्ठलराव जोशी और कराडके सेठ गणपतराव बटाणेने अनुमोदन किया। पंडितजीने प्रथम वैदिक ऋचाओंसे परमेश्वर और मातृभूमिको वन्दन करके अपने अध्यक्षीय भाषणमें कहा कि—

" हे मनुष्य! दुर्भाग्यसे सरलतासे न टूटनेवाले बन्धनोंसे जो तू बंधा हुआ है, उन्हें तोडकर मैं तुझे स्वतंत्र करता हूँ। बन्धनसे मुक्त होनेपर तुझे बल, दीर्घायु, तेजकी प्राप्ति होगी और तुझे आनन्दकारक और बलकारक अन्नोंकी भी प्राप्ति होगी। इसलिए तू तेजस्वी वृत्ति धारण कर, कभी दीन मत हो और इन बंधनोंको तोडकर तू स्वतंत्र हो जा। " (अथर्ववेद)

पांचमुखी परमेश्वर (राष्ट्रपुरुष)

परमेश्वरको जो पांच मुखवाला कहा जाता है, उसपर मेरा पूरा विश्वास है। ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कारीगर और अशिक्षित इस प्रकार पांच प्रकारके लोग हमारे राष्ट्रमें हैं। ये ही पांच मुख हमारे उपास्य देवताके हैं। ये पांचों मुख एक ही दिशामें बनाये जाते हैं, इसका अर्थ यही है कि ये पांचों ही शक्तियां एकत्रित होकर रहें। ये शक्तियां इकट्ठी होकर एक ही दिशामें कार्य करें, इन सबका उपयोग एक ही सत्कार्यमें हो। इस दिशामें हमारे प्रयत्न हो रहे हैं, पर इस विषयमें अधिकसे अधिक क्या किया जा सकता है, इसी बारेमें विचार विमर्श करनेके लिए आप लोग यहां सम्मिलित हुए हैं।

साताराका महत्त्व

इस शुभ कामके लिए साताराके समान उत्तम दूसरा कोई शहर मिलना संभव नहीं। क्योंकि इस शहरने एक समय अपनी सभी शक्तियोंका एकीकरण बहुत उत्तम रीतिसे किया था। इसके अलावा सतारा शब्दके उच्चारणके साथ ही

भारतकी अन्यतम विभूति छत्रपति शिवाजीकी मूर्ति सामने आकर उपस्थित हो जाती है। छत्रपतिके पूर्व जनताकी शक्ति अनेकों दिशाओंमें बिखरी पड़ी थी, पर शिवाजीने अपनी कुशलतासे उन बिखरी हुई शक्तियोंको एकत्रित किया और उसे एक दिशामें प्रेरित किया, इस महान् कार्यके कारण ही छत्रपति स्वराज्य स्थापनके कार्यमें सफल हुए। यदि इन बिखरी हुई शक्तियोंको इकट्ठा कर दिया जाए, तो कठिनसे कठिन काम भी आसानीसे किए जा सकते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सतारा शहर इस विषयमें लोगोंके सामने एक आदर्श अवश्य उपस्थित करेगा।

त्याग और आत्मसमर्पण

हमारे सभी पूर्वज हमेशासे हमें यह सन्देश देते आए हैं कि राष्ट्र या समाजकी उन्नति स्वार्थत्यागके बिना नहीं हो सकती। देशके लिए स्वार्थत्याग और धर्मके लिए आत्मसमर्पणका पाठ हमें छत्रपतिने पढ़ाया है। यदि हम इस पर मनन करें, तो आजका मार्ग हमारे सामने स्वयं प्रकट हो जाएगा। हमारे इतिहास ज्योतिषके द्वारा हमारा मार्ग पूर्णतया प्रकाशित हो, यही प्रार्थना परमेश्वरसे करके हम अपने काममें संलग्न हो जाएं।

विचारक्रान्ति

राष्ट्रीय सभाके कार्यको प्रारंभ किए हुए आज ४२ वर्ष हो गए। पहले सभीके ऐसे विचार थे कि यह अंग्रेज़ी राज्य ईश्वरकी दयासे ही हमें मिला है। पर आगे चलकर लोग समझ गए यह राज्य एक ईश्वरीय वरदान न होकर एक प्रकारकी घुन है, जो इस देशको अन्दरसे खोखला कर रहा है। आज महात्मा गांधी इस राज्यको ईश्वरीय राज्य न कहकर शैतानी राज्य कहने लगे हैं। आजसे चालीसवर्ष पहले जिस राज्यका गुणानुवाद लोग गाया करते थे, उसी राज्य पद्धतिसे अब लोग क्यों तंग आ गए? इसके कारणपर अधिकारियोंको विचार करना चाहिए। आज कैदखानेमें जानेके लिए अनेकों मनुष्य अहमहमिकया आगे आ रहे हैं। इसके रहस्यपर विचार करनेपर अंग्रेज़ी सत्ताधिकारी सब कुछ समझ जाएंगे। अंग्रेज़ोंने सब जगह बेकारी और अव्यवस्थाका साम्राज्य फैला रखा है। इस अव्यवस्थाके कारण राष्ट्रभरमें हड़ताल और सत्याग्रहकी आग जल रही है। लोकमान्य तिलकने इस बेकारीको दूर करनेके लिए स्वदेशी पदार्थोंके उपयोग करनेके व्रतकी योजना लोगोंके सामने रखी, पर यह स्वदेशी व्रतकी योजना बहुत व्यापक होनेके कारण इसका पालन करना बहुत कठिन प्रतीत होने लगा, इसलिए उस योजनाका संक्षिप्तीकरण करके गांधीजीने खादी उद्योगकी योजना प्रस्तुत की।

स्वराज्यकी आकांक्षा

भारतमें अंग्रेज़ीकी शिक्षा शुरू हुई और उस समय अंग्रेज कहते थे कि यदि इस शिक्षासे जाग्रत एवं शिक्षित होकर भारतीय स्वराज्यप्राप्तिकी अभिलाषा करें, तो

यह हमारे लिए भी इष्ट है। यदि उनकी यह बात सत्य थी, तो आज महात्मा गांधी सरकारकी आंखोंमें क्यों खटकते हैं? एक मुंहसे स्वराज्य देनेकी बात करनेवाले और दूसरे मुंहसे भारतके स्वराज्यप्राप्तिके प्रयत्नोंका विरोध करनेवाले ये अंग्रेज राजद्रोही हैं या सरकारी वचनके अनुसार भारतीय जनताको जाग्रत करनेके लिए अपने प्राणोंतकको न्योछावर करनेवाले राजद्रोही हैं? इसका विचार सरकार शान्त चित्तवृत्तिसे करे।

आज महात्माजीपर सरकार नाराज है, पर उन्हीं महात्माजीने आजतक सरकारकी कितनी सहायताकी है, इस पर भी क्या सरकारने कभी विचार किया है? हिंसावादी क्रान्तिकारियोंकी क्रान्तिकी आग आज महात्माजीने बहुत अंशतक ठण्डीकर दी है। ऐसे सहायक गांधीको यदि किसीने पूर्ण स्वातंत्र्यवादी बनाया है, तो वह सरकार ही है। राष्ट्रीय सभाको भी सरकारने अपने कृत्योंसे स्वातंत्र्यवादकी तरफ प्रेरित किया है। जब लोग सज्जनोंको दुःख भोगते हुए और दुष्टोंको चैन उड़ाते हुए देखते हैं, तब स्वभावतः ही उनके मनमें उस राज्यपद्धतिके प्रति एक प्रकारकी घृणा पैदा हो जाती है और वे उस राज्यको उखाड फेंकनेके लिए तत्पर हो जाते हैं। यही कुछ अवस्था आज भी है।

हमारा मार्ग

आज हमें ही अपना मार्ग निश्चित करना है। हमारा मार्ग आत्मिकबलका है। आन्तरिक या मानसिक बल ही आत्मिक बल है। हमारे अन्दर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक आदि अनेकों तरहकी शक्तियां हैं। स्थूलशक्तिकी अपेक्षा सूक्ष्मशक्ति ज्यादा प्रभावशाली होती है। इसलिए स्थूल राक्षसी शक्तिसे मुकाबला करते समय हमें अपने आन्तरिक सूक्ष्म शक्तिका ही उपयोग करना चाहिए। यह सूक्ष्मबल हमें अन्दर बढाना पडेगा। इसके बावजूद भी शारीरिक शक्तिकी तरफसे हमें बेखबर नहीं होना है। सत्याग्रहियोंको अपने शरीर दृढ बनाकर अपने अन्दर शीतोष्ण आदि द्वन्द्व सहन करनेकी शक्ति बढानी चाहिए। आज हमारा काम दूसरोंसे हाथापाई करनेका नहीं है अपितु स्वयंको संघर्षकी आगमें झोंकनेका ही है। इस आगमें तपते हुए भी उसे हमें सहन करना ही पडेगा। इसके अलावा हमें यह भी प्रार्थना करनी चाहिए कि जो हमें कष्ट देता है, परमेश्वर उसे सुबुद्धि प्रदान करे। हमें इस प्रकारसे शिक्षित होना है कि जिससे हमारी शारीरिक सहनशक्तिके साथ मनकी वृत्ति भी समतोल और शान्त बनी रहे। यही मनकी अहिंसावृत्ति है। मन और वाणीमें हिंसाको नहीं घुसने देना चाहिए। यदि इतना तप अपनेमें न भी पैदा किया जा सके तो भी इतना आत्मविश्वास तो अवश्य ही उत्पन्न करना चाहिए कि यह राजकीय युद्ध हम अहिंसासे ही जीतेंगे, हम अहिंसाके शस्त्रसे ही शत्रुओंको पराजित करेंगे। यदि हम काया-वाचा-मनसा हिंसा करते गए तो निश्चित है कि यह युद्ध तो हम हार ही जाएंगे, साथ ही हम अपना बडा भारी नुकसान भी कर
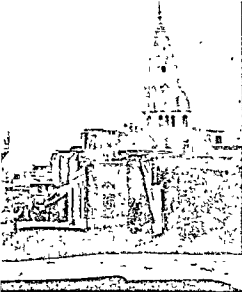
ब्रह्मसमाज मंदिर, अनारकली, लाहौर
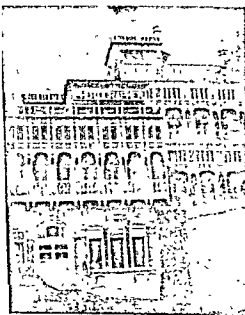
पं. सातवलेकरजीका लाहौरमें स्टुडियो १९१२

पंडितजी १९१२

सौ. सरस्वतीबाई १९१२
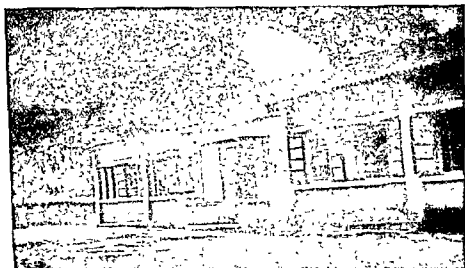
पंडितजी १९२३

स्वाध्याय मण्डल — भारत मुद्रणालय, पारडी : १९४८

म्बईके जे जे स्कूल ऑफ आर्ट्समें पढ़ते समय, एलोरा यात्रा १८९०

निवासगृह और स्वाध्याय मण्डल · १९२५
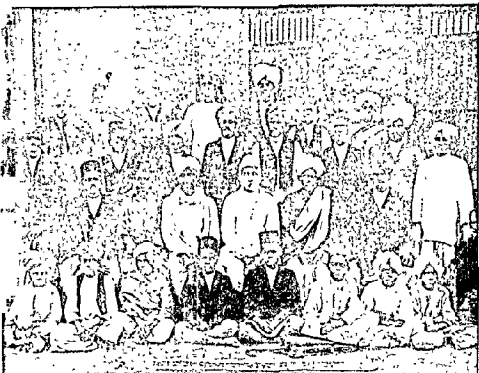
वईके राज्यपाल श्री. श्रीप्रकाश व पंडितजी : १९५७

वे जन्मदिनके अवसर
बम्बईमे · डॉ. मुन्शी,
सी. पी. रामस्वामी
यर और पंडितजी :
१९५७
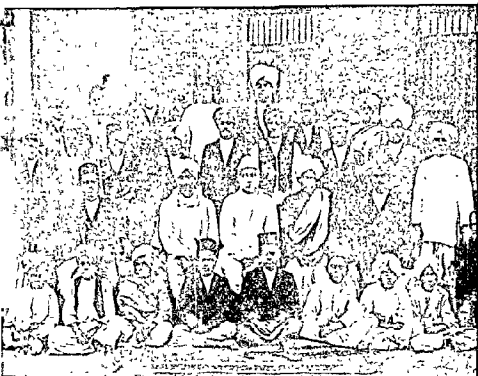
स्वाध्याय मण्डलके कर्मचारियोंके साथ, औंध : १९२३
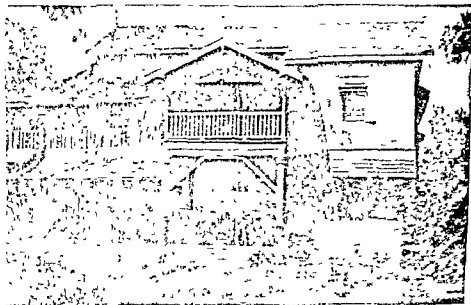
पारडी . १९४८
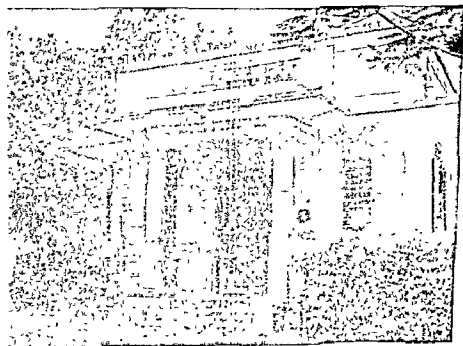
दिर, पारडी : १९५४

सौ. सरस्वतीबाई व चि. वसन, लाहौर : १९१५

< लाहोरमें पंडितजी : १९१५

पंडितजी : १९१४

पंडितजी : १९२०

तजी १९१८

पंडितजी : १९३२
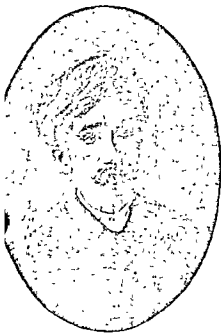
बैठेंगे। हमें स्वराज्यकी प्राप्ति होनेतक अहिंसाका पालन करना पड़ेगा, इस पारतंत्र्यरूपी रोगके अच्छा होनेतक अहिंसारूपी पथ्यका पालन करना ही होगा। इस पथ्यकी सहायतासे ही स्वातंत्र्य मिल सकता है। इस अहिंसा व्रतका जो आचरण नहीं कर सकते, वे युद्धसे दूर रहें तो अत्युत्तम है, वे इस युद्धक्षेत्रमें दूसरोंकी तपस्यामें विघ्न न डालें। शस्त्रयुद्धमें जिस प्रकार सैनिकशिक्षाकी आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार इस सात्त्विकयुद्धके लिए सात्त्विकवृत्तिकी शिक्षाकी आवश्यकता है। इस युद्धके लिए आवश्यक जो दस गुण हैं, उनका वर्णन महर्षि पतंजलिने इस प्रकार किया है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (त्यागवृत्तिसे रहना,), सन्तोष, शीतोष्णादि द्वन्द्व सहनेकी शक्ति, पवित्रताका अभ्यास और ईश्वरमें श्रद्धा।

इन गुणोंको महात्माजीने व्यावहारिक रूप देकर राजनीति में भी इन गुणोंको अग्रस्थान दिया है। इतनी वैयक्तिक उन्नतिके बावजूद भी कार्यसिद्धिमें शंका रह सकती है। क्योंकि कुछ सामाजिक दोष भी होते हैं, जो कार्यसिद्धिमें बाधक बनते हैं। अतः इन सामाजिक दोषोंको भी दूर करना होगा। कमसे कम अस्पृश्यता निवारण तो होना ही चाहिए। इसपर कई लोग यह भी कहेंगे कि क्या तुम सबको साधु बनानेपर तुले हुए हो? इसपर मैं उन्हींसे पूछूंगा, कि युद्धकी शिक्षा देनेवाले जब सब जगत्को शूर नहीं बना सके, तो हम ही सबको साधु कैसे बना सकेंगे? यदि हमें एक प्रतिशत जनता भी इस मनोवृत्तिकी मिल जाये, तो भी हमें निश्चय है कि हम आजादी लेकर ही रहेंगे। इस देशमें सन्तों और साधुओंने आजतक जो काम किया है उसके कारण ऐसे मनुष्य मिलने असंभव नहीं हैं। हम यदि प्रयत्नशील हो जाएं तो आशातीत सफलता मिल सकेगी। पर अब इस विषयमें शंका कुशंकाओंको छोड़कर काममें जुट जाओ। बाकी सब काम अपने आप हो जाएगा। आज परमात्मा भी हमारे अनुकूल है। हमें तो अब केवल निमित्तमात्र ही होकर प्रयत्न करना है। आजका मार्ग असहकारिताका मार्ग है। अपने अनुयायियोंके साथ सहकारिता और अपने विरोधियोंके साथ असहकारिता ही एकमात्र मार्ग है।

कानूनभंग

इस विषयमें कानूनभंग भी थोड़ा बहुत अभीष्ट है। स्वराज्यप्राप्तिके बाद जो कायदे रहनेवाले नहीं हैं, उन्हींको तोड़ना अभीष्ट है, सभी कायदोंको नहीं। हमारे स्वराज्यमें नमक, शराब और विदेशी कपड़ोंके कानून रहनेवाले नहीं हैं, इसलिए उन्हीं कानूनोंको तोड़ना चाहिए।

सतारा जिलेके कर्तव्य

आजके आन्दोलनमें सतारा जिलेका क्या कर्तव्य है, इसका भी विचार आज हमें करना है। यह समय इतिहास लिखने अथवा पढनेका नहीं है, यह तो इतिहासके निर्माण करनेका काल है। हमारा सतारा जिला कर्तृत्ववान् पुरुषोंकी परम्परावाला है। हमारे जिलेका इतिहास स्वराज्यस्थापनाकी दृष्टिसे उज्ज्वल है। जिलेका अन्तःकरण तैय्यार ही है। केवल अब नेताओंको कमर कसना ही है। (१) हमें जो कुछ करना हो, उसको प्रारंभ करें। (२) इस प्रकारकी योजना निश्चित की जाए कि जिससे यह क्रान्ति सदा जीवित और जाग्रत बनी रहे। (३) आज खादीका उत्पादन बहुत ही कम होता है, उसे बढाना चाहिए। (४) राष्ट्रके कार्यके लिए अपनेको न्योछावर करनेवाले लोगोंकी संख्या बढानी चाहिए। साथ ही ब्राह्मण-ब्राह्मणेतरवाद और हिन्दु-मुस्लिमवाद आदि वादोंको नष्ट करना चाहिए।

हे व्यापक दृष्टिके लोगो ! मित्रवृत्तिके लोगो एवं विद्वानो ! हम तुम सब मिलकर विस्तृत और बहुतोंके द्वारा पालनीय स्वराज्यके लिए यत्न करें। परमेश्वर आपको यशस्वी करे। वन्दे मातरम्।"

सतारा जिला परिषद्के अध्यक्षके रूपमें पंडितजी सतारा जिलेमें घूमने लगे।

इसके बाद आटपाडीमें १९३९ के मई महीनेमें औंधप्रजापरिषद्का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ, उसके अध्यक्ष श्री अ. वि. पटवर्धन थे। स्वागताध्यक्ष पंडितजी थे। उस समय अपने भाषणमें उन्होंने अनेक योजनायें रखीं।

(१) बेकारोंको काम और भरपूर मजूरी मिले।

(२) प्रजापर इन बेकारोंको पालनेका बोझ न पडे।

(३) रिश्वतके बिना ही न्याय मिले।

(४) सबको शिक्षा मिले।

(५) प्रजाओंको यह न महसूस हो कि अधिकारियोंकी प्रसन्नतामें ही हमारी रक्षा है।

(६) शराब, गांजा, भांग आदि नशीले पदार्थोंकी दूकानें राज्यमें न हों।

(७) रियासतमें परदेशी कपडोंपर प्रतिबन्ध लगाया जाए।

स्वागताध्यक्ष या अध्यक्षके रूपमें हाथी घोडेपर बैठकर जुलूसमें निकलनेवाले आडम्बरी नेताओंमेंसे पण्डितजी नहीं थे। इसीलिए उनकी दृष्टि हमेशा प्रजाकी सेवा पर ही केन्द्रित रहती थी। इसी दृष्टिसे पंडितजी अधिवेशनोंमें अध्यक्ष या स्वागताध्यक्षका पद स्वीकार करते थे।

१९४२ के अन्तमें दक्षिण महाराष्ट्रमें रियासतोंकी जो राजनैतिक परिस्थिति निर्माण हो गई थी, उसपर विचार करने, अखिल राष्ट्रीय आन्दोलनका निरीक्षण करने और

रियासतोंमें स्वराज्यकी स्थापना करनेके हेतु लोगोंको संघटित करनेके लिए रियासती प्रजा परिषद्का तेरहवां अधिवेशन करनेका निश्चय हुआ।

१३ दिसम्बर १९४१ में सांगलीके सम्मेलनमें निश्चित योजनाके अनुसार सावडे-समितिने अपने कामकी शुरुआत कर दी। उस समितिने स्वराज्यपद्धति, संघराज्य और सभी रियासतोंके बीचमें एक संयुक्त उच्च न्यायालय स्थापित करनेकी एक योजना तैय्यार की और उसे प्रकाशित भी किया। इस योजनाको सावडे समितिने सभी राजदरबारोंके सामने प्रस्तुत किया और उसपर अपनी सम्मति देनेकी भी प्रार्थना की। दिनांक ७।२।१९४३ को सांगली रियासती प्रजापरिषद्का अधिवेशन मंगलवेढेमें सम्पन्न हुआ। उस अधिवेशनमें यह योजना सर्वसम्मतिसे पास हो गई। अखबारोंने भी इस योजनाका हार्दिक स्वागत किया और कुछ बहुमूल्य सलाह भी दिए। मद्रासके 'हिन्दु' दैनिकने इस योजनापर अपना मत देते हुए लिखा था—

The sabde committee plan is federal in character and unlike the political department's botch potch, is so designed as to take full account of the rights, interests and obligations of all the parties affected- the rulers, the citizens and the states alike. (20-4-1943);

पर रियासती राजदरबारोंने इस योजनाका आदर नहीं किया। सावडे-समितिकी स्थापना एक सम्मेलनमें हुई थी। पर उस समितिका काम एक अधिक व्यापक संघटनाके सिपुर्द करनेके विचारसे दक्षिणी रियासतोंके प्रजापरिषद्का १३ वां अधिवेशन ता. ३। ५। १९४३ को जमखिंडीमें पंडित सातवलेकरकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। यूं तो उसके अध्यक्ष श्री माधवराव अणे थे, पर वे ठीक समयपर पहुंच न सके, इसलिए पण्डितजीको ही अध्यक्ष बना दिया गया था। इस अधिवेशनमें रियासतोंके संयुक्तीकरणके प्रस्तावपर विचार होना था, इसलिए प्रायः सभी रियासतोंसे बहुत संख्यामें लोग आए थे। दक्षिणी रियासतोंमें कतिपय रियासतोंका भाग कन्नड प्रान्तमें होनेके कारण वे इस चिन्तामें थे कि इस संयुक्तीकरणके बाद उनपर न जाने क्या परिणाम हो। अतः उनमें एक पक्ष ऐसा भी था जो यह चाहता था कि ये रियासतें जैसी हैं वैसी ही रहें। इस कारण जमखिंडीके अधिवेशनमें राजनैतिक दृष्या वातावरण बड़ा गरम हो गया था। सावडेसमितिके सामने प्रश्न यह था कि जबतक छोटी छोटी अनेक रियासतें हैं, तबतक उनका कार्य लोकहितकी दृष्टिसे किस प्रकार चल सकेगा? समितिके अध्यक्ष श्री अ. वा. सावडेने इस अधिवेशनमें यह स्पष्ट कर दिया थां कि भाषावार प्रान्तरचनाके समय मराठी और कन्नड प्रदेशोंके उन उन रियासतोंमें समाविष्ट होनेमें इस समितिको कोई आपत्ति नहीं है। इस स्पष्टीकरणके कारण अधिवेशनका वह सन्तप्त वातावरण बहुत कुछ अंशोंमें ठण्डा पड़ गया।

×

इस अधिवेशनमें पंडितजीने अध्यक्षका स्थान स्वीकार किया। शामके ७ बजे तक विषयनियामक समितिका काम चलता रहा, यह काम रातके साढे ग्यारह बजे समाप्त हुआ। इसके बाद रातके ११॥ बजे सर परशुरामभाऊ नाट्यगृहमें खुला अधिवेशन सम्पन्न हुआ। सभा स्थानमें करीब १००० प्रतिनिधि और दर्शक उपस्थित थे। नाट्यगृहके बाहर भी करीब २००० मनुष्य खडे हुए थे। ध्वनि क्षेपकयंत्रोंके कारण सभी आसानीसे भाषण सुन सकते थे। एक तो रातका समय, ऊपरसे मनोनीत अध्यक्ष लोकनायक अणेकी अनुपस्थिति, इन दोनों बातोंके कारण अधिवेशनका वातावरण थोडा निरुत्साहित सा हो गया था। इसपर भी इतना जन-समुदाय उपस्थित था। सांगली, तेरदाल, रबकवी, शाहपुर, शिरहट्टी, मंगळवेढे, कवठे, डगार, जमखिंडी, गुन्दगोल, बनहट्टी, सांवदी, हुन्नूर, कोल्हापुर, इचलकरंजी, तोरगल, महकापुर, अक्कलकोट, कुरुन्दवाड, विकोटा, औंध, किर्लोस्करवाडी, गुणशाळ, आटपाडी, बिद्री, फल्टण, सावंतवाडी, भोर, मुधोळ, महालिंगपुर, लोकापुर, रामदुर्ग, बुधगाव, जत, मीरज, मालगांव, ग्वालियर, इन्दौर, बम्बई, पूना, बीजापुर, बेलगांव आदि रियासतोंके अनेक गांवोंसे लोग आए थे। दक्षिणी रियासतोंके १५ रियासतोंसे कार्यकर्ता इस अधिवेशनमें उपस्थित होनेके लिए आए थे।

पंडित सातवलेकरजीको अध्यक्षपद ग्रहण करनेके लिए निमंत्रित करते हुए श्री लाहोरीने नपेतुले शब्दोंमें पण्डितजीका संक्षिप्त परिचय दिया।

श्री लाहोरीके प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए श्री विठ्ठलराव जोशीने कहा कि– " यद्यपि पंडितजी वैदिक वाङ्मयके महान् विद्वान् हैं, तथापि राजनीतिके क्षेत्रमें भी वे उतने ही महान् हैं। पंडितजीने वैदिक वाङ्मयको प्रकाशित करनेके लिए अनेक कष्ट सहे हैं। राजनैतिक वाङ्मयके प्रकाशन क्षेत्रमें भी पंडितजी अग्रगामी हैं।"

" औंध जानेवाला प्रत्येक व्यक्ति स्वाध्यायमण्डल संस्थाका दर्शन करता ही है। स्वराज्यके विषयमें अनुभवी पंडितजी आज अपने अनुभवोंका फायदा हम राजनैतिक कार्यकर्ताओंको प्रदान करेंगे। लोकनायक अणेकी कमी किन्हीं अंशोंमें पण्डितजीकी उपस्थिति पूरा कर देगी। स्वराज्यके विषय में पंडित सातवलेकरका उत्साह अवर्णनीय है। अतः मैं पंडितजीसे प्रार्थना करूंगा कि वे अध्यक्षका स्थान ग्रहण करके हमें उपकृत करें "

इतर छिटपुट कार्यक्रमोंके होनेके बाद पंडितजीने अध्यक्षपदसे बडा ही प्रभावशाली भाषण दिया।

अध्यक्ष पं. श्री. दा. सातवलेकरका भाषण

सभ्य स्त्री पुरुषो !

हम यहां इसलिए एकत्रित हुए हैं कि हम एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयके बारेमें दक्षिणी रियासतकी प्रजाओंका जनमत लेकर कुछ निर्णय कर सकें। आजके

अधिवेशनके मनोनीत अध्यक्ष श्री माधवराव अणे रेल्वेकी असुविधाके कारण न आ सके, यह हमारा दुर्भाग्य ही है। उनकी जगहपर आपने मुझे बिठाया है, पर उनकी जगहपर बैठकर उनका काम करनेमें मुझे संकोच प्रतीत हो रहा है। लोकनायक जिसप्रकार वाइसरायसे लेकर राजाओंतक अबाधित गतिसे पहुंच सकते हैं, वैसी अप्रतिहत गति मुझमें नहीं है। उनकी सी योग्यता मुझमें नहीं है। पर स्वराज्य-प्राप्तिके लिए किये जानेवाले कर्तव्य किसी भी व्यक्तिकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। अतः व्यक्तिके कारण उन कर्तव्योंके करनेमें किसी प्रकारका प्रतिबन्धका आना अभीष्ट नहीं है। इसी कारण हमारे द्वारा एक बार शुरु किया गया कार्य बीचमें ही रुक न जाए, एतदर्थ आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके आगे आया हूँ, और हमेशा में ऐसा ही प्रयत्न करूंगा कि जिससे आपकी आज्ञा अनुसार चलकर जनता जनार्दनकी सेवा कर सकूं।

क्रान्तिका समय

आजका समय क्रान्तिका समय है। सभी संसारमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। अतः ऐसे समयमें यदि कोई सर्वथा निर्लिप्त और तटस्थ रहना चाहे, तो वह उसके लिए असम्भव ही होगा। कालका प्रवाह बडे वेगसे वह रहा है, उसके साथ हमें भी चलना होगा। यदि तुम प्रयत्न करते हुए आगे बढोगे तो उन्नति कर सकोगे, यदि पिछडे रह जाओगे तो अवनतिके गड्डेमें गिरकर नष्ट हो जाओगे और यदि अब जहां हो, वहीं पर रहनेका प्रयत्न करोगे, तो सड जाओगे। यदि तुम उन्नति करना चाहते हो तो समयका महत्त्व जानकर योग्य मार्गसे प्रगति करनी ही पडेगी। हम जो यहां एकत्रित हुए हैं, वह इसलिए नहीं कि हम जहां हैं, वहीं रहकर सड जायें अथवा पिछडकर नष्ट हो जाएं। अपितु हम यहां इस बातपर विचार करनेके लिए एकत्रित हुए हैं कि हम अपनी उन्नति शीघ्रसे शीघ्र किस प्रकार कर सकते हैं। हम सबका यह निश्चय है कि हम स्वराज्यका निर्णय किए बिना यहांसे उठेंगे नहीं।

हमारा दृढ निश्चय

इस समय रातके साढे बारह बज गए हैं, सबकी आंखोंपर नींदका अधिकार हो गया है, आपके प्रिय और मनोनीत अध्यक्ष श्री अणे नहीं आसके हैं, इस प्रकारकी अनेक अडचनें और आपत्तियां आनेपर भी आप सब यहां एक दृढनिश्चयसे बैठे हुए हैं, इससे यह स्पष्ट है कि आप सब स्वराज्यप्राप्तिके अभिलाषी हैं। इस अधिवेशनके लिए जमखिण्डीके लोगोंने जितना कष्ट सहा है, उतना और किसी अधिवेशनके लिए लोगोंने नहीं सहा। आप किसी भी संकटकी परवाह न करके स्वराज्यके लिए किसी भी कष्टको सहनेके लिए तत्पर हैं, यह देखकर मैं आपसे कह सकता हूँ कि अब स्वराज्य हमसे दूर नहीं है।

परमात्मा इन संकटोंके द्वारा अपने भक्तोंकी परीक्षा करता है। यदि उन परीक्षामें हम उत्तीर्ण हो जायेंगे, तो निस्सन्देह हम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेंगे। पर यदि हम इन संकटोंसे कतरायेंगे, तो हमसे सुख दूर होता चला जाएगा।

सभी रियासतोंमें स्वराज्यकी स्थापना हो और ऐसी स्वराज्यशासित रियासतोंका एक महाराज्य हो यही एकमात्र हमारी अभिलाषा है। इस काममें हमारी मदद करनेके लिए लोकनायक अणे दौडे तो सही, पर रेलगाडीके पटरी परसे उतर जानेके कारण वे उधर संकटमें पडे हुए है और इधर हम उनकी प्रतीक्षामें बैठे हुए हैं। इस काममें हमपर जो संकट आ रहे है, वह हमारी परीक्षा ही है। इस प्रकार अथवा इनकी अपेक्षा भी दुःखप्रद आपत्तियां हमें सहनी पडेंगी। फिर भी उसकी परवाह न करते हुए हमें अपने स्वराज्यप्राप्तिके ध्रुव तारेकी तरफ बढते ही जाना होगा, उसकी प्राप्तिके लिए सुखदुःखोंकी परवाह न करते हुए अपने प्राण भी समर्पित करनेके लिए हमें तैय्यार रहना होगा। तभी स्वराज्यकी प्राप्ति हो सकेगी।

रियासतोंका भविष्य

दक्षिणी रियासतोंके भविष्यके बारेमें आज बडे लोगोंके मन भी साशंक दृष्टिगोचर होते हैं। उन सभी रियासतोंकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो चुकी है कि भविष्यमें इन रियासतोंका अस्तित्व भी खतरेमें पड गया है। अतः हमें ऐसी कुछ योजनायें बनानी चाहिए ताकि ये रियासतें स्वराज्यके सरल मार्गसे चलते हुए इस आर्थिक परिस्थितिका मुकाबला करें और जनताका समर्थन प्राप्त करके सम्मानपूर्वक जीवित रहनेका प्रयत्न करें। इसके बावजूद हम यह भी चाहते हैं कि इन योजनाओंके बारेमें हम जनमत भी प्राप्त करें।

जमखंडीके भाग्य

सभी दक्षिणी रियासतोंके भविष्यका प्रश्न एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। उसी प्रश्नपर विचार करनेके लिए यह सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है। यह प्रसंग रियासतोंके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंसे लिखा जाएगा। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर निर्णय करनेके लिए जमखंडीको ही चुना गया, यह जमखंडीका भाग्य है। प्रथम यह परिषद् मीरजमें सम्पन्न होनेवाली थी, पर वहां की सांप्रतिक राजनैतिक परिस्थिति एवं अन्य भी अनपेक्षित कारणोंकी वजहसे परिषद्का स्थान बदल दिया गया और आज हम मीरजके बदले जमखंडीमें एकत्रित हुए हैं। यह एक तरहसे जमखंडीका सम्मान ही है। यह एक सुवर्णसंधि है, जो आज हमें प्राप्त हुई है। अतः आइए, हम आपसी झगडोंको भूलकर इस सुनहरे मौकेसे भरपूर फायदा उठायें।

हमारी योजनाका एक मुख्यसूत्र यह है कि प्रत्येक रियासतमें पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो और सभी रियासतें परस्पर संघटित होकर एक महान् राज्यका रूप धारण कर

लें। यही हमारा ध्येय है और हमारा यह दृढ संकल्प है कि जबतक हम इस ध्येयको प्राप्त नहीं कर लेते, तबतक हमारे प्रयत्न अविरत रूपसे चलते ही रहेंगे।

दक्षिणी रियासतोंके भविष्यके बारेमें निर्णय करके उसे एक निश्चित मार्गमें प्रेरित करनेका मान जमखंडीको मिला है। इसका यह मान इससे दूसरा कोई छीन नहीं सकता। इस महत्त्वपूर्ण परिषद्‌के अध्यक्षके रूपमें प्रजाकी सेवा करनेका आप लोगोंने मुझे अवसर प्रदान किया। यह मान मैं अपना न समझकर औंध रियासतका ही समझता हूँ। क्योंकि औंध रियासतने ही सर्वप्रथम राज्यमें स्वराज्य-पद्धतिकी स्थापना करके अन्योंको भी मार्ग दिखाया है। यही कारण है कि आपने अध्यक्षके इस महत्त्वपूर्ण पदपर मुझे प्रतिष्ठित किया है।

संविधानकी रचना

इंग्लैण्डमें इस स्वराज्यके संविधानका निर्माण आज कई वर्षोंसे हो रहा है। संविधान या कानून कागजपर भले ही कितने भी अच्छे क्यों न हों, पर उनका प्रयोग जितना ज्यादा किया जाएगा, उतने ही उसके फायदे हमें मिलते जाएंगे। इन कानूनोंके उपयोग करते समय जो अनुभव मिलते हैं, उन अनुभवोंका फायदा उन संविधानोंको सुधारनेमें बहुत होता है। यदि किसी घरकी भव्यता देखनी हो तो वह घर बांधकर ही देखी जा सकती है। उसी प्रकार यदि किसी संविधानकी उपयोगिताका पता लगाना हो, तो प्रथम उसे क्रियान्वित करना चाहिए। जो उसे क्रियान्वित करके उससे प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त नहीं करते, वे यह भी नहीं जान सकते कि अमुक संविधानमें क्या कमी है और यह कमी किस प्रकार दूर की जा सकती है।

बुद्धिमान् राजनीतिज्ञोंको चाहिए कि वे आगे पीछेका विचार करके उत्तमसे उत्तम कानून बनायें और उन कानूनोंको कागजी घुड़दौड़ तक ही सीमित न रखकर क्रियान्वित करें, उस दरम्यान उन्हें उन कानूनोंमें जो कमियां दिखाई पड़ें, उन्हें दूर करके जनताकी भलाई करें। इसप्रकार दस पांच वर्षोंमें संविधानका जो रूप सामने आएगा, वह सर्वोत्तम संविधानका रूप होगा।

सावधानीकी आवश्यकता

स्वराज्यके कानूनोंकी रचना करनेमें ही उद्देश्यकी पूर्ति मान लेना एक बड़ी भारी भूल होगी। इतिहास जाननेवाले इस बातको अच्छी तरहसे जानते हैं कि आयरलैंडमें पूर्ण स्वराज्यस्थापित हो चुका था। पर वहांके कतिपय लोकप्रतिनिधियोंने रिश्वत लेकर यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया कि हमें एक पृथक् स्वराज्यकी जरूरत नहीं है, हमारे लिए तो बस इतना ही पर्याप्त है कि हमारे कुछ प्रतिनिधि इंग्लैंडकी पार्लियामेंटके सदस्य हो जाएं। यह प्रस्ताव पास करवाकर उन्होंने उस देशको अपने ही हाथोंसे

परमात्मा इन संकटोंके द्वारा अपने भक्तोंकी परीक्षा करता है। यदि इन परीक्षामें हम उत्तीर्ण हो जायेंगे, तो निस्सन्देह हम अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेंगे। पर यदि हम इन संकटोंसे कतरायेंगे, तो हमसे सुख दूर होता चला जाएगा।

सभी रियासतोंमें स्वराज्यकी स्थापना हो और ऐसी स्वराज्यशासित रियासतोंका एक महाराज्य हो यही एकमात्र हमारी अभिलाषा है। इस काममें हमारी मदद करनेके लिए लोकनायक अणे दौड़े तो सही, पर रेलगाड़ीके पटरी परसे उतर जानेके कारण वे उधर संकटमें पड़े हुए हैं और इधर हम उनकी प्रतीक्षामें बैठे हुए हैं। इस काममें हमपर जो संकट आ रहे हैं, वह हमारी परीक्षा ही है। इस प्रकार अथवा इसकी अपेक्षा भी दुःखप्रद आपत्तियां हमें सहनी पड़ेंगी। फिर भी उसकी परवाह न करते हुए हमें अपने स्वराज्यप्राप्तिके ध्रुव तारेकी तरफ बढ़ते ही जाना होगा, उसकी प्राप्तिके लिए सुखदुःखकी परवाह न करते हुए अपने प्राण भी समर्पित करनेके लिए हमें तैय्यार रहना होगा। तभी स्वराज्यकी प्राप्ति हो सकेगी।

रियासतोंका भविष्य

दक्षिणी रियासतोंके भविष्यके बारेमें आज बड़े लोगोंके मन भी साशंक दृष्टिगोचर होते हैं। उन सभी रियासतोंकी आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर हो चुकी है कि भविष्यमें इन रियासतोंका अस्तित्व भी खतरेमें पड़ गया है। अतः हमें ऐसी कुछ योजनायें बनानी चाहिए ताकि ये रियासतें स्वराज्यके सरल मार्गसे चलते हुए इस आर्थिक परिस्थितिका मुकाबला करें और जनताका समर्थन प्राप्त करके सम्मानपूर्वक जीवित रहनेका प्रयत्न करें। इसके बावजूद हम यह भी चाहते हैं कि इन योजनाओंके बारेमें हम जनमत भी प्राप्त करें।

जमखंडीके भाग्य

सभी दक्षिणी रियासतोंके भविष्यका प्रश्न एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। उसी प्रश्नपर विचार करनेके लिए यह सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है। यह प्रसंग रियासतोंके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंसे लिखा जाएगा। इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर निर्णय करनेके लिए जमखंडीको ही चुना गया, यह जमखंडीका भाग्य है। प्रथम यह परिषद् मीरजमें सम्पन्न होनेवाली थी, पर वहां की साम्प्रतिक राजनैतिक परिस्थिति एवं अन्य भी अनपेक्षित कारणोंकी वजहसे परिषद्का स्थान बदल दिया गया और आज हम मीरजके बदले जमखंडीमें एकत्रित हुए हैं। यह एक तरहसे जमखंडीका सम्मान ही है। यह एक सुवर्णसंधि है, जो आज हमें प्राप्त हुई है। अतः आइए, हम आपसी झगड़ोंको भूलकर इस सुनहरे मौकेसे भरपूर फायदा उठायें।

हमारी योजनाका एक मुख्यसूत्र यह है कि प्रत्येक रियासतमें पूर्ण स्वराज्य स्थापित हो और सभी रियासतें परस्पर संघटित होकर एक महान् राज्यका रूप धारण कर

(१) स विशोऽनु व्यचलत्। तं सभा च समितिश्च सेना च सुरा च अनुव्यचलन्। (अथर्ववेद)

(२) सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मा शिक्षात् चारुः वदानि पितरः संगतेषु ॥
(अथर्ववेद)

(३) राष्ट्री विशमत्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः। (शतपथ ब्राह्मण)

(१) जो प्रजाके अनुकूल रहता है, उसी राजाको सभा, समिति, सेना और कोषकी अनुकूलता प्राप्त होती है। (२) सभा और समिति ऐसे उत्तम राजाकी रक्षा करें और सभाके सभासद् राजाको उत्तम और योग्य सलाह देवें। (३) अनियंत्रित राजा प्रजाको खा जाता है, इसलिए ऐसा राजा प्रजाके लिए घातक सिद्ध होता है।

ये राजनैतिक सिद्धान्त ऋषियोंने वैदिककालमें निश्चित किए थे। जब राजा प्रजाके अनुकूल व्यवहार करता है, उसी हालतमें लोकसभा, लोकसमिति, सेना और कोष उसके साथ अनुकूलतासे व्यवहार करते हैं। सेना और कोषके बलके आधार पर राजाका अत्याचारी होना संभव है। पर इन दोनों पर यदि प्रजाका अधिकार हो, तो राजा कभी भी अत्याचारी नहीं बन सकता। एक स्वतंत्र लोकसभाकी स्थापना हो और उसके अधीन कोष और सेना रहे। और वह लोकसभा राजाको उत्तम योग्य व्यवहारकी शिक्षा दे। राज्यमें उत्तम व्यवस्था और प्रजाजनोंके सुख पर राजाका ध्यान रहे। इसप्रकार लोकसभाके अनुकूल होकर शासन करनेवाला राजा राष्ट्रका भूषण होता है। अनियंत्रित राजा प्रजाओंका घातक होता है।

स्वराज्यका आधार

ऋषियोंने कमसेकम पांच हजार वर्ष पूर्व ये स्वराज्य विषयक सिद्धान्त निश्चित किए थे। इन सिद्धान्तोंमें ग्रामपंचायतको स्वराज्यका आधार बताया गया है। ऊपरके मंत्रमें आया हुआ "सभा" शब्द ग्रामसभाका परिचायक है और "समिति" राष्ट्रसभा है। प्राचीनकालसे ग्रामपंचायतको स्वराज्यका एक मूलभूत घटक माना जाता रहा है। बौद्धकालके अन्ततक प्रत्येक गांवमें पंचायतें थीं और वे बड़ी उत्तमतासे कार्य भी करती थीं। मुसलमानी और मराठोंके शासनमें भी ग्रामपंचायतें अपना कार्य करती रहीं। पर अंग्रेजोंके शासनमें उन्हें जानबूझकर समाप्त कर दिया गया। वैदिक कालसे लेकर ग्रामपंचायतके संस्कार हम पर पड़ते रहे हैं। प्रायः सभी पौर्वात्य देशोंमें उनमें भी विशेषकर कृषिप्रधान राष्ट्रोंमें ग्रामपंचायत वहांकी प्रजाओंके जीवनका एक भाग हो गई थी। यह तथ्य हम अनादिकालसे देखते आ रहे हैं। आधुनिक सुधारके युगमें नई व्यवस्थाको अमलमें लानेवाले रूसने भी "सोवियट सिकेल रिपब्लिक्स" के नामसे संस्थायें कायम की हैं।

पारतंत्र्यकी आगमें झोंक दिया। उस स्वराज्यको पुनः प्राप्त करनेके लिए आयरलैण्डको १०० वर्षों तक जूझना पड़ा।

इस परसे एक बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि भले ही स्वराज्य प्राप्त हो जाए पर उसको और अधिक विकसित करनेके लिए योग्य मनुष्योंकी आवश्यकता होती ही है। अन्यथा रिश्वतखोर बीचमें आकर उस राज्यका सत्यानाश कर डालेंगे। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि स्वराज्यका सुख जनताको प्राप्त करानेके लिए नेताओंको सत्यनिष्ठा और त्यागवृत्तिसे आगे आना चाहिए। इस स्वराज्यको प्राप्त करने और उसके लिए सब कुछ न्योछावर करनेके इरादेसे ही यहां आप सब एकत्रित हुए हैं, ऐसा मैं समझता हूँ।

विदेशीराज्य

कुछ लोगोंका मत यह है कि स्वराज्यकी कल्पना विदेशी है। अतः इस स्वराज्यकी कल्पना योरोपसे लाकर ही भारतको उपहाररूपमें देनी पड़ेगी। पर मैं आपसे यह कहना चाहूंगा कि यह उनका कथन सर्वथा गलत है, यदि आपमेंसे कोई इस मतका समर्थक हो, तो उससे भी मेरी यही प्रार्थना है कि वह अपने इस मतको सुधारले। हम जिस स्वराज्यकी उपासना करना चाहते हैं, वह यहीं और इसी भारतभूमिकी उपज है। हम उसीको विकसित करना चाहते हैं। अपना स्वराज्य हमें स्वयं ही विकसित करना होगा, कोई दूसरा या तीसरा आदमी उसका विकास करने नहीं आएगा। दूसरोंके द्वारा विकसित किया हुआ राज्य परराज्य ही कहलाएगा, स्वराज्य नहीं।

प्रत्येक देशकी परिस्थिति अलग अलग होती है। पौर्वात्य और पाश्चात्य देशवासियोंके रहन सहनमें बड़ा अन्तर होता है। यह अन्तर उनके धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक आचार विचारोंमें व्यक्त होता है, जो स्वाभाविक ही है। भारत अपनी संस्कृति, धर्म एवं उसके ध्येयके लिए हजारों वर्षोंसे प्रसिद्ध है। अतः हमें जिस स्वराज्यकी स्थापना करनी है, वह हमारे अन्तःस्फूर्तिसे निकला हुआ है और उसीसे वह विकसित भी हो। दूसरोंकी नकल यदि हम करेंगे, तो वह हमारा कार्य नकलची बन्दरके कार्यके समान ही होगा। अतः मेरा यह कहना है कि आज हम जो संविधान बनायें वह साधारण और युक्तियुक्त हो। फिर हम उसे क्रियान्वित करके उत्तरोत्तर उसकी वृद्धि करते हुए सुधारते रहेंगे। वे सुधार यदि हम अपने अनुकूल करते जायेंगे, तो निश्चयपूर्वक हमें उस संविधान से भरपूर फायदा होगा।

ऋषियोंकी घोषणा

अपने प्राचीन वाङ्मयमें ऋषियोंने स्वराज्यके बारेमें विचार करके स्वराज्यकी रूपरेखा भी निश्चित की थी।

इस प्रकार वह एक दिन राजा और मंत्री भी हो सकता है। छोटेसे लेकर बडेसे बडे कामोंके बारेमें इसे सब अनुभव रहता है, इसलिए वह हर कामके गुणदोषको अच्छी तरह जानता है। इसलिए सभी रियासतोंमें ग्रामपंचायतों और प्रान्तसमिति-योंका एक जाल फैला देना चाहिए, तभी उनमें हमारे परिस्थितिके अनुकूल स्वराज्य स्थापित हो सकेगा।

इसके विपरीत यदि चुनावोंके द्वारा चुनकर कोई ऐसा व्यक्ति आया, कि जिसे ग्रामोंके बारेमें रत्तीभर भी जानकारी नहीं, भले ही वह कितना ही बडा नेता क्यों न हो, वह अपनी प्रजाको सुखी नहीं कर सकता। ग्रामीण जीवनसे समरस हुआ हुआ एक सामान्य व्यक्ति गांवोंकी जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी उन्नति गांवके जीवनसे सर्वथा अपरिचित एक महान् नेता भी नहीं कर सकता। इसीलिए मेरा यह आग्रह है कि अपने ग्रामोंमें स्थापित किए जानेवाले स्वराज्यकी रूपरेखा हम ही निश्चित करें और उसे सतत विस्तृत करते रहें।

एकबार चुनाव हो गए और जनताने अपने प्रतिनिधि कौंसिलमें भेज दिए, फिर उसके बाद न जनताका ही कुछ काम रह जाता है और उसके द्वारा चुनकर भेजे हुए प्रतिनिधि ही अपने मतदारोंकी तरफ मुंह करते हैं। फिर जब चुनावके दिन नजदीक आते हैं, तब फिर इन प्रतिनिधियोंमें जनता जनार्दनकी सेवाभावनाकी लहर उठती है और वे अपने मतदारोंको मिथ्या आश्वासनोंसे रिझाकर फिर चुनावमें सफलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं। इतना ही स्वराज्यका सूत्र उन्हें मालूम है। वे इतना भी नहीं जानते कि ग्रामपंचायतका क्या महत्त्व है और इन पंचायतोंके द्वारा जनताको राजनैतिक शिक्षा कैसे दी जा सकती है। यह एक महान् खेदका विषय है। इन उपर्युक्त दोनों योजनाओंमें कौनसी योजना राष्ट्रके लिए उपयुक्त एवं हितकारक है, यह थोडे ही वर्षोंमें स्पष्ट हो जाएगा। पर हम अपने अनुभवोंके आधारपर इतना अवश्य कह सकते हैं कि ग्रामपंचायतके आधारभित्ति पर खडा किया गया स्वराज्य ही राष्ट्रका विकासक होगा और वही हितकारी होगा।

जनसेवाका अवसर

ग्रामपंचायतपर आधारित स्वराज्यमें बहुतोंको बहुतसा काम करना पडता है। जब कि चुनाव जीतकर कौंसिलमें जानेपर उतना काम नहीं रहता। पर यदि स्वराज्य-का अर्थ "सम्पत्तिका निर्माण करनेवाली जनताकी सेवा करके उस जनताका सुख बढाना" ही किया जाए तो इसके लिए बहुजन प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही जनतामें राष्ट्रीय दृष्टिको विकसित करना भी आवश्यक है।

स्वराज्यसे निर्भयता

सच्चा स्वराज्य यदि प्राप्त हो जाए और उस स्वराज्यका उपयोग करना भी आजाए, तो फिर यह चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं रहती कि राज्यपर कौन अधिष्ठित है।

उद्योगप्रधान देश

योरोप खण्डका अधिकांश भाग उद्योगोंसे व्याप्त है इसी कारण उस खण्डमें औद्योगिक संघका बहुत प्रभाव है। उनके स्वयंके दैनिक अखबार प्रकाशित होते हैं, इसलिए यह संघ उस खण्डमें बहुत प्रबल हो गया है। यही कारण है कि उन यूरोपवासियोंका सामाजिक और राजनैतिक जीवन बिल्कुल भिन्न है। इसी वजहसे उन्होंने अपनी राजनैतिक संस्थायें बिल्कुल ही अलग आधारपर बनाई हैं, जो उनके जीवनक्रमके योग्य ही हैं। पर हमारे राष्ट्रमें सात लाख गांवोंमें रहनेवाला कृषकोंका वर्ग यूरोप खण्डके जीवनसे पूर्णतया अपरिचित है। अतः यदि हम यूरोपकी नकल करके अपने भी स्वराज्यकी रूपरेखा उसी तरह बनायेंगे, तो वह रूपरेखा हमारे जीवनसे मेल नहीं खा सकेगी। इसीलिए हमारा यह कहना है हमें अपने स्वराज्यकी रूपरेखा स्वयं ही अपने परिस्थितिके अनुकूल तैय्यार करनी होगी। यह रूपरेखा हमारी उन्नतिके साथ ही हमारी आवश्यकताओंके अनुसार विस्तृत होती जाए।

इस परसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमारे स्वराज्यका आधार ग्रामपंचायत ही है। ग्रामपंचायतकी और गांवकी निस्स्वार्थ सेवा करनेवाले ही समिति या लोक-सभाके लिए चुनकर भेजे जायें। यही हमारे स्वराज्यकी रूपरेखा है और इस रूप-रेखासे हम अच्छी तरह परिचित हैं, इसलिए यह हमारे लिए उन्नतिकारक ही होगी।

प्रत्येक गांवमें एक ग्रामसभा हो। उसे गांवके कारभार चलानेके सभी अधिकार प्रदान किए जाएं। इस ग्रामसभाके लिए चुने गए सदस्य गांवकी सेवा करें। इस प्रकार सभी गांव स्वयंशासित हों।

स्वराज्यका शिक्षण

कल्पना कीजिए कि किसी एक रियासतमें सौ गांव हैं और वे सभी गांव ग्राम-पंचायतसे शासित होते हैं। हरएक ग्रामसभामें यदि सात सात सदस्य भी हों, तो सौ गांवोंमें ऐसे सदस्योंकी कुल संख्या सात सौ होगी। ये सभी सदस्य राष्ट्र-सेवाके व्रती हों। ग्रामसेवा करते करते काम करनेका अभ्यास भी हो जाएगा। पानीमें उतरे बिना तैरना कैसे आ सकता है? हो सकता है कि प्रथम प्रथम ये पंच गलतियां भी करें, पर काम करनेके साथ ही साथ उनका मार्ग भी प्रशस्त होता जाएगा और आज गलतियां करनेवाले वे पंच कल उत्तम काम करनेमें भी प्रवीण हो जाएंगे। ग्रामपंचायत राष्ट्रीय शिक्षाकी शाला है। इन पंचायतोंमें प्रात्यक्षिकरूपसे राजकीय शिक्षा मिलती है। इस प्रकार अनुभवसे उनकी शासनकला उत्तरोत्तर सुधरती ही जाएगी।

इस प्रकार अनुभवोंसे फायदा उठानेवाले बुद्धिमान् पंच ही तालुकासमिति, प्रान्तसमिति और राष्ट्रसभामें चुनकर जाते हैं। अनुभवशील मनुष्य ही प्रगतिशील हो सकता है और वही अपने अनुभवोंका फायदा उठाकर आगे बढता जाता है और

और रियासतोंके एकत्रीकरणरूप वृक्षका आरोपण किया है। इसका वास्तविक यश आपको ही है, मैं तो केवल निमित्तमात्र ही हूँ।

मेरे मनमें एक बड़ी भारी अभिलाषा है कि हमारी योजनाके अनुसार स्वराज्यकी स्थापना और उसके द्वारा हम प्रजाओंकी सर्वांगीण उन्नति करें। इस अभिलाषाको आपकी मददसे क्रियान्वित करनेका सुअवसर आज मुझे प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि इस स्वराज्य स्थापनाके प्रयत्नमें यदि मुझे स्वयंको भी समर्पित कर देना पड़े, तो मैं स्वयंको कृतकृत्य समझूंगा। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरा जीवन इसी पुनीत कार्यके लिए समर्पित हो और इस प्रकार मेरा जीवन एक पवित्र जीवन बने।"

इस अध्यक्षीय भाषणके बाद कुछ प्रस्ताव प्रस्तुत हुए जो पास भी हुए। इसके बाद कुछ विचारकोंने संघराज्यके बारेमें कुछ सुधार भी प्रस्तुत किए। इन सब प्रस्तावों पर विचार करनेके लिए और सावडे समितिको विस्तृत करनेके लिए निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किए गए—(१) प्रत्येक रियासतोंमें जल्दीसे जल्दी स्वराज्य पद्धतिकी स्थापना की जाए। (२) सावडे समितिने दक्षिणी रियासतोंका एक संयुक्त रियासत संघ योजनाकी जो रूपरेखा तैय्यार की है, उसमें अनेक सुधारोंकी आवश्यकता प्रतीत होती है। इस रूपरेखामें आवश्यक सुधारोंको करके उसे परिपूर्ण बनानेके लिए इस समितिमें भास्करराव मराठे [मिरज] वि. अ. मसूरकर [मुधोळ] हणमंतराव कौजलगी और हब्बू [बीजापुर] और बी. एन. दातार [बेलगांव] का सदस्यके रूपमें नियुक्त किया जाता है साथ ही इस समितिको यह भी अधिकार प्रदान किया जाता है कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सदस्योंकी भी नियुक्ति करे। इस समितिके लिए यह अनिवार्य होगा कि वह चार महिनोंमें अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दे। इसके अलावा फेडरेशनके एक भागके रूपमें सभी दक्षिणी रियासतोंका एक संयुक्त उच्च न्यायालय और कतिपय विभाग भी संयुक्त हों। इसके लिए तत्काल प्रयत्न प्रारंभ कर दिए जायें। (३) सांगली, जमखिण्डी, औंध और फलटण इन चार रियासतोंमें प्रजातंत्रीय विभाग लोकनियुक्त-मंत्रियोंके शासनमें हैं, अतः ये मंत्री एक महीनेके अन्दर ही अन्दर इस बातकी सूचना दे दें कि इस प्रकारके प्रजातंत्रीय विभागोंके कार्य संचालनमें राजाओंकी सम्मति है या नहीं।

जमखिंडीमें सम्पन्न यह अधिवेशन अनेक दृष्टियोंसे बड़ा ही महत्त्वपूर्ण साबित हुआ और एक निश्चित दिशामें अग्रसर होनेके लिए बड़ा ही सहायक सिद्ध हुआ। पर इन सबका श्रेय पं. सातवळेकर और अनन्तराव सावडेको ही था। इस अधिवेशनमें कन्नड और मराठी भाषाभाषी प्रदेशोंका भाषावाद सुलझकर सामने आ गया। इससे एक लाभ अवश्य हुआ और वह यह कि नेता यह समझ गए कि इन प्रदेशोंमें आन्दोलन करते समय किस तरहके उपायोंका आसरा लिया जाए। ऐसी नाजुक

राज्यशासन यदि लोकप्रिय मंत्रियोंके अधीन हो और वे मंत्री भी लोकमतकी उपेक्षा करनेवाले न हों, तो राजा चाहे कोई भी या कैसा भी हो, वह प्रजाको दुःख देनेमें समर्थ नहीं हो सकता। रियासतके सभी अधिकारी अपना अपना कर्तव्य आरामसे निभाते जाएं। स्वराज्यशासनके तत्वको जो जानते हैं वे राजाओंको नष्ट करनेमें अपनी शक्तिका अपव्यय न करके स्वराज्यप्राप्तिमें ही अपनी शक्तिका सदुपयोग करेंगे। इस स्वराज्यप्राप्तिसे मनुष्यमें निर्भयता आती है। आज जो रियासतें स्वराज्यका नाम सुनकर ही बिदकती हैं, मुझे निश्चय है कि वे ही रियासतें समय आनेपर इस स्वराज्यका दिल खोलकर स्वागत करेंगी।

यह ठीक है कि आज जो हमारे सामने योजना है, उसमें कुछ कमियां हैं। पर यह अपूर्णता जानबूझकर रखी गई है, ऐसा प्रतीत होता है। आज जो स्वराज्यकी योजना हमारे सामने है, उस स्वराज्य-शृंखलाकी तीन कडियां हैं। (१) साम्राज्य सरकार; (२) रियासतदार और (३) प्रजा। इन तीनोंमें प्रजाकी कडी इतर दो कडियोंकी अपेक्षा कमजोर है। इसको ध्यानमें रखकर ही स्वराज्यकी योजना निश्चित करनेवालोंने यह अपूर्णता इसी दृष्टिसे रखी प्रतीत होती है कि इस स्वराज्यपर इतर दो कडियोंकी तरफसे कोई आंच न आ पाए। इसी दृष्टिसे लोग इस योजनाकी तरफ देखें। विकार या केवल दोष ढूंढनेकी दृष्टिसे इस योजनापर नजर न डालें।

सावंतसमितिने जो योजना तैय्यार की है, वह किसी विशेष उद्देश्यसे ही तैय्यार की है। उस योजनामें इस प्रकार की एक प्रतिबन्धक योजना भी है कि जिससे आपसी झगडे रोके जा सकें। हमें पहले यह देख लेना चाहिए कि जो कायदे या कानून लेकर हम राजाओंके पास जाना चाहते हैं, उसमें क्या इस बातकी भी सुविधा है कि राजाओंको पेन्शन दी जा सके? आज जो प्रस्तुत है, वह एक ऐसी योजना है कि जिसे तुम राजाओंके सामने भी प्रस्तुत कर सकते हो और यदि राजा उसके बारेमें सरकारसे सलाहमशविरा भी लेना चाहें, तो सरकार भी उस योजनाके विरुद्ध अपनी राय नहीं द सकती। इन रियासतोंका एकबार संयुक्तीकरण हो जाए, फिर उन कानूनोंको क्रियान्वित करते करते जैसे जैसे प्रजाकी शक्ति बढती जाएगी, वैसे वैसे हमारे अधिकारोंमें भी वृद्धि होती जाएगी। इस प्रकार इन संयुक्त रियासतोंमें स्वराज्यशासनकी स्थापना की जा सकेगी। इस बातपर इस सावंत समितिको पूरा आत्मविश्वास है। इसी दृष्टिसे हम सभी प्रतिनिधि इस योजनाकी तरफ देखें।

आत्मसमर्पण

किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियोंके कारण यह बडी भारी जिम्मेदारीका काम मैंने सम्हाला है। पर यह केवल इस दृष्टिसे नहीं कि मुझे मान-सम्मान प्राप्त हो। मैं सम्मानका अभिलाषी नहीं हूँ। अपितु इसीलिए इस पदको मैंने स्वीकार किया है कि मैं प्रजाओंकी सेवा कर सकूं। मेरी अध्यक्षतामें आप सबने स्वराज्य-स्थापना

" सावडे समितिके द्वारा निश्चित किए गए कायदे व्यावहारिक हैं। इनमें प्रथम कायदा राजाओंके लिए अनुकूल है। इस कायदेकी रचना उस समितिने जानबूझकर की है। पर उसका दूसरा भाग रियासती जनताके लिए अनुकूल है। उसके अनुसार आपको स्वराज्यप्राप्त होगा। अतः उसपर आप ध्यान अवश्य दें। उस पर आपने ध्यान नहीं दिया और मराठी–कन्नडके झगडेमें पड गए, लिहाजा स्वराज्यप्राप्तिके प्रश्नको आगे ढकेल देना पडा। हम लोगोंमें वैमनस्य है, हमारी शक्ति संघटित न होकर विभक्त है, और इसका परिणाम हमें आगे चलकर भोगना ही पडेगा। खैर, जो हो गया वह हो गया। अब चार महीने बाद सावडेसमितिकी योजना सामने आते ही उसे क्रियान्वित करनेका प्रयत्न करें, यही मेरा कहना है।"

"समय बहुत हो गया है, तथापि आपने मेरी बातोंको शान्तिसे सुना, तदर्थ मैं आपका आभारी हूँ।"

अध्यक्ष पं. सातवलेकरके इस भाषणके बाद आभार प्रदर्शन एवं राष्ट्रगीतके साथ अधिवेशनकी समाप्ति हुई।

◊ ◊ ◊

परिस्थितिमें मावडेका मार्गप्रदर्शन बहुत मूल्यवान् सिद्ध हुआ। पर राजा इस मार्ग-प्रदर्शनका लाभ नहीं उठा पाये और इस प्रकार उन्होंने स्वयं अपने नाशको निमंत्रित किया। —(रियासतोंके विलीनीकरणकी कथा)

इस प्रकार विषयनियामक समितिके द्वारा स्वीकृत हुए हुए इन चारों प्रस्तावोंको खुले अधिवेशनमें प्रस्तुत किया गया, जो वहां भी स्वीकृत कर लिए गए। इसके बाद पं. सातवलेकरने अपने अध्यक्षीय भाषण दिया। उन्होंने कहा " कि अब सवेरा होता जा रहा है। आप सभी स्त्रीपुरुष इतने समयतक शान्तिसे बैठे रहे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे सामने बैठे हुए लोग परमात्मरूप ही हैं। इन जमखिंडीवासी जनता जनार्दनकी सेवा करनेका सुअवसर आपने मुझे प्रदान किया, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। अपनी मातृभाषाके प्रति जमखण्डीवासियोंका प्रेम अवर्णनीय है, तदर्थ मैं उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। "

" मातृभाषाके प्रति सभीको इसी प्रकार प्रयत्नशील रहना चाहिए। रूसमें अनेकों भाषाभाषी लोग रहते हैं पर वे एक दूसरे पर कभी आक्रमण नहीं करते। स्वराज्य प्राप्त होते ही जमखण्डीमें भी वही दृश्य दिखाई देगा और उस स्वराज्यमें कोई किसीपर आक्रमण नहीं करेगा अथवा नहीं कर सकेगा। "

" मेरे कुछ मित्रोंने मुझसे पूछा कि अभी स्वराज्यप्राप्ति की इतनी जल्दी भी क्या है ? यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। मैं तो इस विचारका व्यक्ति हूँ कि इस स्वराज्यप्राप्तिके लिए जितनी शीघ्रता की जाए उतना ही अच्छा है। इंग्लैण्ड, रूस, अमेरिका, जापान और जर्मनी आदि देशोंमें इस प्रकारके प्रयत्न हो चुके हैं। पर उन देशोंमें कोई भी ऐसा प्रश्न नहीं करता। क्योंकि देशभक्तोंका स्वराज्यप्राप्तिके लिए आतुर होना स्वाभाविक ही है। हां, जो मृतप्रायः लोग हैं उनके लिए हो सकता कि स्वराज्यप्राप्तिकी शीघ्रता न हो। पर उस प्रकारके मृतप्रायः यहां कोई नहीं है। इसीलिए हम सब स्वराज्यप्राप्तिके लिए आतुर हैं। इस शीघ्रतामें हो सकता है कि कुछ दोषपूर्ण कार्य भी हमसे हो जायें। स्वराज्यप्राप्तिके कार्योंमें गलतियां होनेकी संभावना अवश्य है, पर उन गलतियोंको सुधारना चाहिए। आज हमने स्वराज्यप्राप्तिकी इस योजनाको चार महीने आगे जो ढकेल दिया, उससे मैं यही समझता हूँ कि हमने अपने दोष सुधारके सुअवसरको अपने ही हाथोंसे खो दिया है। "

" आज यहां अनेक राजाओंके प्रतिनिधि खुले रूपमें उपस्थित हैं, तो कुछ गुप्त-रूपमें। वे हमारे इस अधिवेशनका वृत्तान्त अपने राजाओं तक पहुंचायेंगे ही। हमने आज जो स्वराज्यप्राप्तिके प्रश्नको जो आगे ढकेल दिया है, उसका परिणाम हमें बादमें जाकर पता चलेगा। "

" गत चार महीनोंमें हुई हुई राजनैतिक परिस्थितियोंसे मैं पूर्णतया परिचित हूँ। उसके आधार पर ही मैं यह कहना चाहता हूँ कि स्वराज्यप्राप्तिके लिए जितनी शीघ्रता की जाए, उतना ही हमारे लिए उत्तम है। "

"सावडे समितिके द्वारा निश्चित किए गए कायदे व्यावहारिक हैं। इनमें प्रथम कायदा राजाओंके लिए अनुकूल है। इस कायदेकी रचना उस समितिने जानबूझकर की है। पर उसका दूसरा भाग रियासती जनताके लिए अनुकूल है। उसके अनुसार आपको स्वराज्यप्राप्त होगा। अतः उसपर आप ध्यान अवश्य दें। उस पर आपने ध्यान नहीं दिया और मराठी–कन्नडके झगडेमें पड गए, लिहाजा स्वराज्यप्राप्तिके प्रश्नको आगे ढकेल देना पडा। हम लोगोंमें वैमनस्य है, हमारी शक्ति संघटित न होकर विभक्त है, और इसका परिणाम हमें आगे चलकर भोगना ही पडेगा। खैर, जो हो गया वह हो गया। अब चार महीने बाद सावडेसमितिकी योजना सामने आते ही उसे क्रियान्वित करनेका प्रयत्न करें, यही मेरा कहना है।"

"समय बहुत हो गया है, तथापि आपने मेरी बातोंको शान्तिसे सुना, तदर्थ मैं आपका आभारी हूँ।"

अध्यक्ष पं. सातवलेकरके इस भाषणके बाद आभार प्रदर्शन एवं राष्ट्रगीतके साथ अधिवेशनकी समाप्ति हुई।

० ० ०

: १४ :

जागरणकी शंखध्वनि

पंडितजीको इस बातपर पूरा पूरा विश्वास था कि यदि भारतको आज या कल किसी चीजकी जरूरत है तो वह है पुरुषार्थ और पराक्रम। इसी दृष्टिसे औंधके निवासकालमें पंडितजीने नित्य और नैमित्तिक सभी तरहके सार्वजनिक आन्दोलनोंमें सोत्साह भाग लिया। तथापि ये आन्दोलन उनके जीवनके और जीवनके ध्येयके मुख्य केन्द्रबिन्दु नहीं थे। पंडितजीमें एक तड़प थी पुरुषार्थ और पराक्रमका सन्देश देनेवाले वेदों और तद्गत उपदेशोंको जनतातक पहुंचानेकी। इन उपदेशोंसे वे तरुण पीढीको देशसेवाके योग्य बनाना चाहते थे। अथर्ववेदीय वैदिक राष्ट्रगीतकी हैदराबाद वाली घटना पंडितजीके मनपर अपना अमिट छाप छोड गई थी। इसलिए वैदिकसन्देशोंको जन जनके मानसमें उतारनेका काम पंडितजीने अपना लिया, यही उनका एकमात्र उद्देश्य बन गया। इसी उद्देश्यकी परिपूर्तिके लिए उन्होंने सन् १९१८ में "स्वाध्याय-मण्डल" संस्थाकी स्थापना की।

स्वाध्यायमण्डलका कार्य अपना एक निश्चित स्वरूप धारण कर ही रहा था कि इसी बीच सन् १९२५ में पाचवड तालुका वाई, जि. सतारामें श्री धुंडिराज गणेश उर्फ बापूदीक्षित बापटने एक सोमयागकी आयोजना की जिसमें वे पशुओंकी बलि चढाना चाहते थे। पंडितजीको आत्मा शान्त न रह सकी और वह इस यज्ञके विरोधमें आग्रत हो गई। पंडितजी इस विचारके थे, कि वेदोंमें यज्ञके अन्तर्गत पशुहिंसाका विधान नहीं है। हैदराबादमें रहते हुए पंडितजीने रायपुरमें सम्पन्न पशु मेधयज्ञका बडा कडा विरोध किया था। ये महोदय प्रथम सांगलीमें यह पशुयाग करना चाहते थे, पर वहांके जैनोंने जो विरोधात्मक वृत्ति अपनाई, उसे देखकर बापट महाशयका साहस वहां यज्ञ करनेका न हुआ, लिहाजा उन्होंने औंधको इस

कार्यके लिए चुना। पर यहां भी पंडित सातवलेकरके कारण उन्हें लेनेके देने पड गए। औंधमें आनेपर उनके सिर मुडाते ही ओले पडे। पंडितजीने बापटको यज्ञमें पशुवधपर शास्त्रार्थ करनेके लिए आह्वान किया।

पंडितजीके शास्त्रार्थके लिए सन्नद्ध होनेपर चाहिए यह था कि उधरकी विद्वन्मण्डली भी इस चर्चाके लिए उद्यत हो जाती। पर वैसा कुछ न हो पाया। अखबारोंमें कतिपय उल्टे सीधे लेख प्रकाशित हुए। पुलिसके संरक्षणमें पशुयज्ञ करनेवाले इन पंडितोंके दिमागको दीमक चाट चुकी थी, इसलिए वे पंडितजी द्वारा उठाई गई पशुयज्ञ विषयक आपत्तियोंका बुद्धिपूर्वक उत्तर न दे सके। पर इस मन्थनसे निकले हुए निष्कर्षके आधारपर जनता समझ गई थी कि पंडितजीका पक्ष ही सत्यसे परिपूर्ण है।

पंडितजीके समाजसुधारके कालमें यह एक अपूर्व प्रसंग था।

लोकशिक्षणके अपने कार्यक्रमके बारेमें पंडितजी लिखते हैं-

" औंधमें मेरे स्थायी होनेका मेरा उद्देश्य यही था कि मैं यहां स्थिरचित्त होकर वेदोंका अध्ययन और उनका अनुवाद करूं और उस वेदमंथनसे निकले हुए नवनीतको जनताके सामने रखूं। इस कारण मेरा अधिकांश समय इसीमें खर्च होता था और इससे जो समय बचता था, उसे मैं रियासतकी सेवाके लिए समर्पित कर देता था।"

" पंजाबमें मैं जो ९–१० बरस रहा और उस दरम्यान मैंने व्याख्यानादियोंके जरिये जो धर्मका प्रचार पंजाबमें किया, उसका लाभ मुझे औंधमें आकर वेदोंका अनुवाद हिन्दीमें करते समय मिला। पंजाब, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेशमें मेरी हिन्दी पुस्तकोंकी बिक्री होती थी और उन्हीं प्रान्तोंसे मुझे मेरे प्रकाशनके लिए आर्थिक सहायता भी प्राप्त होती थी। इसप्रकार २–३ बरसोंमें मुझे पंजाबसे करीब डेढ लाख रुपयोंकी सहायता मिली, और उसके कारण मैं अनेक पुस्तकोंका प्रकाशन कर सका।"

" वाजसनेयी यजुर्वेदके ५–६ अध्यायके अनुवाद मैंने छापे। अथर्ववेदका अनुवाद एवं स्पष्टीकरण भी छापा। इस ग्रंथमें करीब २५०० पृष्ठ थे, इसकी कीमत उन दिनों सिर्फ २५ रु. रखी थी। इसके अलावा "वैदिकधर्म" नामक एक हिन्दी मासिक भी शुरु किया, जो आज भी चल रहा है। उसके बाद "पुरुषार्थ" पत्र मराठीमें शुरु किया, वह भी आजतक चलरहा है।

" श्रीमद्भगवद्गीता पर पुरुषार्थबोधिनी नामसे एक टीका लिखनेका श्रीगणेश किया और उसे मासिक रूपसे प्रकाशित करनेका निश्चय करके "भगवद्गीता" के नामसे एक मासिकपत्र हिन्दी और मराठी दोनों भाषाओंमें निकालना शुरु किया। इस प्रसंग पर एक महत्वपूर्ण बात उल्लेखनीय है।"

"भगवद्गीतापर मैंने टीका लिखनी प्रारंभ की और उस टीकामें एक नया ही दृष्टिकोण मैंने प्रस्तुत किया था, इसलिए लोगोंने मेरी वह टीका बहुत पसन्द की। पर उसमें दिव्यदृष्टि और विश्वरूप दर्शनपर आकर मेरी गाडी अटक गई। कुछ भी समझमें नहीं आरहा था कि यह दिव्यदृष्टि या विश्वरूप दर्शन क्या है? और जो बात मेरी समझमें ही नहीं आई उसपर मैं कुछ लिखता भी तो किस तरह? इसलिए मैं प्रतिदिन परमात्मासे प्रार्थना किया करता था कि- हे प्रभो! यद्यपि मैंने यह टीका लिखनेका काम हाथमें ले लिया है, पर दिव्यदृष्टि और विश्वदर्शन क्या पहेली है, कुछ समझमें नहीं आरहा है। अतः तू मेरा मार्गदर्शन कर और इस मेरी समस्याको सुलझा। अन्यथा दसवें अध्यायके अनन्तर मेरी टीका नहीं लिखी जा सकेगी" मैं प्रतिदिन ऐसी प्रार्थना करता था। इस प्रकार पांचवें अध्यायतक मेरी टीका लिखी जा चुकी थी। इसी बीच ओंकार मान्धाता (नीमच म. प्र. के निकट) से एक किसी सत्पुरुषका कार्ड मुझे मिला, जिसमें लिखा हुआ था।

"नर्मदे हर! तुम आकर मुझे यहां मिलो, तुमको जो चाहिए, वह मिलेगा। जो व्यय आनेमें होगा, उससे कई गुना अधिक लाभ होगा।'

विज्ञानशाला, ओंकार मांधाता। — मायानन्द चैतन्य

यह पत्र मैंने पढा, पर मैं जन्मसे ही इन साधू सन्तोंके चक्करमें नहीं पडा। इस कारण यह पत्र कई दिनोंतक वैसे ही मेजपर पडा रहा। इसी प्रकार और भी चार पांच दिन निकल गए, अन्तमें यह निश्चय किया कि जाकर देख तो आऊं। यह निश्चय कर मैं चल पडा। दो दिनकी यात्राके बाद मैं मोरटक्की स्टेशनपर पहुंचा और वहांसे तांगेमें बैठकर ओंकारेश्वरके पास पहुंचा। वहांसे दो मील पैदल जाना था इसलिए मैंने एक कुलीसे कहा कि मुझे विज्ञानशाला पहुंचा दो। यह सुनते ही वह कुली बोला- "वह तो भ्रष्ट है।" यह सुनकर मुझे बडा बुरा लगा कि मैं जो इतना खर्च करके आया हूँ क्या वह एक भ्रष्टका दर्शन करनेके लिए ही? मैंने उससे पूछा कि-"तुम उसे भ्रष्ट क्यों कहते हो।" उसने उत्तर दिया कि-"उसने तो अपने पास एक परायी स्त्री रख छोडी है।" यह सुनकर मुझे और बुरा लगा। इतनेमें ही मैं विज्ञानशालाके पास पहुंचा, वहां मैंने एक स्त्रीको घूमते फिरते देखा। तो मेरे मनने कहा कि यह कुली जो कह रहा था, वह सच ही है और तब मेरा मन बडा खिन्न हो गया।

"मैं करीब ८ बजे विज्ञानशालामें पहुंच गया। श्री मायाचन्द चैतन्य महाराज वहां धूनी रमाकर गांजेकी चिलम पीते हुए बैठे थे। भेस वैरागियोंका था। गांजा और तम्बाकूसे मुझे बहुत घृणा है। पर ये गांजा पी रहे थे। मैंने उन्हें नमस्कार किया, तब उन्होंने मुझसे पूछा कि- "तुम भोजन कहां करोगे?" मैंने कहा कि-"यहा धोकर मैं ओंकारेश्वर चला जाऊंगा और वहीं होटलमें भोजन कर लूंगा।" तब वे

बोले– " इस दोपहरीमें २ मील आने जानेकी अपेक्षा यहीं भोजन कर लो। " मैंने भी स्वीकार कर लिया। मैंने नर्मदामें स्नान किया। गुरुसेवा करनेकी दृष्टिसे कुछ घड़े पानी भी ले आया। संध्या की, इतनेमें ही भोजन करनेके लिए उनका न्योता भी पहुंचा।"

" वे स्वामीजी उसी धूनीपर लोहेकी अंगीठी रखकर पतीलीमें एक दो पदार्थ पका लिया करते थे। उनके भोजनमें पदार्थोंका जमघट नहीं रहता था। मैं भोजन करने बैठा और दो चार कौर खाया। भोजन क्या था मानों स्वादिष्टताका खजाना था। इस धूनीपर पकाये गए इस सरलसे भोजनमें इतनी स्वादिष्टता आखिर आई कहांसे ? इसीका मुझे आश्चर्य लगा। यह एक सद्‌गुरुका प्रसाद था। वह भोजन इतना अपूर्व था कि उसके स्वादको मैं आजतक भूल नहीं पाया हूँ। "

" भोजनके बाद उन्होंने कहा कि दो दिनके जागरणके कारण उत्पन्न हुई हुई थकावटको दूर करनेके लिए तुम दो घंटे सोओ। उनकी झोपड़ी क्या थी, नर्मदाकी रेतीमें चार खम्भे गाड़कर उसपर छप्पर छा दिया था, चारों ओर लकड़ीके पट्टे लगा दिए थे। नीचे रेती थी। उसी रेतीपर मैंने अपना बिस्तरा बिछाया और दो घंटे सोया। उसके बाद वे मुझसे बोले कि– " ये दो पुस्तकें पढ़ो। " वे मैंने एक ही घण्टेमें पढ़ डालीं और उनके पास जाकर बैठ गया और प्रार्थना कि मुझे दिव्यदृष्टि और विश्वरूपदर्शनके बारेमें उपदेश दें। "

" इसके बाद उन्होंने करीब एक घण्टे तक गीता एवं अन्य ग्रंथोंमें वर्णित इस दिव्यदृष्टि और विश्वरूपदर्शनके बारेमें मुझे समझाया। "

" वेद, उपनिषद् और गीताके वचन तो मेरे पास थे, अतः मुझे केवल यही समझना था कि उनकी उपपत्ति किस प्रकार लगाई जाए। यही उपपत्ति उन्होंने मुझे समझाई और समझाकर बोले कि इसपर तुम विचार करोगे, तो तुम सब कुछ आसानीसे समझ जाओगे। यह आदत तुम लगा लोगे, तो तुम्हें कहीं भी कठिनाई नहीं पड़ेगी। "

" उनका यह कहना अक्षरशः सत्य था। वेदादि ग्रंथोंके वचनोंका भण्डार मेरे पास था, पर उनकी उपपत्तिको न समझनेके कारण उनकी संगति लगाना मेरे लिए कठिन प्रतीत हो रहा था। उन चैतन्यके द्वारा समझा दिए जानेपर मेरे सामने सारा रहस्य खुल गया और जिन वचनोंको आजतक मैं परस्पर विरोधी समझ रहा था, वे ही वचन अब मुझे परस्पर अनुकूल दिखाई देने लगे, इतना ही नहीं अपितु उन वचनोंके द्वारा आविष्कृत एक महान् सिद्धान्तसे भी मैं परिचित हो गया। मुझे बड़ा आनन्द हुआ और मेरी यह यात्रा भी सार्थक हुई। एक घंटेमें उन्होंने मुझे जो कुछ समझाया, उसीके आधारपर मैंने गीतापर आगेकी टीका लिखी। पाठकों उस टीकामें जगह जगहपर श्री चैतन्यकी विचारपद्धतिके दर्शन होंगे। सातवें अध्यायके बाद जहां जहां विश्वरूप ईश्वरकी कल्पना आई, वहां वहां मैंने इसी ज्ञानका उपयोग किया है। '

×

" इस विज्ञानाश्रममें एक डाक्टर शिष्यके रूपमें रहा कर थे। उनकी पत्नी और लडका यहीं एक दूसरी झोपडीमें रहते थे। उन्हींकी पत्नी यहां आनेपर मुझे सर्वप्रथम दिखाई दीं थीं पर उनका स्वामीजीके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं था। "

" इस आश्रममें प्रतिदिन शामको ६ बजे उपदेश होता था। उसमें दिव्यदृष्टि और ईश्वरकी विश्वरूपतापर प्रवचन दिए जाते थे। इन उपदेशोंको सुननेके लिए एक लकडहारिन रोज आया करती थी। एक बरसतक स्वामीजीका उपदेश सुननेके कारण उसके अन्तःकरणमें दिव्यदृष्टिका प्रकाश हुआ। एक ही वर्षमें वह गीता और दिव्यदृष्टिपर प्रवचन करने लगी और उसके वे प्रवचन इतने शास्त्रशुद्ध होते थे कि बडे बडे विद्वान् भी उसके सामने सिर झुकाने लगे। आगे जाकर बडी बडी सभाओंमें इस स्त्रीसे विद्वान्‌जन वेदान्तविषयक प्रश्न पूछते थे, जिनके उत्तर यह स्त्री आसानीसे दे देती थी, पर जब यह स्त्री उन विद्वानोंसे प्रश्न पूछती, तो वे उनका उत्तर न दे पाते। इस कारण अपमानका घूंट पिये हुए उन पंडितमंडलियोंने उस स्त्री एवं स्वामीजीके बारेमें अनैतिक सम्बन्ध होनेका अपप्रचार करना शुरु किया। पर उन प्रचारोंमें कुछ भी सत्यता नहीं थी। उस स्त्री एवं स्वामीजीके बीचमें कुछ भी अनैतिक सम्बन्ध नहीं था। पंडितमंडलीकी यह ईर्ष्या देखकर मुझे बडा बुरा लगा।

" आज भी यह विज्ञानशाला मौजूद है और इसके प्रचारक चारों ओर दिव्यदृष्टिके बारेमें उपदेश देते हैं। पर जनता इसको कब समझेगी और उसके आचरणमें यह कब उतरेगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। "

वैदिक वाङ्मयको ही अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य बनाकर वैदिक वाङ्मयका अध्ययन करनेवाले पंडितजीके श्वासनिःश्वासमें भी मानों वेद बस गए। इसके परिणामस्वरूप जो काम एक सहकारी संस्था अथवा सरकार भी नहीं कर सकती, वह काम अकेले पंडितजीने इस स्वाध्यायमण्डलके द्वारा करके दिखाया। वेदसंहिताओं, और उनके हिन्दी एवं मराठी भाषान्तरोंको छपवानेमें ही पंडितजीने जितना परिश्रम किया, यदि उसकी कल्पना ही की जाए, तो विद्वत्ताका जनसेवा के कार्यमें उपयोग करनेके पंडितजीके इस कार्यको देखकर किसका सिर नहीं झुक जाएगा ? चारों वेद और वाल्मीकि रामायणका मराठी-हिन्दी अनुवाद एवं महाभारतका हिन्दी अनुवाद पंडितजीने प्रकाशित किया। उन्होंने मनुस्मृतिका भी संशोधन किया है। गीता और उपनिषदोंपर अपने भाष्योंमें उन्होंने अनन्तकालसे चली आती हुई परम्पराको एक नई ही दिशा प्रदान की है। उनमें लेखकने यह दिखानेका प्रयास किया है कि ब्रह्मज्ञानके साथ ही साथ अध्यात्मसे युक्त मानवी व्यवहारमें सभी स्वावलम्बी स्वाभिमानी और तेजस्वी रहें। पंडितजीके अनुसार यही लोकशिक्षाका उद्देश्य होना चाहिए। पंडितजीकी यह एक विशेषता रही है कि उन्होंने अपने हर वैदिक ग्रंथोंके अन्तमें मंत्रोंकी सूची, उपमासूची आदि सूचियां दी हैं। गीताके श्लोकोंकी भी एक अन्त्याक्षर सूची तैय्यार की है। ये सूचियां संशोधनकर्ताओंके लिए बडी ही उपयोगी हैं।

भारतमें और वेदोंमें वर्णित गायके महत्त्वको बतानेके लिए "गोज्ञानकोष" नामक ग्रंथकी रचना की, जो एक उत्कृष्ट ग्रंथ है। ब्राह्मणग्रंथ और आरण्यकोंका प्रकाशन भी पंडितजीने किया और "सोम-रस" नामक एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखकर पंडितजीने इस भ्रमके निराकरण करनेका प्रयास किया कि प्राचीनकालमें ब्राह्मण शराब पीते थे।

लौकिक एवं वैदिक संस्कृतके अध्ययनको सरल बनानेके लिए पंडितजीने संस्कृत-स्वयं-शिक्षकके नामसे एक पुस्तक माला लिखी। संस्कृत भाषाको सिखलानेके लिए स्वाध्याय मण्डलके द्वारा भारत और अफ्रीकामें केन्द्र स्थापित किये। इस प्रकार अपनी विद्वत्ता, और प्रयत्नवादसे समाजकी सेवा की और राष्ट्रभक्तिका नवीन निर्माण कार्यमें उपयोग किया।

भारतकी धार्मिक, राजकीय, सामाजिक, आर्थिक और व्यावहारिक व्यवस्था देखकर पंडितजीका मन अस्वस्थ हो गया, इसीलिए उन्होंने इन कार्योंको प्रारम्भ किया। वैदिककालीन आर्य उग्र, शूर और तेजस्वी थे। उन्हींके वंशज हम मीरकासिमके आक्रमण कालसे लेकर डेढ हजार वर्षोंतक दासताकी शृंखलामें बंधकर और आपसमें शत्रुता बढाकर क्यों कष्टमें पडे रहे, ये सभी विचार पंडितजीके हृदयमें शल्यके समान चुभते थे। उनके निरीक्षणों और मस्तिष्कने एक ही उत्तर दिया कि वेदकालीन संस्कृतिका उच्छेद हो जानेके कारण ही आज हमारी यह दुरवस्था है। लोकशिक्षणके द्वारा इस दुरवस्थाके उन्मूलन करनेके लिए पंडितजीने सन् १९१९ में वैदिकधर्म नामक एक हिन्दी मासिक शुरु किया। वेदोक्त धर्मके सिवाय और कोई विषय उस मासिकमें स्थान न पा सके, इस बातकी दक्षता पंडितजी सदासे ही रखते चले आए हैं। उस मासिक पत्रके द्वारा प्रतिमास वेदोंके मंत्र एवं उनमें निहित उपदेश जनताके सामने आने लगे, परिणामस्वरूप वैदिकधर्मकी श्रेष्ठता हर एकके मनमें प्रतिबिम्बित होने लगी। उसी उद्देश्यसे मराठी पाठकोंके लिए १९२४ सन्में लोकमान्यके पुण्यतिथिके अवसरपर शुरु किए गए पुरुषार्थ मासिकमें विचार स्वातंत्र्यके लिए लेखकोंको अवसर मिला। इन पत्रिकाओंके मुखपृष्ठ भी इस तरहके होते थे कि जिससे पाठकोंकी मनोवृत्ति खराब न हो। इस क्षेत्रमें ये पत्रिकायें हमेशा अग्रसर रहीं हैं। भगवद्गीता भी मासिकके रूपमें उन्होंने तीन वर्ष तक चलाई और उसके द्वारा गीताकी पुरुषार्थबोधिनी टीका लोगोंके सामने रखी।

पंडितजीने जब "वैदिकधर्म" मासिक शुरु किया, वह समय जलियांवाला बागकी घटनाके कारण जनतामें उत्पन्न प्रक्षोभका काल था। उसी प्रक्षोभके कारण राष्ट्रभरमें असहयोग और स्वदेशी व्रतका आन्दोलन बडे जोरशोरसे चल निकला। राष्ट्रीय देशभक्तोंने विधिमंडलका बहिष्कार कर दिया, इसकारण विधिमंडलमें कोई भी राष्ट्रभक्त न रहा और वह मण्डल गुण्डोंका मण्डल बनकर रह गया और अंग्रेजी साम्राज्य भी इन गुण्डोंके बलपर जुल्मोंका नंगा नाच दिखाने लग गया। जिस

प्रकार विधिमण्डलके बाहर शासन और शासितका संघर्ष चल रहा था, उसी प्रकार विधिमण्डलके चारदिवारीके अन्दर भी राष्ट्रभक्तोंका शासनके साथ संघर्ष शुरु हो गया। केन्द्रीय सरकारका आर्थिक बजट अस्वीकृत हो गया और दिल्लीके राष्ट्रीय सिंहासनपर विठ्ठलभाई पटेल (अध्यक्ष होकर) बैठ गए। ऐसे समयमें ही पंडितजीने अपना पुरुषार्थ शुरु किया। छत्रपति शिवाजी महाराजके २०० वें जन्मोत्सवके शुभावसरपर १९२७ में "पुरुषार्थ" का शिवांक तरुणोंके लिए बडा ही स्फूर्तिदायक साबित हुआ। इसप्रकार इन पत्रिकाओंमें परिस्थितिसापेक्ष और निर्माण करनेवाले लेखोंके प्रकाशित होनेके कारण पंडितजीके मनमें आया हुआ वैदिक धर्मके द्वारा लोगोंके उद्धारका संकल्प सफल होता गया। इसप्रकार पंडितजीमें एक निर्भीक पत्रकारका रूप समाविष्ट होता गया। इसके साथ ही स्वाध्यायमण्डलके द्वारा अनेक पुराने वैदिक ग्रंथोंको समयोचित रूप प्रदान करके उनका सम्पादन पंडितजीने किया, उनका यह सम्पादकका स्वरूप भी विशाल है। अपने इस व्यवसायके द्वारा पंडितजीने प्रकाशन व्यवसाय और पाठकोंकी मनोवृत्तिको उच्चस्तरीय बनाकर अन्य प्रकाशकोंके सामने एक श्रेष्ठतम आदर्श प्रस्थापित किया। उस समयकी भारतकी एवं जगत्‌की राजनैतिक परिस्थिति बडी ही उलझन भरी थी। १९३०-३२ के अन्यायपूर्ण कानून भंगके पूर्व १९२७ में राष्ट्रने सायमन कमीशनका काले झण्डोंसे स्वागत किया, "स्वराज्यकी यथाशीघ्र मांग" करते हुए सर्वपक्षसम्मत नेहरु रिपोर्ट सामने आया, पर वह अस्वीकृत हो जानेके कारण १९३०में पंडित नेहरुने स्वातंत्र्यका शंख फूंक दिया। १९३१ में दूसरी गोलमेज परिषद्‌में गांधी शंख और इरविनके बीच एक संधि हुई। वे कॉंग्रेसके एकमात्र प्रतिनिधि होकर इंग्लैंड गए और वहां जाकर उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यकी सज्जनताका नग्न रूप लोगोंको दिखाया। १९३८ में भारतके आठ प्रान्तोंमें कॉंग्रेसके मंत्रिमण्डल स्थापित हुए। १९३९ में हिटलरी आक्रमणके कारण दूसरा महायुद्ध भडक उठा, लिहाजा जगत्‌में सर्वत्र अराजकताकी स्थिति हो गई। इस युद्धको रोकनेके लिए कॉंग्रेसने वैयक्तिक सत्याग्रह किया। इस विश्वयुद्धके कारण ब्रिटिश रियासतोंमें होनेवाले परिणामोंका यहांकी रियासतों पर भी प्रभाव पडा। ऐसे उलझन भरे वातावरणमें पंडितजी एवं उनके साथियोंने रियासतोंके पुनर्गठन एवं उनकी उन्नतिके लिए जो अथक परिश्रम किये, वे स्वयंमें एक आदर्श होनेसे अनुकरणीय हैं। इसीप्रकार सर्व साधारण मनुष्योंकी मनोवृत्तिको ऊंचा उठानेके लिए पंडितजीके द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिकाएं और उन्हींके द्वारा लिखित हजारों पृष्ठोंके ग्रंथ उनकी कीर्तिमें चार चांद लगानेवाले हैं। इन सबके लिए औंध रियासतकी प्रजाएं और वैदिकधर्मकी प्रेमी जनता युग युगोंतक पंडितजीकी ऋणी रहेगी इसमें सन्देह नहीं।

❂ ❂ ❂

: १५ :

अहह !! कष्टमपण्डितता विधेः ।

औंधमें ही रहकर वेदोंका गूढार्थ हिन्दी और मराठी भाषाओंके माध्यमसे प्रकाशित करनेका निश्चय करके पंडितजीने औंध गांवके बाहर पर उससे लगी हुई ही जमीन खरीद ली। और उस जगहपर रहनेके लिए घर, आने जानेवालोंके लिए अतिथिगृह और अपने वेदोंके प्रकाशनके लिए मुद्रणालय पंडितजीने बंधवाये। भारतमुद्रणालयके तैयार होते ही १० जनवरी १९१९ के दिन मकरसंक्रान्तिके शुभ मुहूर्तपर यजुर्वेदके ३६ वें अध्यायको "सच्ची शान्तिका सच्चा उपाय" नामसे प्रकाशित किया। इस प्रथम प्रकाशनका मूल्य केवल आठ आने रखकर इसकी दो हजार प्रतियोंमेंसे कुछ प्रतियां भारतमें प्रसिद्ध विद्वानों, सभी आर्यसमाजों और धर्म समाओंको भेजी और साथमें यह प्रार्थना की कि इसका मूल्य आठ आने भेजनेकी कृपा करें। पर मुफ्तमें मिले हुए मालकी कीमत लोग क्या जानें ? इसलिए केवल आठ दस लोगोंने ही उस पुस्तककी कीमत भेजी, पर हरिद्वारके एक सज्जनके रूपमें परमेश्वरका वरदहस्त पंडितजीको प्राप्त हो गया। उनके द्वारा वेद प्रकाशनके लिए भेजा गया दो हजार रुपयोंका एक चेक प्राप्त हुआ। इसीके करीब इचलकरंजीके राजा बाबासाहब घोरपडेने अपनी राजधानीमें वेदोंपर पंडितजीके व्याख्यानोंकी व्यवस्था की। वहां कुरुंदवाडके वेदपाठी ऋग्वेदी पंडित येडूरकरशास्त्री थे, इचलकरंजीके सरदारने इनके साथ पंडितजीका परिचय कराया। वेदप्रकाशनके कामोंमें पंडितजीके लिए ये शास्त्री बहुत सहायक सिद्ध हुए। पंडितजीने वेदके प्रत्येक मंत्रको दो पंक्तियोंमें चरणके अन्तरको रखते हुए स्पष्ट और शुद्ध छापा है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद छापकर मैसूरसे सामवेदी लाकर पंडितजीने सामवेद भी छपवाया। सामवेदका अर्थ "गानयोनि मंत्रसंग्रह" है, उनमें ऊहगान और ऊह्यगानका ही शास्त्रशुद्ध आरोहावरोहके साथ गायन करनेवाले मिल सकें। बाकी सामवेदी

गायनकलाको मूर्तरूप देनेवाला कोई न मिल सका। पंडितजीके इन वैदिकग्रंथोंके ग्राहक १९१९ से लेकर १९४८ तक अर्थात् इन तीस वर्षोंमें बलूचीस्तानसे लेकर कलकत्तातक और नेपालसे लेकर कन्याकुमारीतक सभी जगह प्राप्त हुए। सभी जगह उनकी सभी पुस्तकोंका स्वागत हुआ।

पंडितजीका यह सांस्कृतिक पुनरुत्थान और लोकशिक्षणका काम मुख्य था, पर देशकाल और परिस्थितिसे प्रभावित होकर पंडितजी राजनीतिमें भी भाग लेते थे। १९४१ में जब खिण्डोंमें सम्पन्न दक्षिण महाराष्ट्र रियासतोंकी परिषद्के पहलेसे ही राजाओंपर यह दबाव डाला जा रहा था कि वे १९४२ के "भारत छोडो" के आन्दोलनके दौरान ब्रिटीशसाम्राज्यके सार्वभौमत्वके विरुद्ध खडे हो जाएं और वे संसारको एकबार फिर दिखा दें कि वे किसीके हाथकी कठपुतली नहीं हैं। मीरज और कोल्हापुरके प्रजापरिषद्ने यह मांग रखी भी थी। १९४१ में फलटणने द्विदलराज्यपद्धतिकी शुरुआत करके १९४२ में स्वराज्यकी पद्धतिपर भी अमल करना शुरु कर दिया था। इस कारण मीरज भी पीछे नहीं रहना चाहता था।

१ सितम्बर १९३९ के दिन जर्मनीने पोलैंडपर आक्रमण कर दिया और जागतिक शान्ति भंग हो गई। दूसरे विश्वयुद्धकी घोषणा होगई। इधर ब्रिटिशसाम्राज्यने भारतको अपने साम्राज्यका एक अंश मानकर भारतीय नेताओंसे विचारविनिमय किए बिना ही भारतको भी युद्ध करनेवाला राष्ट्र घोषित कर दिया। इसे कांग्रेसने अपना अपमान समझा और १९३९ के नवम्बरसे उन्होंने प्रत्येक प्रान्तोंमें अपने अधिकारोंका त्याग करके इस युद्धसे अलिप्त रहनेका निश्चय कर लिया। उस समय केवल चार प्रान्तोंमें मुस्लिम मंत्रिमण्डलोंका शासन यथापूर्व कायम रहा। विश्वयुद्धके प्रारम्भ होनेके बाद १९४० के अप्रैलमें रामगढमें सम्पन्न कॉंग्रेसने यह प्रस्ताव पास किया कि स्वातंत्र्यके सिवाय और किसी भी तरहका राजकीय सुधार भारतीयोंको पसन्द नहीं आ सकता। इसी प्रस्तावके अनुसार कॉंग्रेसियोंके कदम पडने लगे। इधर ब्रिटिश सरकार भी युद्धमें अपने प्रयत्नोंको सफल बनानेके लिए प्रयास कर रही थी। ब्रिटिशसरकारने लोगोंको सांत्वनापूर्वक समझा बुझाकर "युद्धफंड" इकट्ठा करना शुरु किया। १९४० के मध्यमें इस विश्वयुद्धने बहुत गंभीर स्वरूप धारण कर लिया। इसीके आसपास सतारा जिलेके लोकल बोर्डपर लोहपुरुष सरदार पटेलके हाथों राष्ट्रीय झण्डेकी विधिवत् स्थापना हो गई। राष्ट्रके अन्दर इन आए दिन होनेवाली आपत्तियोंके कारण ८ अगस्त १९४० के दिन वाइसरायने यह घोषणा कर दी कि इस विश्वयुद्धकी समाप्तिके बाद शीघ्रसे शीघ्र भारतको स्वातंत्र्य प्रदान कर दिया जाएगा। पर इस घोषणाका १ सितम्बरके दिन भारतमें सर्वत्र विरोध हुआ। १९४१ के २२ जूनके दिन हिटलरी आक्रमणकी दिशा ही बदल गई। जर्मनीने रूसपर आक्रमण कर दिया। इसके बाद छै महीनेके अन्दर ही जापानने पर्लहार्बरपर

अधिकार कर लिया। और १८ दिसम्बरके दिन उसने स्वयंको जर्मनीका सहायक घोषित कर दिया। इस कारण अमेरिका भी युद्धमें कूद पड़ा। १९४१ के अन्तमें रूस, चीन और अमेरिका इंग्लैंडसे आकर मिल गए। इधर जापान बर्माके प्रदेशोंमें भी अपने हाथ पांव फैलाने लगा, इस कारण विश्वयुद्ध भारतराष्ट्रके द्वारोंको भी खड़खड़ाने लगा। आखिरमें भारतके पूर्वी किनारेके विजगापट्टम और कोकानाडा शहरोंपर बम गिराये गए और इस कार्यसे यह स्पष्ट हो गया कि यह युद्ध भारततक आ पहुंचा है। इसी बीच इंग्लैंडसे क्रिप्स एक योजना लेकर भारतभूमि पर उतरा। पर जब भारतीय नेताओंने देखा कि इस योजनामें भारतीयोंमें फूट डालनेका षड्यन्त्र रचा हुआ है, तो उन्होंने इस योजनाको तिलांजलि दे दी। इधर महात्मा गांधीने देखा कि ब्रिटिशसरकार बराबर अपने दिए हुए वचनोंका भंग करती जा रही है और इस समय जापान इंग्लैंड पर चढ़ता चला आ रहा तो उन्होंने अंग्रेजोंकी इस संकटकालीन स्थितिसे फायदा उठानेके लिए भारतमें सर्वत्र "अंग्रेजों भारत छोड़ो" का आन्दोलन शुरु कर दिया, और दूसरी तरफ नेताजी सुभाषचन्द्र बोसने अपने आझाद हिन्द फौजको संगठित सेना लेकर भारतपर आक्रमण करनेकी योजना बनाई और "दिल्ली चलो" का एक महामंत्र देकर अपने सैनिकोंके रगरगमें जोश भर दिया। अन्दरसे गांधीजीका "भारत छोड़ो" का आन्दोलन और बाहरसे सुभाषबाबूकी "दिल्ली चलो" की सशस्त्रक्रान्ति इन दोनों पाटोंके बीचमें आकर अंग्रेज सरकार घबरा गई। दूसरे विश्वयुद्धके कारण अंग्रेजी साम्राज्यकी आर्थिक और सैनिक शक्ति बहुत बिगड गई थी, अतः भारतकी इस दुहरी क्रान्तिसे टक्कर लेना अंग्रेज सरकारके लिए मुश्किलका काम हो गया। इस कारण अंग्रेज अधिकारियोंने रियासती राजाओंको अपनी ओर मिलानेका प्रयत्न किया। वे राजाओंसे मित्रके रूपमें व्यवहार करने लगे। पर यह तो एक बाहरी दिखावा ही था, अन्दरसे तो रेजिडेण्ट ही इन राजाओंका भाग्यविधाता समझा जाता था। १९४० में प्रजायें भी खुल कर सामने आ गई और "भारत छोड़ो" के आन्दोलनमें सर्वतोमना कूद गई। तब राजाओंको यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि इन आन्दोलनोंके सामने ब्रिटिशसरकारकी ही जब कुछ नहीं चलती, तो हमारी ही क्या चलेगी! इसलिए उनमें भी परिवर्तन आ गया।

इस समय पंडितजी औंधमें थे। राजासाहब औंधने १९३९ में ही अपनी प्रजाओंको स्वराज्य प्रदान कर दिया था। वह स्वराज्य पंडितजीके निरीक्षणमें अच्छी तरह चल रहा था। औंधके राजाका अनुकरण यदि अन्य राजाओंने भी किया होता तो इन रियासतोंका स्वरूप कुछ और ही होता। पर उन्होंने कुछ भी न किया। औंधके राजा समयकी करवटको पहचाननेमें बहुत कुशल थे। रियासतोंके विलीन होनेकी भनक उनके कानोंतक पहुंच गई थी। यद्यपि औंधके राजा प्रत्यक्ष रीतिसे

" भारत छोडो " के आन्दोलनके सहायक नहीं थे, पर उनके पुत्र अप्पासाहब पंत इन आन्दोलनकारियोंकी गुप्तरूपसे सहायता किया करते थे। पंडितजी भी इन क्रान्तिकारियोंके बडे भारी सहायक थे। इसी बीच बैरिस्टर जयकरने एक संयुक्त हाईकोर्टकी योजना तैय्यार की, इस योजनाको औन्ध और फलटणने स्वीकृति दे दी, बादमें छै अन्य रियासतों और कोल्हापुरने भी इसके लिए अपनी सम्मति दे दी। इसी बीच राजाओंको लार्ड वेवलने सलाह दी कि जितनी छोटी छोटी रियासतें हैं, वे बडी बडी रियासतोंमें विलीन कर दी जायें अथवा सभी रियासतोंका एक संयुक्त फेडरेशन बनाया जाए। इस दूसरी सलाहके अनुसार १९४६के मार्चकी पहिली तारीखके दिन कोल्हापुर, औंध, मीरज और फल्टणकी रियासतोंने औंधके आधिपत्यमें एक हाईकोर्टकी स्थापना की। इसी प्रकार दक्षिणी रियासतोंका एक संघ राज्य बनानेके लिए श्री शंकरराव एवं अपने सहामात्योंकी सलाहसे राजाओंने एक रूपरेखा तैय्यार की। इस विलीनीकरणके प्रस्ताव पर फलटण और जमखिंडीकी रियासतोंने अपनी सम्मति प्रदान कर दी।

इधर जागतिक रंगमंचपर हिटलरके साथ शस्त्रसंधि हो जानेपर भारतमें विधिमण्डलका चुनाव हुआ, उसमें अनेक कौंग्रेसी नेता अनेक प्रान्तोंसे चुनकर आए और उन्होंने राज्यका सूत्र अपने हाथोंमें ले लिया। २३ अगस्त १९४६ को जब पं. नेहरूने भारतीय सरकारका सूत्र हाथोंमें ले लिया, तभी रियासतोंके फेडरेशनकी रम्यता समाप्त हो चुकी थी। पं. नेहरूने यह घोषणा कर दी कि अंग्रेज भारत छोडकर चले जाएंगे। इस घोषणापरसे लोगोंको यह ज्ञात हो गया कि अब रियासतोंका विलीनीकरण शीघ्रातिशीघ्र होनेवाला है। पर अखण्ड भारतका स्वप्न देखनेवाले देशभक्तोंके सामने ही पाकिस्तान बनानेकी सम्मति देनेके कारण इस राष्ट्रके दो टुकडे हो गए। पर उन देशभक्तोंको इतना तो सन्तोष अवश्य मिल गया कि अब उनको अंग्रेजोंके शिकंजोंसे मुक्ति हो गई है। इसी समाधानके साथ १५ अगस्त १९४७ के दिन भारतीयोंने स्वतंत्रताका उत्सव मनाया। इसीके आसपास दक्षिणी महाराष्ट्रके रियासतदारोंने अपने फेडरेशनमें २६ जनवरी १९४८ के दिन विलीनीकरणका प्रस्ताव पास कर दिया और ९ मार्च १९४८ के दिन सभी रियासतें विलीन हो गईं। (जागृत सतारा)

अगस्त १९४७ में भारत स्वतंत्र हुआ और १९४७ के अन्तमें भारतके द्वारा पाकिस्तानको पचपन करोड रुपये देनेका प्रश्न उपस्थित हुआ। महात्मा गांधीने पाकिस्तानके पक्षमें अपना मत दिया, इससे कुछ तरुण बौखला उठे। तो भी भारत सरकारने महात्माजीके शब्दोंका स्वीकार करके पाकिस्तानको पचपन करोड रुपये दे दिए। इस घटनासे बौखलाये हुए नाथूराम गोडसे नामक एक तरुणने दिल्लीमें ३० जनवरी १९४८ के दिन प्रार्थना सभामें महात्मा गांधीपर गोलियां झाड दीं।

सारा संसार कांप गया। भारतका राष्ट्रपिता चला गया। सभी दलित और पतितोंके सहारे, उनके उद्धारकर्ता और मानवके शुद्ध आचारके उदाहरण, भारतीय संस्कृतिके गौरव उन महात्मा गांधीको (३० जनवरी १९४८) हत्या कर दी गई। उससे पूर्व ही सांगली, मीरज, मोरजमला, भोर, फलटण, रामदुर्ग, कुरुन्दवाड, जमखण्डी, अक्कल्कोट, जत, मुधोळ, कुरुन्दवाड (छोटा भाग) इन बारह रियासतोंके विलीनीकरण करनेके बारेमें वहाके राजा एवं प्रजायें सहमत हो चुकी थीं। सावनूर और सावंतवाडीमें कोई ज्ञान ही नहीं थी अतः उनमें इस विलीनी-करणके विरोध की कोई संभावना ही नहीं थी। कोल्हापुर, जंजिरा और औंधने अभी अपनी सम्मति नहीं दी थी। औंधरियासत ग्रामपंचायतपर आधारित होनेके कारण पिछले नौ वर्षोंसे औंध संस्थानके राजा एवं प्रजा अपनी अपनी विशिष्टता बनाये रखना चाहती थी। औंधके राजामें राष्ट्रीयता भरी हुई थी और उनकी दृष्टि भी व्यापक थी। किसी भी उत्तम योजनाको उनका समर्थन मिल जाता था। इस-लिए उनका और वहांकी प्रजाओंका यही आग्रह था कि औंध रियासत अलग ही रहे। औन्धके राजाने २९ जनवरी १९४८ को घोषणा की थी कि अगले दिन विलीनी-करणके बारेमें प्रजाका मत लिया जाएगा, पर दूसरा दिन जो उगा, वह बडा ही दुर्भाग्यशाली निकला। औंधका ग्रामराज्य जिनके आशीर्वाद एवं मार्गदर्शनसे साकार हुआ, उन महात्माजीके हत्या का दुःखद समाचार सुनकर औंधकी प्रजा वज्राघातसी होकर स्तब्धसी बन गई। इसके बाद औंध राजाने प्रजामतका विचार न करके ही विलीनीकरण लिए अपनी सम्मति दे दी।

महात्माजीकी हत्या हो गई। इससे बौखलाये हुए कुछ आततायियोंने खूनका बदला खूनसे ही लेनेका निश्चय किया। ऐसे लोगोंने पूना और बम्बईमें कानूनको अपने हाथोंमें ले लिया और यह समाचार जब छपा तो इसकी लहर सारे महाराष्ट्रमें फैल गई। १ फरवरीको इस अकाण्डताण्डवकी शुरुआत होगई। ब्राह्मणोंको जातीय प्रवृत्तिका मूल समझकर (महात्माजीका हत्यारा भी ब्राह्मण होनेके कारण) इस जातिको ही समूल नष्ट कर देनेकी इच्छा इन अत्याचारियोंमें जाग्रत हो उठी। अपनी जाति पर अभिमान करनेवाले मुसलमान भी ब्राह्मणेतरके रूपमें ब्राह्मणोंके विरोधी-दलमें शामिल हो गए। जिनका घर जलाना होता उनके बारेमें ये आततायी अनेक तरहकी अफवाहें फैलाते कि इन्होंने महात्माजीकी हत्यासे खुश होकर पेडे बांटे या मिठाई खाई और उनका घर जला देते। अहिंसाके देवताके नामपर हिंसाका नंगानाच होने लगा। १९४८ में गांधीवधके कारण महाराष्ट्रमें घरोंमें आग लगाने, सम्पत्ति लूट लेने, अपने विरोधियोंको जानसे मार देनेका भीषण अत्याचार जो प्रारंभ हुआ, उसने पंडित सातवळेकरको भी नहीं छोडा। पंडितजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके सञ्चालक थे, और गोडसेको भी संघी करार दे दिए जानेके कारण लोगोंका क्रोध इस संघ पर उतर पडा। परंतु औंधके राजाने पंडितजीकी बडी रक्षा की। नहीं तो पंडितजी का सारा वेदसेवाका कार्य, उनके ग्रंथ, मुद्रणालय आदि सभी कुछ

"अमये स्वाहा" हो जाता। पुराणोंमें असुरोंके द्वारा वेदोंके हरे जाने और समुद्रमें डुबा दिए जानेकी कथा है ही। पर वे असुर थे वेदोंसे द्वेष करनेवाले। पर ये हमारे ही देशके वासी और हमारे ही भाई थे, जो एक वेदसेवकको नष्ट करने पर तुले हुए थे। पर पंडितजीने अपना धीरज नहीं खोया, और!! उन्होंने औंधकी भूमिसे हमेशाके लिए विदा ले ली। पंडितजीने गुजरातप्रान्तमें वलसारसे ७ मील दूर हैं। पारडी नामक ग्राममें अपनी संस्थाको बसाया। पारडी गायकवाडोंके अधीन रहा है, इसलिए इसपर महाराष्ट्री संस्कृतिकी पूरी पूरी छाप है। जब भारतकी स्वतंत्रताके लक्षण स्पष्ट दीखने लग गए, तब ईसाईधर्मके प्रचारकोंको ऐसा प्रतीत होने लगा कि अंग्रेजीराज्यकी समाप्तिके बाद उन्हें पहलेके समान भारतमें अपने धर्मके प्रचारके लिए सुविधायें नहीं मिलेंगी इसके अलावा उनके सामने चीनका भी एक उदाहरण था। चीन जिस दिन स्वतंत्र हुआ, उसी दिन चीनके अधिकारियोंने एक घोषणा करके सभी ईसाई पादरियोंको अपने देशसे निकाल दिया और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली थी। अतः उन्हें यह डर था कि कहीं भारतके स्वतंत्र होनेके बाद यहां पर भी उनकी वैसी ही दशा न हो। इसलिए उन्होंने अपनी जायदादको बेचकर जितना धन मिल सकता, उतना बटोर लेनेकी शुरुआत की। कुछ न मिलनेकी अपेक्षा थोडा ही मिल जाना श्रेयस्कर है। भागते भूतकी लंगोटी भली होती है। इसलिए पारडीके पादरियोंने अपने पूनास्थित जॉन स्मॉल मेमोरियल हॉलको भाडे पर उठा दिया और पारडी स्थित चर्च, निवासगृह, सुन्दर अमराईसे युक्त जमीनको बेच डालनेका निश्चय कर लिया। पर बेचनेसे पहले उन पादरियोंने चर्चको स्वयं अपने हाथोंसे जमीनदोस्तकर दिया। आगे जाकर पंडितजीने उसी नींवपर चौदह हजार रुपयोंकी लागतसे एक वेदमन्दिर खडा किया। जो आज भी अभिमानसे सिर उठाये खडा है। स्वयं पंडितजीको भी इस मन्दिर पर अभिमान है। वे स्वाध्यायमण्डलमें आनेवाले सभी अतिथियोंसे कहते हैं कि भारतमें आज अनेकों ऐसे गिरजाघर और मस्जिद हैं, जो मन्दिरोंको गिराकर उनकी नींव पर बांधे गए हैं। गोवामें पुर्तगालियोंने हजारों मन्दिर तोडे और उन पर अपने गिरजाघर खडे किये। पर हमारा वेदमन्दिर ही एकमात्र ऐसा मन्दिर है जो एक चर्चकी नींवपर खडा किया गया है। पारडीमें पादरियोंके इस जगहमें पंडितजीको अपना मन चाहा शान्त और स्वस्थ वातावरण मिल गया। वेदसाधनाके लिए अत्यन्त योग्य जगह मिल गई। इसलिए उन्होंने यह जगह खरीद ली। घरके सामने पंडितजीने स्वयं अपने निरीक्षणमें फूलोंका एक बगीचा तैयार करवाया। यह सब काम करते समय पंडितजीकी उमर बयासी वरसकी थी।

इतनी उमरमें भी पंडितजीको ये सब कष्ट सहने पडे वह इसलिए कि गांधीजीकी हत्या हो गई थी। जिन महात्माजीने अपना सारा जीवन देशके स्वातंत्र्यके लिए समर्पित कर दिया, जो जीवनभर दलितों और पतितोंके उद्धारके लिए जूझते रहे, वे अपने कार्यके फलोपभोगका आनन्द भी न ले सके, इसे यदि विधिकी अपण्डितता न कहा जाय, तो क्या कहा जाय। यहीं तो—

कष्टमपण्डितता विधेः।   ० ०

: १६ :

पारडीकी गोदमें

लोकशिक्षणके लिए स्वाध्यायमण्डलका यह काम १९१८से लेकर १९४८ तक अर्थात् तीस बरसोंतक औंधकी भूमिको पवित्र करता रहा। पर एक तो महाराष्ट्रमें ब्राह्मणेतर जातियोंमें ब्राह्मणोंके प्रति उठनेवाली विद्वेषकी भावना और दूसरा रियासतोंके विलीनीकरणके बाद उनका अन्धकारमय भविष्य, इन दो बातोंने पंडितजीका औंधमें रहना कठिन कर दिया। इसलिए पंडितजीने अपने तीस बरसोंकी कार्यभूमि औंधको छोड देनेका निश्चय किया।

इस स्थलान्तरके बाद पंडितजीका स्वागत करनेके लिए पंजाब, दिल्ली, नागपुर, बडोदा और हैदराबाद आदि नगर उत्सुक थे। पंडितजीको भी पूरा विश्वास था कि इन नगरोंमें उन्हें आर्थिक सहायता भरपूर मिलेगी और वेद-प्रकाशनका कार्य विस्तृत होगा। पर पंडितजीकी यह अभिलाषा थी कि जहांतक हो सके वहांतक महाराष्ट्रकी सांस्कृतिक राजधानी और लोकमान्य तिलककी कर्मभूमि पूनामें ही स्वाध्यायमण्डलका स्थलान्तर किया जाय। वे प्रतिमास सातसौ रुपये भाडा भी देनेको तैय्यार थे, पर वहां उन्हें मनचाही जगह नहीं मिली। अतः पंडितजी ऐसी जगहकी तलाशमें अनेक नगरोंमें घूमते रहे। इसी बीचमें पारडीमें बिकनेवाली एक जगहके बारेमें पंडितजीने सुना। तब इक्यासी वर्षीय पंडितजी उस स्थानपर गए और उन्होंने वह जगह स्वयं देखी और वह उन्हें पसन्द भी आगई।

छापखाना और कामगारोंके लिए पर्याप्त जगह, अठारह एकड जमीन, अमराई, तीन कुंए इन सभी सुविधाओंसे युक्त वह जगह पंडितजीके मनमें समा गई। सर्वश्री सेठ हरगोविंद घरमसी कांचवाले, वेणीभाई आर्य और गिरधर भाई भारतीय ये तीन उस जगहके स्वामी थे। उन्होंने स्वाध्यायमण्डलके वेदप्रकाशनके कार्यके

लिए यह भूमि देना सहर्ष स्वीकार कर लिया। तदनुसार १ जुलाई १९४८ के दिन इस जगहपर स्वाध्यायमण्डलका विधिवत् स्थलान्तर हो गया। वेदानुसंधानके कार्यकी शुरुआतमें पहले पंडितजीने वहां यथाशास्त्र भूमिशांति, वेदपाठ, होमहवन आदि किया। औंधसे स्वाध्यायमण्डलको पारडी लाने और यहां उसे व्यवस्थित रीतिसे कार्यक्षम बनानेमें साठ हजार रुपए खर्च हो गए।

पारडीके स्वाध्यायमण्डलके परिसरमें प्रवेश करते ही मुख्य प्रवेशद्वारके पास एक नई बंधी हुई छोटीसी पर आकर्षक इमारत है, वही पंडितजीका वेदमन्दिर है। इस वेदमन्दिरके ऊपर नारियलकी आकृतिवाला एक स्वर्णकलश है। यह वेदमंदिर पिचहत्तर फुट लम्बा और बीस फुट चौडा है। अन्दर एक तरफ व्यासपीठ है। अन्दरके भागमें एक लम्बीसी कांचकी अलमारीमें वेदके ग्रंथ सुरक्षित हैं। वेदमन्दिरके व्यासपीठपर प्रतिवर्ष गणपतिकी स्थापना की जाती है। वेदमन्दिरकी दीवारोंपर सूर्य नमस्कार, मनुष्य शरीरमें देवोंका स्थान बतानेवाले चित्र टंगे हुए हैं। इस मन्दिरका उद्घाटन १० जनवरी १९५४ को शिक्षामंत्री दिनकरभाई देसाईके हाथों हुआ था। इस वेदमन्दिरमें प्रतिशनिवारको सायकाल ठीक पांच बजे सामुदायिक प्रार्थना होती है। पंडितजी इसे अव्याहत गतिसे चलाते चले आ रहे हैं।

वेदमन्दिरसे ३०-३५ कदम आगे चलकर मंडलका अतिथिगृह पडता है। उससे आगे मण्डलका पुस्तकालय है। उसीके सामने मण्डलके मुद्रणालयकी इमारत है, जिसमें मण्डलके कर्मचारी काम करते हैं।

वेदमन्दिरके सामनेकी अमराईके बीच एक दुमंजिली प्रशस्त इमारत है, यह पंडितजीका निवास स्थान है। इसका नाम आनन्दाश्रम है। आश्रमके सामने फूलका बगीचा है।

औंधसे पारडीमें आनेका वृत्तान्त पंडितजीने स्वयं लिखा है, जो इस प्रकार है—

"तीस वर्षकी अवधिमें स्वाध्यायमण्डलने सभी संहितायें, जो उपलब्ध हो सकीं, शुद्ध, सुन्दर और सस्ती प्रकाशित की हैं। शुरुआतमें इनका मूल्य अत्यल्प था। वेदोंकी चारों संहितायें हमने पांच रुपयेमें ग्राहकोंको दी हैं। वेदोंकी सर्वशुद्ध, सुन्दर और उत्तम रीतिसे प्रकाशित संहिताओंको इतने सस्ते दामोंमें देनेका कोई विचार भी नहीं कर सकता, और न इतने सस्तेमें दिया ही जा सकता था। उस पर भी हमने यह काम हानि उठाकर किया।"

"मूल वेदोंकी सभी संहितायें, आर्षेय संहिताके आधार पर बनायी गई दैवत संहिताओंके तीन भाग, महाभारत, रामायण, भगवद्गीता और अन्य योगसाधनाओंके ग्रंथ आदि ग्रंथोंके करीब दो सौ रुपयोंके प्रकाशन स्वाध्यायमण्डलने किए हैं। सिंध, पंजाब, बलूचिस्तान और कलकत्तातक तथा नेपालसे लेकर कन्याकुमारीतक हजारों ग्राहकोंने इस वैदिक प्रकाशनका लाभ उठाया है।"

" औंधमें राजासाहबने स्वाध्यायमण्डलके लिए सरकारी जमीन मुफ्तमें देकर सर्वप्रथम ६ हजार रुपये स्वाध्याय मण्डलको वेद प्रकाशनार्थ दिए और समय समय पर प्रोत्साहन देकर अडचनें दूर कर बहुमूल्य सहायता भी की। उसका प्रत्युपकार कर सकना संभव नहीं। "

" सुविधा एवं असुविधाकी दृष्टिसे औंध एवं पारडीकी तुलना की जाए, तो—

(१) औंधका सबसे पासका स्टेशन रहमतपुर है, जो औंधसे १४ मील दूर है। पारडी स्टेशन पारडीसे दो मील दूर है।

(२) रहमतपुर बम्बईसे २२० मील है और बम्बईसे वहांतक रेलसे ११ घंटेका और बससे १२ घंटेका प्रवास है। पारडी बम्बईसे ११४ मील दूर है और केवल ५ घंटेका प्रवास है।

(३) रहमतपुरके समान ही पारडीमें केवल पैसेंजर रेलें ही खडी रहती हैं। मेल और एक्सप्रेस गाडियोंको पकडनेके लिए पारडीसे ७ मील दूर बलसार जाना पडता है। पारडीसे बलसारके लिए रोज बहुतसी बसें चलती हैं।

(४) गाडियोंका आवागमन व मालका आना जाना पारडीमें रहमतपुरकी अपेक्षा कई गुना अधिक है।

औंधमें भवानी अम्बाबाईका प्रसिद्ध मन्दिर है, उसी प्रकार पारडीमें भी भवानी का एक मन्दिर है, तथा भवानीका ही एक दूसरा मन्दिर पारडीसे ३॥ मील दूर एक पहाड पर है। औंधमें पौष मासमें मेला भरता है जो १५ दिनतक चलता है। करीब ५०–६० हजार लोग यह मेला देखनेके लिए आते हैं। पारडीमें भी पारनेरा पहाड पर अम्बाबाईका मेला आश्विन शुक्ला अष्टमीको भरता है, जो एक ही दिन रहता है। इस मेलेमें करीब १५–२० हजार लोग आते हैं। और पर्वतके शिखर पर स्थित भवानीका दर्शन करते हैं। "

" पारडीके पास पार नामकी एक नदी है। जो यहांसे तीन मील दूर बहकर समुद्रमें मिल जाती है। इसलिए इस नदीका समुद्रके पासका पानी खारा, पर ऊपरका पानी मीठा है। समुद्रमें जब ज्वार आता है, तब समुद्रका पानी नदीके मार्गसे यहां तक आ जाता है। पर वह ऊपर तक नहीं चढ पाता। इस नदी पर रेलका और मोटरोंका दोनों तरहका पुल है। रेलवेके पुलके नीचेका पानी खारा और मोटरोंके पुलके नीचेका पानी मीठा है। रेलवेके पुलतक पानी कभी नहीं पहुंचता। पर मोटरोंका पुल नीचा होनेके कारण बरसातमें उस पुल पर कई बार पानी आ जाता है और मोटरोंका आना जाना बन्द हो जाता है। उस समय इस प्रवाहमें बडे बडे वृक्ष बहकर आते हैं और लोगोंका आना जाना कई घंटे तक बन्द पडा रहता है। रेलवेका पुल लोहेका और मोटरोंका पुल सीमेंटका है। "

" पारनदी पासमें होनेके कारण इस गांवका नाम पारडी है। नदीका पानी पासके पर्वतसे लगकर बहनेके कारण इस पर्वतको पारनेरा (पार-नीरा) कहते हैं। पारनेरा एक ऐतिहासिक किला है। इसे १६७६ में मोरोपन्त पिंगळे नामक एक सरदारने अपने अधीन कर लिया था। यह किला सौ वर्ष तक मराठोंके अधिकारमें रहा।"

" पारनदीके उसपार रंग और रसायनका एक बड़ा भारी कारखाना खुलनेवाला है। (अब वह स्थापित हो गया है और एशियामें सबसे बड़ा है,) इस कारखानेके संस्थापक बड़े बड़े उद्योगपति हैं। इस कारखानेके कारण आज आठ हजारकी बस्तीका गांव थोड़े समयमें दो चार गुनी पंचगुनी बस्तीवाला हो जाएगा। पारडी और बलसार दोनों स्टेशन इस कारखानेके पास ही होनेसे इन दोनों स्टेशनोंसे इस कारखानेको बहुत लाभ हो सकता है। (अब अतुल नामसे ही कारखानेका अपना स्टेशन बन गया है।)

" पारडीके आम और चीकू सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इस भूमिके रसके कारण इन फलोंमें विशेष मधुरता आती है। यहां आमों और चीकुओंके अनेक बाग हैं। इधरके अनेक गांव उद्यान-नगरोंके रूपमें परिवर्तित हो चुके हैं। यहांके फसलोंमें चावल मुख्य है।"

'पारडीसे बलसार जाते हुए बीचमें पारनेराका पर्वत पड़ता है। वहां दायीं तरफ पुरुषकी ऊंचाईवाली एक तोप ऊपरकी तरफ मुंह करके गडी हुई है। वहांसे लेकर पर्वतकी चोटी तक ४०१ सीढियां हैं। किलेका प्रवेश द्वार पूर्वाभिमुख है। अन्दर घुसते ही दायीं तरफ एक दरगाह मिलती है। वहांसे १०-१५ सीढियां चढनेपर किलेपर देवीका मन्दिर मिलता है। वहां भी मन्दिरकी तरफ जानेवाले रास्तेके बीचमें दायीं तरफ छै तोपें गडी हुई हैं। देवीका मन्दिर छोटासा ही है। यह मूर्ति मन्दिरमें बिल्कुल ठीक बीचमें प्रतिष्ठित न होकर एक कोनेमें प्रतिष्ठित है। उसके सामने एक जंगला है, यहीं खडे होकर भक्तगण देवीका दर्शन करते हैं। इस देवीके पास तीन देवियां और हैं, जो अम्बिका, चंडिका और नवदुर्गा कही जाती हैं। प्रतिदिन दोपहर पूजाके समय नवचण्डीका पाठ होता है। फिर नैवेद्य दिखाया जाता है। देवीको नारियल समर्पित किया जाता है। यहां किसी भी प्राणीकी बलि नहीं दी जाती। प्रतिवर्ष आश्विन शुक्ला सप्तमीके दिन नवचण्डीका सहस्रपाठ करके हवन किया जाता है। उसी दिन मेला भी प्रारंभ हो जाता है। चैत्र शुक्ला सप्तमीको भी नवचण्डीका सहस्रपाठ करके हवन किया जाता है। इसी दिन देवीको सब अलंकारोंसे सजाया जाता है। कतिपय वर्षपूर्व आभूषणोंकी इच्छासे मन्दिरमें चोरी हुई, पर वे चोर पकड लिए गए। चोरोंने दरवाजे तोडकर मन्दिरमें प्रवेश किया, पर वहां उन्हें कुछ मिला नहीं। कुछ बर्तन मिले, जो चोरोंने

किलेके पास ही गाड़ दिए। कहते हैं कि एक चोरने वहाँका घंटा जो हाथसे पकड़ा तो वह उसीके हाथमें चिपककर रह गया। यह देखकर वह दिङ्मूढ़सा हो गया और सीधे रास्तेसे जो नीचे उतरा, तो उस घण्टेकी आवाज़से लोग जाग गए और वह चोर पकड़ लिया गया। फिर उसने छिपाये गए बर्तन भी बता दिए।"

"यह देवी बम्बईके प्रभु लोगोंकी कुलदेवता है। और विलेपार्ले (बम्बई) के कोठारी महाराज अपने अनुयायियोंको लेकर दो तीन बार आश्विन शुक्ला सप्तमीके दिन यहाँ आ चुके हैं।"

"इन तीन देवियोंके सामनेकी ओर सिन्दूरसे युक्त हनुमानकी मूर्ति है, ऐसा लोगोंका कहना है। पर सूक्ष्म दृष्टया देखनेसे ऐसा पता चलता है कि यह गणपतिकी मूर्ति रही होगी। इस मन्दिरका सभा मण्डप छोटासा है, जिसमें अधिकसे अधिक ७०-८० मनुष्य बैठ सकते हैं। इस मण्डपके उत्तरमें एक दरवाजा है, जिसके पास ही संगमरमरके पत्थरपर गुजराती भाषामें एक लेख लिखा हुआ है, जिससे पता चलता है कि– यह दरवाजा और सीढ़ियाँ सोनी छगनलाल मथुरादास बलसाड़वालाने बनवाई हैं।"

"सातवीं पीढ़ीके एक पुजारीने बताया कि इस किलेको अंग्रेजोंने जान बूझकर तुड़वा दिया था। इस बातकी पुष्टि बॉम्बे गजेटियरसे भी होती है।"

"पारनेराका किला दक्षिणोत्तर फैला हुआ है, उसके चारों ओर परकोटे हैं। उसकी चौड़ाईसे तीन गुनी उसकी लम्बाई है। देवीका मन्दिर किलेके उत्तरी किनारे पर है और दक्षिणी किनारे पर उतरनेके लिए पगडण्डी है। उस परकोटेमें ६-७ बुर्ज हैं और पश्चिमी परकोटेके अन्दर सात-बावड़ियाँ अथवा कुंए हैं, पर उनका पानी पीने लायक नहीं है। दक्षिणकी तरफ एक बावड़ी है, जिसमें लोहेकी सीढ़ियाँ लगी हुई हैं, उसका पानी पीनेके लायक है। किलेके दक्षिणी किनारे चट्टानोंके बीचमें किसीने सिन्दूर रचकर एक देवी प्रतिष्ठित कर दी है। किलेके मध्यभागमें करीब १५ कदम चौड़ा और १२५ कदम लम्बा एक ऊंचा स्थान है जो दो पुरुष जितना ऊंचा है। इस स्थानके दक्षिणी और उत्तरी किनारे कभी बड़े बड़े कमरे रहे होंगे, जो आज खंडहर बन चुके हैं। उन कमरोंका अनुमान मात्र भी उन गिरी हुई दीवारोंसे लगाया जा सकता है। इमारतकी ईंटोंकी माप ३×७×१२ अंगुल है। किले परसे दूर दूरके दृश्य देखनेमें बड़े सुहावने लगते हैं।"

"यह पारनेराका किला जलवायुकी दृष्टिसे बहुत ही उत्तम है। २०'-३०' अक्षांश उत्तर और ७२'-५९' रेखांश पूर्वमें यह जगह है। यह स्थान बलसारसे ४ मील और बम्बईसे १२० मील दूर है। इसकी ऊंचाई १०००-१२०० फुट तो होगी ही। इतिहास और युद्धकी दृष्टिसे इस किलेका बहुत महत्त्व है। ··· मूलतः इसे किसी हिन्दु राजाने बनवाया था। प्रथम यह धरमपुर रियासतके अधिकारमें था। तदनन्तर

१५वीं शताब्दीमें मुहम्मद बेगराने (१४५९-१५११) इसपर अधिकार कर लिया। इसके बाद अहमदाबादके बादशाहका राज्य अस्तव्यस्त हो गया। १५५८ और १५६८ में यह पुर्तगालियोंके अधिकारमें चला गया। उन्होंने किलेकी दीवारोंको तोडकर इस किलेको बडा नुकसान पहुंचाया। १७७१ में मोरोपंत पेशवाने इसकी फिर मरम्मत करवाई। इसके बाद १०० वर्ष तक यह किला मराठोंके अधिकारमें रहा। प्रबन्ध करनेके लिए कई वरसतक यहां सेना रही। ''' अन्तमें १८५७ के बाद अंग्रेजोंने इसको पूर्णतया नष्ट कर दिया।''

"सन् ६६९-६९१ में जयसिंह वर्मा (धाराश्रय) का तीसरा लडका नागवर्मा राज्य पर था। तब नासिकके पश्चिमी प्रदेश, बलसार, पेंठ, पारडी और दक्षिणी गुजरातका हिस्सा उसके अधिकारमें था। वही आजका पारडी तालुका है। २०'-३०' अक्षांश और ७२'-४८' रेखांश पर यह पारडी है। इस गांवमें करीब १५०० घर और ८ हजार की जनसंख्या है। जनसंख्या दिनबदिन बढती जा रही है। तहसीलदारका कार्यालय किलेपर है। इस गांवमें खून, डाका आदिका भय नहीं है। लोग अपने अपने कामोंमें तत्पर रहते हैं। निरुद्योगी और बेकार लोगोंकी संख्या कम है। पारडी नगर एक तालाबके किनारे बसा हुआ है। तालाबका घेर करीब करीब २-२॥ मील है। यह लाल और सफेद कमलोंसे भरे हुए होनेके कारण बडा सुहावना दीखता है। इस तालाबके बीचोबीच एक छोटासा टापू भी है।"

"पारडी गांव करीब १॥ मील लम्बा है, पर चौडाईमें कम है। तालाबका हिस्सा ऊंचा और गांवका भाग नीचा होनेके कारण तालाबका पानी भूमिमें जाकर गांवके कुओंमें आता है, उसीको यहांके लोग पीते हैं। तालाबके पानीमें लोग सब तरहकी गंदगी लाकर डाल देते हैं और उसी गंदे पानीको पीनेके कारण लोग बीमार भी होते हैं। गांवमें कई डॉक्टर और वैद्य हैं और सभी सम्पन्न स्थितिमें हैं।"

"स्वाध्यायमण्डलकी जगह गांवसे बाहर गांवसे १ मील दूर है, इसलिए वहांका जलवायु एकदम शुद्ध और ताजापन लिए रहती है।"

पारडीमें सभी धर्मोंके मन्दिर हैं। उनमें—

(१) श्री बेचरामाता– यह यहांके कंसारा लोगोंकी माता है। पीतल आदि धातुओंके बर्तनोंके व्यापारीको गुजरातमें कंसारा या कासारा कहते हैं। यह देवालय नगरके बीचमें होनेपर भी स्वच्छ और आल्हादकारक है।"

(२) एकलिंगी महादेव– यह स्थान स्वयंभू समझा जाता है। यह मंदिर तालाबके किनारे बहुत विस्तृत है। सार्वजनिक सभायें अधिकतर इसी जगह होती हैं। यह स्थान स्वच्छ और रमणीय है।

(३) रूवालेका महादेव– रू अर्थात् रुई या कपास। किसी एक कपासके व्यापारीके द्वारा प्रतिष्ठित किए जानेके कारण यह मन्दिर रूवालेका मन्दिर कहा जाता है। यह एक छोटा सा मन्दिर है, जो तालाबके किनारे पर स्थित है।

(४) पालनेमें ठाकुरजी– इस मन्दिरमें श्रीकृष्ण हमेशा पालनेमें सोये रहते हैं। बचपनकी चिकित्साके रूपमें इन्हें प्रतिसप्ताह थोडासा एरंडीका तेल भी पिलाया जाता है।

(५) बलभीम मारुतिराय– पारडीमें एक हनुमान् टेकरी है। इसे मारुतिका स्वयंभू स्थान मानते हैं। सावनके महीनेमें हजारों भक्त इस मन्दिरमें दर्शनार्थ आते हैं। इनके भक्तोंमें हिन्दु, पारसी, ईसाई और मुसलमान भी हैं। इस मन्दिरके पास कुछ जमीन और आमके बाग भी हैं। इसी टेकरीपर एक कुंआ है। इस टेकरीकी ऊंचाई १०० फुटके करीब है।"

"इन हिन्दु देवमन्दिरोंके अलावा दो मस्जिदें भी हैं, एक दरगाह है। ईसाई-ओंका भी एक बहुत बडा प्रचारकेन्द्र है। इस गुजरातप्रान्तमें ईसाइयोंकी अनेक शाखायें हैं और ये हिन्दुओंको ईसाई धर्ममें परिवर्तित करनेके लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। पारसियोंकी भी अग्यारी–अग्निशाला (उनका मन्दिर, जिसमें हमेशा अग्नि जलती रहती है) भी है। यहांसे ही थोडीसी दूर पर उदवाडा–संजाण नामक गांवमें पारसियोंकी जन्मभूमि है। पारसियोंका "शान्तिस्तम्भ" भी वहीं पर है। वहां उनके मृतशरीर पक्षियोंके खानेके लिए रख दिए जाते हैं। पारडीमें आर्य-समाजी भी बहुत संख्यामें हैं, पर वे क्रियाशील नहीं हैं, लिहाजा उनकी साप्ताहिक सभा भी नहीं होती।"

"पारडीसे करीब दो मील दूर "गंगाजी" के नामसे एक निसर्गरमणीय स्थान है। यहां स्मशान है और शिवजीका एक मन्दिर भी है। वहीं एक ऊंची जगह पर पीपलका वृक्ष है। उसकी जडसे हरदम पानी झरता रहता है। इसी पानीसे तीन कुण्ड बनाये गए हैं। महाशिवरात्रीके दिन यहां एक मेला भरता है, जो २–३ दिन चलता है और बहुतसे भक्तगण आकर शिवके दर्शन करते हैं।

"यहां एक बटनोंका कारखाना है जिसमें पीतल आदि धातुओंके बटन बनते हैं। यहांसे माल तैय्यार होकर सारे देशमें जाता है। इसके अलावा और भी अनेकों छोटे मोटे कारखाने हैं।"

"इस पारडी गांवके बीचोबीच एक किला है, जिसे पेशवाओंने बनवाया था। इसीलिए इस गांवको किला या किल्ला–पारडी कहते हैं। इस किले पर एक कुआं है। बहुत गहरा होनेके कारण उसे पाताल कुंआ कहते हैं। यहींके एक महाराष्ट्रीय जमीनदार बापूराव बोरवणकर एक बार इस कुंएमें उतरे थे, तब उन्हें पेशवाकालीन कुछ हथियार प्राप्त हुए थे।"

"यहां सभी हिन्दु दशहरेका उत्सव बडे ही हर्षसे मनाते हैं। गुजरातमें प्रत्येक नगरमें शामके समय स्त्रियां अपने घरको साफ करके घरद्वारको रंगोलीसे सजाती हैं। पारडीमें बडी बडी रंगोलियां बनाई जाती हैं। नवरात्रके दिनोंमें रोज रातको ८ से

+

१२ बजे तक स्त्रियां, लडकियां, पुरुष सब मिलकर गरबा नृत्य करते हैं। यह गुजरातका एक विशेष नृत्य है, जिसमें सभी मिलकर मण्डलाकार नाचते और गाने गाते हैं। इन गानोंमें देवीके द्वारा दिखाये गए पराक्रमों और उनके द्वारा किए गए राक्षसोंके निर्दलनोंका वर्णन होता है। गुजराती कवियोंने शिवाजी महाराजके विजयका तथा चिमणाजी अप्पाके द्वारा वसईपर आक्रमण करके वहांके पुर्तगालियोंको जीतनेका वर्णन भी किया है। इस दिन प्रायः सभी गुजराती हर चौराहे पर केलेका स्तम्भ गाडते हैं और ऊंचे ऊंचे नीराजन जलाते हैं। तब उसके चारों ओर नाच नाचकर सब स्त्री पुरुष अपना आनन्द प्रकट करते हैं। इसी दशहरेके दिन गांवके बाहर मेला लगता है, जिसमें ब्राह्मणवर्ग शमीपत्र लेकर बैठा रहता है। लोग उस मेलेमें जाते हैं और ब्राह्मणोंको दक्षिणा प्रदानपूर्वक उनकी पूजा करके घर लौट आते हैं। "

"५०-५५ (१९१३-१४) वर्ष पहले अमेरिकन पादरियोंने ईसाई धर्म प्रचारके लिए अपनी एक चर्च बनाई और ५-६ कमरे बनवाकर यहां ईसाई धर्मका प्रचारका एक बडा सा केन्द्र बनाया। यहां करीब १००-११५ भारतीय ईसाई थे और ५-६ अमेरिकन पादरी भी रहते थे। वे सब मिलकर ईसाई धर्मका आसपास खूब प्रचार करते थे। यहां ईसाके झुण्डमें जब अनेक भेडें जमा हो जातीं, तो उन सबको दूसरी जगह एक बडे झुण्डमें भेज दिया जाता था। इसप्रकार ३०–३५ वर्षोंतक उनका यह काम चलता रहा। पर आगे चलकर उनके मनमें यह जगह बेच देनेकी इच्छा हुई। तब यह जगह आर्यसमाजियोंने "आर्यकन्या महाविद्यालय" शुरु करनेके लिए ८० हजार रु. में खरीद ली। ३-४ बरस तक यह जगह आर्यसमाजियोंके पास रही। पर वे इस जगह आर्यकन्या महाविद्यालय खोल नहीं सके। "

"१९४८ के जुलाई मासमें स्वाध्यायमण्डलका यहां स्थलान्तर हुआ; और उसके बाद औंधसे सारा सामान धीरे धीरे यहां आ गया। जहां हिन्दुधर्मको नष्ट करनेके लिए ईसाईयोंने केन्द्र स्थापित किया था, वहीं अब वैदिकधर्म अथवा हिन्दु धर्मको जाग्रत करनेके लिए एक केन्द्र स्थापित हो गया। "

"लोग यहांकी भूमिको "मिशन" की भूमिके रूपमें जानते थे। पर हमने इसका नाम "आनन्दाश्रम" रखा, और सभीसे वेदध्वनि यहां शुरु हो गई। "

"इस जगह एक गिर्जाघर था। खरीदनेवाले आर्यसमाजियोंने पादरियोंसे कहा कि तुम यह सब जमीन और इस जमीन पर खडे हुए सभी घर बेच रहे हो। अतः यह गिर्जाघर भी रहने दो, मत तोडो। तुम अपने धर्मचिन्ह एवं क्रॉसको भले ही निकाल ले जाओ, पर यह मन्दिर वैसे ही रहने दो। "

"इस पर पादरियोंने कहा कि हमारा धर्ममन्दिर पवित्र है, इसमें लगे हुए पत्थर और ईंटें भी पवित्र हैं। इस पर अन्य धर्मावलम्बियोंके अधिकारको हम नहीं सह सकते। इसलिए चर्च तोडकर उसके पत्थर, ईंट और चूना आदि सभी कुछ

ये तोड़कर ले गए। नींवके पत्थरोंको भी खोदकर ले जानेकी कोशिश की। जो पत्थर मिट्टीको ही प्रभुका मन्दिर समझते हैं, उनके ज्ञानके विषयमें क्या कहा जाए? पर अपने धर्मके बारेमें उनका आग्रहमात्र प्रशंसनीय है।"

"पादरियोंने चर्चको तोड डाला। उस जगह हमने वेदमन्दिर खडा कर दिया। उस जगह मन्दिरको खडा करनेके हमारे इस कामके पीछे हमारी द्वेष भावना नहीं थी, अपितु इस भूमिके सदुपयोगकी ही भावना थी।"

"स्थलान्तर करनेके इस कार्यमें स्वाध्यायमण्डलको बडा घाटा सहना पडा। औंधमें ५०-६० हजारतक कीमतकी इमारतें उसी प्रकार छोडकर भाग आना पडा।"

वैदिक जीवनके सिद्धान्तोंका पुनरुद्धार करके वेदोक्त सार्वभौम मानवधर्मका प्रचार करनेके लिए वेदानुसंधान और वेदानुवादका कार्य करनेवाले स्वाध्यायमण्डलका कार्य औंधमें ३० बरसतक चलता रहा, वही अब पारडीमें पिछले बीस वर्षोंसे चला आ रहा है। पारडीमें आनेके बाद अपने इक्यासी बरसकी उमरसे पंडितजी उसी तरह अपने कार्यमें संलग्न हैं, जिस प्रकार औंधमें। अब यद्यपि वे राजनीतिके पचडोंसे दूर ही रहते हैं, तथापि उनकी यह महती अभिलाषा है कि जो स्वराज्य हमें प्राप्त हो चुका है, वह सुराज्य बन जाये। इसीलिए १९४७ में हुए हुए जातीय दंगोंको पाकिस्तानके निर्माणको और अखण्ड भारतको खण्डित होना हुआ देखकर पंडितजीका हृदय रो पडा। इसीलिए देशका उद्धार करनेके लिए वे जानकी बाजी लगानेको भी तैय्यार हो गए। "अखण्ड हिंदुस्तान और पाकिस्तान योजना" के नामसे एक पुस्तिका छपवाकर उन्होंने एक योजना तैय्यार की, पर उनकी बातोंपर किसीने ध्यान नहीं दिया और अन्तमें भगवान् व्यासकी तरह पंडितजीको भी यही कहना पडा– "ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष नैव कश्चित् शृणोति माम्।" इसके फलस्वरूप पंडितजीने यह निश्चित कर लिया कि अब जगके अनुसार ही चलना चाहिए और इस निश्चयके अनुसार वे अपनी उम्रके लिहाजसे कार्य करने लग गए। पर तब भी उनके सामने एक ही लक्ष्य था कि प्रारंभ किया हुआ यह वेदोद्धारका कार्य जितना ज्यादा और शीघ्र हो सके, उतना किया जाए। इसके साथ उनका अभीष्ट यह भी था कि प्राप्त हुए स्वराज्यको वेदोक्त सुराज्यमें परिवर्तित किया जाए। इसप्रकार अपने कामको वेदोंतक ही मर्यादित करनेके बाद पारडीमें आकर वे वेदोंके अनुवाद प्रकाशनके कार्यमें अखण्ड रूपसे लग गए।

पारडी आकर पंडितजीने वेदानुवाद व अन्य वैदिक साहित्य लेखन मात्रकी जवाबदारी अपने ऊपर रखी, बाकीका ग्रंथ और मासिक पत्रिकाओंका मुद्रण–प्रकाशन तथा मण्डलके प्रबन्ध आदिका सारा काम अपने ज्येष्ठ सुपुत्र श्री वसन्तरावके सबल कन्धोंपर डाल दिया। तथापि उनके अन्तःकरणमें एक प्रकारकी टीस अब भी

विद्यमान है, जो केसरीके मार्च १९१३ के अंकमें प्रकाशित उनके लेखमें दृष्टिगोचर होती है। वे लिखते हैं कि—

" जब मिशनरियोंको यह विश्वास हो गया कि अब भारतमें अंग्रेजी राज्य ज्यादा दिन टिकनेवाला नहीं है, तब २२ मिशनरियां बन्द हो गईं और उन्होंने अपनी जायदाद बेचकर जो कुछ मिल सकता था, प्राप्त कर लिया। पारडीमें भी मिशनकी जगहमें २०० के करीब बडे बडे आमके वृक्ष हैं। एक बडासा भव्य बंगला है। इन सबकी कीमत २ लाख रुपयेसे कम नहीं हो सकती। पर वह हमें सिर्फ एक लाख रुपयेमें मिल गई। इसी जगहपर पिछले चालीस वर्षोंमें न जाने कितने हिन्दुओंको ईसाई बना दिया गया था। उसी जगहको हमने खरीदकर उसे आनन्दाश्रममें परिवर्तित कर दिया। "

" भारत स्वतंत्र हो गया। कांग्रेसका मंत्रिमण्डल बना। उसने अपनी नीति निश्चित की और यह घोषणा कर दी कि हमारी सरकार धर्म निरपेक्ष होगी। इसलिए अपने अपने धर्मके प्रचारके लिए यहां सभीको सभी तरहकी स्वतंत्रता है। इस घोषणाको सुनकर मिशनरियोंकी जानमें जान आई। हमारे स्थानसे कुछ फर्लांगकी दूरीपर ही मिशनरियोंने नई जगह खरीद ली। अब वहां उन्होंने एक बडासा दवाखाना शुरु करनेका निश्चय किया है। भारतमें स्वातंत्र्य प्राप्तिके पूर्व ईसाई धर्म प्रचारक कुल बीस हजार थे, अब स्वातंत्र्य प्राप्तिके बाद उनकी संख्या पच्चीस हजार हो गई है। प्रत्येक पांच पांच मील तकके प्रदेशमें ईसाई धर्म प्रचारकोंकी पहुंच है। पारडीमें २०–२५ रु. के दस प्रचारिकायें हैं और ५०–१०० रु. के ६ प्रचारक हैं। "

" यहांकी नीच जातियोंमें, जिन्हें यहां काली प्रजा कहते हैं, ईसाइयोंका कितना प्रभाव है, यह संभवतः उच्चवर्णीयोंको पता भी नहीं। यह उदासीनता सिर्फ गुजरातमें ही नहीं, प्रायः सभी भारतीय प्रान्तोंमें है। एक मिशनरीका खर्च करीब १५ लाख रुपयोंका होता है। मिशनरियोंके इतने महान् प्रचण्ड खर्चके लिए धन ईसाइयोंसे ही प्राप्त होता है। सन्तानहीन व्यक्ति अपनी सारी जायदाद इन मिशनरियोंको अर्पित कर देते हैं। व्यापारमें होनेवाले लाभका कुछ निश्चित हिस्सा मिशनरीको दे देते है। इस प्रकार अनेक मार्गोंसे इन मिशनरियोंको धन मिलता रहता है। "

" औंधसे पारडीमें स्वाध्यायमण्डलका स्थलान्तर करना पडा। उस समय संस्थाके हितचिन्तक चालीस धनियोंकी बम्बईमें एक सभा हुई। सभी पक्षोंपर विचार करके इन धनपतियोंने इस स्थलान्तरके कार्यमें होनेवाले खर्चका अन्दाज ३ लाख रुपये निकाला, साथमें यह भी निश्चय किया कि इस संस्थाके देखरेखमें बडे पैमानेपर हिन्दुधर्मके ग्रंथोंका प्रकाशन किया जाए। उसके बाद बाजारके भाव अस्थिर

हो गए, फलतः स्वरूप इन श्रीमन्तोंसे एक भी पैसा वसूल न किया जासका। इस पारडीकी भूमिको खरीदनेके लिए १ लाख रुपये जो लिए थे, वे भी कर्जेके रूपमें इस संस्थापर लद गए। इसके अलावा उपरसे भी ५०-६० हजार रु. खर्च हो गए। थोड़ेमें संस्थाके पास ५०-६० हजार रु. की जो सम्पत्ति थी, वह गई सो गई ही, उपरसे १॥ लाख रुपयोंका कर्ज और लद गया। उसका ६% के हिसाबसे व्याज भी भरना पड़ता है। यह है अन्तर एक मिशनरीमें और एक वेदानुसंधान संस्थामें। पारडीके दक्षिणमें उदवाडा और उत्तरमें बलसारमें मिशनरियोंके केन्द्र हैं।"

"गुजरातमें धार्मिक और श्रद्धालु लोग बहुत हैं और वे दान भी देते हैं। अहमदाबादमें संन्यास मंदिर, वेदमंदिर और गीतामन्दिरके निर्माणके कार्यमें १४ लाख रु. लग गए। पर उन मन्दिरोंमें प्रचारका कार्य नहीं होता। आज हिन्दु जातिपर मिशनरियोंके कारण जो महान् संकट आया हुआ है, उसे दूर करनेका कोई भी प्रयत्न नहीं करता।"

"इन मिशनरियोंको सभी स्तरके मनुष्य सभी जगह प्रचारका कार्य करनेके लिए यथेच्छ मिल जाते हैं। हिमालय जैसे दुर्गम प्रदेशोंमें भी अव्वल दर्जेके डॉक्टर ईसाई धर्मके प्रचारके उद्देश्यसे १०-२० वर्षतक रहते हैं। पर ऐसे काम करनेके लिए हमारे पास योग्य मनुष्य नहीं हैं। उत्तम डॉक्टर जो बनता है वह पैसा कमानेके फंदेमें पड जाता है अतः हिन्दुओंको इस बातपर विचार करना चाहिए कि *इस जातिको हर तरहके काम करनेवाले मनुष्य या प्रचारक क्यों नहीं मिलते।* निकृष्ट कामसे लेकर ऊंचे कामतकको करनेवाले मनुष्य क्यों नहीं तैय्यार किए जाते। केवल वैय्यक्तिक प्रयासोंसे इस धर्मप्रचारको रोकना संभव नहीं। (हरएक जगह विष्णु जैसा ब्रह्मचारी किस तरह मिल सकेंगे?), इसलिए भारतके मध्यभागमें एक ऐसा संगठनात्मक केन्द्र स्थापित करना चाहिए, जो इसी कामके लिए हो। वह केन्द्र अखिल भारतमें हिन्दुधर्ममें प्रविष्ट होनेके लिए प्रेरणा देनेका कार्य करे। वह हिन्दुओंको भी इतना मजबूत बनावे कि वे हिन्दुधर्ममें आए हुओंको अपना सके।"

इसके बाद भी १९५३ के मई महीनेके केसरीके अंकमें पंडितजीने "हिन्दुधर्मपर परधर्मावलम्बियोंका आक्रमण" के शीर्षकसे तीन लेखोंकी एक लेखमाला लिखी। उसमें पंडितजीने एक रहस्यका विस्फोट किया और बताया कि मध्यप्रदेशमें मुसलमान किन किन उपायोंसे हिन्दुओंको मुसलमान बना रहे हैं। साथ ही हिन्दु जातिको यह भी चेतावनी दी कि यह जाति यदि इसी प्रकार उदासीन रही तो आगे आनेवाले २-३ बरसोंमें इस जातिका नाममात्र शेष रह जाएगा। श्री निष्कलंकी नारायणपंथ आदि नामोंको धारण करके तथा अपनेको अथर्ववेदी बताकर भी कई लोग मुस्लिम धर्मका प्रचार करते हैं। लाला लाजपतरायको एक बार इसका अनुभव आया था। अतः पंडितजीने हिन्दुओंको बारबार सावधान किया, कि वे अपने धर्मके प्रति सजग हो जाएं, तभी उनके धर्मपर इतर धर्मावलम्बियोंके कारण आया हुआ यह महान् संकट दूर हो सकेगा अन्यथा यह हिन्दुधर्म एक दिन सदाके लिए पातालवासी हो जाएगा।

ooo

: १७ :

स्वाध्याय-मण्डलका रजत महोत्सव

श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरके द्वारा औंधमें स्थापित और पारडीमें स्थलान्तरित यह स्वाध्याय मण्डल उनके कार्यका मूर्तिमान् प्रतीक है। महात्मा गांधीजीने भी इनके कार्यको देखकर एक बार कहा था कि "आपके प्रचार कार्य पर मैं तो हमेशा मुग्ध रहा हूँ।" वैदिक वाङ्मयका संशोधन और प्रकाशन ही पंडितजीका जीवनकार्य है। वैदिक ऋषियोंकी तरह ही पंडितजी अनुभव सम्पन्न हैं। औंधमें स्थापित होनेके बादसे स्वाध्याय मण्डलने जो कार्य किया, उसका रजत महोत्सव ९-१० जनवरी १९५४ को मनाया गया।

शनिवार ९ जनवरीका सूरज कुछ नया ही सन्देश देता हुआ पूर्वाचल पर प्रकट हुआ। सारा वातावरण स्फूर्ति एवं उत्साहसे भरा हुआ था। प्राचीन ऋषिमुनियोंका स्मरण करनेवाले व उनके प्रतीक रूप पंडितजीके आनन्दाश्रमकी सुरम्य आम्रवाटिका वेदोंकी पवित्र ध्वनिसे गूंज उठी।

यज्ञमंडपके चारों दिशाओंके चारों दरवाजों पर दोनों तरफ वरुण देवताके चिन्हरूप पांच पल्लवसे सुशोभित जलपूर्ण घट रखे हुए थे। वेद, अग्नि और ब्रह्माके नामसे भी तीन कलश रखे हुए थे। विश्वकल्याण और विश्वशान्तिके लिए पवमान, पंचसूक्त और स्वाहाकारका सबेरे यज्ञ होकर दोपहर अरिष्ट निवारणके लिए रुद्रस्वाहाकार हुआ। पंडितजीके ज्येष्ठ सुपुत्र और मण्डलके व्यवस्थापक श्रीवसन्तराव एवं उनकी पत्नी श्रीमती लतिका सातवलेकरने स्वस्त्ययन कराकर आठ वेदपाठियोंको स्वाहाकारकी सुपारी दी। उन वेदपाठियोंमें वेदमूर्ति आठल्ये, पाटणकर, साने, अमृते, तेलंग, शुक्ल और कुरुंदवाडके घनपाठी येवूरकर ऋक् और शुक्ल कृष्ण यजु.शाखीय थे।

विधिपूर्वक होमका आरंभ पुण्याहवाचनसे हुआ। शुद्ध गौ घृत, तिल और समिधाकी आहुतियें ऋचाओंके पाठके साथ साथ दी जाने लगीं। पवमानका स्वाहाकार तीन घंटों तक चला। इस समारंभमें उमरगामसे लेकर हैदराबाद तकके महाराष्ट्रीय, सौराष्ट्रीय, राजस्थानीय और कर्नाटकीय स्त्रीपुरुष उपस्थित थे। गुजरातके सभी स्तरके श्रोतागण उपस्थित थे। दुरध्वनियंत्रके द्वारा वेदपाठका श्रवणसुख दूर दूरके श्रोता भी ले सकते थे। दोपहर तक पवमान पंचसूक्त यज्ञकी समाप्ति हुई।

तीसरे पहर रुद्रस्वाहाकारका प्रारंभ हुआ। प्रथम शुक्ल यजुर्वेदीय पाठके अनुसार एकादशी रुद्रका पाठ हुआ। तदनन्तर कृष्ण यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राध्यायका स्वाहाकार पाठ हुआ। इसके पश्चात् पूर्णाहुति और वसोर्धारा लेकर सदस्योंका अवभृथ स्नान हुआ। इसके बाद वेदमंदिरमें चारों वेदोंकी विधिवत् प्रतिष्ठा की गई। ऋत्विजोंको दक्षिणा और महावस्त्र अर्पित किया गया। यह आनन्दोत्सव जयशब्दके साथ शामको समाप्त हो गया।

इसके बाद स्वाध्यायमण्डल द्वारा संचालित संस्कृत परीक्षाओंके केन्द्र व्यवस्थापकोंका सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलनमें करीब ७५ व्यवस्थापक सम्मिलित हुए थे।

रातको ८॥ बजे पारडीके हाईस्कूलके छात्र-छात्राओं द्वारा मनोरंजनका कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। संस्कृत, हिन्दी, मराठी और गुजराती भाषाओंके माध्यमसे उत्तम उत्तम नाटक खेले गए।

इस रजत महोत्सवका मुख्य कार्यक्रम वेदमन्दिरका उद्घाटन रविवार १० जनवरीको सम्पन्न हुआ। उस दिन ब्राह्ममुहूर्तमें वेदमंदिरमें वेदमंत्रोंका गान शुरू हुआ।

सबेरे ९॥ बजे बम्बई राज्यके शिक्षामंत्री श्री दिनकरराव देसाईके हाथोंसे वेदमंदिरका उद्घाटन हुआ। अतिथियोंके स्वागतके बाद ईशस्तवन, स्वागत गान और वेदप्रार्थना हुई। तदनन्तर पंडित सातवलेकरजीने स्वागत भाषणसे पूर्व डॉ. बेसकर, श्री मोरारजी देसाई, श्री चव्हाण आदि कुछ गणमान्य नेताओंके शुभ सन्देश पढकर इस उत्सवके लिए प्राप्त हुए हुए ६५६ रु. की घोषणा की। उनमें डॉ. बालकृष्ण शर्माने ३०० रु., अहमदाबादके श्री वणीकरने २०० रु. और रामभाऊ मंडलीकने १०० रु. भेजे थे। इसके बाद पारडी हाईस्कूलके प्रधानाचार्य श्री रणछोडभाई देसाईने अभ्यागत अतिथियोंका स्वागत करते हुए कहा कि " विद्या और संस्कृतिके संयोगके इस शुभावसर पर यहां आपका स्वागत करते हुए मुझे बडा आनन्द हो रहा है। दक्षिण गुजरातकी सीमापरके इस भागमें प्राचीनकालसे किसी विद्वान साहित्यकार अथवा सन्तकी परम्परा चली आई हो, ऐसा कुछ ध्यानमें नहीं आता। भारतीय संस्कृति रचनात्मक है और विश्वकल्याण ही उसका हमेशासे ध्येय रहा है। आज संसारमें विघातक संस्कृति मनुष्यको प्रतिदिन स्वार्थांध बनाती जा रही है। ऐसे विकट

समयमें हमारी भारतीय संस्कृति ही हमारा उद्धार कर सकती है। इस भूमिमें हमें पं. सातवलेकरजी जैसे सन्तकी हमें जो प्राप्ति हुई है, यह हमारा सद्भाग्य ही है। एक पाश्चात्य कविने कहा है कि " प्रथम क्षण लोग उसे आते हुए देखते हैं और दूसरे क्षण यह भी देखते हैं कि उसने सब जीत भी लिया है। " यह कथन पंडितजीके विषयमें सर्वांशमें सत्य निकला। पंडितजीने अपने अनोखे व्यक्तित्वसे सब पर प्रभाव डाल दिया है। इस शान्तमूर्तिका जीवन लोगोंके लिए एक आदर्श है। सात्त्विक और आशावादी जीवनके मन, बुद्धि और शरीर पर होनेवाले परिणामके पंडितजी एक जीते जागते उदाहरण हैं। ८० वें बरस यह जवान औंधसे इतनी दूर पारडीमें अपनी संस्था ले आया। सीधी देहयष्टि, देदीप्यमान मुखमण्डल, तेजस्वी बुद्धि, गंभीर और बुलंद आवाज, अगाध कार्यशक्ति, महत्त्वाकांक्षा और अखण्ड आशा आदि सात्त्विक भावोंसे भरी हुई जीवन दृष्टि पंडितजीके अखण्ड यौवनका प्रमाण है। एक समयके भौतिक कलाकारका आध्यात्मिक कलाकारके रूपमें बदला हुआ रूप ही पण्डितजीका रूप है। उनकी चित्रकारीका मूल्य धनसे अंकित हो सकता था, पर उनकी यह वेदसिद्धि किसी भी धनसे अंकित न हो सकनेके कारण अमूल्य है और यह उनकी सिद्धि विशाल मानवसमाजकी सेवाके लिए है। "

" पंडितजी अपने इस आश्रममें अपने धर्मग्रंथके मनन और दोहन करके उन्हें लोकोपयोगी बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। उसका उद्देश्य ऐसे साहित्यकी रचना है कि जिससे आम जनता लाभ उठा सके। संसारकी जिम्मेदारी उठानेसे पूर्व मनुष्यको ब्रह्मज्ञानी होना आवश्यक है। क्योंकि उसीसे आदर्श जीवन व्यतीत करना मनुष्य सीख सकेगा। पंडितजीका कहना है कि यदि मनुष्य चाहे तो यहीं इसी जमीन पर स्वर्गका निर्माण कर सकता है। हमारे ग्रंथोंमें संनिहित अपार ज्ञान-भण्डार और तत्त्वज्ञानके प्रचारसे भारतीय संस्कृतिको नवीन तेजस्वी रूप देनेका भगीरथ प्रयत्न पंडितजी कर रहे हैं। "

" एक समय ऐसा था जब कि संस्कृत बहुजनसमाजकी भाषा थी, पर आगे चलकर यह विद्वानोंकी ही भाषा बनकर रह गई। इसी कारण आमजनता संस्कृतमें निहित विशाल और अमूल्य ज्ञानभण्डारसे वंचित रह गई। पंडितजी संस्कृत भाषाके उद्धारके लिए तत्पर हो गए हैं। इस भाषाको लोगोंको सरलतासे समझाने और सिखानेके लिए पंडितजीने " संस्कृत स्वयं शिक्षक " (२४ भाग) की एक माला निकाली और संस्कृतकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया। आज उन परीक्षाओंके २००० केन्द्र भारतमें हैं और ग्यारह हजार विद्यार्थी इन परीक्षाओंसे लाभ उठाते हैं।

" आदर्श जीवन व्यतीत करनेके लिए मनुष्यको अपना जीवन उच्च संस्कारयुक्त और शुद्ध व्यवहारी बनाना चाहिए। पर उसकी भी अपेक्षा इस देहमन्दिरको कार्यक्षम बनाना अत्यन्त आवश्यक है। संस्कृतिके प्रसर प्रचारक पंडितजीको

आजके लोगोंमें शारीरिक शक्तिका नाश बहुत खटकता था, इसीलिए उन्होंने पिछले कई वर्षोंसे यौगिक व्यायाम और सूर्यनमस्कारोंका प्रचार किया, ताकि राष्ट्र पर आई हुई इस आपत्तिका निवारण हो सके। उनको धर्मवीर कहना असत्य न होगा। सच्चे धर्मको उन्होंने लोगोंको इस प्रकार समझाया है कि लोग उसे आसानीसे समझ गए हैं। पंडितजीको कर्मवीर भी कहा जा सकता है। ऋषियोंका सन्देश है कि " बलवान् भवो "। भविष्यकालकी योजनाओंमें वेद महाविद्यालयके स्थापन करनेकी और अनेक धर्मग्रंथोंको प्रकाशित करनेकी योजना मुख्य है। अपनी आयुके ८६ वें बरसमें संस्कृतके इस उद्धारकको संन्यासी बनकर " भिक्षां देहि " कहते हुए सर्वत्र घूमना पड रहा है, यह एक दुःखकी बात है। एक गुजराती कविने महान् व्यक्तिके विषयमें जो कुछ कहा है, वह पंडितजीके विषयमें भी अक्षरशः सत्य उतरता है। वह कवि कहता है—

पडछन्द छाया मन आरपार
तेजस्वी पौरुष भर्या परात्पर
त्यागी विरागी सनिष्ठ सेवक
ने अन्यना श्रेयमहीं प्रवर्तक
ओ हो ! कशो वदनपे दिसतो दिमाक !
रे फूरतो भ्रमरथी उरनो चिराग
आ होठने अधर बे नभ पृथ्वी जेवां
चूमंत दिव्य मणि-मौक्तिक रम्य केवां
मौक्तिको चूमता तात
प्राणनो पांगरो तमे
आत्माना तेजनी वर्षा
झीलना धन्य सौ अमे '

इसके बाद स्वाध्याय मण्डलका इतिहास और उसके कार्य पर बोलते हुए पंडितजीने कहा—

" अंग्रेज सरकार वेदज्ञानसे भयभीत हो गई। इसीलिए उसने मुझे ३-४ प्रान्तोंसे निकाल दिया। भारतके विभिन्न आठ प्रान्तोंमें घूम घूमकर धार्मिक और सामाजिक दृष्टया लोगोंका निरीक्षण करनेके बाद एकत्रित हुए हुए अनुभवोंका निष्कर्ष ही यह स्वाध्यायमण्डल है। "

" एक भी दोषसे रहित अत्यन्त शुद्ध सामवेदका प्रकाशन जर्मनीमें करीब १२५ वर्ष पूर्व हुआ था। जिस समय आकाशमें गुब्बारे उडाकर 'अर्वाचीन विमानविद्याका प्रारंभिक प्रयोग किया जा रहा था, उन्हीं दिनों जर्मनीमें वेदोंके आधार पर एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें यह बताया गया था कि बिना गैसके भरे ही पक्षियोंके

×

समान उडनेवाले विमान तैय्यार किए जा सकते हैं। वेदोंमें आया हुआ " वि " (पक्षी) अक्षर विमान शब्दमें जुडा हुआ है। इसी आधार पर यह लेख जर्मनीमें प्रकाशित हुआ था। इंग्लैंड और जर्मनीमें आजकी अनुशासित सेना और उसका ७, २१, ६३ इस प्रकारके भिन्न भिन्न विभाग आदियों का वर्णन ऋग्वेदके मरुद्देवताके मंत्रोंमें मिलता है। मरुत्सूक्तमें एक सैन्य रचना दी है जो इस प्रकार है– सात सात सैनिकोंकी सात पंक्तियां और हरएक पंक्तिके दोनों ओर १–१ पार्श्वरक्षक, यह रचना सेनाकी छोटीसे छोटी टुकडी की है। हार्वर्ड विश्वविद्यालयके द्वारा छपी हुई वेदवाङ्मयकी अनुक्रमणिका आज उपलब्ध है। रूसने सेंट पीटर्सबर्गमें वेद और महाभारतके संशोधनके लिए एक अलग संस्था ही स्थापित की है। संसारमें अन्य किसी भी जगह उपलब्ध न होनेवाली अथर्ववेदीय पिप्पलाद संहिताकी प्रति काश्मीरके ग्रंथालयमें है। यह सुनकर जर्मन काश्मीर गए और एक एक पृष्ठकी फोटो लेकर उस पुस्तकको उन्होंने छापा। उनका मुद्रण और प्रकाशन सचमुच प्रशंसनीय है। उस पुस्तकके एक प्रतिकी कीमत ४०० रु है। पर श्रीनगरके ग्रंथपालने यह कहकर कि म्लेच्छोंने इस ग्रंथकी फोटो खींची है, उस मूलग्रंथको अपने ग्रंथालयमें स्थान देनेसे इन्कार कर दिया। यह है मूर्खताकी सीमा। पारेके यंत्रोंकी सहायतासे हमारे पूर्वजोंने यह दिखाया था कि गति अखंड रह सकती है। वैज्ञानिक इसका प्रयोग करके देखें। स्विट्जरलैण्डमें रहकर संशोधन करनेवाले एक जर्मनके पत्र अभी तक मेरे पास आते हैं कि जिनमें वह मुझसे पर्जन्यास्त्र आदिके बारेमें पूछताछ किया करता है। इतने अगाध ज्ञानसे भरे हुए वेदवाङ्मयके संशोधनके सम्बन्धमें भारत-वासियोंकी उदासीनता देखकर मुझे बहुत दुःख होता है। "

" मैं चित्रकलाके कारण धनी हो सकता था, पर मुझे एक आन्तरिक सन्देश मिला कि–' हे ब्राह्मणपुत्र ! तू धर्मकी सेवा कर।" और तदनुसार आज मैं वह सेवा कर रहा हूं। मैंने यह संकल्प कर लिया कि मैं दारिद्र्य स्वीकार करके भी वेदवाङ्मयका प्रचार करूंगा और मैंने स्वाध्याय मण्डलके कार्यकी शुरुआत कर दी। ब्रह्मचर्यसे ही वेदवाङ्मयके पठन और मननसे मनुष्य दीर्घजीवन और उत्तम सन्तानों-वाला तथा निरोगी जीवनसे सम्पन्न हो सकता है। ' अहं इन्द्रो न परा जिग्ये ' (मैं अजेय हूं, मैं जो चाहे कर सकता हूं) इस मंत्रके सतत जपसे मनुष्य १००–१२५ वर्ष तक जीवित रह सकता है। भारतके लोगोंमें आज भावात्मक विचारोंकी आवश्यकता है। "

इसके बाद पंडितजीने अध्यक्षको मानपत्र अर्पित किया। मैक्समूलरके द्वारा सम्पादित वेदवाङ्मयमें एक पाठदोष निकालनेवाले श्री मल्हारराजशास्त्री येडूरकरका वेदमंत्रोंके कण्ठस्थीकरण और उनकी स्मरण शक्तिको देखकर सब विस्मिलित-से रह गए।

अन्तमें अपने अध्यक्षीय भाषणमें दिनकरराव देसाईने कहा कि– " आज वेद–

मन्दिरका उद्घाटन करते हुए मुझे अतिशय आनन्द हो रहा है। यहां पवित्र मानव-धर्मका प्रचार कार्य किया जाएगा। सवेरे यहां आनेवालोंको शारीरिक व्यायाम सिखाया जायेगा। शामको मानसिक विकासके लिए प्रवचन होंगे। जातपात, वर्ण और धर्मके बारेमें भेदभाव न मानकर सभी साधारण जनताके उद्धारके लिए यह सभी कार्य होता रहेगा, यह सब सुनकर मुझे बहुत आनन्द होता है। भारतके दीर्घकालतक दूसरोंके शासनमें रहनेके कारण हमारे समाजमें अनेक विकृतियां पैदा हो गई हैं। बड़ी भारी विकृति तो है अपने ऊपर अविश्वास।"

इसीकारण जब अपनी संस्कृति, अपने धर्म और अपनी प्राचीन विद्याका महत्व जब स्वामी विवेकानन्द जैसे महापुरुषोंने प्रथम अमरीका और योरोपके भागोंमें प्रकट किया, और उसे मॅक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानोंकी मान्यता भी मिल गई, तभी वह हम लोगोंकी दृष्टिमें आया।"

"हमारे देशमें जिसप्रकार विद्वानोंने किसी भी तरहकी लालच न रखते हुए तथा स्वयं भी दरिद्रताका जीवन व्यतीत करते हुए हमारे वेदादि शास्त्रोंको सुरक्षित रखा, वैसा प्रयत्न संभवतः किसी भी अन्य देशमें आजतक नहीं हुआ। बम्बई सरकार ऐसों की सहायता करनेके लिए तैय्यार है। पंडितजीने वेद और उपनिषदोंका सत्य सामान्य जनतातक पहुंचानेका जो कार्य किया, वह स्तुत्य है। कविवर टैगोरने कहा है कि उपनिषदोंमें जितना ज्ञान भरा पड़ा है, उतना संसारके और किसी भी ग्रंथमें नहीं है। वेद और उपनिषदोंका संशोधन होकर उसका प्रचार सर्व-साधारण जनतामें होना ही चाहिए, इससे जनतामें आत्मविश्वास उत्पन्न होगा। इस दृष्टिसे मैं स्वाध्यायमण्डलके कार्यकी प्रशंसा करता हूं। संस्कृत भाषा सीखनेकी जो पद्धति स्वाध्यायमण्डलने चलाई है, वह भी अभिनन्दनीय है। पंडितजीके शुभ प्रयत्नोंका फल आगे आनेवाली पीढीको मिले और पंडितजी अपने सभी प्रयत्नोंमें यशस्वी हों यही मेरी मनिच्छा है।"

उसी दिन शामको चार बजे नागपुर विश्वविद्यालयके प्राध्यापक श्री श्रीधर भास्कर वर्णेकरकी अध्यक्षतामें संस्कृतसम्मेलन हुआ। उसके स्वागताध्यक्ष सेठ श्री विक्रमसिंहजीने कहा कि—

"प्राचीन भारतका गौरवपूर्ण चित्र संस्कृत साहित्यमें ही है। मुझे यह देखकर आनन्द हुआ कि स्वाध्यायमण्डल अखिल भारतमें पवित्र देवनागरीका प्रचार कर रहा है। एक समय वह था कि जब भारतके सम्राटों और आचार्योंके घरमें तोता मैना भी संस्कृत बोलते थे। वह युग हमारे राष्ट्रीय जीवनका सुवर्णयुग था। अब फिर संस्कृत भाषाका पुनरुत्थान होकर घर घरमें इस पवित्र भाषाका प्रचार हो, और वह सुवर्णयुग फिर भारतमें आवे।"

इसके बाद पण्डितजीने अपने भाषणमें कहा कि- "संस्कृतभाषाके प्रचार करनेके लिए सम्मेलन करने पड़ते हैं, यही एक आश्चर्य है। संस्कृतके अभावमें

हिन्दुत्व और हिन्दुधर्मकी स्थिति ही क्या होगी ? स्वयंको अनार्य कहलानेवालोंके द्वारा मद्रासमें चलाये गए आन्दोलनको शान्त करनेके लिए तथा इस आर्य एवं अनार्यके विद्वेषको दूर करनेके लिए संस्कृतका प्रचार ही एकमात्र उपाय है। छै महीनेतक संस्कृतका अध्ययन करनेके बाद दस वरसका लडका भी महाभारत पढकर उसे समझ सकता है। यह मेरा अनुभव है। "

इसके बाद सम्मेलनके अध्यक्ष श्री दर्णकरने संस्कृतमें ही दिए गए अपने भाषणमें कहा कि–' स्वाध्यायमण्डलके रजतजयन्तीमहोत्सवके अवसरपर संस्कृत सम्मेलनका अध्यक्ष बनाकर आपने मेरा जो सम्मान किया है, उसके लिए मैं आपका आजन्म ऋणी रहूंगा। भारतमें सर्वप्रान्तीय और सर्वपक्षीय समाजकी दृष्टिमें जो इनेगिने श्रद्धाके स्थान हैं उनमें संस्कृतभाषा एक बहुत महत्त्वपूर्ण श्रद्धा केन्द्र है। " अर्थार्थी भक्तों " ने जितनी भक्तिसे देवकी स्तुति की, उससे भी अधिक भक्तिभावसे विद्या-देवीके " ज्ञानार्थी भक्तों " ने इस संस्कृतभाषाकी स्तुति की है। संस्कृतभाषा और तदन्तर्गत विद्या हमारी ऊर्जस्वल भारतीयसंस्कृतिकी प्राणशक्ति है। इस प्राणशक्तिको जागृत किए बिना आजके भारतीयसमाजका अधःपतन रुकनेवाला नहीं है। आज ऐसी अनेक बातें हैं, जो यूरोप और अमेरिकासे भारत सीख सकता है, पर सारा संसार यदि भारतसे कुछ सीख सकता है, तो वह है, संस्कृतभाषा, तदन्तर्गत शास्त्र और दर्शन। भारतकीय ह विशेषता परदेशियोंको भी मान्य है। १३ फरवरी १९५३ के दिन काशीके संस्कृतमहाविद्यालयमें संस्कृतभाषण देते हुए फिनलैण्डके राजदूत यूनोवाल्यानने कहा था कि—

" पाश्चात्यदेशैर्विविभिन्नविषयकं विशिष्टज्ञानं भारताय प्रदेयमस्ति। परं स्वतंत्रभारतेनापि पाश्चात्यदेशेभ्यो योगदानं कर्त्तव्यं वर्तते। वैज्ञानिकप्रगति-प्रवाहे पाश्चात्यदेशैः स्वीयमाध्यात्मिकं स्वरूपं विस्मृतम्। सुलभ्यचस्य परम्परागतस्य संस्कृतवाङ्मयस्य मुखेन भारतमाध्यात्मविद्याया एकं बहुमूल्यं कोशं बिभर्ति। यं देशोऽयमेकीभूतस्य विश्वस्य राष्ट्रैरन्यः सहोपभोक्तुमर्हति।

संसारके विद्वानोंके द्वारा मान्यता प्राप्त संस्कृतभाषाका यह अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व यद्यपि दुर्लक्षित हो चुका है, तथापि स्वातंत्र्य प्राप्तिके बाद हिन्दीको जो राष्ट्र-भाषाका पद दिया गया है, उसके द्वारा भारतीयनेताओंने संस्कृताधिष्ठित और संस्कृतानुप्राणित हिन्दीका सम्मान किया है। १९५१ सन्में बम्बईके तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री खेरने बम्बईके राज्यकार्यमें हिन्दीको समाविष्ट करनेके लिए एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, तब अनेक प्रादेशिक पृष्ठभूमियोंपर उस प्रस्तावका तीव्र विरोध हुआ था। भाषा वार प्रान्तोंके गठनके लिए किए जानेवाले प्रचारका यह एक अपरिहार्य परिणाम था। इसके द्वारा जनतामें परायेपनकी भावनाका निर्माण किया जा रहा था। प्रादेशिक भाषापर अभिमान करनेवाले, अप्रगल्भ बुद्धिके तथा

संकुचित मनोवृत्तिके लोग इसीप्रकार अपनी भाषाके विषयमें प्रेम तथा इतर भाषाओंके तथा तद्भाषाभाषियोंके बारेमें द्वेषकी भावना प्रकट करते रहते हैं। उनके इन प्रयत्नोंके फलस्वरूप अहिन्दी भाषाभाषियोंके हृदयोंमें हिन्दीभाषा एवं हिन्दीभाषाभाषियोंके प्रति अनादर एवं विरोधकी भावना जागृत होती है। क्या यह राष्ट्र संघटनाकी दृष्टिसे अवांछनीय नहीं है ? "

" ऐसी परिस्थितिमें विविध भागीय भारतीय समाजको एकताके सूत्रमें बांधनेवाली तथा प्रादेशिक भाषाओंके शब्द दारिद्र्यको नष्ट करनेमें समर्थ महालक्ष्मी संस्कृतभाषा आज भी भारतमें विद्यमान है। यह हमारा बड़ा भारी सौभाग्य है। सभी भारतीय प्रान्तीयभाषायें संस्कृतोद्भव तथा संस्कृत तत्सम होनेके कारण उन भाषाओंमें ६५ से ८५ प्रतिशत शब्द संस्कृतके हैं, इसलिए सभी भारतीय भाषायें एक रूप हैं। भारतमें यदि आज सच्चे अर्थोंमें कोई भाषा जीवित है, तो वह संस्कृत ही है। अखिल भारतका विचार यदि एकभाषी देशके रूपमें करना हो तो संस्कृतको ही सारे भारतकी मातृभाषा माननी होगी। भारतमें यदि संस्कृतके समान ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, नये शब्दोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ भाषा न होती, तो धर्म संस्कृति और परम्परासे भारतको एक देश किस प्रकार कहा जा सकता था ? अतः केन्द्रीयशासन और प्रान्तीयशासनोंके द्वारा संस्कृतभाषाका प्रचार अधिकसे अधिक होना चाहिए। "

"इतर देशीय विद्वान् भारतको संस्कृतभाषाका तथा तदन्तर्गत ज्ञानका मैका (माताका घर) समझते हैं। पर दुर्भाग्यसे आज हमारे शिक्षित समाजकी अवस्था " बगलमें छोरा गांवमें ढिंढोरा " जैसी हो गई है। कतिपय स्वाभिमानहीन जन इस बातका प्रयत्न कर रहे हैं कि संस्कृतके अज्ञानके कारण भारतका सारा राज्य-व्यवहार कुछ और वर्षोंतक अंग्रेजीमें ही चलता रहे। "

" जनताका प्रयत्न और सरकारका समर्थन यदि दोनों मिल जायें, तो किसी भी कार्यके पूर्ण होनेमें विलम्ब नहीं लग सकता। उस सरकारी समर्थनके अभावमें भी जिन्होंने संस्कृत भाषा एवं तद्गत विद्याको सुरक्षित करनेके लिए चरम प्रयत्न किए, उन्होंने इस राष्ट्रके प्राणोंकी ही रक्षा की है। उनकी यह संस्कृतभक्ति वास्तविक देशभक्ति है। "

" महाराष्ट्रमें निबंधमालाके पाच छः वर्ष पूर्व बंगालमें पण्डित हृषिकेश भट्टाचार्यने " विद्योदय " नामक संस्कृत भाषामें मासिक पत्र निकालकर संस्कृतमें नियतकालिक पत्रिकाओंके प्रकाशनके कार्यका श्रीगणेश किया था। पण्डित भट्टाचार्यके इस कार्यसे प्रेरित होकर कांची मठके अधिपति अनन्ताचार्यने " मधुभाषिणी ", मद्रासके कृष्णमाचारीने " सहृदया ", कोल्हापुरके अप्पाशास्त्री राशिवडेकरने " संस्कृत चन्द्रिका ", और शान्तिनिकेतनके पं. विधुशेखर आदियोंने संस्कृतमें पत्रिकायें

निकाली। हानिलाभकी परवाह न करते हुए भारतके सनातन राष्ट्रभाषाकी सेवा करनेवाले तथा संस्कृतवाङ्मयके प्रवाहको अविच्छिन्नरूपसे सुरक्षित रखनेवाले इन पण्डितोंका कार्य अद्वितीय है। इस प्रकारकी गुरुकुलकी परम्पराका आधुनिकीकरण जिन संस्थाओंने किया है, उनमें स्वाध्याय मण्डलका काम स्पृहणीय है।"

"संस्कृतभाषाके राष्ट्रीय और सांस्कृतिक महत्त्वको जानकर उसके सार्वत्रिक प्रचार करनेके लिए अनेक व्यक्तियों और संगठनोंने जो प्रयत्न किए, उसीके फलस्वरूप भारतकी यह ज्ञाननिधि हम तक आकर पहुंच सकी। संस्कृत भाषाकी उपासनाके कार्यको प्रोत्साहन देना एक राष्ट्रीय महत्त्वका कार्य है। इस कामके लिए प्रत्येक गांवमें स्वाध्यायमण्डलकी शाखायें स्थापित की जानी चाहिए और यदि संभव हो तो हरएक गांव संस्कृत प्रचारकी दृष्टिसे "किल्ला-पारडी" बनना चाहिए।"

इस अध्यक्षीय भाषणके बाद सभाकी समाप्ति हुई और इस प्रकार स्वाध्याय मण्डलके रजतजयन्तीका महोत्सव भी समाप्त हुआ।

० ० ०

: १८ :

गायत्री महायज्ञ

इस प्रकार वेदमंदिरका उद्घाटन होनेके बाद २४ जनवरी १९५४ के दिन पुरीमठके शंकराचार्य श्री १००८ योगेश्वरानन्दजीने वेदमन्दिरमें योगासन, प्राणायाम और सूर्यनमस्कार आदि योगसाधनकी शिक्षा देनी शुरु की। करीब १०० विद्यार्थी उस योजनासे लाभ उठाने लगे। ता. २ जुलाई १९५४ के दिन संस्कृत प्रचार कार्यको दृष्टिमें रखकर हैदराबादके मराठी संग्रहालयमें ग्यारह संस्थाओंने मिलकर स्वाध्याय मण्डलका गौरव किया। इस प्रसंग पर पण्डितजी व्यक्तिशः हाजिर हुए। उसी वर्ष बम्बई स्थित विद्याभवनके दीक्षान्त समारोहके अवसर पर दीक्षान्त भाषणके लिए भी पण्डितजी निमंत्रित किए गए। इन दोनों स्थानोंपर पण्डितजीने हिन्दी और संस्कृतमें भाषण दिए। इन दोनों भाषणोंको आगेके पृष्ठोंमें अक्षरशः उद्धृत किया गया है। १९५४ के दिसम्बर मासमें सत्यसनातन मानवधर्मकी जागृतिसे सामर्थ्यवान् बननेवाले भारतके द्वारा विश्वशान्तिकी स्थापना करनेके लिए गायत्रीमंत्रका जप एवं उसका अनुष्ठान करनेका संकल्प पण्डितजीने किया। उसके बारेमें पण्डितजीके द्वारा प्रकाशित किया गया विज्ञापन इस प्रकार था—

" गायत्रीमंत्रके जप करनेकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन कालसे इस भारतमें प्रचलित है। गायत्रीका अर्थ " गानेवालेकी रक्षा करनेवाला " है। इसलिए अपनी अभीष्ट सिद्धिके लिए गायत्रीमंत्रके जपका अनुष्ठान किया जाता था। "

" जिसका उपनयन हो चुका होता है, वह ब्राह्मण रोज सबेरे और शाम दो समय संध्या करता है और हर संध्यामें गायत्री मंत्रका कमसे कम १० बार जप करता है। अपने भारतमें इस प्रकारके उपनयनके अधिकारी दो करोड द्विज हैं। वे यदि दिनमें १२ बार भी गायत्रीका जप करें, तो, उन सबका जप मिलकर २४ करोड होगा। यह जप यदि वे सभी संघटित होकर एक विचारसे और एक उद्देश्यकी सिद्धिके लिए करें तो प्रतिदिन एक महागायत्री पुरश्चरण हो सकता है। पर

प्रतिदिन होनेवाला यह जप एक विचारसे, एक नियमसे और एक उद्देश्यकी सिद्धिके लिए नहीं होता, इसलिए उसका कुछ भी फल दृष्टिगोचर नहीं होता।"

"मानवके मनमें एक बडी भारी शक्ति छिपी हुई है। जो विचार मनमें प्रादुर्भूत होते हैं, ये मनके विश्वव्यापक अन्तःकरणमें फैलते हैं, अतः यदि इन विचारोंके पीछे मनुष्योंकी संघटित प्रबल इच्छाशक्ति हो, तो उससे सिद्धिका लाभ अवश्य होता है। इसी अनुभवके आधार पर कहा है—

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मनुष्योंके बन्धन एवं उनसे मुक्ति पानेका कारण मन ही है।"

"मनुष्यमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण ये चार शरीर हैं। इनमेंसे कारण शरीर ही मन है। इस मनके दो भाग हैं–(१) जाग्रतावस्थामें काम करनेवाला मन, (२) सुषुप्त्यवस्थामें काम करनेवाला मन। योगसाधनाके द्वारा जाग्रतावस्थामें काम करनेवाला मन स्तब्ध किया जा सकता है। इस मनके स्तब्ध होते ही सुषुप्त्यवस्थाका मन स्वयमेव जाग्रत हो जाता है और अपनी अद्भुतशक्ति प्रकट करने लगता है। वेदमंत्रमें इस मनका वर्णन इस प्रकार है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
(वा. यजु. ३४।१)

"यह मन जाग्रतावस्थामें भी दूर दूर भागता है, उसी प्रकार सुषुप्तिमें भी दूर दूर भागता है। यह मन तेजस्वियोंमें भी तेजस्वी है, यह मेरा मन उत्तम संकल्प करनेवाला हो।"

"मन यदि शुभ संकल्प करेगा, तो उसे शुभ फल प्राप्त होंगे, और यदि अशुभ संकल्प करेगा तो वही मन अशुभ संकल्प करनेवालेका नाश कर देगा। इसलिए मनुष्यको चाहिए कि वह सदा मनमें उत्तम संकल्प ही करे। जो विचार मनमें बार बार किये जाते हैं, उन विचारोंकी छाप अन्तर्मन पर पडती जाती है, और उन संस्कारोंके अनुरूप ही उस मनुष्यको फल मिलते हैं"।

"जितने अधिक लोग एक समयमें एक ही विचारको अपने मनोंमें धारण करेंगे, और उस विचारके पीछे उनकी इच्छाशक्ति कार्य करेगी, उतनी ही जल्दी उन विचारोंका परिणाम सामने आ जाएगा। इसी तत्त्व पर जप करनेकी पद्धति आधारित है। यदि अनेक लोग एक विचार, एक नियम और एक ध्येयसे सिद्धिके लिए मंत्रका जप एवं उसके अर्थ पर मनन करेंगे, तो उसकी सिद्धि भी यथाशीघ्र मिल सकेगी।"

"संसारमें सम्प्रति सर्वत्र भयका वातावरण फैला हुआ है। सभी राष्ट्र युद्धके लिए सन्नद्ध हैं। प्रत्येक राष्ट्र इतर राष्ट्रको तरफ सांशक दृष्टिसे देखता है। सभी मनुष्योंके अन्तर्मन इस प्रकार भयकी कल्पनासे व्याप्त है।"

"इस भयको दूर करनेके लिए यदि हम अपनी अध्यात्मशक्ति जागृत करेंगे, तथा लोगोंमें भी निर्भय और शान्तिका पवित्र एवं कल्याणकारी अध्यात्मज्ञान प्रसारित करेंगे, तो हमारे इन प्रयत्नोंसे इस निर्भय एवं शान्तिका वायुमण्डल इतना प्रभावशाली होगा कि उसके आगे नीतिका विचार अदृश्य हो जाएगा। आज युद्ध करनेके लिए सन्नद्ध राष्ट्रोंके मनुष्योंके मन प्रेम और शान्तिसे भर जाएंगे और वे मनुष्य वास्तविक शान्तिका परम आनन्द अनुभव कर सकेंगे। इस प्रकारका निर्भयपूर्ण वातावरण बनानेके लिए ही इस अनुष्ठानकी योजना है।"

"वेदके मंत्रोंमें दैवीशक्ति भरी पड़ी है। वेद स्वयं कहता है—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।

(ऋ. ११।६४।३९)

"वेदके मंत्रोंके अक्षरोंमें दैवीशक्तिका निवास है।" इसलिए योग्य रीतिसे जप किया जाए तो तन्निहित दैवीशक्ति हमारे अनुकूल हो जाएगी और हमें सिद्धि मिल सकेगी। मनुष्यके सर्वशक्ति मंत्रके जपके अनुष्ठानमें यही भाग मुख्य है।"

"हम संघटित प्रयत्न करके इस मानसिक महाशक्तिका उपयोग विश्वशान्तिकी स्थापनाके कार्यमें करना चाहते हैं।"

"विश्वशान्तिकी स्थापना करनेके लिए सर्वप्रथम हमें ऋषिप्रणीत शुद्ध सत्य-सनातन मानवधर्मकी जागृति करके अध्यात्मज्ञानका प्रचार इस भारतदेशमें करना पड़ेगा। अध्यात्मशक्तिके द्वारा भारतको विश्वशान्तिकी स्थापना करनेके कार्यके लिए योग्य बनाना पड़ेगा। अध्यात्मज्ञान शक्तिसे सम्पन्न भारत संसारमें वास्तविक शांति स्थापित कर सकेगा। इस भारतके कर्तव्यका भार जिसप्रकार भारतके सभी सुपुत्रों पर है, उसीप्रकार मुझ पर भी है। अतः अपना कर्तव्य योग्य रीतिसे करनेका सामर्थ्य मुझमें आवे, इसके लिए मैं दीर्घायुवान्, आरोग्यशाली, ऐश्वर्य और बलशाली और ज्ञानविज्ञानसे सम्पन्न होऊं और मेरे द्वारा विश्व-शान्तिका यह कार्य शीघ्रातिशीघ्र हो। मैं इस कार्यके लिए अपना तन मन धन अर्पण कर सकूं। ऐसे अवसरों पर मैं पीछे न रहूं, उत्तम बल मुझमें हो और इस प्रकार विश्वमें शान्ति प्रस्थापित करनेके काममें भारतको सफलता प्राप्त हो।" इसी उद्देश्यसे हम संघटित होकर गायत्रीमंत्र जपका अनुष्ठान करनेकी इच्छा करते हैं।

"गायत्रीमंत्रमें २४ अक्षर हैं, इसलिए गायत्रीमंत्रका जप २४ लाख होना चाहिए।

+

लभतेऽभिमतां सिद्धिं चतुर्विंशतिलक्षतः।
चतुर्विंशतिलक्षं तु यद्यकल्पमतं यथा॥ (याज्ञवल्क्य)
कल्पोक्तेव कृते संख्या त्रेतायां द्विगुणा भवेत्।
द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा॥ (वैशम्पायन संहिता)
षण्णवतिलक्षसंख्याजपं कलौ पुरश्चरणम्। (गायत्री पुरश्चरणपद्धति)

" कलियुगमें चारगुना जप करना चाहिए अर्थात् ९६ लाख जपका एक अनुष्ठान करना चाहिए। इस प्रकार यदि २४ पुरश्चरण हों तो करीब करीब २४ करोड मंत्रोंका जप हो जाता है। इसमें मानवसुलभ स्खलनादि दोषोंके निराकरणार्थ किया हुआ जप भी शामिल है। सौलभ्यके लिए २४ लाख जपोंका एक अनुष्ठान किया जाए और इस प्रकार १०० अनुष्ठानोंके होनेपर २४ करोड मंत्रोंका जप पूर्ण हो जाएगा।"

" ऐसे जप करनेवाले १०० मनुष्य भी यदि मिल जायें, और, उनमेंसे प्रत्येक १००० जप करे तो प्रतिदिन एक लाख जप हो सकता है और २४ दिनमें २४ लाख मंत्रोंका अनुष्ठान हो सकता है। इस प्रकार क्रमशः अनुष्ठान होता रहे तो २४ करोड जपके लिए ७ बरस लगेंगे। यदि जप करनेवाले अधिक होंगे, तो समय थोडा लगेगा। जप करनेके नियम इस प्रकार हैं—

(१) गायत्री मंत्रका जप करनेका उत्तम समय ब्राह्ममुहूर्तसे लेकर ९ बजे तक है। ९ से १२ तकका समय मध्यम है, १२ बजेके बाद साधारण है। गायत्री मंत्रके जपका उद्देश यह है कि मनुष्य सूर्यके तेजमें निहित आध्यात्मिक सत्वको अपनेमें स्थापित करके अपना आध्यात्मिक सामर्थ्य बढावे। १२ बजे तक सूर्यका तेज बढता जाता है, इसलिए इस समयमें करना उत्तम है। दोपहरके बाद सूर्यका तेज कम होने लगता है, इसलिए वह समय साधारण कहा गया है। पर क्रमसे अनुष्ठान करनेवाले अपनी अभीष्ट संख्यापूर्ण करनेके लिए दोपहर तक जप कर सकते हैं।

(२) जप करनेवाले ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातर्विधिको समाप्त कर स्नान संध्यादि दैनिक अनुष्ठान करके फिर अपनी इस नैमित्तिक क्रियामें संलग्न हों। एक हजार जप करनेमें १॥–२ घंटे लगते हैं।

(३) जप करनेवाला प्रतिदिन १०८ बार गायत्रीका जप तो अवश्य करे, यदि ज्यादा भी कर सके तो उत्तम है। २००, ३००, ५००, १००० इस प्रकार जितना अधिक कर सके उतना ही उत्तम है।"

" जपके तीन प्रकार हैं, जो इस प्रकार हैं—

यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः।
मंत्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः॥ ३॥

शनैरुच्चारयेन्मंत्रं मन्दमोष्ठौ प्रचालयेत् ।
अपरैरश्रुतः किंचित् स उपांशुजपः स्मृतः ॥ ४ ॥
विधाय चाक्षरश्रेण्यां वर्णाद्वर्णं परात्परम् ।
शब्दार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मनसो जपः ॥ ५ ॥
वाचिकस्त्वेक एव स्यात् उपांशुः शत उच्यते ।
सहस्रं मानसः प्रोक्तो मन्वत्रिभृगुनारदैः ॥ ६ ॥ (शौनकः)

(१) ऊंचे स्वरमें उच्चारण करते हुए जब जप किया जाता है, तब उसे " वाचिक जप " कहते हैं। (२) मंत्रका जब इतने धीमे स्वरसे किया जाता है कि पासमें बैठा हुआ मनुष्य भी उसे सुन न सके तो उसे " उपांशु जप " कहा जाता है। (३) मंत्रके अर्थका मनन करते हुए मन ही मन जपका जप किया जाता है, उसे " मानस जप " कहते हैं।

(४) " जपस्तदर्थभावनम् " (योगदर्शन) जपका अर्थ है (मौनी मंत्रार्थमनुस्मरन् जपेत्) मौन धारण करके मंत्रके अर्थका मनन करना। वाचिक, उपांशु और मानस इन जपोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है। अर्थात् वाचिकको अपेक्षा उपांशुजप सौ गुना श्रेष्ठ है और उपांशु जपकी अपेक्षा मानस जप सौ गुना श्रेष्ठ है। अर्थके मननके साथ मंत्रका जप करनेमें समय अधिक लगता है, अतः यह जिससे हो सके वही करे।

(५) जप करनेके लिए अपने घरमें जो सर्वश्रेष्ठ, रमणीय और उपद्रवरहित स्थान हो, उसीको पसन्द करें। प्रतिदिन जपके स्थानको न बदलें। जप करनेको जगह और समय नियत हो। इस स्थानको सात्विक भावनाको बढानेवाले मंत्रों एवं चित्रोंसे सजावें। उपासनाके विरोधी भावनाओंको उत्पन्न करनेवाले चित्र यहां न हों।

मनः सन्तोषणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् ।
अकामत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः ।

" मन प्रसन्न रहे, पवित्रता हो, मौन धारण करे, मंत्रोंके अर्थका मनन किया जाए, स्वार्थपरायणता न हो, खिन्नता न हो, इससे जप सिद्ध होता है। " शुद्धता, सफाई जाए, और सात्विकता जितनी अधिक रखी जा सके, उतनी अधिक रखनेका प्रयत्न जप करनेवाला करे। वहां सुगंधित धूप जलाये, चन्दन और सुगंधित पदार्थोंका हवन वहां हो। वहां भी व्यवस्था ऐसी हो कि वहां बैठते ही मन प्रसन्न हो जाए। जप करनेवाला अपनी परिस्थितिके अनुसार अपने पूजास्थानको सजावट करे।

गायत्री मन्त्रके छन्द और ऋषि इस प्रकार हैं—

तत्सवितुरिति मंत्रस्य विश्वामित्र ऋषिः ।
सविता देवता । गायत्री छन्दः ।

गायत्री मंत्रका ऋषि विश्वामित्र है, विश्वामित्रः सर्वमित्रः। विश्वामित्रका अर्थ है सबका मित्र। जप करनेवाला सबका मित्र बननेकी कोशिश करे। अपने मनमें स्थित द्वेषभावको दूर करके सबके साथ मित्रतासे व्यवहार करनेका प्रयत्न करे।

क्रोधं लोभं तथा निद्रा निष्ठीवनविजृंभणे।
दर्शनं च विनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि॥

"जप करते हुए क्रोध, लोभ, निद्रा, थूकना, खखारना और जम्हाई लेना, नीचोंका दर्शन करना आदि क्रियाओंका त्याग कर दे।

गायत्रीमन्त्रका देवता सविता है—

सविता वै देवानां प्रसविता। (शत. ब्रा. १।१।२।१७)

"अपनेमें सब विश्वको प्रसूत करनेवाला सविता है।" परमात्माने संकल्प किया कि—

एकोऽहं बहु स्यां। (छां. उ. ६।२।३; तै. उप. २।६।१)

"मैं एक हूँ अतः अनेक हो जाऊं"। तब उसका प्रकृतिके साथ सम्बन्ध हुआ और उससे सबसे पहला पदार्थ प्रकट हुआ वह था यह सूर्य। उस सूर्यसे यह पृथिवी उत्पन्न हुई और इस पृथ्वीसे वृक्ष, पशु और मनुष्य उत्पन्न हुए। इस प्रकार यह सूर्य सबको उत्पन्न करनेवाला है।

यो असौ आदित्ये पुरुषः सो असौ अहम्। (वा यजु ४०।१७)

"उस सूर्यमण्डलमें जो पुरुष है, वही मैं हूँ।" अतः जप करनेवाला यह समझे कि सूर्य मेरा पिता और मैं सूर्यका पुत्र हूँ। पितासे पुत्रको शक्ति प्राप्त करनी है।

सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषः च। (ऋ १।११५।१)

' सूर्य स्थावर और जंगम जगत्का जीवनदाता है। सूर्यके अन्दर निहित अद्भुत जीवनशक्ति प्राप्त करनी चाहिए। गायत्रीमंत्रके जपके समय जपकर्ता अपने मनमें यह विचार करे कि— "सूर्यके अन्दर निहित शक्तिको प्राप्त करके मैं सामर्थ्यवान् बन रहा हूँ।" इस विचारके फलस्वरूप जपकर्ताके मनका सम्बन्ध और शक्तिसे होता है और वह सौर शक्ति उस जपकर्तामें आने लगती है। तथा

सूर्यः चक्षु भूत्वा अक्षिणी प्र विशत्। (ऐ १।२)

"सूर्य ही चक्षुरिन्द्रिय होकर आखोंमें आकर बैठ गया है।" इस प्रकार सूर्य पिता और जपकर्ताकी चक्षुरिन्द्रिय उस सूर्यका पुत्र है। सूर्योदयके करीब आधे घण्टेके बाद सूर्य पर ८–१० सेकेण्ड मनुष्य यदि अपनी दृष्टि स्थिर करे तो आंखोंका आरोग्य बढता है। इसी प्रकार नाभिके स्थान पर पृष्ठवंशमें सूर्यचक्र है, उसमें सूर्यकी शक्ति रहती है और उसके कारण प्रथम क्रिया उत्तम होती है। सूर्यचक्रका

वेधन करनेके लिए योगसाधनमें प्राणायामका उपाय बतलाया है सूर्यनमस्कारका व्यायाम भी इसके लिए है। जपकर्ता रोज कमसे कम १२ बार प्राणायाम और १२ बार सूर्यनमस्कारका आसन करे। साधारण शक्तिका मनुष्य यदि रोज १०८ बार सूर्यनमस्कारका आसन करे, तो अधिक न होगा।

वस्त्ररहित होकर यदि सूर्यप्रकाशमें बैठा जाए तो इस सूर्यातपस्नानसे भी शरीरमें सौरशक्ति बढती है। इस प्रकार जपकर्ता अपना सम्बन्ध सूर्यसे जोडकर अपनेमें सौरशक्ति बढा सकता है। गायत्रीमन्त्रके देवतासे इस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है।

छन्द— गायत्री मंत्रका छन्द गायत्री है। "गानेवालेकी रक्षा करनेवालीको" गायत्री कहते हैं। जपकर्ता स्वयंमें सूर्यकी शक्ति बढाकर दूसरे निर्बलोंकी रक्षा करनेके लिए सम्रद्ध रहे।

जप करनेवाला जप करते समय इस मंत्रके ऋषि-देवता और छन्दको ध्यानमें रखे

एकतो पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्ततः परम्।
गायत्री प्रणवं चान्ते जप एव उदाहृतः॥ (कौशिक)

इस पद्धतिसे जो जाप्य मंत्र होता है, वह इस प्रकार है—

ॐ भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ ॐ॥

यह जपका मन्त्र है। जपकर्ता अपने मनमें इस मंत्रके अर्थका मनन करे। हम यहां इस मंत्रका बडा ही संक्षिप्त अर्थ देते हैं—

" (ओ३म्– अ+उ+म) १ अ– (आदि भवति ' सबसे उच्च स्थान पर विराजमान होता हूं। २ उ (ज्ञान संतति उत्कर्षति) ज्ञानका उत्कर्ष करता हूं। ३ म (सर्वं मिनोति) सबको नापजोखकर सबका आकलन करता है। प्रथम स्थान प्राप्त करें, फिर अपनी उन्नति करें और अन्तमें अपनी परिस्थितिका निरीक्षण करें। ४– (भू सत्तायां) अपना अस्तित्व अक्षुण्ण बनाये रखे। ५– (भुवः चिन्तने) मनन करे। ६ (स्वः स्वर् स्वर्गः सुवर्गः) उत्तम वर्गोंमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करे। अपना अस्तित्व हो, ज्ञान प्राप्त करके उस पर मनन किया जाए और फिर उच्चवर्गके लोगोंमें उत्तम स्थान प्राप्त किया जाए। ७ (सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गः) सब जगत्को अपने अन्दरसे उत्पन्न करनेवाले देवके उस श्रेष्ठ तेजका हम सब मिलकर (धीमहि) ध्यान और धारण करें। ८ (यः नः धियः प्रचोदयात्) वह तेज हम सबकी बुद्धियोंको श्रेष्ठ कार्य करनेकी तरफ प्रेरित करे।

यो देवः सविताऽस्माकं धियो धर्मादिकर्मणि।
प्रेरयेत्तस्य तद्भर्गस्तद्वरेण्यमुपास्महे ।

सौर तेजको अपने अन्दर धारण करता हूं । इस अनुष्ठानकी पद्धति ऊपर दी हूं ।

जपकर्ता मन्त्रके इस भागको अपने मनमें धारण करे और उसका जप करे। "

जपकर्ता अपने मनमें उपर्युक्त मंत्रका भाव राष्ट्रीय दृष्टिसे विचार करके उसे मनमें धारण करे । वह राष्ट्रीयभाव इस प्रकार है—१. संसारके राष्ट्रोंमें मेरा भारत अग्रस्थानमें रहे, २. उसकी उन्नति हो, ३. हमारे भारतको अन्य राष्ट्रमें उत्तम मान्यता प्राप्त हो। उसको सभी तरहकी परिस्थितिका निरीक्षण किया जाए । ४. मेरे भारतका स्वतंत्र अस्तित्व हो । ५. वह ज्ञानसम्पन्न हो । ६ उसकी श्रेष्ठता सभी राष्ट्रोंमें बढे । ७. सृष्टिको उत्पन्न करनेवाले देव श्रेष्ठ आध्यात्मिक तेजको राष्ट्र धारण करे । ८. इस आध्यात्मिक तेजसे तेजस्वी बना हुआ हमारा राष्ट्र संसारमें शान्ति स्थापित करनेके श्रेष्ठ कार्यमें पूर्णतया सफल हो । "

[६] जप करनेवाला जपके दिनोंमें वेदग्रंथ, उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत आदि धर्मग्रंथोंका कमसे कम आधा घंटा रोज अध्ययन करे । कमसे कम एक मंत्र अथवा एक श्लोकके अर्थ पर तो अवश्य मनन करे।

[७] जप करनेवाला जप करनेके लिए पूर्व दिशाकी तरफ मुंह करके बैठे। जपको शुरु करनेके बाद उस दिनका जप पूरा होने तक आसन छोडकर बीचमें इधर उधर न घूमे। यदि एक आसन पर बैठे बैठे शरीरमें पीडा होने लगे तो थोडासा हिलडुल सकता है। बैठनेके लिए आसन तीन अंगुल मोटा, नरम और ऐसा हो कि उस पर आरामसे देर तक बैठा जा सके ।

[८] जप करनेवाला जप करनेसे पूर्व और जपके बाद प्रतिदिन दोनों समय मनोभावसे परमात्माकी प्रार्थना करे। वह इस भावना और श्रद्धासे प्रार्थना करे कि परमात्मा हमारे सामने बैठकर हमारी प्रार्थना सुन रहा है .

[९] जपके दिनोंमें जपकर्ता जहां तक संभव हो सके, वहां तक प्रयत्न करके बुरे विचार, अभद्र शब्दोच्चार और कुत्सित विचार व्यवहार, तथा वैयक्तिक व सामूहिक दुराचार न करे। यथासंभव वह सदाचारसे ही व्यवहार करनेका प्रयत्न करे ।

गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः ।
अशुचेर्वा विना संख्यां तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

"घूमना, खडे रहना, मनमें जो आये करना, अशुद्ध रहना और न गिनते हुए जप करना आदि क्रियाओंसे जप कर्मनिष्फल ही होता है । इसलिए सावधानीसे जप करें। जप करते हुए पान तम्बाकूका खाना या धूम्रपान करना आदि क्रियायें बिल्कुल न करे ।

[१०] जप करनेवाला जपके दिनोंमें पड़नेवाले स्वप्नों एवं अनुभवोंको लिखकर रखे।

[११] रोग, प्रवासादि अपरिहार्य कारणोंको छोड़कर अन्य किसी कारणसे इस जपकार्यमें विघ्न नहीं पड़ने चाहिए। एकबार शुरु करके जपको समाप्तितक निर्विघ्न-रूपसे लेजानेका प्रयत्न करना चाहिए। आलस्यके कारण उसमें विघ्नोंका आना अभीष्ट नहीं है।

[१२] जपके दौरान जपकर्ता यथाशक्य अपने मन एवं इन्द्रियोंको संयममें रखे।

[१३] जितना जप हो चुका हो, उसके दशांशका हवन करना चाहिए, यदि २४००० जप हो चुका हो, तो २४०० का हवन करना चाहिए। हवन करते हुए मंत्र इसप्रकार बोला जाए—

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा॥

हवनके लिए गायका शुद्ध घी, तिल, चावल, सुगंधित सामग्री, चन्दन, ढाक, गूलर आदि वृक्षोंकी सात समिधायें, इनका उपयोग किया जाए। गायके शुद्ध घी के अलावा और किसी भी दूसरे जानवरके घी का उपयोग न किया जाए। इस-प्रकार यज्ञसे गोरक्षण होता है। जपके बाद जपकर्ता यथाविधि अग्नि प्रदीप्त करके हवन करे।

[१४] होमाशक्तो जपं कुर्यात् होमसंख्याचतुर्गुणम्। जो हवन करनेमें असमर्थ हों, वे हवनाहुतिकी अपेक्षा चौगुना जप अधिक करें। उदाहरणार्थ– १००० जप करनेवालेको दशांश अर्थात् १०० मंत्रोंकी आहुति देनी चाहिए, पर यदि वह हवन करनेमें अशक्त हो तो वह ४०० जप अधिक करे। इसप्रकार चौगुना जप करनेपर उसे हवन करनेकी फिर जरूरत नहीं रहती।

[१५] इस अनुष्ठानमें जपकर्ताके सभी शरीरावयवोंका उपयोग होता है। मुंहसे जप, कानसे मंत्रश्रवण, आंखोंसे सूर्यपर त्राटक, शरीरसे सूर्यनमस्कार, सूर्यात-पस्नानसे सब शरीर, मंत्रार्थके मननसे मन, बुद्धि, चित्त, हवनकी सुगंधिसे नाक, हवन करते समय हाथ, संयमके कारण दूसरी इन्द्रियें, इसप्रकार प्रायः सभी शरीरावयवोंका उपयोग इस अनुष्ठानमें होता है।

[१६] जपकर्ता जप अवश्य करे, बाकीके अनुष्ठानोंका करना या न करना उसकी इच्छापर निर्भर है। पर जो अनुष्ठान न किया जासके, उसे करनेका प्रयत्न न करे।

[१७] कमसे कम तीन जपकर्ता जहां मिल जायें, वहां जपानुष्ठानका एक केन्द्र स्थापित किया जाए। ये जपकर्ता जितने अधिकसंख्यामें मिल सकें, उतना ही अच्छा है।

[१८] जपके सम्बन्धमें यदि किसीको कुछ जानकारीकी आवश्यकता हो, तो वह हमसे पूछे, हम यथासंभव उसके प्रश्नोंका उत्तर देंगे।

[१९] सर्वप्रथम सभी जानकारी हासिल करें, फिर विचारपूर्वक अनुष्ठानका प्रारंभ करें। विकारवश या आवेगमें आकर जपका प्रारंभ न करें और एकवार जप शुरू करके उसे बंद नहीं करना चाहिए।

भारतमें सत्य और सनातन धर्मकी जागृति हो और इस धर्मजागृतिसे भारतका आध्यात्मिक तेज बढे तथा उसके द्वारा विश्वशान्तिकी स्थापना हो।

(व्यक्तिमें) शान्ति, (राष्ट्रमें) शान्ति और (विश्वमें) शान्ति प्रस्थापित हो।

—निवेदक श्री. दा. सातवलेकर

इस विज्ञापनको प्रकाशित होकर दो बरस बीत गए। अन्ततः १९५७ में इस गायत्रीमहायज्ञको शुरु करनेका निश्चय किया गया। इसी वर्ष भारतभरमें " १८५७ के स्वातंत्र्यसंग्राम " की जन्मशताब्दी मनानेकी योजना बनाई जारही थी। इसीके आसपास पण्डितजीने गायत्रीपुरश्चरण करनेकी योजना बनाई।

वैशाख कृष्ण ५।६।७ दिनाङ्क १८, १९, २० मई सन् १९५७के दिन पारडीमें गायत्री–महायज्ञ–समारंभ शुरु हुआ। यह गायत्री यज्ञानुष्ठान पंडितजीके द्वारा किए गए गायत्रीपुरश्चरणका एक अंग था। तीन दिनोंमें एक लाख गायत्री मंत्रोंकी आहुतियां डाली गई। सुबहसे लेकर शामतक ६ घंटे यह कार्यक्रम चलता था। इसी महायज्ञमें पुरीके शंकराचार्य श्री योगेश्वरानन्दतीर्थ उपस्थित थे।

इसी अवसरपर संस्कृतके विद्वान डॉ श्री. भा. वर्णेकरकी अध्यक्षतामें संस्कृत सम्मेलन हुआ। पंडितजीने स्वागताध्यक्षके रूपमें संस्कृतमें ही भाषण दिया। अन्तमें अध्यक्षने अपने भाषणमें संस्कृतकी महत्ता बतलाते हुए कहा कि—

लभतेऽभिमतां सिद्धिं चतुर्विंशतिलक्षतः।
चतुर्विंशतिलक्षं तु यज्ञकल्पमतं यथा।

तथा

यो यमर्थं प्रार्थयते तदर्थं घटतेऽपि च।
अवश्यं तमवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते॥

आदि याज्ञवल्क्य, वैशम्पायन आदि स्मृतिकारोंने अनुष्ठान की प्रशंसामें बहुत कुछ कहा है और वेदपाठियोंने भी अक्षरशः वेदोंको कण्ठस्थ करके उनकी रक्षा की, तदर्थ वे अभिनन्दनीय हैं।

संस्कृतभाषा एव राष्ट्रभाषा।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्॥
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

जीवभूता नाम चैतन्यमयी तया च जगद्धारणकर्मणि यथा पराप्रकृतिः समर्था, तथैव इयं संस्कृतभाषा भाति। अन्याश्च प्रादेशिन्यः भाषाः अपराप्रकृतिसदृशाः असमर्थाः सन्ति राष्ट्रभाषा पदवीं गन्तुम्।

संस्कृतभाषाको राष्ट्रभाषा बनानेके लिए प्रत्येक राज्यसरकारको चाहिए कि यह संस्कृतके महाविद्यालय स्थापित करे।

दिनांक १९ और २० को वैदिकपरिषद्का अधिवेशन साहित्याचार्य बालशास्त्री हरदासकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। स्वागताध्यक्ष पं. सातवलेकरजीने हिन्दीमें भाषण देते हुए वैदिकधर्मका स्वरूप, वैदिकधर्मका राज्यशासन, पुरोहितका महत्व और उसका कर्तव्य, मनुष्यशरीरका महत्व, यज्ञ, रक्षक, यक्ष, देव और उनका विश्वव्यापी यज्ञ, व्यक्ति और समाजवाद और उनका समन्वय आदि विषयोंपर विवेचना करते हुए वैदिकधर्मके आचरणकी उपयोगिता बताई।

अध्यक्ष श्री बालशास्त्री हरिदासने कहा कि– "हमारे राष्ट्रका ध्येय यह है कि यह अपने प्राचीन वैभवको ध्यानमें रखते हुए तथा अपनी राष्ट्रीय अस्मिताका स्वरूप पहचान कर अपने जीवनमन्दिरकी भूमिका स्थिर करे। हमारा राष्ट्र वैदिक-राष्ट्र है। इतिहासकालमें यद्यपि इस राष्ट्रको भारतीय राष्ट्र, हिन्दुराष्ट्र या आर्य राष्ट्र आदि विभिन्न नामोंसे सम्बोधित किया गया है, पर है वास्तवमें यह वैदिक राष्ट्र ही। इसलिए वेदोंको जाने बिना इस राष्ट्रके सत्य स्वरूपको जानना असंभव है। भारतीयोंका धर्म, नीति और भारतीय जीवनका यथार्थ स्वरूप वेदाध्ययनसे ही जाना जा सकता है। सभी विद्याओंका उद्गमस्थान वेद है। अधिक क्या ? वेद-विरोधी बुद्धधर्मके पंडित भी वेदाध्ययन आवश्यक मानते हैं। तात्पर्य यह कि भारतका सच्चा स्वरूप वेदोंमें ही निहित है। वैदिक संस्कृति इतनी उत्कृष्ट होनेपर भी इस राष्ट्रका यह दुर्भाग्य है कि हम स्वतंत्र होनेपर भी मानसिक गुलाम ही हैं। यह गुलामी सन्तापजनक है। यह देखकर जस्टिस वुडरॉफ जैसे पश्चिमी विद्वान्ने भी हमारी निर्भर्त्सना की। भारतीयोंको बाहरसे आया हुआ मानना एक भ्रम है। आदर्श-गार्हस्थ्य जीवन और चातुर्वर्ण्य द्वारा आदर्शसमाज रचना भी वैदिक धर्मके कारण साध्य हो सकी।

(१) सर्वत्र एकमात्र चैतन्य ही व्याप्त है— 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'। (२) सबकुछ परब्रह्म ही है। (३) सब कुछ गतिमान् है। (४) सब कुछ ज्ञानमय है। (५) गति नियमबद्ध है। (६) विश्वके घटक परस्पराश्रित हैं। (७) योग और यज्ञ। (८) अनुभूतिवाद। (९) साधनोंकी बहुविधता। (१०) कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। (११) ईशस्वत्ववाद। (१२) चातुर्वर्ण्यात्मक समाज रचना। (१३) भौतिक और आधिदैविक सामर्थ्य आदि मूलतत्त्वोंका ऊहापोह अध्यक्षने अपने भाषणमें किया।

पण्डितजीका उत्साह प्रेक्षणीय था। वे वृद्धयुवा होकर अपना कार्य बड़े उत्साहसे

+

कर रहे थे। संस्कृत सम्मेलनके स्वागताध्यक्षके रूपमें उनका संस्कृतभाषामें व्याख्यान इस प्रकार था—

'अयि भो महाभागाः,

अद्य अत्र अस्य द्वितीयस्य संस्कृतभाषासम्मेलनस्य कार्यं शीघ्रं संपादयितुं समुत्सुकाः, नानास्थानेभ्य आगताः सर्वे प्रतिनिधय. प्रेक्षकाः, अन्ये च सर्वे सज्जनाः। अहं भवतां सर्वेषां स्वागतं करोमि। तदेतत् सत्यं, यद् भवद्भिः सर्वैः आगमनसमये मार्गे महान् कष्टोऽनुभूतो भवेत्। अत्रापि च ग्रीष्मकालस्य प्रारंभिको नवतरः चंडः प्रतापो वर्तते। तस्य सहस्ररश्मेः प्रखरतरप्रचंडकिरणानां असह्य एव तापो भवति एषु दिनेषु अत्र।

सर्वमेतदसह्यमपि सुसह्यमिति मन्वानाः सर्वे भवन्तः संस्कृतभाषायाः समुन्नत्यर्थं अहर्निशं निरलसं यावत् शक्यं यतमाना, अस्मिन् प्रियतमे भारते वर्षे संस्कृतभाषायाः प्रसारः नगरे नगरे, ग्रामे ग्रामे, गृहे गृहे च कथं शीघ्रातिशीघ्रं स्यात् इत्येतदर्थं प्रयतमानाः स्वकीये स्थाने एतदर्थं अहर्निशं नानाप्रयत्नान् कुर्वन्तः, सर्वे भवन्तः संस्कृतभाषैव भारतराष्ट्रस्य सुरभारती राष्ट्रभाषा, राष्ट्रशासनभाषा च भवेदिति उद्देश्यं मनसि धारयन्त, अत्र समुपाविष्टाः सर्वे, अस्माकं आदरस्थानीया एव, इत्यत्र न विद्यते कश्चन सदेहः।

शोभनमेवैतत्, यत् संस्कृतभाषा इदानीं सर्वेषां विदुषां समादरणीया संजाता, अतः सा संस्तूयते सर्वविद्वज्जनै.। भारतराष्ट्रस्य राजपुरुषा अपि, ये शासनकर्मणि नियुक्ताः, ते तामेव सुरभारतीं श्रद्धापूर्वेण मनसा प्रशंसन्ति। तेषां तानि कानिचित् प्रशंसावचनानि इदानीमत्र शृणुत।

श्रीमन्तो भारतराष्ट्रस्य राष्ट्रपतयः राजेन्द्रप्रसादमहाभागाः संस्कृतभाषाया एवं प्रशंसा कुर्वन्ति—' संस्कृतभाषाया अध्ययनं सर्वैः किमर्थं कर्तव्यं इति प्रश्ने कृते सति, तस्य उत्तरं अहं एवं ददामि। संस्कृतभाण्डागारे बहुमूल्यानि महान्ति रत्नानि सन्ति। अस्माकं भारतीयसंस्कृतेः आदिस्रोत. अस्या एव भाषातो नि.सृतं संतोषयति सर्वेषां जनानां ज्ञानपिपासाम्। तत् ज्ञानस्रोत यथापूर्वं तथैवाद्यापि सम्यक्तया संचलति, तर्पयति च सर्वेषां जिज्ञासाम्। अस्माकं मनसि निश्चितरीत्या एतत् वर्तते, यदस्मिन् घोरतरे करालकाले शान्तिस्थापनार्थं यदि किंचिन्महत्त्वपूर्णं साधनं प्राप्तुं शक्यते, तर्हि तत् संस्कृतग्रंथभाण्डारे एव प्राप्तुं शक्यते। सर्वस्य दुःखस्य निवारकं महौषधं संस्कृतभाषायामेव संभाव्यते। तस्य प्रयोगेण त्रस्तानां संत्रस्तानां दुःखं दूरीभविष्यति, इत्यत्र न कोऽपि सन्देहः। एतद् दुःखदूरीकरणरूपं सर्वौषधं भारतीये ग्रंथभांडारे यथापूर्वं तथा इदानीमपि प्राप्यते तथैव तदागामिनि भविष्यकालेऽपि प्राप्तुं शक्यते। एष गरिमा संस्कृतभाषाया एव वर्तते। अत एव एषा संस्कृतभाषा सर्वैरध्येतव्या' इति।

पं. जवाहरलालनेहरूमहोदया भारतराष्ट्रस्य महामंत्रिणः संस्कृतविषये एवं कथयन्ति 'यदि कश्चन पुरुषो मां पृच्छेत् भारतस्य का विशाला संपदिति, तथा च भारते श्रेष्ठतमं धनं किमस्तीति अस्य प्रश्नस्य उत्तरं अहं एवं ददामि। भारतस्य अद्वितीया संपत् संस्कृतभाषा एव अस्ति। तथा संस्कृत-भाषायां यदपूर्वं साहित्यं वर्तते, तत्सर्वं भारतस्य अतुलनीया महामूल्या संपदस्ति। अत्र य आध्यात्मिकः प्रवाहो वर्तते, स एव भारतस्य उत्तराधिकारो वर्तते। एष यावत्कालपर्यंतं भारते प्रवहिष्यति, तावत्कालपर्यन्तमेव भारतस्य प्रतिष्ठा सर्वेषु लोकेषु सुप्रतिष्ठिता भविष्यति इति ज्ञातव्यम्। यथैषा संस्कृतभाषा भूतकाले अभ्युदय-निःश्रेयस-साधिका आसीत्, तथैव सा इदानीमस्ति, भविष्यकालेऽपि च सा तथैव स्फूर्तिदायिनी स्यास्यति। अतोऽहमिच्छामि संस्कृत-भाषाया अध्ययनाय अस्माकं भारते यथा उत्तमं प्रोत्साहनं मिलिष्यति तथा सर्वैः करणीयम्। तथा च तत्रस्थसाहित्यग्रंथानां संशोधनार्थमपि सदा विद्वद्भिः महान् प्रयत्नो विधेयः' इति।

श्रीमन्तः चक्रवर्तिनो राजगोपालाचार्या भूतपूर्वा भारतस्य राष्ट्रपतयः एवं संस्कृत-भाषां प्रशंसन्ति- 'एषा सुवर्णस्य उपरि पुनः सुवर्णस्यैव उपलेपकरणं, यथा सुपुष्पस्य उपरि सौंदर्यसंवर्धनार्थं केनचित् चित्रकारेण किंचिच्चित्रीकरणं, यथा सुगंधितस्य पुष्पस्य उपरि पुनः सुगंधितस्य तैलस्य प्रोक्षणं, यथा इंद्रधनुषो मध्ये कस्यचिदन्यस्य वर्णस्य लेपनं यथा एतत् सर्वं व्यर्थं, तथा हास्यास्पदं च वर्तते, तथैव अस्माभिः कृता संस्कृतभाषाया प्रशस्तिरपि व्यर्था एव भाति। अतः तस्या श्रेष्ठत्वं स्वतःसिद्धं, नैसर्गिकं, दिव्यं च वर्तते।' इति।

स्वर्गीया महात्मनो गांधिमहाभागाः संस्कृतभाषाया एवं प्रशंसि अकुर्वन्- 'अहं तु पूर्वकालिनोऽस्मि, यस्मिन्काले जनाः संस्कृतभाषाध्ययने श्रद्धां धारयन्ति स्म। संस्कृतस्य अध्ययने यावान् समयो गच्छति, स कालापव्ययो जातः इति नाहं मन्ये। ममैतन्मतम् यथैषा संस्कृतभाषा सर्वासां भारतप्रांतीयभाषाणां जननी, तथा च एषा प्रांतीयभाषाणामध्ययनाय असंशय सहाय्यकारिणी वर्तते। अतोऽवश्यं अध्येया एषा भाषा सर्वैर्भारतीयैः। एषा संस्कृतभाषा सा भाषा वर्तते, यस्यां अस्माकं पूर्वजाः पुरुषा मानवधर्मस्य मननमकुर्वन्, तथा च मानवधर्मसिद्धान्तानां सम्यक् लेखनपि अस्यां भाषायामेव तैः कृतम्। अतो मन्मते कोऽपि भारतीयो बालकः, संस्कृतभाषायाः सामान्यज्ञानेन हीनो मा भवतु।' इति।

श्रीमन्तो मौलाना आजादमहोदया एवं संस्कृतस्य प्रशंस्ति कुर्वन्ति- 'एषा संस्कृता भाषा भारतस्य प्राचीनैर्दर्शनादिशास्त्रैः साहित्यग्रन्थैश्च परिपूर्णा वर्तते। अतोऽस्माभिः सर्वैः अस्या पठने पाठने च विशेषेण प्रभावो विधेयः, येन संस्कृत-भाषाभिज्ञा मनुष्या अस्मिन् भारते विशेषेण प्राप्नुयुः।' इति॥

एवं भारते वर्तमाना सर्वे महान्तो विद्वांसो राष्ट्रशासनाधिकारिणश्च भारतस्य सुरभारती मुक्तकंठेन प्रशंसन्ति, येन अस्याः सुरभारत्याः दिव्यं सौंदर्यं प्रकटीभवति।

असंशयं अस्यां संस्कृतभाषायां अमितया: अध्यात्मशास्त्रग्रंथाः अधिभूत: विद्याग्रंथाः अधिदैवतविद्याग्रंथाश्चानेके सन्ति, ये ग्रंथाः प्राचीनानां मनोविज्ञानेन सह अस्माकं मनांसि संयोधयन्ति । योगशास्त्रग्रंथा आसनप्राणायामाभ्यां मानवानां आरोग्यं संवर्धयन्ति । प्रत्याहारध्यानधारणासमाधिभिः परमात्मना सार्कं अनुष्ठातुः आत्मानं संयोजयन्ति, अनुष्ठाता च तेन परमं आनन्दं आत्मनि अनुभवति कृतकृत्यतां च भजते । अत्र प्रत्यक्षानुभूतिसर्वस्वं वर्तते ।

एवं नानाशास्त्राणि अस्यां भाषायां वर्तन्ते, येषां ज्ञानेन मनुष्याः कृतकृत्या भवन्ति । अत एव सर्वे महान्तः पुरुषा एतां भाषां प्रशंसन्ति ।

न केवलं भारतीयाः, परं विदेशीया अपि संस्कृतां भाषां प्रशंसन्ति । संस्कृतभाषाज्ञानेनैव युरोपीयभाषाणां निरुक्तिः सम्यक्तया निर्मिता, या इदानींतनेषु कोशेषु सर्वैर्ध्याहृतास्ति । एवं संस्कृता भाषा सर्वैः प्रशंसयितुं योग्या उपयोगिनी च भाषा वर्तते । भारतस्य प्राचीनतम इतिहासो यदि ज्ञातुं कैश्चिदपि इष्यते, तर्हि तेन संस्कृता भाषा अवश्यं अध्येया।

वेदानां उदात्तानुदात्तस्वरितादीनां उच्चारणं वर्णानां च यथास्थानत उच्चारणं यथा प्रविकालीनैः विद्वद्भिः कृतं, तथैवास्मिन् कालेऽपि क्रियते। महति काले व्यतीतेऽपि उच्चारणपरिवर्तनं न जातं, एतदस्या भाषायाः सनातनतां दिव्यत्वं च प्रकटीकरोति, न कुत्रापि अन्यत्र एतद् द्रष्टुं शक्यम् ।

भारतीयैः वैदिकैः वेदान् कंठस्थीकृत्य तेषां संरक्षणं कृतम् । शत्रूणां आक्रमणे जातेऽपि, शत्रुभिः प्रज्वालितेऽपि ग्रंथसंग्रहे अनेकानां ग्रंथानां रक्षणं यैः कृतं ते धन्याः । स्वकीयं संपूर्ण- जीवनं संप्रदाय राष्ट्रीयग्रंथानां संरक्षणं एभिः कृतं इत्यस्य सदृशं उदाहरणं अन्यस्मिन् देशे नैव प्राप्तुं शक्यम् ।

युरोपीयैः सहस्रशो ग्रन्था तत्रत्येषु ग्रंथालयेषु सुरक्षिताः कृत्वा संरक्षिताः । एते ग्रंथा अस्मादेव भारतात् तैः नीताः, तैस्ते तत्र सुरक्षिता इति तेषां महान्तः उपकाराः सन्ति । जर्मनदेशे, अमेरिकादेशे, आंग्लदेशेऽपि शतशः पुरुषाः संस्कृतभाषामधीत्य वेदादिग्रंथानां संशोधनं कुर्वन्ति, ते नानाग्रंथानां प्रकाशनमपि कुर्वन्ति, तेषामेतत्कार्यं प्रशंसनीयमेव वर्तते ।

भारतीयानां आर्याणां गृहे धार्मिका संस्कारा भवन्ति । तेषु संस्कृतैव भाषा प्रयुज्यते । प्रत्येकस्य हिंदुजातीयस्य अन्ये सर्वे संस्कारा भवन्तु वा न भवन्तु, परन्तु प्रायशः सर्वेषां विवाहसंस्कारस्तु भवत्येव । तस्मिन् संस्कारे संस्कृतभाषयैव सर्वं संस्कारकर्म भवति । अत. प्रत्येकस्य हिंदुजातीयस्य, संबन्धः संस्कृतभाषया सह अवश्यमेव भवति ।एतेन सिद्धचति यत् हिंदुगृहे यया कयाचन रीत्या संस्कृतभाषा संप्रयुक्ता भवति ।

पूर्वं कैश्चिदुच्यते स्म यत् संस्कृतभाषा मृतेति । परं तत् तथा इदानीं वक्तुं कैरपि

न शक्यते । यतोऽस्मिन् भारते वर्षे संस्कृतभाषायाः महान् प्रचारो जात इदानीम् । अतः संस्कृतभाषा मृतेति प्रवादः स्वयमेव मृत इति ज्ञातव्यम् ।

इदानीं अस्यां संस्कृतभाषायां बहूनि मासिकरत्नानि, पाक्षिकाणि, साप्ताहिकानि च नियतकालिकानि प्रकाश्यन्ते । मृतायां भाषायां के एवं पत्राणि प्रकाशयितुमिच्छन्ति, के च पठिष्यन्ति, के च तेभ्यो बोधं प्राप्स्यन्ति । एवं स्पष्टं भवति यत् न एषा संस्कृता भाषा मृता, नापि भविष्यति, एषा अजरा, अमृता सुरभारती अनेकानां भाषाणां दिव्या जननी, अनेकानां पोषयित्री, न केवलं भारतस्यैवैषा भाषा, प्रत्युत विश्वभाषात्वेन एषा इदानीं सुप्रतिष्ठा वर्तते । विश्वेऽस्मिन् या अनेका भाषाः सन्ति, तासु प्रतिशतकं बहूनि वदन्ति संस्कृतपदानि, संस्कृतोद्भवानि वा पदानि प्रयुज्यमानानि दृश्यन्ते । यथा–'बेंगन–वाहनं, डोर–द्वारं, गॉड–गोदः' इति आदीनि पदानि उदाहरणरूपेण द्रष्टव्यानि । आंग्ल– भाषाकोशे तानि सर्वाणि यथास्थाने प्रदर्शितानि । एतेन सिद्ध्यति यदेषा संस्कृतभाषा सर्वासां विश्वभाषाणां जननी वर्तते । भारतीयभाषाणां तु एषा संस्कृतभाषा जननी अस्ति इति विषये प्रमाणान्तरदानस्य किमपि प्रयोजनं नास्ति ।

अनेकेषु देशेषु अनेका भाषा प्रचलिताः सन्ति । यथा भारते षोडशभाषाः सन्ति । रशियादेशेऽपि, दश भाषाः सन्ति, चीनदेशे भाषाद्वयं वर्तते । स्विट्जर्लेण्डदेशे अपि तिस्रः भाषाः सन्ति । एतेषां बहुभाषिकाणां राष्ट्राणां राष्ट्रहितेच्छुभिः पुरुषैः राष्ट्रैकत्वसाधनार्थं किं किं कृतं, तदिदानीं अत्र द्रष्टव्यम् ।

चीनदेशे एकलिपि प्रसारेण राष्ट्रस्य ऐक्यं तत्रस्थैः राष्ट्रभक्तैः साधितम् । उत्तरचीनस्य भिन्ना भाषा दक्षिणचीने विभिन्ना एव अस्ति । एवं सर्वस्य अखण्डस्य चीनस्य एका एव लिपिः वर्तते । अतः पत्रे लिखिते, वृत्तपत्रे वा प्रकाशिते, सर्वे चीन देशीया जना तत्सर्वं पठितुं समर्था भवन्ति । उत्तरीयदक्षिणात्यचीनविभागयो मनुष्या यदा एकत्र समायान्ति, तदा एकस्य भाषणं द्वितीयः ज्ञातुं न शक्नोति । परं एकेन लिखितं पत्रं अन्य. सुखेन पठितुं, तस्य अर्थं च ज्ञातुं समर्थो भवति । एवं एकलिपिप्रसारेण चीनदेशस्य राष्ट्रैक्यं साधितम् । एकलिपिप्रसारस्य एतत् महात्म्यं राष्ट्रहितसंवर्धने वर्तते ।

भारतेऽपि एकलिपिप्रसारेण अनेकासु भाषासु विद्यमानास्वपि राष्ट्रीयं ऐक्यं साधयितुं शक्यमस्ति । एका लिपिस्तु देवनागरीति प्रसिद्धा लिपिः सुन्दरा वर्तते । देवनागरीलिपिप्रसारेण साकं संस्कृतभाषाप्रसारस्तु भारतीयराष्ट्रस्य ऐक्य–संवर्धनाय अत्यन्तं उपयुक्तः इति सर्वैः ज्ञातव्यम् ।

देवनागरीलिपिस्तु सर्वेषु प्रान्तेषु प्रचलितास्ति । सर्वासु भारतीयभाषासु प्रतिशतकं षष्टि वा सप्तति शब्दाः संस्कृतस्य प्रयुज्यमाना दृश्यन्ते । अतः सर्वैः प्रान्तीयैः संस्कृत भाषा सुगमतया ज्ञातुं शक्या । अतः भारतस्यैक्यसाधनार्थं संस्कृतभाषायाः तथा देवनागरीलिप्याः प्रसारः अवश्यं कर्तव्यः ।

स्विटसर्लन्ड-देशे तिस्रः भाषाः सन्ति । ताः सर्वा राज्यव्यवहारभाषात्वेन तत्रस्येन राज्यशासनेन स्वीकृताः । एतेन तस्य देशस्य ऐक्यं साधितम् । स्विटसर्लन्डदेशः अल्पः । भाषाश्च तिस्रः एव । अतः तत्र सुगमतया राष्ट्रैक्यस्य साधनं शक्यं अभवत् । भारतस्य तु महान् विस्तारः, भाषा अपि षोडश, लिप्यस्तु तथैव विभिन्नाः । एताः सर्वा भाषा न केनापि अध्येतुं शक्याः । अतः अत्र सर्वासां भाषाणां या जननी, सर्वाभि. भाषाभिर्या नूतनसंज्ञानिर्माण आश्रणीया, सर्वैः या संस्तूयते, सा संस्कृता भाषा भारतस्य ऐक्यसंवर्धनार्थं सर्वैः अस्य अस्माकं राष्ट्रस्य राष्ट्रभाषा, राज्यव्यवहारस्य च भाषा स्वीकर्तव्या ' अत्र संमतिवैचित्र्यं भवितुं न शक्यम् ।

सर्वा. भारतीयाः भाषाः संस्कृताश्रयेणैव परिपुष्टा भवन्ति । सर्वासु भारतीयभाषासु नूतना. संज्ञाः संस्कृतभाषातः एव निर्मीय संगृह्यन्ते । अतः सर्वैरादरणीया एषा संस्कृत-भाषा सर्वासां भाषाणां जननी, मातृवत्पूजनीया आदरणीया सर्वैः । मातृभाषाश्रयो न कथमपि केनापि तिरस्करणीयो भवितुं शक्यः । अतः सर्वेषु भारतीयप्रान्तेषु संस्कृत-भाषा मातृभाषया साकं पठनीया, राष्ट्रभाषा वा राज्यशासनभाषा वा संस्कृतभाषैव सर्वैः स्वीकर्तव्या । एतेन सर्वेषां प्रान्तानां एकत्वं सम्यक्तया सेत्स्यति । देवनागरी लिपिरपि सर्वत्र आवश्यकीया कर्तव्या ।

वैदिके समये वा भगवतः व्याकरणकर्तुः पाणिनेः समयेऽपि काऽपि लिपिर्नासीत् इति प्रवादः कैश्चित् उद्घुष्यते वारंवारम् । परं अमूल एव प्रवाद इति प्रतीयते । यतः भगवान् पाणिनिः लोपस्य लक्षणं 'अदर्शनं लोपः ।' (अष्टाध्यायी १-१-६०) इति कृतवान् । प्रसक्तस्य अक्षरस्य अदर्शनं लोपसंज्ञकं भवति । प्रसक्तस्य अक्षरस्य यदा दर्शनं भवति तदा तदक्षरं लेखरूपेण तत्र विद्यते, तदा तद्द्रष्टुः दृष्टिपथमागच्छति । यदा तदक्षरं तत्र न दृश्यते तदा तस्य लोपः जातः इति कथ्यते वैय्याकरणैः । अतः अनेनैव सूत्रेण सिद्ध्यते यत् पाणिनीये काले अक्षराणां लेखनं आसीत् तेन अक्षराणां दर्शनं अदर्शनं च भवितुं शक्यम् आसीत् । अतः तदा लेखनकला आसीत्, ऋग्वेदेऽपि तथैव दृश्यते—

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम् । (ऋ. १०।७१।४)

' कश्चन निरक्षरोऽज्ञानी पुरुषः लिखितां वाणीं पश्यन्नपि अपश्यन्निव तत्रस्थं भावं ज्ञातुं असमर्थः । अत. उच्यते स वाचं पश्यन्नपि न ददर्श । वाचः नेत्राभ्यां दर्शनं तु लिखितेषु अक्षरेषु एव भवितुं शक्यम् । नान्यथा । एतेन ऋग्वेदकाले लिपिरासीदिति स्पष्टं भवति । अथर्ववेदेऽपि लिखितस्य वेदग्रंथस्य उल्लेखो वर्तते । यथा—

यस्मात् कोशाद् उदभराम वेदं तस्मिन् अन्तरवदध्म एनम् ।
(अथर्व. १९।७२।१)

' यस्मात् कोशात् स्थानात् वेदं उदभराम, तस्मिन् अन्तः एनं वेदं अवदध्म । ' अत्र वेदस्य लिखितग्रंथरूपत्वं स्पष्टमेव उल्लिखितं दृश्यते । यस्माः मंजूषायाः मध्यत. वेदग्रंथं उदभराम, ऊर्ध्वं निष्कासयामः, कर्मसमाप्त्यनंतरं तस्यामेव मंजूषायां तं वेदं

पुनः वयं अवदध्मः, स्थापयामः । एतेन वेदग्रन्थो लिखित आसीदिति कः प्रतिषेद्धुं समर्थः । सुरभारत्याः सुरलिपिरेव देवनागरीति नाम्ना इदानीं प्रसिद्धा अस्ति ।

एषा देवनागरीलिपिः भारतस्य लिपिः कर्तव्या, संस्कृतभाषा च भारतस्य राष्ट्र-भाषा राज्यव्यवहारभाषा च कर्तव्या । एनं विषयं अधिकृत्यैव सर्वैः भवद्भिः अत्र समीक्ष्य विचारः कर्तव्यः । निर्बन्धश्च प्रदातव्यः ।

कैश्चिन्महाभागैरुच्यते । यदिदानीं संस्कृता भाषा बहुभिर्ज्ञातुं न शक्यते, अतः सा इदानीमेव राष्ट्रभाषापदवीं आरोढुं न समर्थेति, परं द्रष्टव्यम्, आंग्लराज्ये आंग्लभाषा, राज्यशासनव्यवहारस्य भाषा राज्यशासकैः बलात् कृतासीत् । सा प्रतिशतकं पंच-कैरपि नैव ज्ञायते च ।

इदानीं स्वराज्यप्राप्त्यनंतरमपि भारते राज्यव्यवहारस्य भाषा आंग्लभाषैवास्ति, यद्यपि सा प्रतिशतकं पंचकैरपि ज्ञातुं न शक्यते । यदि एवं विधा बहुभिरज्ञाता आंग्ल-भाषा भारतस्य राज्यभाषा भवितुं शक्या, तर्हि संस्कृतभाषा तु ततोऽप्यधिकैर्ज्ञायते, अतः सा असंशयं राज्यभाषा भवितुं योग्या इत्यत्र किमर्थं सन्देहः क्रियते ? विद्यमान-राज्यव्यवहारेणैव सिद्ध्यति यत् बहुभिरज्ञाता परदेशीया भाषापि राज्यव्यवहारभाषा भवितुं शक्या, तर्हि संस्कृता भाषा केन कारणेन प्रतिषेद्धुं शक्या ? तत्र किमपि योग्यं कारणं नास्ति । अतोऽस्माभिरुच्यते संस्कृतभाषा अद्यैव राज्यव्यवहारभाषा कर्तव्येति ।

संस्कृतभाषा राज्यशासनस्य व्यवहारभाषेति स्वीकृता चेत् सा भाषा सत्वरं भारते सर्वत्र प्रसृता भविष्यति । सत्वरं बहवो जनाः तां ज्ञास्यन्ति ।

संस्कृतभाषायाः प्रसारे संजाते, प्रांतभाषाकारणेन ये नाना कलहाः समुत्पन्नाः, ते सत्वरं विनश्यन्ति । तथा संस्कृतभाषया सर्वेषु प्रांतीयेषु जनेषु प्रबलं ऐक्यं प्रस्थापितं भविष्यति । राष्ट्रीयं बलं च संवर्धितं भविष्यति ।

प्राचीने भारते आवेदकालात् बुद्धोत्तरकालपर्यन्तं संस्कृतभाषैव राष्ट्रभाषा आसीत् । ताम्रपटादीनां भाषा प्रायशः संस्कृता एव दृश्यते । एतेनैव कारणेन सर्वासु भारतीयासु भाषासु बहवः संस्कृताः शब्दाः प्रयुज्यमाना दृश्यन्ते । अत एव एषा संस्कृतभाषा आंग्लभाषापेक्षया शीघ्रतरं भारतराष्ट्रस्य राष्ट्रभाषा राज्यशासनभाषा च भवितुं शक्या ।

अस्याः संस्कृतभाषायाः प्रचारार्थं ये भद्राः पुरुषाः सततं यतमानाः, तदर्थं यावच्छक्यं कार्यं च कुर्वंति, तैः अत्र सम्मिलिते अस्मिन् विषये स्वकीया अनुकूला संमतिः देया ।

अस्य सम्मेलनस्य अध्यक्षस्थानार्थं सर्वैः स्वागतकारिणी-सभायाः सदस्यैः निर्वा-चिताः, धीमन्तो विद्वद्वर्याः श्रीधर भास्करवर्णेकर महाभागाः सन्ति । तेषां संस्कृतभाषा पुरस्कारविषयकीं योग्यतां सर्वे भारतीया जानंति, अतस्तद्विषये नास्ति काचिदपि विशेषेण कथनस्य आवश्यकता । ते अस्य सम्मेलनस्य अध्यक्षपदं मलंकुर्वन्तु इति

अहं सूचयामि, तत् सर्वैरनुमोदनीयमिति प्रार्थयामि सर्वानत्रोपस्थितान् सभासदान् ।'

वैदिकधर्मपरिषद्के स्वागताध्यक्षके रूपमें पण्डितजीका भाषण—

' सभ्य स्त्रीपुरुषो ! '

आज ' वैदिकधर्म परिषद् ' का अब अधिवेशन शुरु हो रहा है। आप सब सदस्य इस परिषद्को यशस्वी करनेके लिये बडी दूर दूरसे आ गये हैं। वैशाखकी गर्मी भी है। तथापि यह सब सहन करके आप बडे उत्साहसे परिषद्के कार्यमें भाग लेना चाहते हैं, इस कारण मैं आपका हार्दिक अभिनंदन करता है।

' वैदिक धर्मपरिषद् ' का प्रयोजन क्या है ? इसका यहां थोडासा निर्देश करना अनुचित नही होगा। मनुस्मृतिमें कहा है कि—

' वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ।' (मनु २।६)

' धर्मका मूल वेद है । ' वेदसे सब धर्म फैला है। इस धर्ममूलका बडा वृक्ष हुआ है, शाखाएं टहनियां चारों ओर फैल रही हैं। विस्तार बडा हुआ है। इसलिये इस धर्मके मूलकी ओर जनताका दुर्लक्ष्य ही रहा है । इस दुर्लक्ष्यको दूर करके जनता धर्ममूल वेदका विचार करे, ऐसा करनेकी आवश्यकता उत्पन्न हुई है। वेदके धर्मसे वैदिक समयमें कैसा मनुष्य बनता था, इसका वर्णन मनु महाराज करते हैं—

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (मनु १२।१००)
चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाः चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ॥ (मनु १२।९७)

' (१) सेना संचालन, युद्ध, (२) राज्यशासन, (३) दण्डदान, अपराधियोंको वण्डदान, न्यायाधीशका कार्य, (४) सर्व लोकोंका आधिपत्य अर्थात् लोकशासन, (५) चार वर्णोंकी सुव्यवस्था, (६) तीनों लोकोंकी व्यवस्था, (७) चार आश्रमोंकी व्यवस्था, (८) भूत, भविष्य और वर्तमानकालमें होनेवालेसब शासनसंबंधी कार्य वेदशास्त्र जाननेवाला उत्तम रीतिसे कर सकता है। ' वह राष्ट्रसंबंधी सब कार्य है। आज जो वैदिक ज्ञान है, वह इन बातोंको नहीं सिद्ध कर सकता। आज केवल होम, हवन, यज्ञ वेदके सहारे किये जा रहे हैं, पर सेनारचना, दुर्गोंकी सुव्यवस्था, नगर-रक्षण युद्ध, युद्धमें सेनासंचालन, शस्त्र-अस्त्रोंकी व्यवस्था, शस्त्रास्त्रनिर्माण आदि कार्य वेदमें हैं, ऐसा आज कोई नहीं समझता।

मनु तो राज्यशासक था। वह कहता है कि वेदसे राज्यशासनव्यवस्था सिद्ध होती है, मनुके राज्यशासनमें सेनापतिपदपर वेदवेत्ता रखा जाता था, न्यायाधीशके कार्यपर वेदका ज्ञाता बैठता है और जो राज्यशासनके ओहदे हैं, उन पर भी वेदके ज्ञाता ही नियत किये जा सकते थे। परंतु आज वेदवेत्ताओंको कोई यह कार्य नहीं दे सकते। आज जो एम्. ए, एल्एल् बी. का मान है, उससे अधिक मान प्राचीन

समयमें वेदवेत्ताओंका था और वे उस समय ये सब कार्य करते ही थे। यहाँ गणेश-पुराणका थोडा अंश देखिये—

'काश्यपकी पत्नी अदिति थी। इनकी इच्छा हुई कि मुझे ऐसा पुत्र हो कि जो विजयी हो। उसको विनायक पुत्र हुआ। उस विनायकका उपनयन कश्यपके गुरु-कुलमें हुआ। उपनयनमें उसने जो भिक्षा मांगी, उसमें सबने शस्त्रअस्त्र दिये और उपदेश किया कि—

'उपादिशद् दुष्टनाशं कुरु शीघ्रं विनायक।' (गणेश २।१०।३०)

'विनायक ! तू शीघ्र ही दुष्टोंका नाश कर।' उपनयनके पश्चात् उसका वेदाध्ययन कश्यपके गुरुकुलमें हुआ।

काशीराजके पुरोहित कश्यप थे। कश्यप अन्य यज्ञमें रुके रहनेके कारण काशी-राजका पौरोहित्य करनेके लिये ब्रह्मचारी विनायक गया। इस समय वह १८ वर्षका तरुण था। परन्तु वह यज्ञयाग, नगररक्षण, सेनासंचालन, शस्त्रनिर्माण आदिमें प्रवीण था। काशीराजके राज्यमें आकर उन्होंने सैन्यकी रचना की, दुर्गोंकी सुव्यवस्था की, स्त्रियोंकी सेना तैयार की, नगररचनाका उत्तम प्रबंध किया। और जिस समय राक्षसोंका आक्रमण हुआ, उस समय विनायकने अपने उत्तम नेतृत्वसे काशीराजाकी विजय हो और राक्षसोंका पूर्ण पराभव हो ऐसा प्रबंध किया।'

सेनासंचालन, शस्त्रास्त्रसंग्रह, युद्धव्यवस्था आदि कार्य राजाका पुरोहित करता था, यह बात यहाँ दीख रही थी। गुरुकुलमें पढनेवाला ब्रह्मचारी गुरुकुलकी पढाईमें ही यह विद्या सीखता था। हम वेदमें देखते हैं—

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णुः येषामस्मि पुरोहितः॥ १॥
सं अहं एषां राष्ट्रं स्यामि सं ओजो वीर्यं बलम्।
वृश्चामि शत्रूणां बाहून् अनेन हविषाहम्॥ २॥
नीचैः पद्यन्तां अधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यात्।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रान् उन्नयामि स्वान् अहम्॥ ३॥
तीक्ष्णीयांसः परशोः अग्नेः तीक्ष्णतरा उत।
इंद्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः॥ ४॥
एषामहं आयुधा संस्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।
एषां क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णु एषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः॥ ५॥
प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हत उग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः॥ ६॥
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
जयामित्रान् प्रपद्यस्व जह्येषां वरं वरं मामीषां मोचि कश्चन॥ ७॥
(अथर्व. ३।१९)

१ मेरा यह ज्ञान तेजस्वी है। २ मेरा यह वीर्य और बल तेजस्वी है। ३ तेजस्वी क्षात्रसामर्थ्य अविनाशी है। ४ जिसका मैं जय प्राप्त करनेवाला पुरोहित हूँ, उनका तेज फैलेगा। ५ मैं इनका राष्ट्र तेजस्वी बनाता हूँ। ६ मैं इनके राष्ट्रका सामर्थ्य, बल और पराक्रम अधिक तेजस्वी करता हूँ। ७ इस हविसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूँ। ८ जो हमारे धनी और ज्ञानियोंपर सेनासे चढाई करते हैं वे नीचे गिरें, वे अवनत हों। ९ मैं अपने ज्ञानसे शत्रुओंको क्षीण करता हूँ। १० मैं ज्ञानसे स्वकीयोंको उन्नत करता हूँ। ११ जिसका मैं पुरोहित हूँ उनके शस्त्रास्त्र फरशीसे, अग्निसे तथा इन्द्रके वज्रसे अधिक तेजस्वी बनाता हूँ। १२ मैं इनके आयुधोंको तीक्ष्ण बनाता हूँ। १३ मैं इनका राष्ट्र उत्तम वीरोंसे युक्त करके बढाता हूँ। १४ इनका क्षात्रतेज जयशाली और बढनेवाला हो। १५ सब देव इनके चित्तका संरक्षण करें। १६ हे वीरो! शत्रुपर हमला करो। १७ विजय प्राप्त करो। १८ तुम्हारे बाहु उग्र हों। १९ तीक्ष्ण बाणवाले, उग्र आयुधो वाले, उग्र बाहुवाले वीरो! शत्रुके निर्बल धनुष्यवाले बलहीन सैनिकोंको मारो, काटो। २० हे ज्ञानसे तीक्ष्ण बने शस्त्र! तू छोडनेपर शत्रुपर जा, गिर। २१ शत्रुओंको जीतो। २२ शत्रुओंका घात करो, आगे बढो। २३ इन शत्रुओंके श्रेष्ठ श्रेष्ठ वीरोंको मार डाल। २४ इनमेंसे किसीको मत छोड।

ये सब वाक्य पुरोहितके कर्तव्यको बता रहे हैं। इससे सिद्ध होता है कि मनुने जो कहा वह सत्य था। अर्थात् हमें वेदका अर्थ ठीक तरह समझना चाहिये। वसिष्ठके मन्त्रोंमेंसे यह मन्त्र यहाँ देखने योग्य है—

दण्डा इव इत् गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठः आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त॥
(ऋ. ७।३३।६)

१ गौओंको चलानेवाले कोमल डंडोंके समान भरतलोग मृदु, आपसमें झगडनेवाले और राष्ट्रवृद्धिके थे। २ तृत्सुओंका पुरोहित वसिष्ठ हुआ। ३ इससे तृत्सुओंकी प्रजाकी उन्नति हुई।

वसिष्ठ पुरोहित हुआ और उसने राष्ट्रमें वीर्यवान् ज्ञान फैलाया जिससे उस राष्ट्रकी प्रजा अभ्युदय प्राप्त करनेमें समर्थ हुई। पूर्वस्थानमें दिया सूक्त भी वसिष्ठका सूक्त है। उस प्रकारके प्रयत्नसे राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है, यह तो स्पष्ट ही है। अर्थात् पुरोहित राष्ट्रका अभ्युदय करता था, प्रजाको शूरवीर बनाता था, युद्धके लिये अपने शस्त्रास्त्र शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे अधिक तीक्ष्ण बनाता था। और राष्ट्रको प्रभावशाली बनाता था।

रामेश्वरकी यात्रा करनेके लिये जानेवाले लोग धनुष्कोटिमें धनुष्यबाण पुरोहितोंको दानमें देते हैं, दक्षिणा भी देते हैं। यह प्राचीन राष्ट्रीय पद्धतिका अवशेष है। रामचन्द्रजीने रावणका पराभव किया और फिरसे राक्षसोंका उपद्रव भारतको न हो,

इसलिये रामेश्वरमें वीरभद्रकी स्थापना की। वहाँ सेना रखी और इस सेनाको देनेके लिये धनुष्यवाण, दक्षिणा, तथा गंगोदक आदि पुरोहितोंके पास देनेका रिवाज शुरू किया। वह रिवाज आजतक चला आ रहा है। वह सेना गयी उसकी जरूरत नहीं रही, परन्तु रिवाज आजतक जैसेका वैसा रहा है। इस समय नकली धनुष्यवाण देते हैं। प्राचीन कालमें असली देते थे।

इस रिवाजसे भी पता लगता है कि पुरोहित शस्त्र अस्त्रोंका संग्रह करके अपने पास रखते थे और समयपर सैनिकोंको देते थे। रामायणमें हम देखते हैं कि ऋषियोंके आश्रमोंसे शस्त्रास्त्र रामचन्द्रको मिले हैं। ऋषियोंने शस्त्रास्त्र निर्माण भी किये थे जो रामचन्द्रको प्राप्त हुए थे।

इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषि सेनापतिका कार्य, युद्धकी तैयारी, सेना-संचालन, राष्ट्रके अभ्युदयके कार्य करनेकी शिक्षा गुरुकुलोंमें प्राप्त करते थे और राजपुरोहित बनकर राष्ट्रसुधार भी कर सकते थे। अर्थात् वेदमें यह राष्ट्रके अभ्युदय करनेकी विद्या है। हमें उचित है, कि यह हम देखें और अपनावें।

आज अपने शरीरको पीप-विष्ठा-मूत्रका गोला माननेकी प्रवृत्ति है। पर वेद इसी शरीरको दिव्य ऋषियोंका आश्रम करके वर्णन कर रहा है, देखिये—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदं अप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकं ईयुः तत्र जाग्रतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
(वा. यजु, ३४।५५)

१ प्रत्येक शरीरमें सात ऋषि रहे हैं। २ ये सात ऋषि इस यज्ञशालाका प्रमाद न करते हुए रक्षण करते हैं। ३।४ जब ये सात नदियाँ सोनेवालेके स्थानको वापस आती हैं, तो उस समय, वहाँ न सोनेवाले और सदा इस यज्ञशालामें रहनेवाले दो देव जागते हैं।

यह वर्णन इस शरीरका है। इस शरीरमें सात ऋषि तपस्या करनेके लिये बैठे हैं। 'ऋषि' का अर्थ 'ऋषिर्दर्शनात्।' दर्शन करनेवाले, देखनेवाले हैं। दो आंख, दो कान, दो नाक और एक मुख ये सात ऋषि बाह्य जगत्को देखनेवाले हैं। वे देखते हैं इसलिये ये ऋषि कहलाते हैं। इनके नाम भी ऋषि ही हैं—

इमावेव गोतमभारद्वाजौ अयमेव गौतमोऽयं भरद्वाजः। इमावेव विश्वामित्र जमदग्नि अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निः इमावेव वसिष्ठकश्यपौ अयमेव वसिष्ठो, अयं कश्यपो, वागेव, अत्रिः वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्तिः ह वै नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्य अत्ता भवति।
(बृ. उ. २।२।४)

'सीधा कान गौतम है और बांया कान भरद्वाज है। सीधी आंख विश्वामित्र और बांयी आंख जमदग्नि है। दाया नाक वसिष्ठ है और बायां नाक कश्यप है

और वाणी अग्नि है। क्योंकि मुखसे अन्न खाते हैं। जो खाता है वह अग्नि है। अत्ति ही अग्नि है।

गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि ये सात ऋषि अपने सिरमें सात इन्द्रियोंके रूपोंमें हैं। ये बाहरके विश्वको देखते हैं। आंख देखते हैं, कान सुनते हैं, नाक सूंघता है, मुख अन्न खाता है अर्थात् ये बाहरसे ज्ञानका अनुभव लेते हैं। अर्थात् यह शरीर ऋषियोंका आश्रम है। ऋषियोंके आश्रमकी कल्पना कितनी उच्च और परिशुद्ध है,'इसका विचार कीजिए'। और उसके साथ पीपविष्ठा–मूत्रका गोला यह शरीर है, यह कल्पना रखिये। और कौनसी कल्पना आदरणीय है यह देखिये।

इसी मंत्रमें सात नदियां सोनेवालेके लोकमें जाकर मिलती हैं, ऐसा कहा है। ये सात नदियां ये ही सात इन्द्रियां हैं। सब नदियोंका यह पवित्र संगम है। यह कल्पना कितनी तेजस्वी है। अच्छी है।

इसी मन्त्रमें 'तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।' इस यज्ञभूमिमें दो देव जागते रहते हैं। यज्ञके रक्षणका कार्य कर रहे हैं। वे न सोते हुए पहरा दे रहे हैं। इस यज्ञका रक्षण करनेवाले वे दो देव प्राणअपान' हैं। अन्य इन्द्रियोंके समान वे विश्राम नहीं करते। परन्तु सतत शरीरको जीवन देनेका कार्य वे करते हैं।

(१) सप्त ऋषियोंका आश्रम, (२) सप्त नदियोंका पवित्र संगम, (३) दो देवोंका जागना, रक्षणकार्य, ये तीनों वैदिक कल्पनाएं कितनी पवित्र हैं, ये देखिये। तथा—

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपं।
तत्रासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः॥

१ ऊपर जिसका नीचला भाग है, ऐसा तिरछे मुखवाला एक लोटा है। २ इसमें विश्वरूप यश रखा है। ३ यहां सात ऋषि साथ साथ बैठे हैं। ४ ये सात ऋषि इस बडे विशाल शरीरके रक्षक हैं।

इस मन्त्रमें भी सप्त ऋषि इस मस्तकमें साथ साथ बैठे हैं, ऐसा कहा है। ये पूर्वोक्त आंख, नाक, कान, मुख वे ही हैं। वे ऋषि यहां तपस्या कर रहे हैं। इस मस्तकमें विश्वरूपी यश भरा है। यही मस्तिष्क और मगज है। इसमें जितना विश्वका रूप भासमान होता है, इतना ही विश्व उसके लिये रहता है। इसमें जो ये सात ऋषि हैं, वे इस शरीरके रक्षक हैं।

यह मस्तिष्कमें जो मगज है उसका उत्तम वर्णन है। यह सिर नीचे तिरछा मुख करके रखा हुआ लोटा है। यह शरीररूपी देवोंका मन्दिर है और इस मन्दिरपर वह 'कलश' रखा है। इस शरीरको देवोंकी नगरी कहा है। देखिये—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ ३१॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद्यक्षं आत्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३३ ॥ (अथर्व. १०।२)

१ आठ चक्र यहाँ लगे हैं और जिसमें नवद्वार हैं ऐसी यह देवोंकी पुरी अयोध्या है।

इस शरीरके पृष्ठवंशमें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार ये आठ चक्र हैं। वे बडे शक्तिके केंद्र हैं। इनपर मनकी एकाग्रता करनेसे विशेष शक्ति प्राप्त होनेका अनुभव आता है। यह आठ चक्रों व नवद्वारोंवाली अयोध्या नगरी यह शरीर ही है। इसमें सब चक्र पृष्ठवंशमें हैं। और नवद्वार दो आंख, दो कान, दो नाक, एक मुख मिलकर सात हुए और गुदद्वार *और मूत्रद्वार मिलकर नवद्वार हुए। इसमें नाभि और ब्रह्मरन्ध्र ये दो मिलाये तो* ग्यारह द्वार होते हैं। इसका वर्णन ऐसा उपनिषदोंमें आता है—

पुरमेकादशद्वारं अजस्य अवक्रचेतसः। (कठ उपनि.)

' ग्यारह द्वारोंकी नगरी अजन्मा आत्माकी है ' पूर्वोक्त वर्णनमें यह वर्णन भी देखने योग्य है। यह जीवात्माकी नगरी है।

२ इस शरीरमें सुवर्णके समान तेजस्वी कोश है, वही तेजसे भरपूर भरा स्वर्ग ही है।

अर्थात् इस शरीरमें ही हृदयमें स्वर्ग है। जिसमें ये सातों ऋषि उत्तम तप करते हैं, वे संयमी और निग्रही रहते हैं. उनका अंतःकरण तेजस्वी स्वर्ग है। परन्तु जिनके ये इन्द्रिय असंयमी और अनिग्रही होंगे, वे पतित होंगे। अर्थात् हम अपनी साधनासे हमारा स्वर्गधाम यहीं बनाते हैं और जो साधन नहीं करते उनका नरकस्थान भी यहीं होता है। इस तरह हम अपना स्वर्ग बनाते हैं। यह सब तपस्वी जीवनपर अवलंबित है।

३ उस तीन अरोंवाले, तीन सहारोंवाले सुनहरे कोशमें जो आत्माके साथ यक्ष रहता है, उसको ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं।

अर्थात् इस हृदयस्थानमें आत्मा और परमात्मा रहते हैं जिसको ब्रह्मज्ञानी जानते हैं। यह स्थान आत्माके रहनेका है।

४ दुःखका हरण करनेवाली तेजस्वी यशसे घिरी अपराजित पुरीमें ब्रह्मा प्रवेश करता है।

इस मन्त्रमें भी आत्मा, ब्रह्मा आदिका प्रवेश वर्णन किया है और यह देवोंकी नगरी है। अर्थात् देवताएं इस नगरीमें रहती है ऐसा कहा है। अर्थात् यह मनुष्य शरीर देवोंकी नगरी है। इसमें सब देव रहते हैं।

वेदोंकी नगरी पवित्र रहती है। ऋषियोंका आश्रम पवित्र होता है। यह वेदका वर्णन शरीरकी पवित्रताका वर्णन है।

हमारा धर्म ' यतो अभ्युदय-निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ' जिससे अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धि होती है, उस अनुष्ठानका नाम धर्म है। जहां सच्चा धर्म है वहां ऐहिक अभ्युदयकी सिद्धी होनी ही चाहिये।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते। (वा. यजु. ४०।१४)

' आत्मज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान इन दोनोंको जो जानता है, वह प्राकृतिक विज्ञानसे ऐहिक दुःख दूर करके आत्मज्ञानसे अमरत्व प्राप्त करता है। ' यह वैदिक मार्ग है। यह सत्य मार्ग है। सत्यधर्म यही है। प्राकृतिक विज्ञान उपयोगी है, इससे अभ्युदयकी सिद्धि होती है। यदि प्राकृतिक विज्ञानका आश्रय नहीं किया तो ऐहिक दुःख दूर नहीं हो सकते। यही भारतमें हो गया है।

विद्या आत्मविद्याका नाम है। और अविद्या प्रकृति-विद्याका नाम है। दोनोंके सामंजस्यसे उन्नति है। भारतने गत हजार वर्षोंसे अभ्युदयसाधक प्रकृतिविद्याकी ओर दुर्लक्ष किया, इस कारण राष्ट्रीय पारतंत्र्य, दासता आदि दुःख भोगने पडे हैं।

वेद और उपनिषदोंमें परा विद्या और अपरा विद्या इन दोनोंका समन्वय कहा है। जिनका अर्थ विद्या और अविद्या, आत्मविद्या और प्रकृतिविद्या है। अविद्याका अर्थ अज्ञान नहीं है। प्रकृतिविद्या है।

परा और अपरा ये दोनों विद्याएं मनुष्यको प्राप्त करनी चाहियें। वेदमें कहा है—

अन्धंतमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥ (वा. यजु. ४०।१२)

जो प्रकृतिविज्ञानकी ही केवल उपासना करते हैं वे अन्धकारमें जाते हैं, परन्तु जो केवल आत्मविद्यामें ही रमते हैं, वे उससे भी गहरे अन्धेरेमें जाते हैं।

यह वेदकी शिक्षणपद्धति है। प्रकृतिविज्ञानकी केवल पढाई जो करते हैं वे दुःखी होते हैं, परन्तु जो केवल आत्मज्ञानमें ही रमते हैं, वे उससे भी अधिक दुःखमें जाते हैं। इसलिये आत्मज्ञान और प्रकृतिविज्ञानकी पढाई समप्रमाणसे राष्ट्रमें होनी चाहिये।

यह वेदका सन्देश कितने महत्त्वका है, इसका विचार पाठक कर सकते हैं। भारतकी शिक्षाप्रणालीमें इन दोनों ज्ञानविज्ञानकी-पढाई होनी चाहिये। तथा—

अन्धंतमः प्रविशन्ति ये असंभूतिं उपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्यां रताः॥ ९॥

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥ (वा. यजु. ४०)

जो व्यक्तिवादकी ही केवल उपासना करते हैं वे अन्धकारमें जाते हैं, तथा जो समाजवादमें ही केवल जाते हैं, वे उससे भी गहरे अन्धेरेमें जाते हैं। समाजवाद और व्यक्तिवाद ये दोनों साथ साथ उपयोगी हैं, ऐसा जो जानते हैं, वे व्यक्ति उपासनासे दुःखको दूर करके समाज-उपासनासे अमरत्व प्राप्त करते हैं।

व्यक्ति मरता है पर समाज अमर रहता है। हिंदु व्यक्ति मरता है पर हिंदुस्थान अमर रहता है। ' संभूति ' संघभावसे रहना, संघभावकी उपासना करना यह एक विचार धारा है और (अ-संभूति) व्यक्तिभावकी उपासना करना दूसरी विचारधारा है। व्यक्तिस्वातंत्र्य और समाजवाद, ये दो वाद हैं। वैदिक समयमें ऊपरसे मन्त्रोंका भाव देखनेमें स्पष्ट पता लगता है, कि उस समय दोनों प्रकारके जीवनोंका सामंजस्य उन ऋषियोंने साधन किया था। वैयक्तिक जीवनसे व्यक्तिका साधन वे करते थे और समष्टि जीवनसे वे सुसंघटित रहते थे।

गायत्री मन्त्रमें—

भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात् ।

' परमेश्वरके दुःख विनाशक तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हम सबकी बुद्धियोंको प्रेरणा करता है। ' इस गुरुमंत्रमें सामुदायिक उपासना है। यह संघीय जीवनकी सूचना है। इस तरहकी उपासनासे संघटित जीवन करके सांघिक बल बढाना और वैयक्तिक उन्नतिके साधनके कर्मोंसे व्यक्तिकी उन्नति करना यह ध्येय वैदिक समयके ऋषियोंके सन्मुख था।

व्यक्तिवाद और समाजवादका समविकास इस रीतिसे होता था। आज व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी व्यक्तिका स्वातंत्र्य बढाकर संघभाव न रहनेसे दुःखी होते हैं, जैसे भारतीय दुःखी हो गये हैं। व्यक्तिका पावित्र्य बढाते बढाते यहां नाना फिरके हो गये और संघशक्ति हिंदुओंमें नहीं रही। यह व्यक्तिवादकी पराकाष्ठाका दुष्परिणाम है।

यूरोपमें, जर्मनीके राष्ट्रीय समाजवादके तथा रूसके साम्यवादमें व्यक्तिसत्ता करीब नष्ट हो गयी, इस तरह व्यक्ति दब गई और समाजवादकी संघशक्ति परमावधितक बढ गयी।

इस रीतिसे व्यक्तिवाद अत्यधिक बढनेसे भी संघशक्ति क्षीण होनेसे दुःख है और संघवाद अत्यधिक बढनेसे भी व्यक्ति दब जानेके कारण भी दुःख होता है। इसलिए हम कहते हैं कि वैदिक समयका व्यक्तिविकास और संघटनाके समविकासका तत्त्व ही श्रेष्ठ है। इस तरह हम यदि ये वेदके सिद्धान्त अपनायेंगे तो हमें यह वैदिक जीवन अधिक सुखी करेगा ऐसा ही निःसन्देह प्रतीत हो रहा है।

इसलिये हमें वेदकी ओर मुडना चाहिये यही इस परिषद्द्वारा जनताको बताना है।

जगत्‌के विषयमें जो दुःखमयताका भाव है वह वेदमें नहीं है, मानवी शरीरके विषयमें वेदका मत श्रेष्ठ है, अध्यात्मज्ञान और भौतिकविज्ञानका समन्वय करनेका वेदका कथन आज भी उपयोगी है, व्यक्तिस्वातंत्र्य और सांघिक बलके सामंजस्यके सम्बन्धके वेदविचार निस्सन्देह हितकारक हैं। आज हमारी उन्नति रुकी हुई है, इसका कारण यही है कि हम वेदविरुद्ध मत अपनाये बैठे हैं।

आप सब इस विषयका विचार करेंगे और वेदमुद्रण, वेदज्ञान प्रसार और वेद-प्रचारकको तैय्यार करनेकी योजना आप बनायेंगे ऐसी आशा करता हूं।

इस प्रकार पण्डितजीने संस्कृतभाषा एवं वैदिक धर्मके महत्त्वको लोगोंके सामने रखा और इस प्रकार वैदिकजीवनका रहस्य पण्डितजीने प्रकट किया। इस प्रकार पण्डितजीके हाथोंसे गायत्री पुरश्चरणरूप तथा वेदविद्याप्रचाररूप दो महायज्ञ अनायास ही सम्पन्न हो गए।

❁　❁　❁

: १९ :

धन्यो गृहस्थाश्रमः

पण्डितजीके द्वारा अबतक किए गए कार्योंमें उनकी पत्नी सौ. सरस्वतीबाईका बहुत हिस्सा है। उन्होंने जीजानसे पतिसेवा की है। पण्डितजीकी आयु २२ वर्षकी थी, तभी उनका विवाह हो गया था। तबसे लेकर आजतक वे अपने पतिकी सेवामें संलग्न हैं। उन दोनोंकी यह जोडी महात्मा गांधी एवं कस्तूरबाकी याद दिला देती हैं। पण्डितजी लिखते हैं—

" मेरा विवाह ऐसे युगमें हुआ था जब लडका और लडकी एक दूसरेको देख भी नहीं सकते थे, दोनों विवाहके बाद ही एक दूसरेको देख पाते थे। विवाहसे पहले माता पिता लडका या लडकीकी सम्मति लेनेकी भी आवश्यकता नहीं समझते थे। सम्मतिका लेना या देना सभ्यताके विरुद्ध समझा जाता था। इस कारण मेरा सम्बन्ध निश्चित हो जानेके बाद ही मुझे पता लगा। मेरा विचार तो यह था कि कमाऊपूत होनेके बाद ही शादी करूं, पर अपने विचार पिताके सामने प्रकट भी नहीं कर सकता था। "

" दोनों पक्षोंके ज्येष्ठोंने विवाह निश्चित किया। मुहूर्त निश्चित कर दिया गया। सबेरे स्वस्तिवाचन हुआ। सात मील दूर स्थित माणगांव नामक गांवमें सापले परिवारकी लडकीसे मेरा विवाह होना था। इसी घरानेमें देवभक्त टेम्बे स्वामी हो गए हैं, इसीलिए सापले घरानेका बहुत मान था। "

" मुझे घोडे पर बैठाया गया और बाकीके सब पैदल ही चल रहे थे। स्त्रियां भी पैदल ही चल रहीं थीं। उस समय सात मील पैदल जाना हमारे लिए कुछ कठिन नहीं था। शामको हम जनवासे जा पहुंचे। उसी शामको विवाह हो गया। रातमें भोजन हुआ। इतनेमें ही बारह बज गए। दूसरे दिन सबेरे बरात वापिस हुई और १०-१०॥ तक हम अपने घर पहुंच भी गए। मुझे घोडे पर बैठना नहीं

+

आता था, इसलिए मैं घोड़े परसे जब गिरने लगता, तो लोग हंसते। गांवका रास्ता भी बड़ा ऊबड खाबड था, इसलिए घोड़े पर बैठना मेरे लिए कष्टदायक ही साबित हुआ। पर घरके लोगोंकी बड़ी अभिलाषा थी कि वे मुझे घोड़े पर बैठा हुआ देखें। इसलिए मैं भी विवश था। मैं सात मील आरामसे चल सकता था, पर दूल्हा पैदल चले, यह कैसे हो सकता था?"

"आते समय मील भर तक सपत्नीक घोड़े पर बैठना पड़ा। यह तो और भी कठिन काम था। दूल्हा दुल्हिन कहीं घोड़ेसे गिर न पड़ें, अतः उन्हें संभालनेके लिए घोड़ेके दोनों ओर पार्श्वरक्षक थे।"

"भोजनके लिए करीब १००० व्यक्ति निमंत्रित थे। उन समय पक्वान्नोंका प्रचलन अधिक नहीं था। दालके बड़े और गुडका चासनी। गुडकी खीर भी पकाई जाती थी। शक्करका नाम नहीं था। लोग भी गुड ही खाया करते थे। कोई यात्री आता तो उसे भी गुड और पानी देते थे। चाय कॉफी लोग जानते ही नहीं थे।"

"विवाहके समय पत्नीकी उमर १२ सालकी थी। घरका काम करती थी, पर पढने लिखनेके नाम पर काला अक्षर भैंस बराबर। ससुरालमें आकर ही उसने पढना-लिखना सीखा।"

"मैं बम्बईमें चित्रकलाका अध्ययन करता था। वर्षभरमें दो बार छुट्टियां होती थीं। उन छुट्टियोंमें मैं घर भी जाता था। मैंने कभी यह नहीं देखा कि मेरे माता पिता परस्पर कभी बोले हों। एक बार मामाने मध्यस्थ बनकर यह प्रयत्न किया कि मेरे माता पिता आपसमें बोलें, उस पर पिताजीने कहा कि "मेरे पिताने कभी ऐसा नहीं किया, इसलिए मुझे भी यह पसन्द नहीं है।" उनका यह कथन मैंने सुना था।"

"जहां माता पिता न बोलते हों, वहां पुत्र और पुत्रवधू कैसे बोल सकते हैं? बचपनसे ही अनुशासनमें पलनेके कारण मैंने अपनी पत्नीके साथ बातचीत करनेका कभी साहस नहीं किया। यदि कोई अपनी पत्नीसे बोल भी देता तो सारा गांव उसकी हंसी उडाया करता था।"

"४-५ वर्षके बाद पहला पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम नारायण था। पिताके सामने बच्चेको लेकर घूमना बिल्कुल संभव नहीं था। जो कुछ बातें हो सकती थीं, वह केवल रातको ही और वह भी खुसपुसाकर। आजके तरुण इस प्रकारके प्रतिबन्धकी कल्पना भी नहीं कर सकते।"

"उसके बादके दोनों लड़के लाहौरमें हुए। मैं जब हैदराबाद रहने गया, तभी हम दोनोंने आपसमें बातचीत की। मैं बम्बई, हैदराबाद, पोंडापुर, जयपुर, गुरुकुल, पंजाब और औंधमें सहकुटुम्ब ही रहा और पारडीमें भी मैं रह रहा हूं। घरकी व्यवस्थामें परिवारकी सावधानीके कारण मुझे कभी कठिनाई नहीं पड़ी"

" हर जगह स्थानत्यागके समय में अल्युमिनियमके ८-१० बर्तन लिए रहना था। उससे मेरे गृहस्थीकी शुरुआत होती और फिर आवश्यकताके अनुसार बर्तनोंकी संख्या बढ़ती जाती। छोडने समय सब बर्तन वहीं छोड देने पडते और दूसरी जगह जाकर फिर नये खरीदने पडते। "

" एक उत्तम गृहिणी होनेके लिए आवश्यक सभी गुण मेरी पत्नीमें हैं। ऐसी पत्नी मुझे मिली, इसलिए मैं स्वयंको भाग्यशाली समझता हूँ। मेरी उमरमें अनेक उतार चढाव आए, पर उन स्थितियोंमें भी मेरी पत्नीने मुझे सुखी रखा। जब मैं इन सब बातोंको याद करता हूँ तो मेरे दिलमें उसके प्रति आदरपूर्वक कृतज्ञताके भाव उत्पन्न होते हैं। "

अब सुनिये उनकी पत्नीकी जबानी—

" हमारे सांसारिक जीवनमें भली-बुरी, सुखद-दुखद छोटी बडी अनेकों घटनायें घटीं। उन घटनाओंके साथ ही इनके स्वभावमें भी परिवर्तन होते रहे हैं। यह देखकर आज मुझे आश्चर्य होता है। आजके जैसा शान्त स्वभाव उनका पहले कभी नहीं था। उनके गरम स्वभावसे मैं हमेशा डरती रही हूँ। "

" लाहौरका एक संस्मरण है। उस समय मेरे पुत्र वसन्त और माधवकी उमर क्रमश ७ और ४ बरसकी थी। दोनों बच्चोंकी देखभाल करनेके लिए एक उत्तर भारतीय लडका हमने रख छोडा था। उसकी इन पर इतनी भक्ति थी कि जबतक ये भोजन नहीं कर लेते थे, तबतक वह भी नहीं करता था। इनका फोटोग्राफीका व्यवसाय होनेके कारण खाने सोनेका कोई नियमित समय नहीं था। एक दिन १-१॥ बजे तक आये ही नहीं। उस लडकेको भूख लग गई थी। उसने चने-मुरमुरे खाये और थोडेसे वसन्तको भी दे दिए। आते ही इन्होंने जो यह देखा तो गर्म होकर गरज उठे— " तू इसी समय नौकरी छोडकर चलता बन। तुझसे हजारों बार कहा कि इस बच्चेको कुछ भी मत दिया कर। फिर तूने क्यों दिया? अब जबतक तू जाएगा नहीं, मैं भोजन ही नहीं करूंगा। " यह सुनकर उस बेचारे लडकेकी हिचकियां बंध गई। उसने माफी भी मांगी। पर सब बेकार। ये माननेके लिए तय्यार न थे। अन्तमें मैंने ही उस लडकेसे कहा कि " तू इस समय यहांसे चला जा और कलसे रोजकी तरह आ। " अगले दिन इनका पारा उतर चुका था और लडका भी अपने काम पर आ चुका था। "

" मैं उनकी तुलनामें तो कुछ भी नहीं और ऊपरसे गांव की। पर उन्होंने भूल कर भी कभी इसका उल्लेख नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने मेरे जीवनमें तत्परता दिखाई। काश्मीरसे लेकर कन्याकुमारी तक सारा भारत मुझे दिखाया। वे " ब्रह्मर्षि " के समान संसारमें रहकर भी अलिप्त। पर उन्होंने मुझे व बच्चोंके लिए कभी भी किसी चीजकी कमी पडने नहीं दी। वे अपने ही कामोंमें इतने डूबे

रहते थे कि घरका खर्च देनेके बाद वे घरकी तरफ देख भी नहीं पाते थे। घरकी सब जिम्मेदारी और आनेजानेवालोंकी सेवा करनेका बोझ मुझ पर ही रहता था।"

"हमारा परिवार उत्तम शिक्षित और सुव्यवस्थित है। स्वयं इनका भी शरीर-स्वास्थ्य उत्तम है। इसका प्रमुख कारण है नियमितता। जीवनमें इनको नियमितताका फायदा इन्हें और इनकी सन्तानोंको भरपूर मिला। इनका जीवन बिलकुल सीधा, आहार साधारण, पर व्यायाम नियमित, उसमें जरासा भी फरक नहीं पडा। खाने-पीनेके बाबतमें भी इनकी पसन्द या नापसन्द कुछ भी नहीं। उन्हें बस इतना ही पता है कि जो सामने आ जाए, प्रेमसे खा लिया जाए। यह क्यों बनाया, यह क्यों नहीं बनाया ये शब्द मैंने आजतक उनके मुंहसे नहीं सुने। उनके भोलेपनका फायदा उठाकर कई उनको फंसा भी देते हैं, पर जब मैं उनसे कुछ कहती हूँ, तो वे यही कहते हैं कि, "तुम किस बातकी कमी है।" यह उनका कहना ठीक भी है। पारडीमें सभी कुछ औंधकी अपेक्षा भी अच्छा है।"

"पारडीमें आनेके बादसे अतिथियोंकी संख्यामें भी वृद्धि हो गई है। ऐसी अवस्थामें द्रौपदीकी हांडी भी व्यर्थ ही साबित होती। इन अतिथियोंकी शुश्रूषा करते करते मेरी आफत आ जाती है। कभी कभी जब मैं इनसे शिकायत करती हूँ, तो हंसते हंसते मुझे समझाते हैं कि– "ब्राह्मणोंको भोजन देना हमारे लिए संभव न हो पाता, पर वही अब तुम्हारे हाथोंसे हो रहा है, तो उसमें बुरा क्या है? मैं तो यह भी कहूंगा कि तुम ऊपरसे उनको दक्षिणा भी देती जाओ।" अब इसपर मैं क्या बोलूं?"

"अपने कारण उन्हें किसीको कष्ट देना पसन्द नहीं। औंधके राजा इनका बडा सम्मान करते थे। कभी कभी वे सेवाके लिए दरबारमें भी बुला लिया करते थे। कभी कभी ऐसा भी होता था कि राजा पहले पहुंच जाते, और ये पीछेसे पहुंचते, तब राजा इनके सम्मानमें उठकर खडे हो जाया करते थे। इसप्रकार १–२ बार हुआ। यह देखकर पण्डितजी को बुरा लगा और वे निश्चित समयसे ५–१० मिनट पहले ही दरबारमें पहुच जाते थे। इतने विद्वान् होनेपर भी मान अपमान पर उनकी कभी नजर नहीं गई। इसीकारण वे अपने कार्यसे कभी विचलित नहीं हुए! उनका एक सिद्धान्त है "तुम अपना काम करते रहो, जिनको तुम्हारे कामकी जरूरत पडेगी, वे स्वयं आकर तुम्हारा सम्मान करेंगे।"

"औंधमें जबसे मैंने अपना घर बसाया, तब घरमें मैं, मेरे बच्चे और आने जानेवाले अतिथि ही रहते थे। ये अपने कामके लिए प्रायः दौरे पर रहते थे। इन्होंने मुझे कभी यह नहीं बताया कि ये कहां जाएंगे। पर कब लौटकर आयेंगे, यह अवश्य बता देते थे, और उस दिन ये निश्चित रूपसे आ भी जाते थे।"

"आजतक हमें किसी भी चीजकी कमी नहीं पडी। औंधकी अपेक्षा पारडीमें हमारा घर, बागबगीचा, अमराई आदि सभी सुन्दर है। अतिथि इनके लिए

साक्षात्परब्रह्म है। किसी भी अतिथिने घरमें कदम रखा कि इनकी अतिथि सेवा शुरु हो जाती है। नहानेके लिए पानी, हाथ धोनेके लिए पानी, अंगोछा...सब लेकर ये तैय्यार रहते हैं। यदि कोई अतिथि चायबाज हो, तो उसकी फजीहत ही समझिए। स्वयंने तो कभी चाय या कॉफी पी नहीं, फिर उसके लिए वे दूसरोंसे भी किसप्रकार पूछें? पर यदि कोई अतिथि जरा दबंग हुआ तो वह स्वयं चाय या कॉफी मांगकर पी लेता है। पर एक अतिथि ऐसा अजीब हमें मिला, कि उसकी याद ही दिमागसे नहीं उतरती।"

"वे अतिथि थे इतिहासाचार्य राजवाडे। ये औंधमें एक बार हमारे घर आए। विद्वान्के रूपमें इनकी बडी प्रसिद्धि थी। मैंने रोजकी तरह भोजन बनाया और परोसा, पर राजवाडेने उस समय केवल भात ही खाया। घरमें केवल हम दो और बच्चे छोटे, इसलिए मैं भात भी कितना बनाती?... इस कारण मैंने शामको केवल चावल बनाये और भरपूर भात परोस दिया। पर तब इतिहासाचार्य बोले कि मैं शामके समय सिर्फ फुलके ही खाता हूँ। मुझे चावल जरा भी नहीं चाहिए।" अब भला ऐसी अवस्थामें कोई कितनी भी सुगृहिणी क्यों न हो, उसका क्या फायदा? इसके बादसे उन्होंने रोज दही, भात और दूध खाना शुरु किया। राजवाडे खानेवाले और ये परोसने वाले फिर मैं ही क्यों बीचमें बोलती?"

राजवाडे इतना भात पचा नहीं पाये। उनके पेटमें मरोड शुरु हो गए। तब इनसे कहते हैं—

"पण्डितजी! मालूम पडता है कि मेरे पेटमें विष चला गया है, पर कैसे गया कौन जाने? अब मेरा अन्तकाल नजदीक ही है। डॉक्टरोंने मुझे भात खानेके लिए बिल्कुल मना कर दिया था।" पर शामको भात देखते ही वे फिर अपना पथ्य भूल गए।"

"दाल पकनेमें जरा देर लगती थी। पर भोजनमें जरासी देर हो जाती तो राजवाडेका ताण्डव नृत्य शुरु हो जाता, और यदि जल्दी परोस दिया जाता तो भी तृप्ति नहीं होती। इतना सब होनेपर भी ये शान्त ही रहते थे। अपने अतिथिसेवामें निमग्न। मेरी सुसरालमें भी अतिथि आते जरूर थे, पर वे ऐसे दुर्वासाके शिष्य नहीं होते थे।"

"अतिथिदेवो भव" का अक्षरशः पालन करते हैं। प्रत्येकसे पूछते हैं, भोजनसे तृप्ति हुई न? खूब खाओ, खूब काम करो, जल्दी उठते हो कि नहीं। खूब आराम करो, खूब खेलो। उनकी दीर्घायुका यही रहस्य है वही सबसे प्रेमपूर्वक कहते हैं।"

"मनुष्योंसे कभी नहीं ऊबते। बच्चे खेलते रहते हैं, चिल्लाते हैं, पर ये अपने काममें मशगूल। भोजनके समय पर भी मौन रहकर भोजन करना उन्हें पसन्द नहीं। घर गोकुलके समान हमेशा वैभवसे भरा रहता है। उसका आनन्द ये अपनी वृद्धावस्थामें भी लूटते हैं।"

" इस प्रकार हमारी गृहस्थीके ८० वर्ष छूट चुके हैं। इसी प्रकार आगेके भी वर्ष छूट जायें यही जगन्माता अम्बाबाईके चरणोंमें प्रार्थना है।"

सावंतवाडीके नजदीक माणगांवके थी हरिपंत मायलेकी तीसरी कन्या काशीबाई ही पण्डितजीकी पत्नी सौ. सरस्वतीबाई सातवलेकर हैं। काशीबाईकी आऊताई और यमुताई नामकी दो बडी बहिनें और भाई रामभाऊ सायले थे। काशीबाईके जन्मके थोडे दिनके बाद ही इनके पिता काल कवलित हो गए, अतः उनकी माताने भी, यह समझ कर कि यह लडकी अपशकुनी है, उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार काशीबाई मांबापके प्यारसे वंचित ही रहीं। उनका पालन पोषण उनके ननिहालकी एक स्त्रीने किया। ५-६ वर्षके बाद वे अपनी बडी बहिन आऊताईके यहां रहीं।

शादी होने तक वे अपनी बडी बहिनके यहां ही रहीं। बादमें सुसरालमें भरपूर सुख मिला। मनौतीसे प्राप्त तथा अत्यन्त लाडले पुत्रकी पत्नी तथा प्रथम पुत्रवधू होनेके कारण सास ससुरका प्रेम भी भरपूर मिला। सास ससुर इन्हें 'पुत्री' कहकर सम्बोधित किया करते थे।

सौ. सरस्वतीबाई अपनी स्मृतियोंको ताजा करती हुई कहती हैं—

" जो काम मुझसे हो सकता था, करती थी। नारियलके पौधोंको पानी देना आदि अनेकों काम मैं अपने ससुरके साथ करती थी। बचपना होनेकेकारण पेडपर चढकर इमली तोडकर खाना, काजूके फल तोडकर उनका मजा लेना आदि सब चलता था। यह देखकर ससुर नाराज होकर कहते- " लडकियोंका इसप्रकार लडकोंकी तरह खेलना कूदना अच्छा नहीं दीखता।" मेरे हमउम्रका मेरा एक देवर भी था। उसके साथ खूब खेलती थी। यदि किसीका हमें डर लगता था तो बस इनका (पंडितजीका) ही। इसप्रकार ५-६ वर्ष निकल गए। पहला लडका हुआ। वह जब १-१॥ वर्षका हुआ तो मैंने कोलगांव छोड दिया। वहींसे उनके पैरोंमें चक्र लग गए। इन्होंने बम्बईमें चित्रकलाका व्यवसाय शुरु किया। उसके बाद मैं २-३ बार ही कोलगांव गई होऊंगी।"

" उस समय ससुरालमें इन्होंकी पत्तलमें मेरे लिए भी भोजन परोसा जाता। आजकलकी तरह स्टील या पीतलकी थालियां होतीं तो भी ठीक था, पर उस पत्तलमें भोजन करना अच्छा नहीं लगता था। मैं कहती कि पत्तल लगानेवाली तो मैं ही हूं, एक पत्तल ज्यादा लगा दूंगी, पर मेरे लिए उस जूठी पत्तलमें भोजन मत परोसो। पर उस समयका रिवाज ही ऐसा था कि स्त्रियोंको अपने पतिके जूठी पत्तलोंमें ही भोजन करना पडता था। फिर बेचारी मेरी सास भी क्या कर सकती थीं ?"

" कोंकण प्रदेशके पकवानोंमें है लड्डू और नारियल तथा गुड मिलाकर उसकी गुजिया। इस प्रकारकी गुजिया मेरी सास बहुत बनाया करती थीं, पर मुझे वह बरा

भी पसन्द नहीं थी। इसलिए मैं धीरेसे ऊपरका आवरण हटाकर उसके अन्दरका गुड और नारियल खाजाती और ऊपरका आवरण पत्तलके नीचे छिपा देती। पत्तलें तो मैं ही उठाती थी, फिर मेरी कारगुजारीका पता किसे लगता ?"

"गांवसे बम्बई जैसे शहरमें आनेपर पहले पहले कुछ कुछ अजीबसा लगा मुझे। पढी लिखी भी कुछ नहीं थी। उम्र छोटी, पुत्र छोटा और अनुभव भी छोटा ही। फिर भी सारा भोजन मैं स्वयं बनाती थी। रोटी और फुलकोंका रियाज कोंकणमें नहीं है, इसलिए इनको बनानेमें मुझे कठिनाई होती थी, पर इन्होंने कभी भी शिकायत नहीं की। इन्होंने कभी भी नहीं कहा कि यह चीज बिगड गई है, या यह चीज मुझे चाहिए। बिलकुल नहीं ! ! जो थालीमें सामने आ गया, उसे खाकर उठ जाते थे। उनके खाकर उठ जानेपर जब मैं खाने बैठती, तब पता चलता कि अरे आज तो शाकमें नमक ही नहीं पडा है,– दाल जरा पतली है। इनकी स्वयंकी पसन्द या नापसन्द तो कुछ है ही नहीं, और यदि मैं अचार चटनी खाती तो कहते कि " क्या जीभका लगामके बिना काम ही नहीं चलता ? " तब मैं कहती कि " आपकी मानें तो आपको अमृत पिला दिया है, इसीलिए आपको स्वाद या अस्वादका पता कैसे चले, पर मैं वैसी नहीं हूं। " संभवतः अपने जीवनमें एकबार ही उन्होंने कहा था कि " नीबूका अचार हो तो दे दो आज मुंहमें स्वाद ही नहीं है।" उन दिनों पण्डितजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं था।"

" शुरुआतसे ही इन्होंने सारे कामकी जिम्मेदारी मुझे ही सौंप दी थी। शाक-भाजी लाना आदि सभी काम मेरे ही जिम्मे थे। विवाहके कार्य भी मैंने ही करवाये हैं।"

" इनका काम वेदानुवादका और उनका सहायक छापखाना। फिर अतिथियोंकी क्या कमी होती ? कोई मुझसे पूछता कि– " तुम्हारे यहां हमेशा अतिथि आते रहते हैं, उनको आने जानेका कोई निश्चित समय भी नहीं होता। छोटे बडे या धनी गरीबका भी भेद नहीं होता, फिर उन सबसे तुम कैसे व्यवहार करती हो ? "मेरा उत्तर यही होता कि– " मुझ जैसीके हाथोंसे एकही बार हजारों ब्राह्मणोंका भोजन कैसे हो सकता है ? आजतक जो भोजन कर गए हैं, उसीरूपमें मानों हजार ब्राह्मणोंका भोजन हो गया। " ऐसी सहनशीला, धार्मिक साध्वी और प्रेम करने-वाली पत्नीको पानेके कारण ही पण्डितजी इतना बडा कार्य कर सके।

बम्बई आनेके बाद ही सौ. सरस्वतीबाईने रसोई बनाना सीखा, उसीप्रकार लिखना पढना भी सीखा। पण्डितजीने ही उन्हें सिखाया।

आज हैदराबाद, कल गुरुकुलकांगडी, परसों लाहौर, फिर पीठापुरं, इसप्रकार मानों पण्डितजीके पैरोंमें पहिए लग गए थे। इसी दरम्यान दो पुत्र पैदा हुए। बीचमें एक बरस पण्डितजीको कैदखानेमें बिताना पडा। पर सभी तरहके संकटोंको

सहकर भी बच्चोंका पालनपोषण उनकी पत्नीने किया। अपने चित्रकारी और फोटोग्राफीके व्यवसायके कारण ही पण्डितजी सारे भारतका प्रवास कर सके।

पर सब जागह जाकर पण्डितजी धर्मशालामें टिकते और स्वयं रसोई बनाकर खाते पीते थे। उन्होंने एक सन्दूक ही बना लिया था, उसमें २-३ मनुष्योंके लिए, पर्याप्त बर्तन, स्टोव, आटा, दाल, चावल आदि सभी कुछ रखते थे।

१९१८ में औंधमें आनेके बाद ही सौ. सरस्वतीबाईको शान्ति मिली। यहां पण्डितजीने घर बनवाया और अपना कार्य शुरु किया। बच्चे भी बडे हो रहे थे। बच्चोंकी शिक्षा शुरु हुई। औंधमें बारबार व्याख्यान, प्रवचन और कथायें होती रहती थीं। इसलिए उनका समय उत्तमतासे बीतता जाता था। नये नये परिचय होते गये। सौ सरस्वतीबाईके बनाये पदार्थोंको खाकर स्वयं राजासाहब भी तारीफ करते थे।

पण्डितजीकी पत्नीकी दिनचर्या नियमित है। ३५ वर्षोंसे वे केवल एक समय ही भोजन करती हैं। सवेरे दो बार और शामको एकबार चाय लेती हैं। बीचमें कुछ भी नहीं खाती। रातमें सिर्फ एक कप दूध कभी कभी १-२ बिस्किट्स लेलेती हैं।

उनका एक संस्मरण उनकी पुत्रवधू-श्रीमती लतिकाबाई सातवलेकर सुनाती हैं-. "घरके चारों ओर झाडझंकाड बहुत है। एक दिन शामको बरामदेमें माताजी (पण्डितजीकी पत्नी) बैठी हुई थीं। बच्चे खेलने गए हुए थे। अंधेरा हो रहा था। उसी समय उन्होंने बरामदेके पास ही एक सांपको सरकते देखा। माताजी घबरा गई कि अभी बच्चे दौडते हुए आवेंगे, और यदि उनमेंसे किसीका पैर इस सांपपर पड गया तो...? आगेकी कल्पना भी उनके लिए असह्य होगई। उस समय घरमें दूसरा कोई नहीं था, इधर बच्चोंके आनेकी चिन्ता भी माताजीको चुपचाप बैठने नहीं दे रही थी। अतः वे लडखडातीसी उठीं और एक लकडी लेकर उस सांपपर धर ही तो दिया। पर यह साप पलटकर फुफकारता हुआ फन फैलाकर इनकी तरफ दौडा। यह देखकर उनकी सांस ही रुकती सो जान पडी। सांपको मारकर उसे बचकर निकल जाने देनेका अर्थ है अपनी जानको खतरेमें डालना। अतः उन्होंने अपने मनको पक्का करके ३-४ डण्डे और फटकार कर उस नागको ठण्डा कर दिया और फिर पसीनेसे नहाकर कांपते हुए नीचे बैठ गई, इसी बीचमें बच्चे भी आ गए।"

पण्डितजीकी पत्नीकी उम्र ९२ बरसकी है पर अब भी शरीरसे स्वस्थ और गृहकार्यमें तत्पर हैं।

सौ. सरस्वतीबाई कालके प्रवाहके अनुसार सास बन गई, पर अपनी दोनों पुत्रवधुओं (श्रीमती लतिकाबाई एवं श्रीमती कुसुमबाई) के साथ वे माताका सा ही व्यवहार करती हैं। इसलिए उन दोनोंको सुसराल भी मायका जैसा ही आनन्द दायक प्रतीत होता है। पण्डितजीकी ज्येष्ठा पुत्रवधू श्रीमती लतिकाबाई बेलगांव

जन्मी थीं और उन्होंने पण्डितजीके ज्येष्ठ पुत्र श्री वसन्तरावके पत्नीके रूपमें पण्डितजीके परिवारमें प्रवेश किया था। पण्डितजी एवं उनकी पत्नीकी छत्रछायामें ही वे विकसित हुईं। पण्डितजीके बारेमें श्रीमती लतिकाबाई अपने संस्मरण सुनाती हैं—

" ती. बाबा (पण्डितजी) की सेवा करनेका मुझे जो अवसर मिला, उसे मैं अपना सौभाग्य ही समझती हूँ। बाबाकी तुलना शंकरसे की जा सकती है। बाबा निःस्पृह और भोले होनेके कारण वैर और कपटसे कोसों दूर हैं। अपने ऊपर की गई अत्यन्त प्रखर टीका या निन्दाको भी अत्यन्त शान्तिसे सहन कर लेते हैं। एक-बार एक पत्रिकामें बाबाका एक लेख प्रकाशित हुआ था, उसे पढ़कर एक पाठकने पण्डितजीको एक पत्र लिखा कि पण्डितजीने वेदमंत्रोंके अर्थका अनर्थ कर डाला है, उन्होंने आजतक प्राप्त किए गए यशको कलंकित कर दिया है। इस प्रकारके पत्रको देखकर पण्डितजी जरा हंसे और उस पत्रको एक कोनेमें रखकर फिर अपने काममें लग गए।"

" बाबाके भोलेपनका दुरुपयोग अनेक करते हैं। कभी कोई कहता है कि मेरी जेब कट गई है और इस प्रकार वह बाबासे पैसे ले लेता है। एक बार जेलसे छूटकर आए हुए एक व्यक्तिको बाबाने सुधारनेके विचारसे उसे अपनी संस्थाका एजेंट बना दिया, वह हजारों रुपये पचाकर भाग गया। इस प्रकार अनेक घटनायें हो चुकी हैं, पर बाबाका स्वभाव नहीं बदलता।"

" स्वावलम्बन पर पण्डितजीका बहुत विश्वास है। रुग्णावस्थामें भी वे दूसरेकी सहायता लेनेमें हिचकिचाते हैं। " स्वयंका काम स्वयं करो। दूसरोंके भरोसे मत रहो।" यह उनका आदर्श वाक्य है। हम सब उनसे यही कहते हैं कि वे अपने कमरेमें ही बैठ रहें और हम उन्हें भोजनादि लाकर दे दिया करेंगे, उस समय तो वे हमारी बात मान लेते हैं, पर भोजनके समय हम उन्हें भोजन की मेज पर हाजिर देखते हैं। एक दिन उनकी जांघ बहुत दुख रही थी। वे बहुत अस्वस्थसे दिखाई दे रहे थे। डॉक्टरोंने दवाई देकर ३-४ दिन आराम करनेकी सलाह दी। इधर डाक्टरकी पीठ मुड़ी, उधर बाबा गायब, आकरके देखा तो आफिसमें कुर्सी पर बैठे हुए।"

"*बाबा प्रसिद्धिसे दूर भागते हैं। कई बार वे अनेकों सम्मेलनोंके अध्यक्ष होते* हैं, पर वे इस बातकी सूचना घरवालोंको भी नहीं देते। संभवतः १९५० की बात है हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग बाबाको " साहित्यवाचस्पति " की पदवी देनेवाला था, उसकी तरफसे बम्बईमें एक बड़ी भारी सभा की गई। पर बाबाके जानेके दिनतक हममेंसे किसीको भी इस बातका पता नहीं। उनके जानेके दिन हमें अचानक इस बातका पता चल गया। अतः हम भी बाबाके साथ बम्बई चलनेकी तैय्यारीमें लग गए। तब बाबा कहते हैं कि—" तुम सबके आनेकी क्या जरूरत है ? "

भावरातिशयसे पण्डितजीका रेखाचित्र प्रस्तुत करनेवाली उनकी स्नुषा अपनी सासके कदमों पर कदम रखती हुई पण्डितजीकी सेवामें संलग्न है। पण्डितजीके घरका "आनन्दाश्रम" नाम सार्थक है। सासससुरकी सेवा करते हुए "गृहस्थाश्रम" को धन्य बनाते हुए उनकी स्नुषा एवं पुत्रका जीवन आनन्दसे कट रहा है।

पत्नी, दो पुत्रों, दो स्नुषाओं चार पौत्रियों और दो पौत्रोंसे सम्पन्न पण्डितजीका परिवार स्वर्गसा सम्पन्न है।

पण्डितजीके तीन पुत्रोंमें सर्वज्येष्ठ नारायणराव कांगडी गुरुकुलमें ही विषमज्वरसे ग्रस्त होकर दिवंगत हो गए थे। उसे आश्रमीय शिक्षा देकर एक आदर्श मानव बनानेकी पण्डितजीकी अभिलाषा थी, पर दैवके इस अकालिक आघातको पण्डितजी एवं उनकी पत्नीने चुपचाप सहन किया। इसीसे प्रेरित होकर पण्डितजीने "मृत्युको दूर करनेका उपाय" नामक पुस्तकका प्रणयन किया।

पण्डितजीके दूसरे पुत्र श्री वसन्तराव हैं। इनका जन्म लाहौरमें १९१३ में हुआ था। औंध एवं सांगलीमें अपनी प्रारंभिक शिक्षा समाप्त कर उन्होंने पूनासे बी. ए. की पदवी प्राप्त की। औंधरियासतमें पण्डितजीके द्वारा प्रवर्तित ग्राम-पंचायतके कार्यमें इनका भी योगदान प्रशंसनीय रहा है। औंधराज्यके विधिमण्डलके सदस्य, तालुकासमितिके अध्यक्ष, शिक्षामन्त्री, आरोग्यमंत्री आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पदोंपर इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है। आजकल ये स्वाध्याय-मण्डलके मुद्रणालयके व्यवस्थापकके रूपमें कार्य करते हैं, और इन्होंने अपनी द्वितीय कन्याके नामपर "उषाप्रकाशन" के नामसे एक प्रकाशन संस्था खोल रखी है, इस प्रकाशन संस्थाकी तरफसे आजतक बाईस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

पण्डितजीके तीसरे-पुत्र श्री माधवरावका जन्म १९१५ में हुआ था। उनकी भी प्रारंभिक शिक्षा औंधमें हो हुई। उन्होंने आगे चलकर अपने पिताका ही व्यवसाय अपनाया। मेट्रिकके बाद उन्होंने बम्बईके केतकरके निरीक्षणमें चित्रकलाका अध्ययन किया। तदनन्तर जे. जे स्कूलके आचार्य सॉलोमनके भी शिष्य रहे। इन्होंने भी अपने पिताकी तरह ही सर्वोच्च डिप्लोमा प्राप्त किया, साथ हा मेयोमेडलके भी अधिकारी बने। अपनी उम्रके बीसवें सालमें इस तरुणने स्कालरशिप पाकर १९३७ सनमें इटलीके फ्लारेंस शहरमें जाकर प्रो. जोहान्नी कस्तीग्लानोनीके निरीक्षणमें चित्रकलाका अभ्यास किया। वहांसे चलकर इन्होंने लंडन स्लेड स्कूलमें अध्ययन किया। १९४० में जर्मनी, फ्रांस जाकर वहांकी चित्रकलाका भी अध्ययन किया। १९४८ व १९४७ में ताजमहल होटलमें इनके चित्रोंकी प्रदर्शिनी हुई थी। १९४९ में इन्होंने अफ्रीकाकी यात्रा की। १९४७ से ये बम्बईमें स्थायी हो गए। यहीं इन्होंने इण्डियन आर्ट इन्स्टिटयूटके नामसे एक संस्था भी खोली। इसप्रकार ये अपने पिताकी परम्पराको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें सतत प्रयत्नशील हैं।

पण्डितजीका गृहस्थाश्रम वास्तवमें धन्य है।

: २० :

पंडितजीका लोकगौरव

पण्डिजीने हर काम मन लगाकर किया है। चित्रकलासे लेकर वेदसंशोधन तकका सारा काम मन लगाकर किए जानेके कारण ही यह पण्डितजीके लिए कीर्तिको देनेवाला हो सका। आज भी वे अपनी इस उम्रमें वैदिकसंस्कृतिके द्वारा जनजागरण का काम बडी ही तत्परतासे कर रहे हैं। इन्हीं सबके कारण कीर्ति स्वयं इनकी तरफ दौडती चली आई। सहृदयता, कार्यक्षमता, और स्वार्थहीनताके गुणोंसे ही कीर्ति मनुष्यकी तरफ आकृष्ट हो सकती है।

अपने इन्हीं गुणोंके कारण पण्डितजीने जनताके हृदयमें अपना स्थान बना लिया। उनके कार्योंसे प्रभावित होकर अनेकों संस्थाओंने पदवियां देकर उन्हे सम्मानित किया।

(१) गीता पर उनकी पुरुषार्थ बोधिनी अपनेमें एक अद्वितीय रचना है। अनेक भारतीय भाषाओंमें उसका अनुवाद हो चुका है। इस ग्रंथमें पण्डितजीने अनेकों तर्कों और प्रमाणोंको दिखाकर यह सिद्ध किया है कि गीता मोक्षशास्त्र नहीं है अपितु तक राजनीतिक ग्रंथ है। यह अपने पाठकको संसार छोडकर जंगलमें जाकर तपस्या करनेके लिए प्रेरित नहीं करता अपितु वह यह बताता है कि राष्ट्रकी उन्नति कैसे की जाए। गीतामें उनकी यह विचारसरणी बिल्कुल नवीन होनेके कारण गीतामण्डल अमृतसरने पण्डितजीको " गीतालंकार " पदवीसे सम्मानित किया।

(२) पण्डितजीने लुप्तप्राय हुए वेदों और तदन्तर्गतज्ञानके भण्डारको सर्वसाधारणके लिए खोल दिया, पण्डितजीके वेदविषयक इस महान् कार्यके उपलक्ष्यमें गोवर्धनमठ, पुरीके शंकराचार्यने पण्डितजीको " महामहोपाध्याय " की पदवी प्रदान की।

(३) अहिन्दी भाषाभाषी होते हुए भी हिन्दीमें अनेक ग्रंथोंकी रचना करके हिन्दी भाषाकी सेवा की, तदर्थ हिन्दीसाहित्यसम्मेलन (अब हिन्दी विश्वविद्यालय)

प्रयागने पण्डितजीको " साहित्यवाचस्पति " की सम्मानित उपाधि प्रदान की।

(४) जगद्‌गुरु शंकराचार्य द्वारकाने पण्डितजीको " भारतभूषण " की उपाधि प्रदान की।

(५) कांगडीके गुरुकुलने अपनी संस्थाकी सर्वोच्च उपाधि " विद्यामार्तण्ड "से पण्डितजीको सम्मानित किया।

(६) उत्तरप्रदेशके महान् संत श्री देवरहवा बाबाने " ब्रह्मर्षि " की पदवी प्रदान की।

(७) अहिन्दी भाषाभाषी होते हुए भी हिन्दीकी सेवा करनेके कारण " राष्ट्रभाषा समिति वर्धा " ने इन्हें १५०१ रु. का महात्मा गांधी पुरस्कार प्रदान किया।

(८) भारतके राष्ट्रपतिने संस्कृत विद्वान्‌के रूपमें पण्डितजीका सम्मान किया, और १५०० रु. का वार्षिक अनुदान प्रदान किया।

(९) पण्डितजीके द्वारा किए गए वेदकार्योंका सम्मान करते हुए प्रसिद्ध भारतीय- संस्था भारतीय विद्याभवन (बम्बई) ने " वेदवाचस्पति " की उपाधि प्रदान की।

(१०) पूना विश्वविद्यालयने डॉक्टर ऑफ लिटरेचरकी उपाधिसे पण्डितजीको सम्मानित किया।

(११) बम्बई विश्वविद्यालयने पण्डितजीको डॉक्टर ऑफ लॉज की सम्मानित उपाधिसे विभूषित किया।

(१२) भारतके राष्ट्रपतिने पण्डितजीको " पद्मभूषण " की उपाधि देकर सम्मानित किया।

इस प्रकार अनेक उपाधियोंसे विभूषित पण्डितजीको विदेशोंसे भी निमंत्रण मिला।

(१) विश्वधर्म परिषद्‌में वैदिकधर्मके प्रतिनिधिके रूपमें भाग लेनेके लिए रूसने पण्डितजीको निमंत्रित किया था।

(२) उसी प्रकार वैदिकधर्मका प्रतिनिधित्व करनेके लिए जापानसे भी निमंत्रण प्राप्त हुआ था।

(३) जेनेवामें संगठित विश्वशान्तिसभामें भी भाग लेनेके लिए पण्डितजी आमंत्रित किए गए थे।

वेदाचार्यका सत्कार

वेदाचार्य पण्डित सातवलेकरके ९० वे जन्मदिनके अवसरपर बम्बईमें " सातवलेकर सत्कार समिति " के तत्त्वावधानमें श्री कन्हैय्यालाल माणिकलाल मुंशीकी अध्यक्षतामें एक सभा हुई। १५ सितम्बर १९५७ के दिन इस सत्कार समारंभका प्रारंभ प्रातःकालके वेदमंत्रोंके उद्‌घोषसे हुआ उस यज्ञके यजमान सपत्नीक पं.

सातवलेकरजी ही थे। उस समारंभमें म. म. दत्तोवामन पोतदार, म. म सिद्धेश्वर-शास्त्री चित्राव, डॉ. वे. राघवन एवं गुरुजी गोलवलकर आदि गणमान्य मण्डली उपस्थित थी।

उसके बाद सबेरे ९ बजे भारतीय विद्याभवनके गीतामन्दिर–के सभागृहमें काशी विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागके अध्यक्ष डॉ. सूर्यकान्तकी अध्यक्षतामें एक परिसंवाद की आयोजना की गई। प्रा. वर्णेकरने संस्कृतमें परिसंवादका उपन्यास किया। वैदिक विचारधारा, वैदिक भूगोल, वैदिकवाङ्मयका मूल्यांकन आदि अनेक विषयोंपर चर्चा हुई। इस परिसंवादमें डॉ. वसन्तराव राहूरकर, डॉ चि ग. काशीकर, श्री सहस्रबुद्धे और श्री श्रीधर भास्कर वर्णेकर आदि कई विद्वानोंने भाग लिया।

शामको ५।। बजे बम्बई विश्वविद्यालयके दीक्षान्त सभागृहमें डॉ. सर सी. पी. रामस्वामी अय्यरकी अध्यक्षतामें पण्डितजीका सत्कार समारंभ हुआ। सत्कार-समितिके स्वागताध्यक्ष डॉ. मुंशीने स्वागत करते हुए कहा कि– "भारत भूत-कालमें सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता रहा, वर्तमानमें भी वह जीवित है और यदि उसे भविष्यमें भी इसी सम्मानके साथ जिन्दा रहना है तो उसे वैदिकसंस्कृतिका सहारा लेना ही पडेगा। वैदिकसंस्कृति संस्कृतके बिना जिन्दा नहीं रह सकती। वैदिकसाहित्य संस्कृतिके कोष हैं। पं. सातवलेकर वेदकालीन जीवनको व्यतीत करनेवाले वैदिक ऋषियोंके प्रतीक हैं।"

इस स्वागतभाषणके बाद समारंभके संयोजक श्री महेन्द्र कुलश्रेष्ठने उस समारंभके लिए प्राप्त हुए संदेश पढकर सुनाये। तदनन्तर ब्राह्मणोंने वेदमंत्रोंसे पण्डितजीको आशीर्वाद दिया और विभिन्न संस्थाओंकी तरफसे सत्कार हुआ और पच्चीस हजार रुपयोंकी थैली अर्पित की गई।

संस्कृतके विद्वान् स्वर्गीय पं. दीक्षितारने संस्कृतमें, डॉ. बोसने अंग्रेजीमें और पृथ्वीराजकपूरने हिन्दीमें सत्कारात्मक भाषण दिए। श्री कपूरने कहा कि– "पण्डितजीने आशीर्वादके रूपमें मेरे पास कतिपय वेदग्रंथ भेजे। उन हिन्दीके ग्रंथोंसे वेदोंके साथ मेरा परिचय हुआ। अब मैंने संस्कृत सीखनेका निश्चय कर लिया है, क्योंकि संस्कृतके द्वारा ही वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।"

अन्तमें डॉ. अय्यरने अध्यक्षीयभाषण देते हुए कहा कि- "स्वातंत्र्य प्राप्तिके लिए पण्डित सातवलेकरने अपूर्व त्याग किया है उनका पूर्वकालिक जीवन एक ध्येयवादी, प्रवासी और प्रचारकका था। परन्तु बादमें उन्होंने वेदवाङ्मयका तात्त्विक अध्ययन किया और अपना सारा ध्यान वेदवाङ्मयके प्रसार और संशोधनके कार्यपर केन्द्रित कर दिया। इसके लिए वे अभिनन्दनीय हैं। पं. सातवलेकरने वेदोंको सर्व साधा-रणतक पहुंचाया। यह उनका अतुलनीय काम धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रमें अनुचित नहीं कहा जा सकता।"

"अपनेको धर्मनिरपेक्ष कहनेवाले राष्ट्रमें भी प्रजामें एकता स्थापित करनेके लिए

धर्मकी नितान्त आवश्यकता होती है। क्योंकि धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रका मतलब धर्मविहीन राष्ट्र नहीं होता। जीवनमें धर्मके रूपमें आध्यात्मिकताका स्थान अनिवार्य है। आध्यात्मिकताके द्वारा ही मनुष्यमें सहिष्णुताका निर्माण होता है। और उसमें " जीओ और जीने दो " की वृत्ति भी उत्पन्न होती है। "

इस अध्यक्षीय भाषणके बाद पण्डित सातवलेकरजीने सम्मानका उत्तर देते हुए कहा कि—

माननीय अध्यक्ष महोदय तथा उपस्थित बन्धुभगिनियो,

आपने यह जो मेरा सत्कारसमारंभ किया है, उसके लिए मैं सबका हृदयसे आभारी हूँ। मुझे विश्वास है कि यह सत्कार सातवलेकर नामक व्यक्तिका नहीं है, अपितु वेदके प्रभावी मानवधर्मका है। यदि मैं अपनेको वेदधर्मकी जाग्रतिके लिए समर्पित न करता और अपने चित्रकलाके धंधेसे ही धनोपार्जन करता रहता, तो ९० क्या १०० वर्षका होनेपर भी मेरा ऐसा अभिनंदन होनेकी संभावना नहीं थी। यह विशाल समारंभ वास्तवमें आपके हृदयकी विशालता ही प्रकट करता है तथा उनमें वैदिक-धर्म और उसके आदर्शोंके प्रति जो विशाल प्रेम है, उसे प्रकट करता है। मैं तो उन ऋषियोंका एक छोटासा संदेशवाहक ही हूँ, जिन्होंने प्राचीन कालमें अभूतपूर्व तपसे इस श्रेष्ठ ज्ञानको उदित किया था। इस ज्ञानके प्रचारमें मैंने जिस प्रकार अपने अबतकके ४० वर्ष अर्पित किये हैं, उसी प्रकार मेरा शेष जीवन भी उस महत्कार्यमें अर्पित हो जाय, यही प्रार्थना आज फिर, आप सबकी साक्षीमें, मैं प्रभुसे करता हूँ।

मैं वैदिकधर्मकी ओर आकर्षित क्यों हुआ? अपना चित्रकलाका धंधा ही नहीं, राजनीतिक जीवन भी छोडकर मैं क्यों एकान्तनिष्ठासे इस कार्यमें लग गया? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर मैं आप लोगोंको देना चाहता हूँ। कुछ उदाहरण देकर मैं अपनी बातको समझानेका प्रयत्न करूँगा।

अपने जीवनमें वैदिकधर्मके प्रभावकी कई प्रत्यक्ष घटनाएँ मैंने देखी। सन् १९०६ में मैंने 'वैदिक राष्ट्रगीत' नामक पुस्तक, अथर्ववेदके बारहवें काण्डके प्रथम सूक्तपर लिखी। उसमें उन मंत्रोंका अर्थ और स्पष्टीकरण ही था। इसकी २००० प्रतियाँ बम्बईमें छापी गईं और उनमेंसे दो-ढाई सौका पहला बंडल ही मेरे पास पहुँचा था कि ब्रिटिश सरकारने उसको जप्त कर लिया। इसका हिंदी अनुवाद भी इलाहाबादमें छपा था। उसकी भी ३००० प्रतियाँ जप्त कर ली गयीं। तीन चार महिनेमें ही यह सब चमत्कार हुआ। मेरी समझमें नहीं आया कि वेदकी एक छोटीसी पुस्तकसे सरकारको इतना भय क्यों हुआ। परंतु इस घटनासे इतना तो स्पष्ट हो ही गया कि वैदिकधर्म यदि जनतामें जाग्रत हो तो ब्रिटिश सरकारके लिए भारतमें रहना असंभव हो जायगा।

सन् १९०१ में चित्रकलाके धंधेसे धन कमानेके उद्देश्यसे हैदराबाद गया। उस समय में लोकमान्य तिलकका अनुयायी था। इस कारण स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा तथा स्वराज्य आदि विषयोंपर व्याख्यान देता था। इसी समय आर्यसमाजसे मेरा संबंध हुआ और ऋषि दयानंदके ग्रंथ मुझे पढनेको मिले। मुझे भाष्य करनेकी उनकी प्रणाली पसंद आयी। क्योंकि उन्होंने वेदमंत्रोंको मानवी व्यवहार की दृष्टिसे अनुवादित किया था। मेरे व्याख्यान भी वेदमंत्रोंके आधार पर होते थे। उस समय जो सभाएं होती थीं उनमें स्वर्गीया श्रीमती सरोजिनी नायडूके पिता, श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय अध्यक्षका स्थान ग्रहण करते थे तथा मेरा काम वक्तृता देना होता था। स्व. केशवराव वकील व्याख्यानोंकी व्यवस्था करते थे। जनताको मेरे व्याख्यान पसंद आते थे और शीघ्र ही पता चला कि राज्यके अंग्रेज रेजीडेंटका ध्यान भी उनकी ओर आकर्षित हुआ है। उनसे निजाम सरकारपर दबाव डालकर हम लोगोंको राज्य छोडनेकी आज्ञा निकलवाई। इस तरह वेदज्ञानका प्रचार करने के कारण ही मुझे हैदराबाद छोडना पडा। इस घटनाका भी मुझपर यही प्रभाव हुआ कि मैं वैदिकज्ञान तथा धर्मकी तेजस्वितापर विश्वास करने लगा।

हैदराबाद छोडनेके पश्चात् मैं स्व. स्वामी श्रद्धानंदके पास गुरुकुल कांगडी चला गया। वहांके विद्यार्थियोंको मैं वेद तथा चित्रकलाका शिक्षण देने लगा। इसी समय महायोगी श्रीअरविंदके वेद तथा योग आदि विषयक गंभीर लेखोंसे मेरा परिचय हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि मैंने वेदकी गहराइयोंमें उतरनेका निश्चय किया। मुझे लगा कि गहरे उतरे बिना उसके रहस्योंसे परिचित होना संभव नहीं है। ऋषि दयानंद और श्री अरविंद परस्पर पोषक थे। हैदराबादमें मैं थिऑसफीसे भी परिचित हुआ था तथा उसके अध्ययनसे भी इस समय भारतीय ज्ञानभंडारके प्रति मेरी रुचि बढी।

गुरुकुल आनेपर मैंने मराठीमें 'वैदिक प्रार्थनाकी तेजस्विता' नामसे एक लेख लिखा, जो कोल्हापुरके 'विश्ववृत्त' मासिकमें छपा। इस लेखके कारण ब्रिटिश सरकार बहुत रुष्ट हुई। उसने राजापर दबाव डालकर हम सब याने पत्रिकाके संपादक, प्रकाशक, मुद्रक तथा लेखकपर राजद्रोहका मुकैदमा चलवाया। जरा विचार कीजिये कि वेदविषयक लेखके कारण राजद्रोहका अभियोग। संपादक श्री विजापूरकर, प्रकाशक श्री जोशी तथा मुद्रक जोशीराव तीनों ही ३॥ वर्षतक कैदमें रखे गये। मैं कोल्हापूरसे दूर था, इसलिये बहुत दिनोंतक पकडा नहीं जा सका। यद्यपि मुख्य अभियुक्त मैं ही था। लेकिन एक दिन मैं भी बंदी बना लिया गया। और हथकडीमें कोल्हापुर ले जाया गया। मार्गमें जगह जगह जनता वेदके लेखकका स्वागत करने स्टेशनोंपर आती थी। डेढ वर्षतक मैं भी जेलमें रहा और मुकदमा चलता रहा। अंतमें हम सब निर्दोष सिद्ध हुए और मुक्त किये गये। इस समय श्रीमती एनी बीसेंट और गायकवाड जैसोंने हमारा समर्थन किया था। परंतु वैदिक प्रार्थनाकी तेजस्विताने कैसे सचमुच प्रकट होकर ब्रिटिश सरकारको प्रभावित किया ?

इसके पश्चात् मैं लाहोर आया। अपना स्टुडियो खोल कर चित्रकला आदिका काम करने लगा। वहांके आर्यसमाजोंमें मेरे व्याख्यान होने लगे और शीघ्रही मैं पंजाबके सभी नगरोंमें व्याख्यान देनेके लिए जाने लगा। मैं अधिकतर वेदविषयपर ही बोलता था। पंजाबियोंके साथ मेरा मन मिलने लगा और मैं यहां स्थायीरूपसे रहनेका विचार करने लगा।

उस समय पंजाबमें कुख्यात ओडवायर गव्हर्नर था। उसकी सरकारको मेरे व्याख्यान पसंद नहीं आये। मेरे दूकान तथा घरपर पहरा बिठा दिया गया और आनेजानेवालोंकी निगरानी होने लगी। कई कार्यकर्ता गिरफ्तार भी हुए। मैं वेदपर बोलनेके अतिरिक्त कोई दूसरी बात नहीं करता था। परंतु उसपर भी रोकटोक होने लगी। अंतमें मुझे लाहोर छोडना ही पडा।

इन सब घटनाओंके कारण मेरे मनपर यह विश्वास जमता ही गया कि वेदमें कोई अंर्तनिहित सामर्थ्य है, जो प्रकट होकर यह सब करवाता है। मेरे मनने वेद तथा अन्य धार्मिक साहित्यके ही प्रकाशन तथा प्रसारमें अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर देनेका निश्चय कर लिया। लाहोर छोडते समय यही कल्पना मेरे भीतर जड पकड रही थी।

अब मैं दक्षिण महाराष्ट्रके सतारा जिलामें स्थित औंध नामक राज्यमें आ गया, जहांके राजा मेरे परिचित थे। उनकी सहायतासे सन् १९१८ में मैंने 'स्वाध्याय-मंडल' की स्थापना की और वेदानुसंधानका कार्य आरंभ किया। वेद प्रचारके लिए हिंदी तथा मराठीमें दो मासिक निकाले जिनके नाम 'वैदिकधर्म' तथा 'पुरुषार्थ' हैं। ये अब भी निकल रहे हैं, तथा इनमें एक गुजरातीका मासिक और जुड गया है, जिसका नाम 'वेदसंदेश' है। इसके अतिरिक्त मैंने हिंदी और मराठीमें 'भगवद्गीता' मासिक शुरू करके गीताकी 'पुरुषार्थ बोधिनी' टीका लिखी। इसमें गीताके श्लोकोंके साथ वेदमंत्रोंकी तुलना की गयी है। इस टीकाका अनुवाद हिंदी, मराठी, गुजराती, कन्नड और अंग्रेजीमें हुआ है।

वेद, उपनिषद्, रामायण और महाभारतके अनुवाद हिंदी और मराठीमें किये। इस तरह वेदानुसंधानका कार्य चलने लगा। पाठकोंने आर्थिक सहायता दी। 'स्वाध्यायमंडल' के भी छःसात सौ सदस्य बने। आर्थिक कठिनाई रहती थी क्योंकि जितना धन होता था, उससे ज्यादा प्रकाशनका कार्य रहता था। आजतक वही स्थिति है। लेकिन कार्य चलता रहा। सन् १९२२ में तो आर्थिक तंगियोंके कारण सब प्रकाशन बंद ही करनेका निश्चय करना पडा। लेकिन ईश्वरकी कृपासे ज्वालापूरके श्री लालचंदजी वानप्रस्थीने २०००) का चेक, बिना माँगे ही भेज दिया। इसके साथ ही स्वामी विश्वेश्वरानंदजीका भी एक पत्र आया। उसमें लिखा था कि यह धन वेदके शुद्ध मुद्रणके लिये है। अपरिचित धनीकी इस सहायताको मैंने

ईश्वरकी आज्ञा ही समस्त और वेदके पंडितोंको बुलाकर वेदोंका मुद्रण करवाया। इस समय हमनें चारों वेद, डाकव्ययसहित ५) में दिये थे। आज महँगाई इतनी बढ गयी है कि वही चीज हम १५) में भी नहीं दे सकते। तो भी हमने तीनबार चारों वेद छापे और प्रचार किया।

वेदोंका अध्ययन जारी रहा। मंत्रोंसे नये नये बोध प्राप्त होते रहे। यहां उनका थोडासा स्वरूप बताता हूँ।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः तत्र जाग्रतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥
(वा. यजु.३४-५५)

'प्रत्येक शरीरमें सात ऋषि हैं। ये सातों ऋषि प्रमाद न करते हुए उसका रक्षण करते हैं। ये सात जलप्रवाह जब सोनेवालेके स्थानको जाते हैं, अर्थात् जब मनुष्यको निद्रा लगती है, तब भी दो देव जागते रहते हैं और इस यज्ञशालाका रक्षण करते हैं।'

दो आँख, दो कान, दो नाक और एक मुख-ये सात ऋषि हैं। ये ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा उससे इस शरीररूपी यज्ञसत्रका संरक्षण करते हैं। इसी प्रकार शरीरके भीतर चलनेवाले विभिन्न रक्त प्रवाहोंको सात नदियोंका पवित्र स्थान माना है। सोनेके समय भी श्वास और उच्छ्वास नामक दो देव अपना कार्य करते हैं और इनके कारण जीवनकी गति अप्रतिहत चलती रहती है। मानवशरीरका यह वर्णन कितना उत्तम है, यह सभी देख सकते हैं।

शरीरका वर्णन करनेवाले और भी उत्तम मंत्र देखिये —

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ ३१॥
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२॥ (अथर्व १०।२)

'आठ चक्रों और नौ द्वारोंवाली यह देवनगरी अयोध्या है। इस नगरीमें सुवर्णमय कोश है जो तेजसे व्याप्त स्वर्ग ही है। तीन अरों तथा तीन आधारोंवाले इस सुवर्णमय कोशमें आत्मारूपी यक्ष रहता है, यह बात सभी आत्मज्ञानी जानते हैं।'

पृष्ठवंशके मूलाधार, स्वाधिष्ठान, आदि आठ चक्र और इन्द्रियोंके नौ छिद्र मिलाकर अयोध्या नामक यह देवनगरी बनती है, जिसमें ३३ देव रहते हैं। इसीके भीतर आत्मारूपी यक्षदेवका निवास है। यह सुवर्णमय कोशसे ढका है। आप देख कि शरीरका यह वर्णन कितना सुन्दर तथा सत्य है।

अब इस ज्ञानसे पूर्ण पुरुषकी परिभाषा देखिये—

+

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८ ॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेद अमृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २९ ॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥ (अथर्व. १०।२)

' जो ब्रह्मकी इस पुरीको जानता है, उसे पुरुष कहते हैं। जो अमृतसे आवृत इस ब्रह्मकी नगरीको जानता है, उसे ब्रह्म और ब्राह्म अर्थात् सब देव-आंख, कान, नेत्र आदि— दीर्घ आयु और सुप्रजा देते हैं। जरासे पूर्व उसे ये इन्द्रियरूपी देव नहीं छोडते अर्थात् वह दीर्घजीवी होता है। जो ब्रह्मकी इस पुरीको जानता है, उसे पुरुष कहते हैं। '

यह शरीर देवोंकी नगरी हैं, सात ऋषिओंका पवित्र आसन है, अमृतसे युक्त स्वर्गधाम है तथा इन सबकी स्थितिको जानकर दीर्घजीवन प्राप्त करनेवालोंको पुरुष कहते हैं, आदि बातें वैदिक दर्शनकी देन है। इनकी महिमा तथा गौरव दर्शनीय है।...देवका दूसरा नाम निर्जर है। जहाँ ये रहते हैं, जरा पास नहीं जाती। देवोंका गुण अमृत देना है। शरीरमें स्थित देवोंसे हम अमृत प्राप्त करते हैं और दीर्घजीवी होते हैं। प्राचीन ऋषि ये अनुष्ठान करते थे। इसलिए वे अधिक दिन जीवित रहते थे।

शरीरके छिद्रोंको इन्द्रिय नाम दिया गया है। तात्पर्य यह कि जिनसे इन्द्रकी शक्ति प्रकट हो। इन्द्र अर्थात् साक्षात् परमेश्वर। उसकी अग्निरूपी शक्तिसे वाक्, वायुरूपी शक्तिसे प्राण, सूर्यरूपी शक्तिसे आंख, दिशाओंसे कान आदि बने हैं। हृदयमें इन्द्र स्वयं है और वहांसे अपनी शक्ति वितरित करते हैं। इसलिये इन्द्रको ' इदं-द्र ' कहते हैं। यह अपनी अभिव्यक्तिके लिये शरीरमें विविध सुराख करते हैं तथा उन सबमें एक एक देवोंको बिठाते हैं। स्वयं बीचमें रहकर उनका नियंत्रण करते हैं। मैं वही इन्द्र हूं। वेद कहता है—

' अहं इन्द्रो। न पराजिग्ये। ' (ऋग्वेद १०।४८।५)

' मैं इन्द्र हूं। मेरी पराजय नहीं हो सकती।' इस आत्मविश्वासका अनुष्ठान, देवताओंकी अपने शरीरमें बसनेवाली शक्तिओंका अनुभव करनेवालेको हो सकता है। ' मैं इन्द्र हूं और मेरे आधीन ये ३३ देव हैं। मैं इनका संचालक हूं। इसलिये मेरी उन्नति निश्चित है '— यह वेदके मन्त्रोंमें वर्णित ज्ञान है। इस प्रकार अपने मनको एकाग्रता जिस देवतापर की जायगी, उसकी शक्ति अपने अधीन होकर अपनी सहायिका बन सकेगी।

हमारे पृष्ठवंशमें आठ चक्र हैं। यथा- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रधार। इन पर मनके संयमसे अनेक शक्तिओंकी प्राप्ति होती है।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम् । (अथर्व. १०।७।१७)

अर्थात् जो पुरुष शरीरमें ब्रह्म देखते हैं, वे परमेष्ठि प्रजापतिको जानते हैं। देव निर्जर हैं। उन देवोंको (संमनसः देवाः) अपने मनके अनुकूल कर लेनेसे मनुष्य वृद्ध होनेपर भी जरा-रहित रह सकता है। अधिक आयु होनेपर भी तरुणवत् रह सकता है। वेदमंत्रोंद्वारा प्रतिपादित यह अनुष्ठान मननीय है।

अंतरेण तालुके ये एष स्तन इव अवलंबते । सा इंद्रयोनिः । (ऐ. उ.)

स्पष्ट कहा गया है कि 'तालुके ऊपर मस्तकमें एक स्तन जैसा लटकता है, वही इन्द्रयोनि है।' इन्द्र रस उसी ग्रंथीसे निकलता है। यही रस शरीरको तरुण रखता है। ऐसी ग्रंथियां शरीरमें अनेक हैं। आजकल इन ग्रंथियोंके रस इन्जेक्शनोंके लिये बाजारोंमें भी मिलते हैं। विचारणीय यह है कि अपने मनको इन ग्रंथियोंपर एकाग्र करके जीवनरस प्राप्त करना उत्तम है अथवा इंजेक्शनके द्वारा इस रसका शरीरमें भरा जाना अच्छा है। वैदिकधर्म यह बतलाता है कि इन देवी ग्रंथियोंपर मनके संयमनद्वारा नियंत्रण किया जाना चाहिये।

सज्जन लोग विचार करें कि हमें अपने शरीरको 'पीप-मल-मूत्रका गोला' मानकर उसका अपमान करना उचित है अथवा इसे शरीरको देवताओंका मंदिर मानकर उसके अन्दर बसनेवाली अनेक दैवीशक्तियोंको अपने मानसिक शक्तिके अनुकूल बनाकर अपना लाभ सिद्ध करना। वेदका कथन है कि अपने शरीरको देवताओंका अधिष्ठान मानो और अपने अंदर निहित दैवीशक्तिओंको अधीन करके अपना काम सिद्ध करो।

चारों वर्ण परमेश्वरके शरीरके चार अवयव हैं। यह राष्ट्रीय ऐक्य की उच्च कल्पना वेदने प्रकट की है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १२ ॥ (ऋ. १०।९०)

ब्राह्मण इसका मुख, क्षत्रिय इसके बाहु, वैश्य इसकी जंघाएं और शूद्र इससे पांव है। विराट् पुरुषके ये चार वर्ण चार अवयव हैं। ये चारों एक ही शरीरके चार अवयव हैं। इतनी एकता की कल्पना वर्णित हुई है। वास्तवमें मानवजातिकी एकताकी कल्पना इसमें निहित है। किन्तु हम व्यवहारमें राष्ट्रदुरपयर लगाकर इसे देखते हैं। मानवजातिकी उन्नतिके लिए ऋषियोंने जो प्रयत्न किये, उसका वर्णन अथर्ववेदके एक मंत्रमें इस प्रकार किया गया है—

भद्रं इच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षां उपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ (अथर्व. १९।४१)

'सब मानवोंका कल्याण करनेवाले आत्मज्ञानी ऋषियोंने प्रारंभसे तप किया और दक्षतासे आचरण भी किया। उससे राष्ट्र बल-ओजका निर्माण हुआ। इसलिये सब विबुध इस राष्ट्रके सामने विनम्रभावसे सेवाके लिये उपस्थित रहें।'

स्पष्ट है कि ऋषियोंके प्राथमिक प्रयत्नसे राष्ट्रका निर्माण हुआ और इस राष्ट्रका हित करनेके लिए सब मनुष्य तत्पर रहें। मनुष्योंके प्रयत्नसे राष्ट्रकी उत्पत्ति हुई है। अतएव हमें ऋषि-ऋणसे मुक्त होनेके लिए राष्ट्रसेवा करनी चाहिये। इसी विषय में और भी उल्लेख है।

आ यद् वां ईयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ (ऋ. ५।६६।६)

'हे व्यापक दृष्टिवालो 'हे मित्रो, हम सब विद्वान् मिलकर ऐसे विस्तृत स्वराज्य के लिए प्रयत्न करें, जिससे सबका पालन बहुसंख्यकों द्वारा किया जाय।'

इस मंत्रमें ' बहुपाय्य स्वराज्य ' की उच्च कल्पना उत्तम रीतिसे वर्णित हुई है, जिसमें बहुतोंकी संमतिसे प्रजापालक होता है। ऐसे विस्तृत स्वराज्यमें जनताके कल्याण करनेके लिए हम सब ज्ञानी संबद्ध हों, यही इस मंत्रमें दर्शाया है। यहां स्वराज्यके विशेषण ' व्यचिष्ठ ' और ' बहुपाय्य ' ये दोनों हैं। चारों वेदमें राज्य, राष्ट्र आदि शब्द अनेक बार व्यवहृत हुए हैं। पर स्वराज्यके अतिरिक्त अन्य किसीके लिए इन विशेषणोंका उपयोग नहीं हुआ है। इससे स्वराज्य की महत्ता स्पष्ट है। राज्य और स्वराज्यमें भेद है और बहुपाय्य स्वराज्य उनसे भी श्रेष्ठ है। वह ' जन-राज्य ' है। वेदमें वर्णित १०।१२ प्रकारके राज्य-शासनोंमें स्वराज्यको ही ये संज्ञाएं दी गई हैं। वेदने स्पष्टतः स्वराज्यकी विशेषतापर प्रकाश डाला है। यह विचारणीय एवं मननीय है।

यहां एक बात विशेष विचार करने योग्य है। उपरोक्त मंत्रमें स्वराज्यकी व्याख्या के साथ साथ ही विधानसभाके सदस्योंकी योग्यताका भी उल्लेख हुआ है।

१ ईयचक्षाः- सदस्य संकुचित दृष्टिवाले न हों। उनका दृष्टिकोण बहुत व्यापक होना चाहिये।

२ मित्रः- ये आपसमें झगडनेवाले न हों और मित्रवत् व्यवहार करनेवाले होने चाहिये।

३ सूरिः- सदस्यगणोंको विद्वान् होना आवश्यक बतलाया गया है। अर्थात् इनमें किसी ग्रंथकी टीका या भाष्य करनेकी क्षमता भी होनी चाहिए।

ये तीन कसौटियां ' बहुपाय्य ' स्वराज्यकी विधानसभाके सदस्योंकी हैं। वर्तमान विधानसभाके सदस्योंकी कसौटी २१ वर्षकी आयु मात्र है। इसीलिए हस्ताक्षर न कर सकनेवाले भी सदस्य बने हुए हैं। वैदिक स्वराज्य और इस कालकी विधान-सभाके सदस्योंकी योग्यताकी तुलना आजसे कीजिए। फिर आप स्वयं ही निर्णय करें कि कौनसी पद्धति श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है।

वेदमें प्रजाको ही शासक (राजा) के अंग और अवयव कहा गया है—

विशो मे अंगानि सर्वतः ॥ ८ ॥
विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥ (वा यजु. २०)

'प्रजाजनोंके आधारपर राजा रहता है और प्रजाजन ही राजरूपी शरीरके अंगादि व अवयव हैं।'

यह कितनी उत्तम कल्पना है कि प्रजाजन और राजासे मिलकर राज्यशासनका एक शरीर निर्मित हुआ।

प्रजाके चुने हुए व्यक्तिओं द्वारा राज्यकार्यका संचालन-शासन और ऐसे राजा व प्रजाकी राज्यशासनमें एकता स्थापित हुई हो, उसमें अन्याय क्या कभी संभव है?

ऋषियोंके तपके पुण्यप्रतापसे 'प्रजा ही राजा' के सिद्धान्तको लेकर सर्वांगीण उन्नतिके लिये प्रभावशाली शासनकी परंपरा प्रतिष्ठित हुई। इस राज्यशासनकी आधारभित्ति प्रत्येक ग्राममें स्थापित ग्रामसभाएं थी, उनमें राष्ट्रसमितिका निर्माण हुआ तथा शासनतंत्र शुरू हुआ। वेदमें ग्रामसभाका उल्लेख है—

सा उदक्रामत् सा सभायां न्यक्रामत्।
सा उदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत्॥
सा उदक्रामत् सा आमंत्रणे न्यक्रामत्। (अथर्व. ८।१०।८,१०,१२)

'जनशक्तिकी उत्क्रांति सभा, समिति और आमंत्रण (मंत्रिमंडल) में परिणित हुई।' ग्राममें ग्रामसभाका निर्माण हुआ, राष्ट्रमें राष्ट्रसमिति बनी और उसके बाद मंत्रिमंडलका गठन हुआ तथा शासनका कार्य संचालित हुआ। ऋषियोंके तपसे ग्रामोंमें ग्रामसभाएं स्थापित हुई और ग्रामोंका कार्य विधिवत् चलाया जाने लगा। इसी प्रकार राष्ट्रसमिति व मंत्रिमंडल बने और इनके द्वारा राष्ट्रका शासन होने लगा। ऋषियोंके तपका यही अर्थ है। राज्यशासन शुरू हो जानेपर ऋषियोंकी कामना क्या थी, उसका आभास इसमें मिलता है।

'समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट्' (ऐतरेय.)

अखंड पृथ्वीपर एक विधानसे राज्यका संचालन हो, यह ऋषियोंकी आकांक्षा थी। आजके 'यूनो' संयुक्त राष्ट्रसंघ और प्राचीन ऋषिकाल (पृथिव्याः एकराट्) की कल्पना समान उद्देश्यकीसी प्रतीत होती है। हमारे ऋषियोंकी यह महत्त्वाकांक्षा सबके आनंदका विषय है। ये ऋषि उस प्राचीन समयमें भी समस्त पृथ्वी पर एक राज्य तथा सर्वजन सुखार्थकी भावनासे परिपूरित एक ही विधान हो, ऐसी अपेक्षा करते थे, जो हम आज चाहते हैं, विश्वके समस्त राष्ट्र जिसे चाहते हैं। विश्वमें स्थायी शान्ति, सुख और कल्याणकी यह मनोमुग्धकारी कल्पना भारतीय संस्कृतिकी देन है, ऋषियोंके पवित्र तपसे उद्भूत निधि है, वेदादिशास्त्र जिसके प्रमाण हैं।

वैदिककालमें राज्यका सेनाविभाग भी नियम और अनुशासनबद्ध था। वे सात-सातके पंक्तिमें चलते थे। एक स्थानपर रहते थे तथा उन सबका वेश और शस्त्रास्त्र समान होते थे। आज पश्चिमके देशोंमें जैसी सेना होती है, उसी प्रकारकी वैदिक-कालमें होती थी। आश्चर्यकी बात है कि यहां वेदका पठन-पाठन तो होता था,

वैदिकोंको दक्षिणा भी मिलती रही परंतु हमारी सेना अनुशासनबद्ध नहीं थी। वेदज्ञानका उपयोग भी हो सकता था, यही पता नहीं था। इससे सिद्ध होता है कि वेदज्ञानके सच्चे प्रचारकी आवश्यकता है।

वेदमें हम देखते हैं कि पुरोहित ही सैन्यकी व्यवस्था करता है, सैनिकोंको शिक्षित करता है। तथा किलोंकी रक्षा करता है।

संशितं मे इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णुः येषामस्मि पुरोहितः॥ १॥
नीचैः पद्यन्तां अधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम्॥ ३॥
तीक्ष्णीयांसः परशोः अग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः॥ ४॥
एषां अहं आयुधा संस्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि।
एषां क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णुः एषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः॥ ५॥
(अथर्व. ३।१९)

'मेरा यह ज्ञान तेजस्वी हो, मेरा यह वीर्य और बल तेजस्वी हो, क्षात्रसामर्थ्य अविनाशी हो। जिनका मैं पुरोहित हूँ, उनका तेज बढे। हमारे ज्ञानी और धनी मित्रोंपर जो सेना लेकर हमला करते हैं, वे नीचे गिरे अवनत हों। ज्ञानसे मैं शत्रुओं को क्षीण करता हूँ तथा स्वजनोंको उन्नत करता हूँ। जिनका मैं पुरोहित हूँ उनके शस्त्रअग्नि तथा इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण बनाता हूँ। उनके राष्ट्रको वीर्यवान् करके शक्तिशाली बनाता हूँ। उनका क्षात्रतेज अविनाशी है। सब देव उनके चित्तका संरक्षण करें।

यह पुरोहितका वक्तव्य है। उस समयका पुरोहित यह सब करता था। सेनाकी शिक्षा, शस्त्रास्त्रोंकी व्यवस्था, किले तथा नगरीकी रक्षा, शत्रुपर हमला तथा आक्रमण से अपने राष्ट्रकी रक्षा आदि उसीके काम थे। क्षत्रिय लडते अवश्य थे परंतु योजना बनानेवाला पुरोहित ही होता था। कहा गया है—

दण्डा इव इत् गो-अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठः आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त॥
(ऋ. ७।३३।६)

'गौओंको चलानेवाले कोमल दण्डोंके समान भारत देशके लोग कोमल प्रकृतिके तथा आपसमें झगडनेवाले थे। वसिष्ठ इनका पुरोहित हुआ और उनकी उन्नति हुई।'

मनु कहता है—

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति। (मनु. १२।९७)

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (मनु. १२।१००)

'चार वर्ण, तीन लोक तथा चार आश्रम और तीन कालोंमें होनेवाले सब कर्तव्य वेदसे सिद्ध होते हैं । सेनापतिका कार्य, राज्यशासन, दण्डनीतिका व्यवहार तथा सब लोकोंपर अधिकारके सभी कार्य वेद जाननेवाला सुगमतासे कर सकता है । '

मनुस्मृतिकी यह साक्षी देखकर प्रतीत होता है कि वेदमें व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय सभी कर्तव्योंका निर्देश है । इसलिए आजके दिन वेदका अध्ययन तथा संशोधन करनेकी विशेष रूपसे आवश्यकता है । हम अपनी क्षमताके अनुसार कई भाषाओंमें प्रकाशनका यह कार्य कर रहे हैं । और भी बहुतसा कार्य करना शेष है । हमारी इच्छा है कि पाठ्यपुस्तकोंके रूपमें वेदज्ञानको प्रकाशित करें, जिससे उसे सभी बालक अपने स्कूलकी शिक्षाके साथ ही पढ सकें । साथ ही वैदिक सूक्तियोंके संकलन, जो बहुत बोधक तथा उत्साहवर्धक हैं, प्रकाशित किये जायें । वेदसंबंधी विभिन्न विषयोंपर, जनताकी दृष्टिसे, हम बहुतसे छोटे छोटे व्याख्यान भी प्रकाशित कर रहे हैं, जिनका मूल्य भी बहुत अल्प है ।

यह समस्त कार्य बहुत बडा है । किसी भी एक व्यक्तिके लिये उसे करना संभव नहीं । इसके लिए बहुतसे विद्वान् एकसाथ लगने चाहिए तथा बहुतसा धन भी अपेक्षित है । इस उत्सवसे यह सिद्ध होता है कि वैदिकधर्मके प्रति जनतामें प्रेम बढ रहा है । अखिल भारतके श्रेष्ठ पुरुषोंमें इसका महत्त्व स्वीकृत हुआ है । वह प्रकाशनके ठोस कार्यमें परिणत हो, यही परमेश्वरके निकट मेरी प्रार्थना है । अन्तमें, फिर एकबार, अपने इस अभिनंदनके लिए, मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ । मैं आशा करता हूँ कि आप सब वैदिकधर्मकी उन्नतिके लिए, जो भारतीय संस्कृतिका मूल है, परंतु जिसे हम आज विस्मृत कर चुके है, यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे ।

श्री पं. सातवलेकरको डी. लिट्. का पदवीदान समारोह

रविवार १०।४।६६ के दिन पूना विश्वविद्यालयकी तरफसे पण्डितजीको डॉक्टर ऑफ लिटरेचरकी सम्मानित पदवी प्रदान करने उस विश्वविद्यालयके प्रतिनिधि डॉ. त. गो. माईणकर और उप प्रस्तोता श्री सरदेशपाण्डे पण्डितजीके निवास स्थानपर ही आए थे । स्वाध्यायमण्डलके वेदमंदिरमें एक सभाका आयोजन किया गया था । उस सभामें बोलते हुए डॉ माईणकरने कहा– " प्राचीन ऋषिके कार्यके समान ही पण्डित सातवलेकरके जीवनकार्यमें एक स्वतंत्र जीवनका दर्शन निर्माण हुआ है । वेदविद्याको प्रदान करनेवाली संहिताओंका संशोधन और संकलन करनेका पण्डितजीका यह कार्य अद्वितीय है, यह उनका कार्य भारतीयशास्त्रके अध्ययनमें हमेशाके लिए एक अद्वितीय कार्य रहेगा । पण्डितजीके इस ऋषितुल्य जीवनमें संशोधन, देशभक्ति और कलाका एक त्रिवेणी संगम है, इसीलिए हम एक अभिमानके

केन्द्रके रूपमें उनकी तरफ देखते हैं। उन्हें पूना विश्वविद्यालयकी तरफसे यह पदवी देकर हम अपना ही गौरव कर रहे हैं।

इसी अवसरपर बडौदा विश्वविद्यालयकी ओरसे प्रतिनिधिके रूपमें पधारे हुए डॉ. भोगीलाल साण्डेसराने कहा कि– " सांस्कृतिक दृष्ट्या यह कार्यक्रम बहुत महत्त्वपूर्ण है। पण्डित सातवलेकरका सारा जीवन ज्ञानकी सेवामेंही बीता है। संस्कृत-साहित्यकी सेवा ही उनकी साधना है। इसी साधनाके कारण प्रजाने हृदयसे उनका सम्मान किया है। पण्डितजीने जिस परम्पराके सम्मानके लिए अपना जीवन अर्पित किया, उस परम्पराका यह सत्कार है। प्राचीन ऋषियोंके जीवनके बारेमें हम जो पढते आए हैं, उन्हीं ऋषियोंके जीवनको पण्डितजीने अपने जीवनकालमें साकार करके दिखाया है। "

" पण्डितजी अर्धशताब्दीसे इस साधनाको निरन्तर करते आ रहे हैं। इसलिए उनके जीवनमें न केवल गुरुकुलत्व और विद्यागुरुत्वका ही निर्माण हुआ है, अपितु ऋषिदृष्टिका भी निर्माण हुआ है। इस दृष्टिसे उनका जितना सम्मान किया जाए, उतना थोडा ही है। "

" गुजरात विश्वविद्यालयके प्रतिनिधि लालभाई नायकने कहा कि– " लोगोंको नीति और अध्यात्मकी तरफ प्रेरित करते हुए पण्डितजीने बडा भारी काम किया। उन्होंने संस्कृत साहित्यके क्षेत्रमें बडा भारी संशोधनका कार्य किया। संस्कृत प्रचारके लिए वे सदासे प्रयत्नशील रहे और उन्होंने उस कार्यके द्वारा शान्तिसे जीवन बितानेका पाठ लोगोंको पढाया। गुजरात विश्वविद्यालयकी तरफसे उनका गौरव करते हुए मुझे आनन्द हो रहा है। "

तदनन्तर बम्बईके प्रसिद्ध उद्योगपति श्री प्रतापसिंहजीने कहा कि- " भारत सरकारको चाहिए कि वह पण्डितजीको " भारतरत्न " की पदवी देकर उनके कार्यका गौरव करे। आजका दिन न केवल पारडीवालों, गुजरातियों और महाराष्ट्रियोंके लिए ही गौरवरूप है, अपितु सारे देशके लिए गौरवका दिन है। स्वार्थका त्याग करके अपना सारा जीवन देशके लिए अर्पित कर दिया। ऐसे भारतके एक सेवकका हम आज गौरव कर रहे हैं। सौ वर्षकी आयु होनेपर भी ये वेदकार्यमें संलग्न हैं। इस वैदिक संस्कृतिमें सभ्यताके मूल्य रत्नके रूपमें भरे पडे हैं। उन रत्नोंको लोगोंको प्राप्त करानेके लिए पण्डितजीने जीवनभर प्रयत्न किया। उन प्रयत्नोंका पूना विश्वविद्यालयने जो सत्कार किया है, उससे मानों वह स्वयं ही गौरवान्वित हुआ है। पण्डितजीने जो वेदोंका कार्य किया है, वह चिरन्तन है। विदेशोंमें कोई ऐसा व्यक्ति होता तो लोग उसके पीछे पागलसे हो जाते। पर भारतमें आजतक इस कार्यका मूल्यांकन नहीं किया गया। "

इसके बाद एक सामाजिक कार्यकर्ता श्री द. ए. देशपाण्डेने कहा कि- " एक विशिष्ट साधनाके मार्गसे जीवनको ले जाना पडता है, तभी वह यशस्वी होता है।

वेदके प्रारंभमें ही विद्याके देव 'वाचस्पति' से प्रार्थना करते हुए कहा है कि " सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि " हे भगवन् ! हम हमेशा ज्ञानके अनुकूल रहें, कभी भी ज्ञानके विरोधीन हों। शिक्षा राष्ट्रकी बुनियाद है। इस बातको दृष्टिमें रखकर ऋषियोंने आश्रमोंकी स्थापना की थी। ये आश्रम वस्तुतः विश्वविद्यालय थे। वसिष्ठके आश्रममें हजारों विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। उन सबके पालन पोषणका भार उस आश्रमके कुलपति वसिष्ठ पर था।

एक दूसरा तथ्य जो सामने आया, वह था तत्कालीन विमानविद्याके बारेमें। जैसा कि मैं पहले ही कह आया हूं कि वेदकालीन भारत भौतिक विज्ञानक्षेत्रमें भी अत्युन्नत था। अश्विनीकुमारोंके सूक्तोंमें अनेक ऐसे मन्त्र आये हैं, जो विमानोंका वर्णन करते हैं। ऋग्वेदमें एक मन्त्र आया है—

तिस्रः क्षपः त्रिः अह अतिव्रजद्भिः नासत्या भुज्युं ऊहथुः पतंगैः।
समुद्रस्य धन्वन् आर्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः॥
(ऋ. १।११६।४)

'हे अश्विनो ! तुमने छ घोडोंवाले, सौ पैरोंवाले, समुद्र, रेगिस्तान और नदनदियोंको पार कर जानेवाले तथा तीन दिनतक लगातार उड़ान भरनेवाले पक्षियोंसे भुज्युको उठाया।'

यहां ये पक्षी विमान ही हैं जो छ अश्वशक्तिवाले अर्थात् छ छ हॉर्सपावरवाले तीन तीन मोटरोंसे युक्त होकर तीन रात और तीन दिनतक बिना कहीं रुके लगातार उडानें भरते थे, और समुद्र और रेगिस्तानोंको आसानीसे पार कर जाते थे। आजके विमान भी बिना बीचमें रुके और बिना ईंधन लिए इतने लम्बे समयतक नहीं उड सकते।

'हे अश्विनो ! तुम्हारे रथ तीन पहियोंवाले, वायुके समान वेगवान् अथवा उससे भी अधिक मनके समान वेगवाले तथा शीघ्र चलनेवाले पक्षियोंसे खींचे जानेवाले हैं।'
(ऋ० १।११८।१, ४)

अश्विनौके ये रथ आजके हेलीकॉप्टरकी तरह जहां चाहे वहां आकाशमें ही स्थिर किए जा सकते थे। इस प्रकार वेदोंमें विमान-विद्याका अद्भुत वर्णन है।

चिकित्साक्षेत्रमें भी वैदिकऋषि बहुत निपुण थे। चिकित्साशास्त्रका वर्णन अश्विनौके सूक्तमें और अथर्ववेदमें मिलता है। उनमें भी ऋग्वेदमें आए हुए चिकित्साशास्त्रकी साम्यता आजके एलोपैथी पद्धतिसे और अथर्ववेदके चिकित्साशास्त्रकी साम्यता आजके नेचुरोपैथीसे की जा सकती है। अश्विनौ ये दो देवोंकी एक जोडी है, जो हमेशा साथ साथ रहते हैं। ये दोनों वस्तुतः देवोंके वैद्य हैं। इनमें एक औषधि चिकित्सामें कुशल है और दूसरा शल्यचिकित्सामें। इन्होंने च्यवन ऋषिका कायाकल्प करके उनकी वृद्धावस्था दूर की और उसे फिरसे तरुण बनाया। इस कायाकल्पका प्रयोग दो जर्मन डॉक्टरोंने भी किया था, और उसमें उन्हें काफी

सफलता भी मिली थी। आज भी यहाँके पास आयुर्वेदिक वैद्योंकी देखरेखमें इसका प्रयोग किया जा रहा है। और उन्होंने पर्याप्त सफलता भी प्राप्त कर ली है। अश्विनोंने इस विधिसे वृद्ध च्यवनके शरीर परसे झुर्रीदार चमड़ी उसी प्रकार उतार दी जिस प्रकार कोई अपने शरीर परसे कवच उतारता है। (ऋ. १।११६।१०)

इसी प्रकार विश्पला नामक एक राजपुत्रीकी टाँग युद्धमें कट गई थी, तो अश्विनोंने उस कटी हुई टाँगकी जगह एक लोहेकी टाँग लगाकर उसे चलने फिरने योग्य बनाया। (ऋ. १।११६।१५) यह किस प्रकारका लोहा था? यह अन्वेषणीय है। इसी प्रकार आँखोंका ऑपरेशन करके अन्धोंको दृष्टिवाला बना देनेका वर्णन भी ऋग्वेदमें है। (ऋ. १।११६।१६) अथर्ववेदमें जलचिकित्सा, अग्निचिकित्सा, मणिचिकित्सा आदि प्राकृतिकचिकित्साओंका वर्णन है। अथर्ववेदमें कहा है—

अप्सु मे सोमोऽब्रवीत् अन्तः विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवं॥ (अथर्व. १।६।३)

' सोमने मुझसे कहा है कि जलके अन्दर सभी औषधियां हैं और अग्नि भी कल्याणकारी है। '

इस प्रकार अनेक भौतिक विद्याओंका वेदमें वर्णन है। जो तत्कालीन विकसित संस्कृति एवं सभ्यताके द्योतक हैं। इस प्रकार वेदोंके अध्ययनके दौरानमें अनेक आश्चर्यजनक तथ्य मेरे सामने आये, जिन्हें मैंने अपने ग्रन्थोंमें पाठकोंके सामने लानेका प्रयत्न किया है। मैं वस्तुतः उस वेदभगवान्‌का ऋणी हूँ, जिसने मेरे हृदयमें ज्ञानकी ज्योति जलाई और लोगोंकी सेवा करनेका मुझे अवसर प्रदान किया।

अन्तमें, मैं पुनः विश्वविद्यालयके अधिकारियोंका आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस सम्मानके योग्य समझा उस विश्वविद्यालयके तथा अन्य संस्थाओंके प्रतिनिधि, जो यहाँ उपस्थित हैं तथा अन्य सभी सज्जनोंका भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने यहाँ पधारनेकी कृपा की।

\+ \+ \+

(१६) १०० वां जन्म दिवस

१९ सितम्बर १९६६ का वह पुण्य दिन। गणपति वीरता की साक्षात् प्रतिमूर्ति और हिन्दुओंका आदर्श देव है। वह दिन गणेशोत्सवका था। ऋषिपंचमीका पर्व और उसी दिन पंडितजीने ९९ वां बरस पारकर १०० वें वर्षमें पदार्पणकिया। इस दिनका समारंभ छोटा होने हुए भी एक विशेषता रखता था।

उस दिन सबेरे ८ बजे दीर्घायुष्यके मंत्रोंसे एक यज्ञ सम्पन्न हुआ उस यज्ञमें पण्डितजी व उनकी पत्नी सौ. सरस्वतीबाईने सोत्साह भाग लिया। यज्ञका पौरोहित्य श्रुतिशील शर्माने किया। उस यज्ञमें पण्डितजीके मुखसे उच्चरित मंत्रोंके श्रवण

करनेका लाभ अनेकोंको मिला। इस समयके प्रसंगने वेदकालीन ऋषियोंके तपोवनके दृश्यको लोगोंके सामने साकार कर दिया। इसके बाद सत्यनारायणकी पूजा हुई।

शामको ४॥ बजे वेदमन्दिरमें पण्डितजीके सम्मानार्थ एक सभा संघटित हुई। बाहरके भी लोग उसमें सम्मिलित हुए थे। सभाकी शुरुआत " आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो " इस वैदिक राष्ट्रगीतसे हुई। वैदिक प्रार्थनाके बाद अहमदाबादके प्रसिद्ध वकील और जनसंघी नेता श्री वसन्तराव गजेन्द्रगडकर, दक्षिण गुजरातके संघ प्रचारक श्री केशवराव देशमुख, उमरगावके श्री द. ए. देशपाण्डे, संस्कृत विद्यामंडल अमलनेरके संचालक डॉ. दा. बि. गर्गने अपने अपने श्रद्धाप्रसून अर्पित किए।

डॉ. गर्गने कहा कि- ' हमने अमलनेरमें संस्कृतविद्यामण्डलकी स्थापना की, हमारे इस कार्यके पीछे पण्डितजीकी ही प्रेरणा थी। एकलव्यने जिसप्रकार द्रोणाचार्यकी प्रतिमा बनाकर शस्त्रास्त्रकी विद्या सीखी, उसीप्रकार हमने भी पण्डितजीकी फोटो रखकर विद्यालयकी स्थापना की। आज हमारी शाला उत्तम रीतिसे चल रही है। यह सब परमात्माकी कृपा और पण्डितजीके आशीर्वादका ही फल है। " अपने इस संक्षिप्त भाषणके बाद श्री गर्गने विद्यामण्डलकी तरफसे पण्डितजीको १०१ रु. प्रदान किए।

इसके बाद दहाणु हाईस्कूलके शिक्षक श्री भण्डारी और बम्बईके प्रसिद्ध पत्रकार श्री श्री. रा. टिकेकरने अपनी शुभ कामनायें प्रकट कीं। तदनन्तर श्रुतिशील शर्माने पण्डितजीके कुछ संस्मरण सुनाये।

अन्तमें सम्मानका उत्तर देते हुए पण्डितजीने कहा— कि प्राचीनकालमें अधिकतर लोग १०० वरससे ज्यादा जीवित रहते थे। आज भौतिक विचारोंकी वृद्धिके साथ साथ लोगोंकी आयुकी मर्यादा घटती जा रही है। पर यदि हम फिर अध्यात्मका सहारा लें, तो फिर हमारी आयुमर्यादा बढ सकती है। आयुको बढानेका यही एक उपाय है। "

भारतीय तिथिके अनुसार भाद्रपद कृष्ण षष्ठीको पण्डितजीका जन्मदिन है। अत उस दिन तदनुसार ६ अक्टूबर १९६६ को पारडीमें बडे पैमानेपर एक कार्यक्रमका आयोजन किया गया।

उस दिन मण्डलके कम्पाऊण्डमें ही एक विशाल मण्डप डाला गया था। उसके मध्यभागमें एक वेदि बनाई गई थी। बिल्कुल ठीक ८॥ बजे आसपासका सारा वातावरण वेदमंत्रोंके पाठसे निनादित होने लगा। इस कार्यके लिए बम्बईसे वेदपाठी बुलाये गए थे। सबेरे ८॥ से १२ तक वेदपाठ और यज्ञका कार्यक्रम चला। बम्बईसे आए हुए वेदपाठियोंने और गुजरातके सन्त परमपूज्य श्री रंग अवधूतके विशेष प्रतिनिधि श्री नन्दकान्त शुक्लने अपने सुस्वर वेदपाठसे सारे वातावरणको पवित्र कर दिया।

इस अवसर पर संघचालक श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर (गुरुजी) उपस्थित थे। शामको ५ बजे सत्कारसमारोहका कार्य प्रारंभ हुआ। समारोहकी शुरुआत वेदमंत्रोंके गायनसे हुई। तदनन्तर संस्थाके मंत्री श्री वसन्तराव सातवलेकरने अभ्यागतोंका स्वागत करते हुए कहा कि– " पण्डितजीकी जन्मशताब्दिके अवसरपर इस संस्थाके प्रांगणमें आप सब अभ्यागतोंका स्वागत करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। परमपूजनीय गुरुजीका सारा समय देश सेवाके कार्यमें लगा रहता है। इसके बावजूद भी हमारी नम्र प्रार्थनाको स्वीकार करके वे यहां पधारे, तदर्थ मैं उनका अत्यन्त ऋणी हूँ। "

" श्री पण्डितजीके वेदभाष्य आत्ममननके परिणाम हैं। उनके भाष्य किसी भी दूसरे भाष्यकारके भाष्यपर आधारित नहीं है। इस कारण उनके ग्रंथ सबसे भिन्न हैं। उनमें अगाध ज्ञान भरा पड़ा है। "

इस स्वागत भाषणके अनन्तर अनेकों नेताओं एवं विद्वानोंके द्वारा इस अवसरपर प्रेषित शुभसन्देशोंके वाचनके बाद स्वाध्यायमण्डलके कार्यकर्ताओंकी तरफसे एक सम्मानपत्र अर्पित किया गया। सम्मानपत्र अर्पित करते हुए संस्थाकी संस्कृत परीक्षाओंके मंत्री श्री डाह्याभाई पटेलने कहा कि– " आज पर्यन्त पण्डितजीने अपनी आयुमें जो प्रचण्ड काम किया है, उसकी कल्पना करना भी असंभव है। उनका जीवन क्रान्तिकारी, देशभक्त, गीताभक्त और वेदभक्त आदि अनेकों पहलुओंसे परिपूर्ण है। उनकी जन्मशताब्दीके अवसर पर यह सम्मानपत्र अर्पित करते हुए हम सब परमात्मासे यही प्रार्थना करते हैं कि उन्हें आरोग्य पूर्ण दीर्घायु प्राप्त हो। "

तदनन्तर श्रुतिशीलशर्माने संस्थाके द्वारा आजतक किए गए और भविष्यमें किए जानेवाले कामोंका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। ऋग्वेद और महाभारतके हिन्दी अनुवादका काम चल रहा है। संस्कृतको लोकप्रिय बनानेके लिए एक संस्कृत-पाठशाला खोलनेकी योजना है।

इसके बाद मराठीके प्रसिद्ध लेखक श्री सदानन्द चेंदवणकर के द्वारा लिखित पण्डितजीके चरित्रग्रंथका उद्घाटन श्री गुरुजीने किया। उस अवसरपर श्री द. ए. देशपाण्डेने कहा कि– " सभी महापुरुषोंके चरित्र प्रेरणादायक होते हैं। प्रायः सभी महापुरुषोंने अपने जीवनमें अनेक संकटोंका मुकाबला किया। अतः पाठक भी उनका अनुसरण करता हुआ अपने मार्गको प्रशस्त बना सकता है। इसी दृष्टिसे महापुरुषोंके चरित्र लिखे एवं पढ़े जाने चाहिए। "

इसके बाद पंढरपुरके नजदीक माचणूर गांवके प्रसिद्ध सन्त श्री बाबा महाराजने पण्डितजीके कार्यका गौरव करते हुए कहा कि– " पण्डितजीको और कोई उपाधि न देकर मैं उन्हें " वेदज्योति " ही कहूंगा। प्रकाश फैलानेका काम ही पण्डितजीने किया है। उनकी ज्योतिके सम्पर्कसे अनेकोंने अपने दियोंको प्रज्वलित किया है। आज बड़ा शुभ अवसर है और आजका दिन अन्तर्चेतनाको जागृत करनेके कारण

उत्साहवर्धक भी है। सुप्त शक्तिको जाग्रत करना अत्यावश्यक है। इस प्रकारकी जागृतिके लिए ही परमात्माने समय समय पर अवतार धारण किया। भगवद्गीतामें कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

यही परिस्थिति आज भी है।

" मेरा विचार यह है कि वेदोंमें भारतकी सर्वोच्च संस्कृतिकी स्पष्ट कल्पना दिखाई देती है इसी कारण पण्डितजी वेदोंकी तरफ आकृष्ट हुए। वेद सब संसारके लिए प्रकाशपुञ्ज है। वेद मानवीजीवनको ज्योतित करनेवाले हैं। आत्माको परमात्माके पास लेजानेवाले ग्रंथ वेद ही हैं। उन्हीं वेदोंका अध्ययन करके पण्डितजी वेदरूप हो गए। वैदिक संस्कृति और सभ्यताका नाश ही मानवताका नाश है। इस वेद ज्योतिका प्रसार संसारमें करना हमारा कर्तव्य है। पण्डितजीके समान अनेकों वेदविद्वान् भारतमें हों, यही हमारी अभिलाषा है। आज संसार धनके पीछे भाग रहा है, पर वस्तुतः उसे आज धनकी उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी कि आध्यात्मिक संस्कृतिकी। उसे एक आदर्शकी आवश्यकता है। वह आध्यात्मिक संस्कृतिका आदर्श हमें वेदोंसे ही प्राप्त हो सकता है। "

तदनन्तर बडोदा विश्वविद्यालयके दर्शन विभागके अध्यक्ष श्री अनन्त गणेश जावडेकरने अपने भाषणमें कहा कि— " पण्डितजी स्वयंमें एक संस्था हैं। उनकी संस्था एवं जीवनकी आज ससारको अत्यन्त आवश्यकता है। पण्डितजी जिस संस्कृतिकी ओर झुके, वह वैदिक संस्कृति पुराणतम संस्कृति मानी जाती है। परन्तु पुराणतमका अर्थ पिछडी हुई संस्कृति नहीं। यह वैदिक सस्कृति आजके वैज्ञानिक जगत्से सादृश्य रखती है। पण्डितजी प्रवृत्ति और निवृत्तिमें इन दोनों मार्गोंका संगम है। "

तदनन्तर प्रख्यात गुजराती सन्त श्री रंगअवधूतके प्रतिनिधि श्री चन्द्रकान्त शुक्लने श्री सन्त महाराजका सन्देश पढकर सुनाया।

इसके बाद सम्मान्य अतिथि श्री गुरुजीने कहा कि— " आज हम पण्डितजीकी जन्म शताब्दी मनानेके लिए एवं उनके अभीष्ट चिन्तन करनेके लिए यहां एकत्रित हुए हैं। वेदोंमें " जीवेम शरदः शतं " को जो अभिलाषा प्रकट की है, उसमें केवल सौ वर्षका जीवन ही नहीं अपितु सौ वर्षके कर्ममय जीवनकी अभिलाषा प्रकट की गई है। जीवनके प्रारम्भिक २०–२५ वर्ष येन केन प्रकारेण व्यतीत हो जाते हैं। अत. उसके बाद सौ वर्षके कर्ममय जीवन प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की गई है। "

अदीनाः स्याम शरदः शतम्

वह भी अदीन रहकर कर्ममय जीवन व्यतीत करना चाहिए। श्री कृष्ण वसुदेव—देवकीके आठवें पुत्र थे और वे १०० वर्ष तक कर्ममय जीवन बिताते रहे। उस

समय उनके माता पिता जीवित थे। इसलिए उनके मातापिताकी आयु १४० से अधिक ही होनी चाहिए। सौ वर्षका यह कर्ममय जीवन हरएकको प्राप्त करना चाहिए। इस आयुको प्राप्त करनेका पण्डितजीका दृढ संकल्प है। उनकी दीर्घायुके पीछे उनका यह दृढ संकल्प ही काम कर रहा है। यहां एकत्रित हुए हुए हम सबको भी इस बातका संकल्प करना चाहिए कि हम भी पण्डितजीके समान मृत्युको दूर भगाकर दीर्घायु प्राप्त करें।

विविध कर्मशील जीवन

जीवनके विविध क्षेत्रोंमें उनके कर्मशील जीवनका आदर्श हमारे लिए प्रेरक सिद्ध हो सकता है। ऐसे अनेक महापुरुष हमारे सामने हैं, जिन्होंने अपने अपने क्षेत्रमें सफलता प्राप्त की, पर अनेकों क्षेत्रोंमें एक साथ सफलता पानेवाले कम ही दीख पडते हैं। कोई राजनीतिमें, कोई अध्ययनमें, कोई चित्रकलामें प्रवीणता प्राप्त करते हैं। और इनके बारेमें कुछ कहना कठिन प्रतीत नहीं होता। पर पण्डितजीका जीवन विविधताओंसे भरा हुआ होनेके कारण उनके बारेमें सहसा कुछ नहीं कहा जा सकता।

आत्मीयताकी अनुभूति

पंडितजीके जीवनमें क्रान्तिकारिता, स्वाध्यायशीलता, दीर्घज्ञान सम्पन्नताका संगम दृष्टिगोचर होता है और यह देखकर मन भौचक्कासा हो जाता है। बच्चोंसे लेकर बूढोंतकके मार्गदर्शनकी क्षमता पण्डितजीमें है। पण्डितजीके सान्निध्यमें आकर कोई भी यह अनुभव कर सकता है कि पण्डितजीमें शारीरिक, सामाजिक और सभी दृष्टिसे मार्गदर्शन करनेकी क्षमता है। पण्डितजीके अन्तःकरणमें जो आत्मीयताके भाव हैं वे बहुत कम लोगोंमें दिखाई देते हैं। लोगोंके साथ मिलजुलकर व्यवहार करना, बडोंके साथ बडोंकेसा और छोटोंके साथ छोटोंकेसा व्यवहार करना बहुत ही थोडे लोगोंको आता है। पर पण्डितजीमें आत्मीयता कूट कूट कर भरी हुई है।

उदाहरणार्थ- उनके मनमें छोटे बच्चोंको संस्कृत सिखाने की अभिलाषा उत्पन्न हुई और उन्होंने एक पाठ्यक्रम तैय्यार कर दिया। उसमें पण्डितजीने मार्गदर्शन किया और अब उसके द्वारा कोई भी स्वयं पढकर संस्कृत सीख सकता है। लोगोंके स्वास्थ्यकी रक्षा करनेके लिए आसनोंका चित्रपट तैय्यार किया। सूर्यनमस्कारके व्यायामको चित्रोंसे समझाया। एक बार किसी संघकी शाखापर उन्होंने देखा कि लडके गलत तरीकेसे सूर्यनमस्कार कर रहे हैं, यह देखकर वे शान्त न रह सके। पर उन्होंने उपदेश नहीं दिया, अपितु धोती कसकर मैदानमें उतर पडे, और सूर्यनमस्कार करके उनको प्रत्यक्ष उसकी सही रीति समझाई। इसी प्रकारका मार्गदर्शन उन्होंने अपने जीवनमें सर्वत्र किया है। पण्डितजी वाक्शूर न होकर क्रियाशूर रहे हैं। शारीरिक, कला, ज्ञानवर्धन आदि अनेकों क्षेत्रोंमें पण्डितजीने गुणसम्पदा एकत्रित की है। पण्डितजीमें मनुष्यको प्रेरित करनेका विलक्षण गुण है। बहुतसे

कार्यकर्ता कहते हैं कि हम अब वृद्ध हो गए, पर पण्डितजीका कहना है कि वृद्ध होनेकी इतनी जल्दी भी क्या है ?

कर्म नहीं छूटता

पण्डितजीने वेदोंका स्वाध्याय किया, पर स्वाध्याय करके वे चुपचाप नहीं बैठ गए। उन्होंने उसे अपने जीवनमें भी ढाला। उनके जीवनका सिद्धान्त है, सत्कर्म करना, योग्य कर्म करना और हमेशा कर्मशील रहना। वे स्वयं कहते हैं कि मैं काम करना कभी बन्द नहीं करता। कर्मत्याग करनेवाले एक साधुकी कहानी है। एक साधु घर छोडकर सिर्फ एक लंगोटी लेकर जंगलमें गया। एक दिन जब वह स्नान करने चला तो देखा कि उसकी लंगोटी ही गायब है। उसकी लंगोटी चूहे उठा ले गए थे। उस दिन वह कहींसे फिर एक लंगोटी मांग लाया, पर उसे चूहे फिर उठा ले गए, इसप्रकार लंगोटी उठा ले जानेकी चूहोंकी आदत ही पड गई। अत. तंग आकर उसने एक बिल्ली पाल ली। पर जब सब चूहे समाप्त हो गए तो भोजनके अभावमें बिल्ली अशक्त होने लगी। अतः वह दूध मांगकर लाता और उसे पिला देता। यह देखकर गांववालोंने उसे एक गाय ही दे दी। गायकी सेवाके लिए उसने एक नौकरानी रखली। कालान्तरमें उससे उसकी सन्तानें भी हो गईं। सारांश यह कि कर्म छोडनेसे ऐसे बंधनोंका निर्माण हो जाता है कि वे बंधन कभी टूटते ही नहीं। कभी स्वेच्छासे और कभी दूसरोंके कारण जो कर्म करने पडते हैं, उनके बन्धनोंको तोडना कठिन हो जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि कर्मत्यागसे मोक्षकी प्राप्ति होगी और न यह ही कहा जासकता है कि संसारत्यागसे मुक्ति मिलेगी। गीतामें कहा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

इसमें " इहैव " पद पर जोर है। इसी संसारमें रहते हुए मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करना चाहिए। जिसका मन हर परिस्थितिमें साम्यावस्थामें रहता है, मन जिसके अधीन है, वही सफल हो सकता है। सुखदुःखमें समान रहता है, वही सफल हो सकता है। सभी द्वन्द्वोंमें सम रहनेका गुण पण्डितजीमें है। उनके ऊपर एक बार नहीं अनेक बार संकट आए। एकबार अंग्रेज सरकारके कारण तो दूसरी बार जनताके कारण संकट आया। दूसरी बारका संकट बडा भीषण और वृद्धावस्थामें आ पडा। एक बार जीवनभरकी कमाई राख होगई। वृद्धावस्थामें एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाना पडा। पर इन सबने उनके मनपर किसी प्रकारका परिणाम नहीं डाला। उन्होंने फिरसे एकबार शून्यसे कार्यारम्भ किया। पर उनके मनमें किसी तरहकी कटुताका निर्माण नहीं हुआ। ऐसी विरुद्ध परिस्थितिमें भी वे अविचल और शान्त ही रहे। शून्यसे शुरु करके भी उनके कार्यमें आज भव्यता आ चुकी है। यही है रहस्य पण्डितजीके कर्ममय जीवनका। मैं परमात्मासे यही प्रार्थना करता हूँ

कि वह पण्डितजीको दीर्घायु प्रदान करे। वे अदीन रहकर सौ वर्षतक जीवित रहें। हमें सदा उनका मार्गदर्शन मिलता रहे। पण्डितजी अपने संकल्पके अनुसार वेदोंका कार्य करते चले जा रहे हैं।

हमारा कर्तव्य

पंडितजीके इस वेदोद्धारके कार्यमें सहायता देनेका हम संकल्प करें। वेद प्राचीन भारतीयज्ञानके भण्डार हैं। वेद हमारी संस्कृतिके मूल हैं। इस दृष्टिसे भी उनका अध्ययन करना आवश्यक है। यदि वेदोंका ज्ञान सर्वसुलभ हो जाए, तो अनेक ज्ञानोंकी प्राप्ति हो सकती है।

हमारे आदर्शका लोप

विदेशी शासनके कारण हमारी परम्परा टूट गई और उसका परिणाम यह हुआ कि देशमें सर्वत्र निराशा और दुःख फैल गया। जब इस दुःख और निराशाके बीच जीवनके लिए कोई आशादायी किरण नहीं दिखाई पड़ी, तब हमारे देशमें अनेक प्रकारकी साधना पद्धतियां शुरु हो गईं। विदेशी अत्याचारोंसे तंग आकर लोगोंने परमात्माकी उपासना शुरु कर दी। इन्हीं विभिन्न साधना पद्धतियोंके कारण अनेक साम्प्रदायिक पंथोंकी रचना हुई। उसके कारण समाजमें फूट पड़ गई। पण्डितजीने इस स्थिति पर विचार किया और यह समझ लिया कि ऊपरी तौर पर कार्य करनेसे कुछ फायदा नहीं है। हमें मूल स्थानपर ही चलना पड़ेगा और वेद प्रतिपादित कर्म मार्गका ही सहारा लेना पड़ेगा। वेदानुसार ही अपना आचरण बनाना पड़ेगा। प्राचीनकालीन आचार्योंमें जो नम्रता थी, वह परवर्ती आचार्योंमें नहीं रही। पूर्वकालीन आचार्योंकी शिष्य परम्परामें वेदोंके विषयमें जो आदरभाव था, वह परवर्ती आचार्योंकी शिष्य परम्परामें सर्वथा नष्ट हो गया। उस समय " गुरुवाक्यं प्रमाणं " हो गया।

छिन्न भिन्न समाज

आज भारतमें असंख्य आचार्य हैं, उनके असंख्य सम्प्रदाय हैं। इन असंख्य सम्प्रदायोंमें आजका समाज विभक्त हो गया है। इसीके परिणाम स्वरूप हमारा ऐहिक जीवन छिन्नभिन्न हो गया। शिष्य-परम्परा, मत-पंथ, जाति-उपजाति आदि अनेकों रूपोंमें विभक्त हो जानेके कारण यह समाज आज अनेक रूपोंमें दिखाई पड़ता है। ऐसी छिन्नभिन्न स्थितिमें ऐहिक जीवनकी उन्नति असंभव है। इसलिए मूलभूत तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त करके इस समाजकी पुनः स्थापना करनी पड़ेगी। ज्ञानसम्पन्न, सुव्यवस्थित और कर्ममार्गी समाजकी स्थापना करनेका महान् राष्ट्रभक्तिका आदर्श अपने सामने रखकर पण्डितजीने वेदोद्धारके कार्यकी शुरुआत की।

राष्ट्रीय जीवनकी मृत्यु

आज भारतीयोंमें देशाभिमान बिल्कुल नहीं रहा। जब प्रजाओंमें यह देशाभिमान नहीं रहता, तो उस राष्ट्रकी भी इतिश्री समझ लेनी चाहिए। आज यदि भारतीयोंके

दनन्दिन या अन्य व्यवहारों पर नजर डाली जाए तो ज्ञात होगा कि यह वैदिक सिद्धान्तोंसे कोसों दूर है। उनके ऊपर पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यताकी छाप पूरी तरह दिखाई देगी। जब किसी राष्ट्रमें विदेशी संस्कृतिका आदर और अपनी संस्कृतिका अनादर होता है तब उस राष्ट्रकी मृत्यु समझ लेनी चाहिए। आज भारतीय रूस, अमेरिका, जापान आदि देशोंकी संस्कृतिको अपनानेकी बातें करते हैं, यहांके अधिकांश लोग उन आदर्शोंको अपनेपनकी दृष्टिसे देखते हैं और अपने आदर्शोंको परायेपनकी दृष्टिसे देखते हैं। हमारे देशके बडे बडे नेता भी विदेशी आदर्शोंको ज्यादा महत्त्व देते हैं। कोई कहता है कि रूसकी परम्पराका अनुकरण करना चाहिए तो कोई कहता है कि अमेरिकाकी परम्पराका अनुकरण करना चाहिए। यह दूसरे पर आश्रित रहनेकी प्रवृत्ति केवल बौद्धिक ही नहीं अपितु खाद्य अन्नोंके मामलेमें भी प्रवेश पा चुकी है। आज हम अपने हाथोंसे भी खा पी नहीं सकते। खानेके लिए भी हमें दूसरोंके चरण छूने पडते हैं, कितनी शर्मनाक बात है। जो विदेश जाकर भारतमें लौटता है, उसकी कीमत भी बढ जाती है। लोग कहते हैं कि अहो! यह तो विदेश जा आया है। मानोंकी उसने कोई बडा भारी काम कर दिया हो। संभवतः इसीलिए अमेरिकासे गेहूं मंगाया जाता है।

जैसा अन्न वैसी बुद्धि

विश्वस्त सूत्रोंसे मुझे पता चला कि वह धान्य जो विदेशोंसे हमें प्राप्त होता है, इतना खराब होता है कि उसे वहांके पशु भी नहीं खाते। ऐसा सडा हुआ धान्य हमारी सरकार करोडों रुपये खर्च करके मंगवाती है। ऐसा अन्न खाया जाता है, वैसी ही बुद्धि भी बनती है। भ्रष्ट लोगोंका सडा हुआ अन्न खाकर हमारी बुद्धि भी भ्रष्ट होती जा रही है। तदनुसार हमारा आचरण भी होता जा रहा है। इस प्रकार हमारे राष्ट्रीय जीवन पर कुठाराघात किया जा रहा है। इस दुरवस्थाको दूर करनेके लिए हमें अपने मूलतत्त्वोंको सुदृढ करना होगा, इसके लिए हमें पुन. वेदोंकी तरफ चलना होगा।

कुछ लोगोंने वेदोंको "गडरियोंका गीत" कहा है, पर इस पर विश्वास करनेकी आवश्यकता नहीं है। यह अंग्रेजोंकी एक चाल है। भला वे हमारे विषयमें क्या जान सकेंगे ?

वेदोंमें विभिन्न देवोंका वर्णन है। इन्द्र, वरुण, आदि अनेकों देवोंकी स्तुति वेदोंमें है। परन्तु उसके साथ ही " एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति " कहा है। ये सभी नाम उसी एक ही ब्रह्मके हैं और उनको सम्बोधित करके विभिन्न स्तुतियां की हैं।

वेदोंके उद्धार एवं रक्षाके लिए भगवान् स्वयं जन्म लेते हैं। भला कभी भगवान् गडरियों के गीतोंकी रक्षा करने एवं अपनी स्तुति करानेके लिए कभी अवतार लेगा ? उसे ऐसी फिजूल बातोंके लिए अवतार लेनेकी आवश्यकता ही क्या है ? वेद अनेक गूढ अर्थोंसे भरे हुए हैं, उनमें जीवनके हरएक पहलुओं पर विचार किया

गया है। सरल शब्दोंका प्रयोग है, पर उन सरल शब्दोंमें बहुत गूढ रहस्य भरा पडा है। उनमें आयुर्वेद है, गणित है और विज्ञान है। वेद केवल स्तुतिमात्र नहीं हैं। केवल देवताओंका गुणवर्णन नहीं है। यदि उनके शब्दोंको समझा जाए तो अनेक सिद्धान्तोंका पता लग सकता है। मैंने एक ग्रंथ ऐसा देखा है कि उसे एक तरफसे देखो तो गीता दीख पडेगी, ऊपरसे नीचेके अक्षर पढो तो चण्डी ग्रंथ दिखाई देगा, तिरछा देखो तो कोई दूसरा ही शास्त्र दृष्टिगोचर होगा और एक एक अक्षर पढोगे तो वैद्यकीय ज्ञान मिलेगा। उसमेंसे और भी क्या क्या मिलेगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। यह चमत्कार मैंने एक हस्तलिखित ग्रंथमें देखा था।

आधुनिक वेदोद्धारक

वेदोंमें यह चमत्कार भले ही न हो, पर उसके एक एक शब्दसे अनेक अनेक अर्थ निकलनेके कारण वे ज्ञानके भंडार हैं। उनसे विविध शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करना संभव है। वेदोंके विविध अंगोंका अध्ययन करके उनकी ज्ञानसम्पत्तिको सर्वसाधारणतक पहुंचाना एक महान् कार्य है और इस कार्य को पण्डितजी पिछले अनेक वर्षोंसे कर रहे हैं। जो वेदोद्धार का कार्य पण्डितजी कर रहे हैं, वह अवतारका कार्य है। हम सब उनके आदर्शकी तरफ देखें और उनके कार्यमें सहयोग दें। वेदोद्धारके जिस कार्यमें पण्डितजी मग्न हैं, उनके विभिन्न अंगोंको पूर्ण करनेका जो महान् कार्य वे कर रहे हैं, वह पूरा हो और उसके आधार पर स्वाभिमानपूर्ण राष्ट्रीय जीवनका निर्माण होकर हमारे भारतराष्ट्रको फिर एक बार जगद्गुरुका पद प्राप्त हो, यही मेरी उस प्रभुसे प्रार्थना है। सबकी तरफसे मैं पण्डितजीके चरण-कमलोंमें अपना प्रणाम समर्पित करते हुए अपना भाषण समाप्त करता हूँ।

सम्मानके प्रत्युत्तर स्वरूप पण्डितजीका भाषण—

परमपूजनीय गुरुजी एवं अन्य अभ्यागत अतिथिगण।

मेरे सौवें वर्षमें प्रवेश करनेके कारण आप मेरा यह सम्मान कर रहे हैं। यह देखकर मुझे आश्चर्य होता है क्योंकि प्राचीनकालीन भारतमें सौ वर्षकी आयुष्य-मर्यादा बहुत सामान्य सी होती थी। उस समयके लोगोंकी औसत आयु ही सौके आसपास होती थी, यदि यह कहा जाए तो मेरे विचारसे कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। एक नहीं, दो नहीं ऐसे अनेकों उदाहरण हमारे सामने हैं, जो मेरे इस विचारकी पुष्टि करते हैं।

(१) जब भगवान् श्रीकृष्ण स्वर्गवासी हुए, उस समय उनकी आयु १२० वर्षकी थी। यह दुःखद समाचार उनके बडे भाई बलरामने यह विचार कर कि श्रीकृष्णके चले जानेके बाद मैं यहां रहकर क्या करूंगा, प्राणायामके द्वारा अपने प्राणोंको अनन्तमें विलीन कर दिया। यहां यह बात लक्ष्यमें रखने योग्य है कि बलराम खाटपर पडे पडे 'हाय हाय' करते हुए नहीं मरे, अपितु उन्होंने स्वयं अपनी इच्छासे

" मनुष्यका जीवन एक यज्ञ है। इसमें प्रथम २४ वर्षोका प्रातःसवन है यही ब्रह्मचर्याश्रम है। इसके बाद ४४ वर्षोंका द्वितीय सवन या गृहस्थाश्रम है। तदनन्तर ४८ वर्षोंका तृतीय सवन या वानप्रस्थाश्रम है। इस प्रकार २४+४४+४८ = ११६ वर्षोंका कार्यक्रम है। इन वर्षोंके बीचमें हो मैं अपने इस यज्ञको समाप्त न करूं, इस प्रकार जो संकल्प करता है, वह नीरोगी होता है।" छान्दोग्योपनिषद्के इस कार्यक्रममें शैशवावस्थाके प्रथम चार वर्षोको नहीं गिना है। शैशवावस्थाके प्रथम चार वर्ष और बाकीके ११६ वर्ष मिलकर कुल १२० वर्षोंका कार्यक्रम उपनिषत्कारने बताया है।

यहां जो आयुष्यमर्यादा बताई है, वह वानप्रस्थाश्रमतक ही है, उसके बाद एक और आश्रम तुरीयाश्रम भी है जिसे संन्यासाश्रम भी कहते हैं। संन्यासाश्रमका काल ११६ वर्षके बादका काल है, जो कमसे कम ५०-६० वर्षोंका है, इस प्रकार १७०-१७५ वर्षोंका कार्यक्रम उपनिषत्कारने मानवोंके सामने रखा है। मानवजीवन एक बड़ा भारी यज्ञ है, जो बीचमें ही तोड़ने पर पापदायक होता है। वेद अकाल-मृत्युका समर्थक नहीं है, वह सदा दीर्घायुप्राप्तिका ही उपदेश देता है। यदि असाव-धानके कारण मनुष्य पर मृत्युका पैर पड भी जाए, तो उसे चाहिए कि वह अपने पुरुषार्थसे उसे दूर कर दे —

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूताः भवत यज्ञियासः॥

(ऋ० १०।१८।२)

'हे मनुष्यो ! अपने ऊपरसे मृत्युके पैरको हटाते हुए, अपनी आयुको दीर्घ करते हुए तथा प्रजा और धनसे सन्तुष्ट होकर शुद्ध, पवित्र और यज्ञमय जीवनवाले होओ।'

इस प्रकार वेद हरएकको दीर्घायु प्राप्त करनेके लिए उपदेश देते हैं। वे केवल दीर्घायु प्राप्तिका उपदेश ही नहीं देते, अपितु उसकी प्राप्तिका मार्ग भी बताते हैं। ऋग्वेदका एक ऋषि कहता है कि—

सप्त मर्यादा कवयस्ततक्षुः तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्। (ऋ० १०।५।६)

ज्ञानियोंने आयुकी सात मर्यादायें बांध दी हैं, उनमेंसे एक की भी अवहेलना करनेवाला मनुष्य पापी होता है।' (१) चोरी न करना, (२) व्यभिचार न करना, (३) ब्रह्महत्या न करना, (४) भ्रूणहत्या न करना, (५) सुरापान न करना, (६) दुराचार न करना, (७) पाप हो जाने पर असत्य बोलकर उसे न छिपाना, इन सात मर्यादाओंके अन्दर रहता हुआ जो मनुष्य व्यवहार करता है, उसे अवश्य ही दीर्घजीवनकी प्राप्ति होती है। सप्त मर्यादाओंका पालन दीर्घायु प्राप्तिका प्रथम साधन है।

प्राणोंका त्याग किया !!! इसका अर्थ यह है कि उस समय भी उनका स्वास्थ्य बहुत उत्तम था और यदि वे चाहते तो २०-२५ वर्ष और अधिक जीवित रह सकते थे। भगवान् कृष्ण और बलरामके देहावसानके समय उनके माता पिता वसुदेव और देवकी जीवित थे। वे कृष्ण बलरामके अन्तके समाचारको सुनकर कहते हैं, कि 'अब कलियुग आ गया है, क्योंकि माता पिताके सामने उनके पुत्र मरने लगे हैं।' अब आप कल्पना करें, विवाहके समय वसुदेव देवकीकी आयु कमसे कम २५-२० की रही होगी और कृष्ण देवकीके आठवें पुत्र हैं, अतः कमसे कम २० वर्षकी काल-मर्यादा कृष्णके जन्मके बीचमें माननी पड़ेगी। इस प्रकार वसुदेव कमसे कम १६५ वर्षके और देवकी १६० वर्षके करीब आयुवाले रहे होंगे।

(२) इसी प्रकार महाभारतकारने केवल भीष्मको ही पितामहके नामसे सम्बोधित किया है। बाकीके द्रोण, कृप, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि सभी नवयुवक थे। अर्जुनकी आयु ७० के लगभग थी, गुरुद्रोणकी आयु १०० के आसपास थी। भीष्म पितामहकी आयु १७५ के लगभग थी। इस प्रकार महाभारतकालमें भी अर्थात् आजसे केवल पांच हजार वर्ष पूर्व १५० या इससे अधिक आयुवाला ही वृद्ध माना जाता था, और उससे कमके नवयुवक या प्रौढ माने जाते थे। १७५, १०० और ७० वर्षमें भी भीष्म, द्रोण और अर्जुन भयंकर युद्ध करते हैं। इनमेंसे एक भी शय्यापर पड़ा हुआ दृष्टिगोचर नहीं होता। भीष्म भी अन्तमें प्राणायाम द्वारा प्राण छोडते हैं अर्थात् इतने दीर्घकालके बाद भी उनकी मृत्यु नैसर्गिक नहीं होती। इसी प्रकार द्रोण भी वीरगति प्राप्त करते हैं और अर्जुन आदि भी महाप्रस्थानके द्वारा शरीर-त्याग करते हैं।

(३) *भारतीयोंकी दीर्घकालीन जीवनकी यह स्थिति मौर्यकाल तक थी।* मौर्यकालमें भारत-प्रवासपर आनेवाले यवनदेशीय यात्रियों (ग्रीक यात्रियों) ने अपने ग्रंथोंमें यह लिखा है कि भारतमें १४० वर्षके मनुष्य सडकोंपर घूमते नजर आते हैं। १४० वर्षके होनेपर भी वे इतने शक्तिमान् है कि वे नवयुवकोंकी तरह भ्रमण करते हैं।

ये कुछ उदाहरण है जो प्राचीनभारतीयोंके दीर्घायुष्यके समर्थक हैं।

मानवजीवनके ११६ वर्षका कार्यक्रम छान्दोग्योपनिषत्कारने निश्चत किया है। हर मनुष्यको १२० वर्ष तो कमसे कम जीना ही चाहिए। ११६ वर्षके कार्यक्रमको बतानेवाले छान्दोग्योपनिषद्के वचन इस प्रकार हैं—

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनम्।
अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनम्।
अथ यानि अष्टाचत्वारिंशत् वर्षाणि तत् तृतीयं सवनम्।
माहं प्राणानां आदित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सी इति
उद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति। (छां. उ ३।१६।१, ३-४)

मैंने वेदोंका अध्ययन प्रारंभ किया, और आज इतने वर्षोंके सतत अध्ययनके बाद भी मैं यही अनुभव करता हूं कि मेरा ६०–६५ वर्षोंका कार्य विशाल महासागरके एक बिन्दुके बराबर भी नहीं।

आज मैं सौवें वर्षमें प्रवेश कर रहा हूं इसके कारण आप मेरा सम्मान कर रहे हैं। मेरा यह दृढसंकल्प है कि मैं प्राचीन ऋषियोंकी आयु प्राप्त करूंगा।

आज पूज्यनीय गुरुजी मेरी शताब्दि-प्रवेशपर मेरे सम्मानार्थ यहां पधारे हैं, तो मेरी भी यह महती अभिलाषा है कि श्री गुरुजीके शताब्दिप्रवेश पर मैं भी उनका सम्मान करूं। मेरी यह कामना परमात्मा पूर्ण करे, यही मेरी उस सर्व- नियन्तासे प्रार्थना है।

जर्मन पत्र " डी वेल्ट " के द्वारा पण्डितजीकी प्रशंसा

फ्रांकफुर्ट-३० अक्टूबर १९६६– पश्चिमी जर्मनीके " डी वेल्ट " नामक एक सुप्रसिद्ध दैनिकने पण्डितजीके कार्यका परिचय देते हुए उनका चित्र छापकर उनका अभिनन्दन किया। फ्रांकफुर्टमें सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक प्रदर्शनीके अवसर पर प्रकाशित किए गए विशेष परिशिष्टांकमें पण्डितजीका वृत्तान्त देकर " डी वेल्ट " ने बडा अच्छा काम किया। पूनाके पत्रकार श्री. व्यं. न. कुलकर्णीने इस पत्रके लिए लिखकर भेजा था।

गुजरात जनताकी ओरसे पण्डितजीका सत्कार

दिनाङ्क २३ दिसम्बर १९६६ को गुजरात एक्सप्रेससे पण्डित सातवलेकर अहमदाबाद पहुंचे। स्टेशन पर स्वागत समितिकी तरफसे श्री चतुर्भुजदास चिमनलालने उनको मालायें पहनाईं। न्यू स्वदेशी मिल्सके मैनेजर श्री श्रीकृष्णजी अग्रवालके भवनमें पण्डितजीके निवासका प्रबन्ध था।

दिनाङ्क २३ दिसम्बरकी शामको पंडितजीने अहमदाबादके " गुजरात समाचार " नामक एक दैनिकके संवाददाताको इण्टरव्यू देते हुए कहा– भारतका उद्धार वैदिक- धर्मसे ही होगा क्योंकि वैदिकधर्म सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। वेदोंमें मानव- जातिके कल्याणका सर्वोत्तम और सर्वांगीण उपदेश है। जगत्‌के कल्याणके लिए वेद ही मार्गप्रदर्शन कर सकते हैं। "

" वस्तुतः हिन्दु और मुसलमान एक ही हैं। दोनों धर्म मूलतः एक मार्गसे जाकर एक ही स्थान पर मिलते हैं। कुरानशरीफकी पहिली आयत– " ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् " का शब्दशः अनुवाद है "

" वेदोंमें गायकी एक संज्ञा " अघ्न्या " है जिसका अर्थ है " मारे जानेके अयोग्य " वेदोंमें इस गायको वेदोंकी माता कहा है। गोवधप्रतिबंधके लिए श्रीमत्

(२) दूसरा साधन है " कर्म "। जो मनुष्य सदा उत्तम उत्तम कर्म करता रहता है, उसका मन सदा उत्तम कर्मोंमें व्यस्त रहनेके कारण शुद्ध व निर्मल बन जाता है। ' खाली मन शैतानका घर होता है, ' यह कहावत सर्वांशमें सत्य है। खाली मन ऐसी ऐसी योजनायें बनाता है, जो स्वयके लिए तो हानिकारक होती ही है, पर समाज और राष्ट्रके लिए भी भयंकर हानिकर होती है। इसलिए वेदमें कहा है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः। (यजु. ४०।२)

अर्थात् मनुष्य इस संसारमें उत्तम कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे।

वस्तुत: कर्ममें ही अमृत छिपा है। कर्म करनेसे शक्ति प्राप्त होती है। " धत्तं कर्मसु चामृतं " कर्ममें ही देवोंने अमृत स्थापित किया है। इस प्रकार कर्मशील व्यक्ति, अनायास ही दीर्घजीवन प्राप्त कर सकता है। कर्म करना ही सतयुगका चिन्ह है। उपनिषद्में कहा है– कि सोती हुई अवस्था कलियुगकी है, अंगडाई लेती हुई अवस्था द्वापरकी होती है, निद्रासे उठनेकी अवस्था त्रेताकी है और कर्म करनेकी अवस्था सतयुगकी है। अतः हे मनुष्यो ! सदा कर्म करते रहो, सदा कर्म करते रहो, सदा कर्म करते रहो ! ' इस प्रकार कर्म दीर्घायु प्राप्तिका दूसरा साधन है।

(३) दीर्घायुका तीसरा साधन है ' प्राणायाम '। काम करते करते जब सारी इन्द्रियां थक जाती हैं, तब प्राणायामसे उन्हें पुनः नवीन शक्ति प्राप्त होती है। जिस प्रकार अग्निमें पडकर सोना कुन्दन बन जाता है, उसी प्रकार प्राणायामकी अग्निमें पडकर इन्द्रियां शुद्ध और निर्मल बन जाती हैं। दीर्घजीवनके लिए प्राणायामका अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। इन तीनों साधनोंका अवलम्बन करके मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

इन बातोंको जब मैंने वेदोंमें देखा, तो वेदोंकी ओर मेरी श्रद्धा द्विगुणित हो गई। वेदोंके साथ मेरा परिचय सर्वप्रथम हैदराबादके निवासकालमें हुआ था। वेदोंके साथ मेरे प्रथम परिचयकी भी एक अजीब कहानी है। हुआ यों कि सन् १९०० के आसपास जब मैं बम्बईमें चित्रकला सीखकर हैदराबाद गया और वहां मेरा व्यवसाय स्थिर हो गया, तो एक दिन मैंने अथर्ववेदके १२ वें कांडके प्रथम सूक्त, जिसे " वैदिक राष्ट्रगीत " कहना अत्यन्त उपयुक्त होगा, का मन्त्र और उनका अनुवाद मराठीमें लिखा और वह छप भी गया। पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस पुस्तिकाके बाहर पडने भरकी देर थी कि ब्रिटिश सरकार मानों हडबडाकर उठ बैठी और सारी की सारी प्रतियां जप्त करके अग्निको समर्पित कर दीं, यह मेरे लिए एक आश्चर्यकारक घटना साबित हुई। उस समय भारतमें ऐसी स्थिति थी कि किसीके मुंहसे " स्वतंत्र " शब्द निकला कि झट ब्रिटिशसरकारके कान खडे हो जाते थे। अतः यह घटना यद्यपि सामान्य ही कही जा सकती है, पर मेरे लिए यह सामान्य घटना एक नया मोड बन गई। इसी घटनासे ही प्रेरित होकर

तदनन्तर सेठ श्रीकृष्ण अग्रवालने कहा- " गत २००० वर्षोंसे हम क्रियाशून्यताका जीवन बिता रहे हैं। हमें आशा थी कि स्वातंत्र्य प्राप्तिके बाद भारतीय संस्कृतिका उद्धार होकर हमारे राष्ट्रीय चारित्र्यका स्तर ऊंचा होगा, पर वह कुछ न हुआ। इसका केवल एक ही कारण है और वह है " वेदोंकी उपेक्षा "।

" जिनसे हमारा जीवन और यशस्वी होगा, वह वेदज्ञान भगवती भागीरथीके समान पवित्र है। यदि हमें सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना है तो हमें वेदोंको अपनाना ही पडेगा। पं. सातवलेकरजीका कार्य मेरे कथनका प्रतिनिधि है। परमेश्वर उनके ध्येयको पूर्ण करें, यही मेरी प्रार्थना है। "

गुजरातके मूक सेवक और गांधीजीके सच्चे अनुयायी श्री रविशंकरजी महाराजने अपने भाषणमें कहा-" हमें पण्डितजीके जीवनसे यह आदर्श सीखना है कि उन्होंने अपने सौ वर्षकी आयुमें अपने शरीर और मनका किसप्रकार उपयोग किया। इसके साथ ही हमें यह भी सीखना है कि जीवन और ज्ञानका सर्वांगीण उपयोग करके उसकी अभिवृद्धि किस तरह की जा सकती है। "

इसके बाद सत्कार समितिके अध्यक्ष और सर्वोच्च न्यायालयके निवृत्त न्यायाधीश श्री एन्. एच्. भगवतीने पण्डितजीके जीवन और कार्यका संक्षिप्त परिचय देते हुए कहा—

" पण्डितजीने वेदोंके प्रकाशनके द्वारा जो देशसेवा की है, वह अमर है। उनके द्वारा किए गए कार्यके लिए आगे आनेवाली पीढी उनकी ऋणी रहेगी। सादा और सात्विक जीवन बितानेवाले इस महापुरुषके अन्तःकरणमें हमेशा राष्ट्र और समाजकी उन्नतिके ही विचार रहते हैं। ध्यान, धारणा, सतत अध्ययन और वेदसेवाके कारण पण्डितजी साक्षात् वेदमूर्ति हो गए हैं। पण्डितजीने सौवें वर्षमें पदार्पण किया है, उस अवसरपर हम उन्हें शतशः प्रणाम करते हैं। "

इसके बाद सत्कार समितिके कोषाध्यक्ष श्री पी. बी. मंगलवेढेकरने पण्डितजीको दिए जानेवाले सम्मान पत्रको पढकर सुनाया—

प्रातः स्मरणीय श्रीमान् पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर की सेवामें—

अपने जीवनके पूर्वार्धमें भारतके स्वातंत्र्यसंग्राममें प्रथम क्रांतिवीर और सैनिकके रूपमें आपने जो अमूल्य योगदान किया है, वह भारतीययुवक वर्गके लिए हमेशा प्रेरणादायी रहेगा।

भारतके आध्यात्मिक संस्कृतिके प्राणभूत वेदोंका गंभीर अध्ययन करके उसका तेजस्वी और प्रेरक सन्देश भारतभरमें फैलानेके लिए संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और मराठी भाषाओंमें सैकडों प्रवचन करके और विद्वत्तापूर्ण लेख लिखकर गत साठ वर्षोंमें आपने जो भगीरथ प्रयत्न किया है, उसके लिए भारतीय संस्कृतिके असंख्य उपासक आपके ऋणी हैं।

+

शंकराचार्यकी मांग धर्मानुसार है, उनकी यह मांग पूरी होनी ही चाहिए। दीर्घायु प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालोंको प्रतिदिन व्यायाम और प्राणायाम करना और गायका दूध पीना चाहिए। "

२४ दिसम्बरको गुजरात विश्वविद्यालयके उपकुलपति श्री उमाशंकर जोशीके निमंत्रण पर विश्वविद्यालयके सभागृहमें पण्डितजीका भाषण हुआ।

उपकुलपति श्री जोशीने स्वागत करते हुए कहा– "क्रियाशीलता पण्डितजीके जीवनकी विशेषता है। पण्डितजीके द्वारा किया गया वेदोंका कार्य अद्वितीय है। "

तदनन्तर " मेरी जीवन श्रद्धा " विषय पर बोलते हुए पण्डितजीने कहा– " हैदराबादमें रहते हुए मैंने कतिपय वेदमंत्रोंका अर्थ करके उसे पुस्तकके रूपमें छापा। उसे देखकर अंग्रेज घबरा गए। और उन्होंने उस पुस्तकको सारी प्रतियां जप्त करके जला डालीं। मैं ज्यों ज्यों वेदोंका अध्ययन करता गया, त्यों त्यों वेदोंका महत्व मुझे मालूम पड़ने लगा और अन्तमें अपना सारा जीवन वेदोंके लिए अर्पित कर देनेका मैंने निश्चय किया। "

" वैदिकधर्मके अनुसार मनुष्यकी पूर्ण आयु १२० वर्षकी है। इतनी आयुतक हर एकको जिन्दा रहना ही चाहिए। ऋषियोंके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर जो जाएगा, वह निश्चयसे इतने वर्ष जीवित रहेगा। दीर्घजीवनके अनेक उपायोंमें प्राणायाम और संयमित जीवन आवश्यक हैं। "

२४ दिसम्बरकी शामको दिनेश मॅमॉरियल हॉलमें सर्वप्रथम चारों वेदोंके मंत्रोंसे प्रार्थना हुई।

प्रा. बी. सी. गज्जरने शुभ सन्देश पढ़कर सुनाये। तदनंतर गुजरात विश्वविद्यालयके उपकुलपति श्री उमाशंकर जोशीने कहा– " पण्डितजीका जीवन एक आदर्शजीवन है। उन्होंने जो कुछ कहा उसे प्रथम उन्होंने अपने जीवनमें उतारा। उन्होंने अपनी सारी आयु वेदभगवान्‌के चरणोंमें अर्पित कर दी। आधुनिक युगके लिए वेदोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। "

तदनन्तर गुरुजी गोलवलकरने कहा– " वेदोंके तत्त्वज्ञानसे कर्मनिष्ठा और निर्भय-वृत्ति उत्पन्न होती है। वेदोंने " बलं उपास्व " का सन्देश दिया है। हम भूल गए हैं कि हमारी एक स्वतंत्रभाषा और संस्कृति है। आत्मविस्मृति और स्वाभिमान-शून्यताके महाप्रलयमें पण्डितजीका वैदिक ज्ञान प्रचारका कार्य प्राचीनयुगके जल-प्रलयमें मनुकी मछलीके समान तारण करनेवाला हुआ है। "

" वेदोंने हमें निर्भय होनेका आदेश दिया है। हमारे विजिगीषु पूर्वजोंने बहुत वैभव प्राप्त किया। वेद हमें संसारसे विमुख या निवृत्त होनेका उपदेश नहीं देते। जगत्‌के उद्धारके लिए जीवन अर्पित कर देनेवाले ऋषियोंके जीवनका आदर्श वेदोंने प्रस्तुत किया है। पण्डितजीने गीतापर ' पुरुषार्थबोधिनी " टीका लिखकर गीताका वास्तविक अर्थ विशद किया।

अन्तमें सम्मानका उत्तर देते हुए पण्डितजीने कहा—

"यदि मैं वेदोंकी सेवा न करता तो आज आप भी मेरा सम्मान न करते। इस कारण यह वेदोंका ही सम्मान मैं समझता हूं।"

"वेदोंमें विज्ञान, चिकित्साशास्त्र और राजनीति आदि सभी कुछ है। ३ दिन और ३ राततक कहीं भी उतरे बगैर निरन्तर उड़ान भरनेवाले विमानोंका वर्णन वेदोंमें है। च्यवन नामका एक ऋषि था, वह इतना बूढ़ा हो गया था कि वह अपने स्थानसे हिल भी नहीं सकता था। इसके अतिरिक्त वह अन्धा भी था, परन्तु वेदोंके वैद्य अश्विनीकुमारोंने उसकी चिकित्सा की और उसे पूर्णरूपसे तरुण बनाकर उसका विवाह भी कर दिया। इसी प्रकार एक स्त्री विश्पला युद्धमें गई और लड़ाईमें उसकी टांग टूट गई। अश्विनीकुमारोंने उस टूटी टांगकी जगह लोहेकी टांग बिठा दी और उसे चलने फिरने योग्य बनाया। ऐसी शस्त्रक्रिया आजके वैज्ञानिकयुगमें भी असंभव है।

"वैदिककालमें राज्यपद्धति प्रजातंत्रात्मक थी—

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥

अर्थात् जो दूरदर्शी, मित्रके समान प्रजाका हित करनेवाले और विद्वान् हों, उन्हींको प्रजा लोकसभामें चुनकर भेजें।"

"भारत हमेशासे गोपूजक रहा है। प्राचीन भारतमें घर आए हुए अतिथिका गोदुग्ध देकर सत्कार किया जाता था। वेदोंमें गायको रुद्रकी माता, वसुओंकी पुत्री और आदित्योंकी बहिन और अमृतका केन्द्र बनाया गया है। गोदुग्धमें आयुको दीर्घ करनेकी शक्ति है और यह शक्ति किसी भी दूसरे पशुके दूधमें नहीं है। इसलिए राष्ट्रकी प्रजाओंके स्वास्थ्य संरक्षणके निमित्त गोसंरक्षण अत्यावश्यक है।"

"वैदिकसंस्कृति सर्वोत्कृष्ट है। उसीसे संसारका कल्याण होगा। इसलिए सम्पूर्ण जगत्में वैदिकधर्मका प्रचार हो और उसके द्वारा बताये गए मार्गसे सब विश्व चले, यही मेरी इच्छा है और इसीसे विश्व शान्ति भी संभव है।"

अन्तमें "वन्देमातरं" गानके साथ समारंभकी समाप्ति हुई।

पूनामें पण्डितजीका सत्कार

महाराष्ट्रके स्फूर्तिकेन्द्र और पण्डितजीके राजनीतिके गुरु लो. तिलककी कर्मभूमि पूनामें पूना मराठी ग्रंथसंग्रहालय की सत्कार समितिकी तरफसे ता. २८ अप्रैल १९६७ के दिन पण्डितजीका सत्कार हुआ। रातके नौ बजे भी पण्डितजीके स्वागतार्थ हजारों नागरिक उपस्थित थे। पूना ग्रंथसंग्रहालयके द्वार पर एक सौ एक सौभाग्यवती स्त्रियोंने पण्डितजी एवं उनकी पत्नी सौ. सरस्वतीबाईकी आरती उतारी।

आज सारा संसार दो विचारधाराओंके झगडेमें फंस जानेके कारण अपना समतोल खो बैठा है। ये दो विचार धारायें हैं– पश्चिममें प्रतिष्ठित इन्द्रियसुखवाद और दूसरा है भारतमें हजारों वर्षोंसे चला आनेवाला संन्यास धर्मका आसरा लेकर लोगोंको जीवनसे पराङ्मुख करनेवाला निष्क्रियतावाद। इन दोनों विचार धाराओंके प्रचण्ड वेगसे दुनियाके विचारकोंके मन विचलित हो गए हैं। ऐसी विषम परिस्थितिमें अभ्युदय और निःश्रेयसको मिलानेवाले वैदिकधर्मका तेजस्वी सन्देश संसारमें व्याकुल मनुष्योंके सामने प्रस्तुत करके उसे फिर प्रतिष्ठित करनेका जो महान् प्रयत्न किया, उसके लिए, हे साक्षात्कृतधर्मा महर्षे ! केवल भारत ही नहीं, अपितु सारा संसार आपका ऋणी है।

निष्कलंक चारित्र्य, महान् त्याग, प्रगाढ पांडित्य, वेदविद्याकी अखण्ड उपासना, प्राणायाम आदि योगभ्यासमसे प्राप्त स्पृहणीय आरोग्य और दीर्घायु आदियोंसे समृद्ध और भव्योदात्त अपने जीवनके विषयमें अपना उत्कृष्ट आदर दिखानेके लिए भारत भरको सुशिक्षित प्रजाने महामहोपाध्याय, डो. लिट्. वेदमार्तण्ड, गीतालंकार और ब्रह्मर्षि जैसी अनेक पदवियां आपको प्रदान की हैं। पर उनके कारण आप तो क्या विभूषित होते, इसके विपरीत वे ही पदवियां आपके नामके साथ जुडजानेके कारण स्वयं विभूषित हुई है।

आप प्राचीन भारतके ऋषिमुनियोंके समान शांत और पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए आए हैं। पर भारतीयोंकी दृष्टिसे यह एकसौ बीस वर्षतक चलनेवाला (विंशशत वार्षिक) एक यज्ञ ही है। इस यज्ञके तृतीय सवन अर्थात् सायंसवनके मध्यतक आप पहुंच गए हैं। इस सत्रकी समाप्ति होनेतक और उसके बाद भी भगवान् सविता आपको उत्तम आरोग्य और दीर्घायु प्रदान करें यही प्रार्थना हम करते हैं।

आपके वात्सल्यपूर्व आशीर्वादके अभिलाषी
समस्त गुजरातके नागरिक

इस सम्मानपत्रके बाद मुख्य अतिथि गुजरातके राज्यपाल श्री नित्यानन्द कानूनगोने गुजरातकी जनताकी ओरसे पण्डितजीको मोढेराके सूर्यमन्दिरके चित्रसे अंकित कास्केट, मानपत्र और ५००१ रु की थैली अर्पित की। इसके बाद राज्यपालने अपने भाषणमें कहा—

" १९३० में जब सर्वत्र उदासीनताका अन्धकार फैला हुआ था और लोगोंका आत्मविश्वास नष्ट हो गया था उस समय आगे आकर महत्त्वका काम करनेवाले जिन महापुरुषोंके नाम इतिहासमें उल्लेखनीय हैं, उनमें राजकीयक्षेत्रमें महात्मा गांधीजीका नाम स्मरणपूर्वक लिखा जाएगा। उसीके साथ जितने सन्तों और महर्षियोंने लोगोंमें आत्मविश्वास निर्माण करनेका भगीरथ प्रयत्न किया उनमें सन्त श्री सातवलेकरकी सेवा अमूल्य है। पण्डितजीका कार्य सम्पूर्ण मानवजातिका कार्य है। पण्डितजीका ज्ञान और सेवाका कार्य चिरंजीवी होगा। "

हो तो फर्श ले लो " का जवाब मिलना क्या आश्चर्य नहीं है ? यदि आज भारतमें वेदोंपर आधारित प्रखर राष्ट्रवादका निर्माण करना हो तो तेजस्वी जीवनके प्रतीक पारडी तीर्थक्षेत्रकी हमें यात्रा करनी ही चाहिए । वहां जानेपर जीवनके प्रति निराशावाद बिल्कुल धुल जाएगा । "

इस ग्रंथ समर्पणके बाद सत्कारका उत्तर देते हुए पण्डितजीने कहा– " यह सत्कार वेदोंका है। वैदिककालमें राज्यशासक विद्वान् होते थे । पर अब सब विपरीत हो गया है। पर वेदोंकी शिक्षाके अनुसार हम सबका जीवन विद्याकी सम्पन्नतासे तेजस्वी होना चाहिए । इसके बाद श्री सुहास वसन्त बहुलकरके द्वारा चित्रित पण्डितजीके तैलचित्रका अनावरण किया गया । अन्तमें राष्ट्रगीत होकर सत्कारका पूर्वार्ध समाप्त हुआ ।

रविवार ३० अप्रैलको न्यू इंग्लिशस्कूलके क्रीडांगणमें संघकी शाखामें उपस्थित हुए। ८ बजे मराठी ग्रंथालयके प्रांगणमें सर्वशास्त्रीय वेदपाठका कार्यक्रम हुआ। इसमें पूना, अलिबाग, बनारस, मद्रास आदि कई जगहोंसे आए हुए वेदपाठियोंने भाग लिया । सभी वेदपाठियोंको ग्यारह रु. की दक्षिणा पण्डितजीके हाथोंसे दिलवाई गई। उस समय पर पण्डितजीने कहा–' वेदपाठमें आरोग्यदायक शक्ति होती है। वैद्यकशास्त्रमें भी वेदपाठको रोगचिकित्साका एक उपाय बताया है। इसलिए सरकारको चाहिए कि वह ऐसी योजना बनाये कि जिससे ये वेदपाठी सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें । '' इसके बाद पण्डितजीने शान्तिमन्दिरमें जाकर न्यायरत्न विनोद और अपने दीक्षागुरु योगिराज वामनरावजी गुळवणीके दर्शन किए ।

पं. सातवलेकर सत्कार समितिके द्वारा आयोजित मुख्य समारोहका आरंभ सौ. ज्योत्स्ना भोळेके महाराष्ट्रगीतसे हुआ। समितिके अध्यक्ष श्री शन्तनुराव किर्लोस्करने अभ्यागतों का स्वागत किया। श्री सुधीर फडकेने श्री ग. दि. माडगूळकर रचित गान गाया—

> हे ब्रह्मर्षे महामानवा, अजर अमर तूं हे भूदेवा !
> वेदांताचा भाष्यकार तूं, उपनिषदांचा उद्धोकार तूं,
> *आर्यत्वाचा आविष्कार तू आर्या आशाय देसि नवनवा*
> प्रापंचिक परि अनासक्त तू तत्त्वज्ञानी कलासक्तसू
> मुक्तात्मा तरी देशभक्त तू शब्द न पुरती तुझ्या गौरवा ।
> पुरातनातील चिरन्तनाचा पुनर्घोष करी अमृतवाचा
> प्रेषित का तू सुत स्वर्गाचा ? ऋषिमालेतील मणि आठवा ?
> कर्मयोगी तू धर्मसमर्थक धर्मरयाचा प्रज्ञ प्रवर्तक
> पदीं लोळते जीवन सार्थक कुठें याहूं मग या सद्भावा ?

इस गायनके बाद सौ. जयश्री वैद्यने इस अवसर पर आये हुए नेताओंका शुभ सन्देश पढे । तदनन्तर पुनाके महापौर श्री सातवने पण्डितजीको हार पहनाकर उनके

शनिवार २९ ता. को सबेरे दत्तदिगम्बर यात्रा कम्पनीकी तरफसे गोखले सभागृहमें म. म. पोतदारकी अध्यक्षतामें पण्डितजीका सत्कार हुआ। उस समय पण्डितजीने कहा– " तरुणोंको संस्कृतका अध्ययन करना चाहिए और वैदिकजीवनसे उन्हें परिचित होना चाहिए अफगानिस्तानसे लेकर रूसतक फैले हुए वैदिक संस्कृतिके अवशेषोंका संशोधन और संरक्षण करना भारतीयोंका कर्तव्य है । "

उससे पूर्व श्री शन्तनुराव किर्लोस्करके लकाकि बंगलेमें पत्रकारोंसे बोलते हुए पण्डितजीने कहा– मुसलमानोंके आक्रमणके कारण भारतमें वेदकालीन कला और शास्त्र नष्ट हो गए। स्वतंत्र भारतमें अब उनका पुनरुद्धार अवश्य होना चाहिए। मैं शतायु हो गया, इसका मुझे जरा भी अचरज नहीं है। भगवान् कृष्ण एक सौ पच्चीस वर्षतक जीवित रहे। एक सौ बीस वर्षसे ज्यादा भी यदि कोई जीवित रहे तभी सच्चा पराक्रम कहा जा सकता है। इतना दीर्घजीवन अंगीकृत कार्यको पूरा करनेके लिए ही है। केवल जीना हमारे धर्ममें नहीं है। पुरुषार्थ करते हुए ही मनुष्यको जीवित रहना चाहिए। वेदोंमें विमानका उल्लेख मिलता है और उस समय औद्योगिक समृद्धि भी बहुत थी। आजके राजनीतिज्ञ जब चाणक्यनीतिका सहारा लेंगे, तभी देशकी उन्नति संभव है। चीन और पाकिस्तानके बारेमें क्या बोलूं। इनमें एक प्रत्यक्ष शत्रु है और दूसरा प्रच्छन्न। प्रत्यक्षकी अपेक्षा प्रच्छन्न शत्रु अधिक खतरनाक होता है। परमात्माने मनुष्यको शरीर, मन बुद्धि और आत्मा प्रदान किए हैं, उनकी वृद्धिका उपाय बतानेवाली शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। "

शनिवार (ता. २९ अप्रैल १९६७) की शामको पांच बजे उद्यानप्रासादमें साहित्याचार्य बालशास्त्री हरदास की अध्यक्षतामें उन्हीके हाथोंसे पण्डित सातवलेकरजीको अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित करनेका समारंभ हुआ। स्वागतगीत, श्री नानासाहब पानसेका प्रास्ताविक भाषण और सन्देश वाचनके बाद अभिनन्दन ग्रंथ समितिके अध्यक्ष डॉ. ग. ग. राजूरकरने ग्रंथकी विशेषताएँ बताईं। इसके बाद " शारदा " संस्कृत पाक्षिकके सम्पादक प. वसन्त गाडगिलने कहा– " परदेशियोंको भारतसरकार ताजमहल, कुतुबमीनार आदि दिखलाती है, पर प्राचीन वेदमहर्षियोंके प्रतिनिधिरूप पण्डित सातवलेकरके दर्शनके बारेमें विचार भी नहीं करती। बम्बई, अहमदाबाद और दिल्लीमें प. सातवलेकरसत्कार समितियां बन गई हैं। उनकी पार्श्वभूमिपर पूनामें सम्पन्न यह समारोह एक आदर्श है। "

इसके बाद समितिके अध्यक्ष श्री शन्तनुराव किर्लोस्कर की प्रार्थना पर अभिनन्दन ग्रंथका उद्घाटन एवं उसे पण्डितजीको समर्पित करते हुए अध्यक्ष साहित्याचार्य श्री बालशास्त्री हरदासने कहा– " यह एक वन्दनाग्रंथ है, क्योंकि अभिनन्दनग्रंथ तैय्यार करनेके लिए भी पण्डितजीकी योग्यतावाला विद्वान् ही चाहिए। भारतसरकारके करोडों रुपये इधर उधर खर्च हो जाते है, पर पण्डितजीके इस वेदप्रचारके भगीरथ प्रयत्नके लिए सरकारकी सहायता न मिलना, दान न मिलना " यदि इच्छा

पंडितजीका राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादके द्वारा सम्मान, दिल्ली : १९५९

दीर्घायुके लिए अभीष्ट चिन्तन किया। महामहोपाध्याय सिद्धेश्वरशास्त्री चित्रावने कहा- " वेदोंके नवीन अर्थ करनेकी दृष्टि पण्डितजीने प्रदान की है । " औंधके पंढरीनाथ इनामदारने पण्डितजीको " भारतरत्न " पदवी देकर सम्मान करनेका उल्लेख किया। श्री पु ग. गोखलेने भी इस प्रसंग पर अपना सम्मान प्रदर्शित किया। इसके बाद श्री बालशास्त्री हरदास, सौ. यमूताई किर्लोस्कर, श्री अप्पासाहब जोगके भी संक्षिप्त भाषण हुए। तदनन्तर समारोहके अध्यक्ष डॉ. दा. धा. पेंडसेने समितिकी तरफसे पण्डितजीको १ लाख रु. दानकी घोषणा की उसमें ५१ हजारकी थैली, चांदीकी सरस्वती मूर्ति, शाल और नारियल दिया गया। तदनन्तर डॉ. व. ग. राहूरकरने सम्मान पत्र पढकर सुनाया—

शतायु कर्मयोगी पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साष्टांग प्रणाम,

मान्यवर पण्डितजी- आप दिनांक १९ सितंबर १९६६ को सौवें वर्षमें प्रविष्ट हो गए हैं। वेदग्रंथ भारतीयोंके लिए अमूल्य पैतृक सम्पत्ति है। इन वेदोंका सम्पादन विवरण और संशोधन करके आपने विद्वानोंकी मान्यता प्राप्त कर ली है। आपने अनेकों ऐसे ग्रंथ लिखे हैं जो लोगों पर उत्तम संस्कार करनेवाले हैं। चित्रकलामें आपकी निपुणता प्रसिद्ध ही है। पूना विश्वविद्यालयने आपको " डी. लिट् " की उपाधि देकर आपकी विद्वत्ता और वाङ्मयीन कार्यका आदर किया। आपके सत्कार करनेका भाग्य हमें मिल रहा है यह हमारा महान् सौभाग्य ही है।

वेदवाचस्पति पण्डितजी केवल भारतीयोंके लिए ही नहीं परराष्ट्रोंमें भी वेदप्रेमी लोगोंके लिए चारों वेदोंकी संहिताको उत्तम रीतिसे सम्पादित और छापकर अत्यन्त थोडेसे मूल्यमें सर्वसाधारणको प्राप्त करा दीं। मराठी, हिन्दी, गुजराती भाषाओंमें उनका सरस और सुबोध अनुवाद भी किया। ऋग्वेदकी दैवतसंहिता तीन भागोंमें छापी, वह वेदसंशोधकोंके लिए अत्यन्त अमूल्य संदर्भग्रंथ है। आपकी यह सब वैदिकग्रंथसम्पत्ति प्रत्येक घरको संस्कारसे सम्पन्न करेगी, इसमें कोई संशय नहीं।

ब्रह्मर्षि पण्डितजी आपने बहुत परिश्रमसे औंधमें स्वाध्यायमण्डलकी स्थापना की। परन्तु भयंकर आपत्तिके कारण उसे पारडीमें स्थानान्तरित करना पडा। अब पारडी में एक पवित्र गुरुकुल ही स्थापित हो गया है। वहांके वेद मन्दिरमें आप आज भी वेद और संस्कृतविद्याकी निरलस भावसे सेवा कर रहे हैं। अध्ययन, अध्यापन, संशोधन और प्रकाशनके रूपमें आपका यह ज्ञानयज्ञ अखंड रूपसे चल रहा है।

गीतालंकार पण्डितजी गीतापर हजार पृष्ठोंकी आपकी "पुरुषार्थबोधिनी" टीका गीताका नवीन दर्शन कराती है। इसमें आपने गीताका वास्तविक स्वरूप व उद्देश्य निष्काम कर्मयोग, वेद और गीताका सम्बन्ध आदि अनेक प्रश्नोंका ऊहापोह किया है। इस ग्रंथने गीताके अध्ययनमें अमूल्य योगदान किया है।
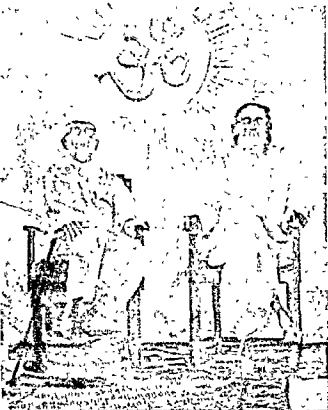
पंडितजी व पूजनीय श्री मा. स. गोलवलकर गुरुजी . १९६६

पंडितजी व गुजरातके राज्यपाल मेहदी नवाजजंग, पारडी : १९६०

तजी व सौ. सरस्वतीबाई : १९६५

ंमग्न पंडितजी : १९६५
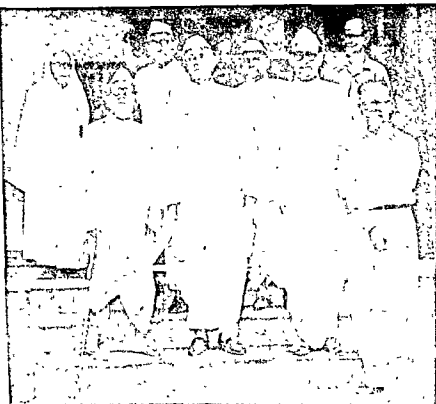
सातवलेकर, माननीय श्री. मोरारजी देसाई, व मा. श्री. हितेन्द्रभाई देसाई, पारडी १९६४

पंडितजी और मा. श्री. बलवंतराय महता, (मुख्यमंत्री, गुजरात) पारडी १९६४
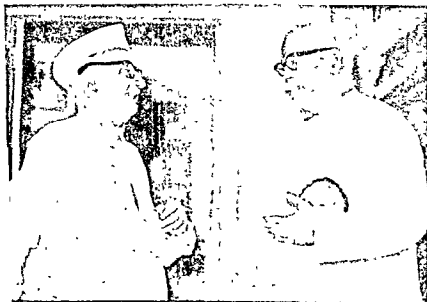
पूनामे सत्कारके अवसर पर २८ अप्रैल १९६७ के दिन सौ. सरस्वतीबाई व पंडितजीकी सौ. यमुताई किर्लोस्कर आरती उतारती हुई

पूना मराठी ग्रंथसंग्रहालयकी ओरसे पंडितजीका सत्कार - ३० अप्रैल १९६७
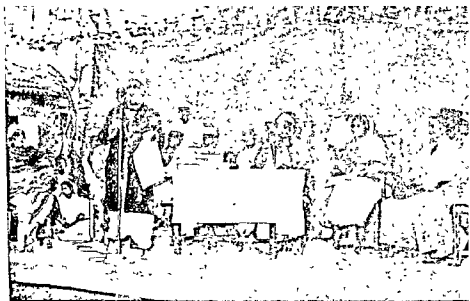
वेदमदिर उद्घाटनके समय, पारडी : १९५४

बम्बईमें संस्कृत संमेलनके अवसर पर : १९५८
पं. सातवलेकरजी, श्रीमत् शंकराचार्य पुरी, श्रीमत् शंकराचार्य द्वारका

पूना विश्वविद्यालयकी तरफसे डी. लिट्. पदवीदानके अवसर पर, पारडी । डॉ. माईणकर, पंडितजी व श्री. सरदेशपांडे

आचार्य अत्रे व पंडितजी, पारडी : १९६५

साहित्यवाचस्पति पण्डितजी वाल्मीकि रामायणकी समालोचना और हिन्दी और मराठीमें अनुवाद, उपनिषद् भाष्यग्रंथमाला, योगग्रंथमाला, महाभारत संशोधन आदि अनेकों ग्रंथ आपके पाण्डित्य और संस्कार करनेकी क्षमताके द्योतक हैं। आपके गंभीर वाङ्मयके समुद्रके विशुद्ध राष्ट्रोन्नति और समाजसेवा ये दो अन्तःप्रवाह हैं। संस्कृत भाषाका अध्ययन सरल बनानेके लिए आपने संस्कृतपाठ–मालाके चौबीस भाग तैय्यार किए हैं। संस्कृत भाषा पर आपका अपार प्रेम आजके भारतीय नवयुवकोंके लिए प्रेरणा दायक है।

चित्रकला कुशल पण्डितजी आप चित्रकलामें भी कुशल हैं और इस कलामें आपकी अपनी विशेषता है, संभवतः वह बहुत ही कम लोग जानते हैं। आपका हमेशा यह मत रहा है कि "कलामें हमेशा उच्च ध्येय प्रतिबिम्बित होना चाहिए।" आपका कहना है कि "कला और नीतिका आपसमें अटूट सम्बन्ध है।" इस कलामें आपके कुछ शिष्य आज विख्यात चित्रकार हैं।

संघटक पंडितजी आप विद्वान् हैं, पर कलहप्रिय नहीं। समाजका संघटन करके राष्ट्रको सामर्थ्यसम्पन्न करनेके लिए आप निरन्तर समाजमें घुलमिल कर रहते हैं। "वैदिक राष्ट्रगीत" नामक अपने लेखके कारण आप ब्रिटिश सरकारके रोषके पात्र हुए थे। आपका हमेशासे यह सिद्धान्त रहा है कि राष्ट्रकी तैय्यारी संरक्षणात्मक और समय पडने पर आक्रमणात्मक भी होनी चाहिए। आपका यह सिद्धान्त हमारे राष्ट्रके लिए दीपस्तंभके समान मार्गदर्शक होगा। औंध रियासतमें भी स्वराज्य स्थापना और संरक्षकदल स्थापनाके कामोंमें आप उस समय अगुआ थे।

जीवनसंग्रामके कुशल योद्धा पंडितजी आपके आजतकके जीवनमें अनेक प्राणसंकट आए। सबकुछ उद्ध्वस्त होनेका प्रसंग भी अनेकों बार आ पडा। पर आप डगमग जरा भी नहीं हुए। झंझावातमें भी आप निश्चल खडे रहे। आपके ८१ वें वर्षमें आपने पारडी जाकर अपना काम फिर शुरु किया। जीवनके संग्राममें आप हमेशा लडते भिडते और भयंकरसे भयंकर संकटोंको भी मात देते आए हैं।

जगन्मान्य पंडितजी आपकी विद्वत्ताके कारण आजतक आप महामहोपाध्याय, साहित्यवाचस्पति, डी. लिट्, डी. लाज, वेदविद्कुलशेखर, गीतालंकार, वेदवाचस्पति, विद्यामार्तण्ड, ब्रह्मर्षि, भारतभूषण, पद्मभूषण, आदि सम्मानित पदवियां प्राप्त कर चुके हैं। राष्ट्रपतिने भी आपका सत्कार किया। विश्वधर्म परिषद्के लिए रूस और जापान देशोंसे आपको निमंत्रण मिले। विश्वशान्तिपरिषद्के जेनेवा अधिवेशनके लिए भी आपको निमंत्रित किया गया था।

मान्यवर पण्डितजी तेजस्वी और गुणसमृद्ध राष्ट्रजीवनकी स्थापनाके लिए सम्पूर्ण वेदवाङ्मय और संस्कृत विद्याको प्रादेशिक और राष्ट्रभाषाके माध्यमसे सर्वसाधारण जनता तक पहुंचाकर समाजको जागृत करनेका काम आप आज भी अनेक

तीन बंधु – डॉ सीतारामपंत, पंडितजी व श्री. सखारामपंत

श्री. पंडितजी और श्री ना. गो. चापेकर - १९६४

करनेवाले पण्डित सातवलेकरजी ही हैं। वैदिक प्रार्थना तथा डॉ. ल. दा. भावे और पं. गणेशशास्त्री लेंढेके द्वारा स्वरचितपद्यसुमनांजलिको अर्पित किए जानेके बाद पं. ना. श्री. सोनटक्केने शुभसन्देश पढे। विश्वविद्यालयके उप-कुलपति श्री. द. वा. पोतदारने कहा- " प्रत्येक मनुष्यको चाहिए कि वह अपने पुस्तकसंग्रहमें वेदोंकी प्रतियां अवश्य रखें। पण्डितजीने उनकी कीमत बहुत ही अल्प रखी है। " इसके बाद प्रसिद्ध वेदविद्वान् श्री वि. प्र. लिमयेने सम्मानपत्र और पदवी पत्रको पढकर सुनाया और कुलपति डॉ. बापूजी अणेने उसे पण्डितजीको समर्पित किया। इसके साथ ही पन्द्रह सौ रु. की थैली, शाल, विश्वविद्यालयके द्वारा प्रकाशित सभी ग्रंथ और श्रीफल प्रदान किया गया।

सत्कारके लिए आभार व्यक्त करते हुए पंडितजीने कहा-" भारतको जाग्रत और तेजस्वी करना हो तो वेदोंका ज्ञान समाजके सभी स्तरोंतक पहुंचाना पडेगा। इसके लिए भारतकी सभी भाषाओंमें वेदोंका अनुवाद होना चाहिए। इस प्रचंड काममें आप भी सहायता दें, यही मेरी प्रार्थना है। " अन्तमें बापूजी अणेने कहा-" अंग्रेजीको जबर्दस्ती पढाने और संस्कृतके विषयमें जबर्दस्ती न करनेके सिद्धान्तका प्रतिबन्ध अब होना ही चाहिए। " इसके बाद आभार प्रदर्शन और राष्ट्रगीतसे समारंभ पूर्ण हुआ।

ता. २ मईके दिन पण्डितजी अपने राजनीतिक गुरु लो. तिलकको केसरी संस्थामें गए और लोकमान्यके वाङ्मयका दर्शन करके उनकी मूर्तिको सगद्गदित अन्तःकरणसे हार पहनाकर उन्हें अभिवादन किया।

❂ ❂ ❂

अड़चनोंका मुकाबला करते हुए और आर्थिक हानिको सहकर भी चला रहे हैं। १०० वें वर्षमें भी आपकी तन्मयता देखकर आपके इस कार्यमें थोड़ी बहुत सहायता देनेके उद्देश्यसे विद्याके केन्द्र पूना तथा अन्य स्थानों पर भी आपके सुहृद्गणोंने आपका सत्कार करके थैली भेंट करके अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेका निश्चय किया है। यह कार्य करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ, इसका हमें बहुत आनन्द हो रहा है।

महर्षि पण्डितजी आपके तपस्यापूत ऋषितुल्य जीवन, सादे रहन सहन और उच्च विचार, अंगीकृत कार्यके प्रति हर परिस्थितिमें एकनिष्ठ रहनेका दृढ निश्चय, आपकी वाङ्मयसम्पदा, आपकी राष्ट्रभक्ति, आपका कर्मयोग इन सभी बातोंकी राष्ट्रको आज अत्यन्त आवश्यकता है। आपका जीता जागता उदाहरण हमें और पच्चीस वर्षोंतक प्रेरणा देता रहे और हमारा मार्गदर्शन करता रहे, यही हमारी भगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना है। आपसे भी यही हमारी प्रार्थना है कि हमारे इस मानपत्रको स्वीकार करके हमें उपकृत करें।

आपके

सदस्य, वेदवाचस्पति पण्डित सातवलेकर
सत्कार समिति, पूना-मराठी ग्रंथालय,
४३७ ब नारायण पेठ, पूना- २

यह सम्मानपत्र अध्यक्षके हाथसे चांदीके घपकमें अर्पित किया गया। इसप्रकार सपत्नीक पण्डितजीका सत्कार होनेके बाद अध्यक्ष डॉ. पेंडसेने पूनाकी जनताके इस पुनीत कार्यपर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा- "पण्डितजीके रूपमें प्राचीन ऋषियोंकी परम्परा ही चली आ रही है। अनेकों साम्राज्य आए और चले गए, पर अमृत पिया हुआ यह वेदवाङ्मय अखण्ड रहा। पण्डित सातवलेकर जैसे तेजस्वी वेद-मूर्तियोंकी परम्परा भारतमें अखण्डरूपसे चालू रही तो वेदोंकी उत्पत्तिभूमि सप्त-सिन्धु प्रदेशकी वेदभूमि फिर भारतके अधिकारमें आ जाएगी।"

इस सत्कारका उत्तर देते हुए पण्डित सातवलेकरजीने कहा- "वैदिक कालमें लोग बहुत उन्नतिशील थे वैसी उन्नति यदि आज हमें करनी हो तो आजकी अपेक्षा कई गुनी उन्नति अधिक करनी पड़ेगी। वृद्धको तरुण बनाना, आकाशमें संचार करना, टूटे हुए अंगोंकी जगह लोहेके अवयव बनाकर मनुष्यको युद्धक्षम बनाना आदि बातें तो वैदिककालमें आसान थीं। वैयक्तिक, राजकीय और सामाजिक क्षेत्रोंमें सुधार, सुसम्बद्धता और अत्यन्त आवश्यक है, यह सुधार हमसे हो सके और प्रगतिशील आर्यके रूपमें संसारमें हमारी ख्याति हो, यह हमारी अभिलाषा परमात्मा सफल और सुफल करे।"

ता. १ मई १९६७ के दिन वैदिक संशोधन मण्डलके भव्य भवनमें तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठका पदवीदान समारंभ हुआ। विद्यापीठके इतिहासमें "विद्वत्कुलशेखर" भारताचार्य चिन्तामणि वि. वैद्यके बाद "वेदर्षिकुलशेखर" की पदवी प्राप्त

" इसके बाद सांगलीमें गजानन मिलके मालिक श्री विष्णुपंत वेलणकरने अपनी तुला की, उस समय मुझे बुलाकर मेरे ग्रंथके प्रकाशनके कारण मेरा सम्मान किया। उस समय उन्होंने १५० रु. नकद और एक सोनेकी मोहर दी, उसे मैंने घर जाकर एक डिब्बेमें रख दिया। "

" इसे छोड़कर और कभी सोनेका स्पर्श मैंने किया हो, मुझे याद नहीं आता। बम्बईके आर्टस्कूलमें प्रिंसिपल ग्रीनवुडके आग्रह पर मैंने और मेरे मित्रश्री तासकरने एकही समय शिक्षककी नौकरी मंजूर की। पहिले वेतनसे मैंने वैदिक ग्रंथोंको खरीदा और मेरे मित्रने " लाभकी अंगूठी " बनवाकर पहनी। "

" मेरे अन्दर यह इच्छा हो कभी नहीं हुई कि मैं शरीर पर सोना धारण करूं या मूल्यवान् वस्त्र पहनूं। खद्दरके सादे कपडे पहननेमें ही मुझे सदा आनन्द मिला। "

" पण्डित होनेके कारण मुझे औंध महाराजने एक शाल दी दूसरी शाल इचलकरंजीके राजाने मेरे सत्कारके अवसर पर दी। ये दोनों शाल सौ सौ रु. की थीं। इसके साथ ही दोनोंने ३०० रु. की दक्षिणा भी दी। इसके बाद ग्वालियर माधव महाराजने गणेशोत्सव पर बुलाकर ५०० रु. दक्षिणा और ३०० रु. की जरीवाली शाल दी। ये शाल गत ४० वर्षोंसे मेरे पास है। "

" ग्वालियरकी शाल वेशकीमती होनेके कारण ओढनेमें संकोच लगता है। "

बचपनमें, पण्डितजीका नाम " सोनबा " था, पर पण्डितजीका सोनेसे संस्पर्श नाममात्रके लिए ही हुआ है। पर उपर्युक्त कथनसे इतना तो स्पष्ट होता है कि पण्डितजीका रुझान ठाटबाटकी तरफ कभी नहीं रहा।

पण्डितजीने अपनी लेखनीके समान ही वाणीका भी उपयोग सदा समाजसेवाके लिए ही किया। वे लिखते हैं—

" मुझे अपने जन्मस्थान कोलगांवमें १६ वें वर्ष सत्यनारायणकी कथा करनेका पहिला मौका मिला। सार्वजनिक रूपमें बोलनेका यह प्रथम अवसर था। इस समय तक मेरी संस्कृत शिक्षा शास्त्रीय पद्धतिसे हो चुकी थी। सत्यनारायणकी कथाको मैं पढकर समझ सकता था। गांवका जनसमुदाय। करीब १००–१५० आदमी थे। पर कथा शुरु किए ५–६ ही मिनट हुए होंगे कि मुझे श्रोताओंको देखकर डर लगने लग गया। प्रथम अध्यायके पूरे होते न होते मैं पसीनेसे पूरी तरह नहा गया। मैं धोती पहनकर बैठा था, आगे चौपाईपर पोथी रखी हुई थी। श्लोकोंको पढकर अर्थ समझाना कोई मुश्किल काम नहीं था, पर मुझे डरने आकर घेर लिया। शरीर कांपने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरा सिर छत जितना ऊंचा हो गया है। पर मुंहसे कथा सुसंगत रीतिसे निकलती जा रही थी, इसका कारण सिर्फ यही था कि मेरे सामने श्लोक धरे हुए थे। अन्तमें जरूरतसे ज्यादा पसीना आजानेके कारण

: २१ :

पण्डितजीका व्यक्तित्व

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकुलाकुलेक्षणः ॥
(भागवत १०।३८।२६)

पण्डितजीके व्यक्तित्वमें वह सौष्ठवता और आकर्षकता है, जो सम्पर्कमें आनेवाले पर चुम्बकका काम करती है। एक बार सम्पर्कमें आनेवाला स्वयं ही उनकी तरफ खिचा चला जाता है। आत्मनिरीक्षणके द्वारा पण्डितजी अपने विषयमें ही लिखते हैं—

"मैंने बचपनमें कान या हाथमें कभी भी सोना नहीं पहना। कानमें थोड़े दिनके लिए पहना था तो उसे भी किसी कारणसे निकाल देना पड़ा। सातवें वर्ष मेरे शरीरपर ३०० रु. कीमतके १५ तोले सोनेके अलंकार केवल एक दिनके लिए रहे। उन दिनों २० रु तोला सोना था। हाथोंमें कड़ियां, गलेमें माला आदि कुछ जेवर पहने थे। सवेरे पहनें, दिनभर पहने रहा और शामको उतार दिए।"

"मेरे पिता किसी व्यापारीके जामीन थे। उसमें वे फंस गए, इसलिए शामको वे जेवर बेचकर ३०० रु. उन्हें भरने पड़ गए। यह बातचीत मैंने सुनी थी, इसलिए मुझे आज भी याद है। उस समय १२ घण्टेतकके लिए सोनेका स्पर्श मेरा शरीर कर सका। उसके बाद विवाहके समय ससुरालकी अंगूठी मेरी उंगलीमें पड़ी, पर वह थोड़ी ढीली होनेके कारण रातको भोजनोपरान्त हाथ धोनेके लिए एक क्यारीके पास आने-पर वह वहीं कहीं गिर गई। उसका मुझे पता नहीं लगा। उस समय मैं उनींदा हो रहा था आधीरात हो गई थी। प्रतिदिन अंगूठी पहननेकी आदत न होने और अंगूठी भी ढीली होनेके कारण वह कब और कहां खो गई, इसका मुझे ध्यान भी न रहा। कोंकणमें रातके समय भी क्यारीकी क्यारीके पास जाकर हाथ धोते हैं। इसप्रकार विवाहकी अंगूठी विवाहस्थलपर ही मर्मार्पित हो गई। उसके खोनेका पता मुझे घर आनेपर लगा। उस समय ६ घण्टेके लिए मेरे शरीरके साथ सोनेका स्पर्श हुआ"

" हैदराबादमें रहते हुए थियॉसाफिकल सोसायटीमें विष्णुपुराण पर मुझे अंग्रेजीमें बोलना पड़ा। थियॉसाफीके सदस्योंका मुझपर प्रेम था, इसीलिए उन्होंने मेरा यह भाषण सुन लिया। पर प्रयत्न करनेके बावजूद भी मैं अंग्रेजीमें भाषण देनेमें माहिर न हो सका, क्योंकि अंग्रेजी पर मेरा अधिकार नहीं था।"

इसप्रकार पण्डितजीने कभी भी "मृतमरतीति वक्तव्य" का सिद्धान्त नहीं अपनाया। जो कुछ बोलना होता, उसे वे निडर समयमें ही बोल दिया करते थे। समयका अनुशासन हमेशा उनपर अंकुशके समान काम करता रहा। उनके इन्हीं गुणोंने उन्हें निर्भय बना दिया था, अपनी निर्भयवृत्तिके बारेमें पण्डितजी लिखते हैं–

" हमारे पौरोहित्यका अधिकार कोलगांव और कुणकेरी इन दो गांवोंपर था। कुणकेरी गांव कोलगांवसे तीन मील दूर है, पर बीचमें एक ऊंचा पहाड़ और घना जंगल मिलता है, जिसमें बाघ भी मिलते हैं। इस कुणकेरी गांवमें बरसातके चार महीने मुझे पुराणकी कथा कहनेके लिए जाना पड़ता था। २५ बरसकी उम्रमें मैं १२ बरसके अपने छोटे भाईको लेकर शामको वहां जाता था। मुझ अकेलेसे जाना नहीं होता था। भाईका साथ बहुत काफी था। इस अनुभवके कारण मेरे अन्दर थोड़ासा धैर्य आ गया।"

"एक बार कोलगांवसे सवेरे सवेरे निकल कर वेंगुर्ला जाना था। वेंगुर्ला कोलगांवसे १७ मील है। ४ बजेसे लेकर ९ बजेतक इतना रास्ता तय करना था। उस समय अलार्मवाली घड़ियां नहीं थीं। पिताने ४ का समय जानकर मुझे १२॥ बजे ही उठा दिया। मैं ४ का समय जानकर उठ गया। नित्यकर्म निपटाकर निकल पड़ा। हमारे घरसे रास्ता एक फर्लांग दूर था। मैं रास्तेपर पहुंचा ही था कि सावंतवाडीसे आते हुए एक पुरुष व एक स्त्री मुझे मिल गए। पुरुषने पूछा– "तुम कहां जाओगे?" मैंने कहा– "वेंगुर्ला"। तब वह बोला– "इसे आकेरी छोड देना। बीचमें पर्वतपर इसे कोई न कोई साथी अवश्य चाहिए।" यह कहकर वह सावंतवाडी लौट गया। रास्तेकी एक तरफ वह और दूसरी तरफ मैं चल रहे थे। बीचमें भयंकर पर्वत आया। अन्धेरा था ही। आगे जाकर वह आकेरीमें रह गई और मैं आगे बढ गया। सवेरे ५ बजे मैं वेंगुर्ला पहुंचा। १२॥ से ५ तक रातमें मैंने अकेले यात्रा की, पर डर नहीं लगा।"

" मुझे आज भी आश्चर्य प्रतीत होता है कि इतनी रातमें भयानक पर्वतके पार होनेतक ही साथ देनेवाली वह स्त्री कौन थी और वह पुरुष भी अपरिचित मनुष्यके साथ उस स्त्रीको छोडकर कैसे लौट गया?"

"औंधमें रहते हुए मैं एकबार रातको रहिमतपुर स्टेशनसे १॥ बजे अकेले ही निकलकर १४ मील रातोरात चलकर सवेरे ४॥ बजे घर पहुंचा। रहिमतपुरके श्मशानमें उस समय एक मुर्दा जल रहा था। बीचके पठारपर भूत भी दीखनेकी बात लोग करते थे। पर मुझे कुछ नहीं दिखाई दिया और न डर ही लगा।"

मेरा गला सूख गया। पर किसी तरह कथा समाप्त कर दी। श्रोतागणोंके गांवके होनेके कारण उनमेंसे कोई भी मेरे डरको पहचान न पाया। पर मेरे दिमागमें यह प्रसंग हमेशाके लिए अपना छाप छोड गया। बादमें १५–२० बार कथावाचन करनेके उपरान्त यह डर कम हो गया।"

"इसके बाद व्याख्यान लिखकर मैंने सभाओंमें पढे, बादमें पॉइण्ट्स लिखकर सभाओंमें भाषण देने लगा। मैं प्रायः कभी भी पूर्व तैय्यारी किए बिना बोलता नहीं था। यदि समय पासमें रहता तो सभी व्याख्यान लिख डालता था। यदि श्रोता विद्वान् होते तो पॉइण्ट्स लिखकर सामने रख लेता और उन पर बोला करता। इस प्रकार अप्रासंगिक भाषण मैंने कभी नहीं दिया।"

"बिना पूर्व तैय्यारीके तत्काल भाषण (Extempore) देना मुझे नहीं आता। जिसप्रकार मंजे हुए वक्ता होते हैं, जो एकदम खडे होकर बोलना शुरु कर देते हैं, वैसा मैं नहीं हूं।"

"मैं प्रथम शास्त्रोंके वचन एकत्रित करता हूँ, फिर उनका पूर्वापर सन्दर्भ जोडता हूँ, इसके बाद व्याख्यान लिखता हूँ। इसप्रकार अपने विषय पर मैं तीन बार विचार करता हूँ, इसीलिए व्याख्यानके समय निश्चित किए हुए के अनुसार मैं बोल पाता हूँ। मैं अवसर एक घण्टेसे ज्यादा नहीं बोलता और उतनेमें मैं अपने विषयका प्रतिपादन उत्तम रीतिसे कर देता हूँ। मुझे किसी भी विषयपर जितना चाहे उतना बोलना नहीं आता।"

"निश्चित करके बोलनेके कारण मेरे सामने कभी भी ऐसा अवसर नहीं आया कि जब मुझे यह कहना पडा हो- "यदि समय मिलता तो मैं यह सिद्ध करके दिखा देता।"

"आजतक मैंने दो हजारसे अधिक ही व्याख्यान दिए होंगे, उनमें सबसे अधिक व्याख्यान तो मैंने पंजाबमें हिन्दीमें दिए।"

"यद्यपि पहले पहल मुझे श्रोताओंका डर लगा, पर २५–३० व्याख्यानोंके बाद यह डर दूर होगया। उसके बाद तो मैं २०–२५ हजार श्रोताओंकी सभामें भी धडल्लेसे बोलता था।"

"मैं स्वभावतः ही प्रथम श्रेणीका वक्ता होनेके लायक नहीं हूँ। अभ्यासके द्वारा तैय्यारी करके बोलनेवाले साधारण वक्ताओंमेंसे मैं एक हूँ।"

"२५–३० वर्ष पूर्व व्याख्यानोंके लिए एकत्रित किए हुए पॉइण्ट्स आज भी मेरे पास है और आज भी मुझे उनका उपयोग होता है। मैं हिन्दी और मराठी इन दो भाषाओंमें ही भाषण दे सकता हूँ। संस्कृतमें व्याख्यान देनेकी आदत २०–२५ बरसतक थी, पर बादमें संस्कृत बोलनेके मौके कम ही मिले। आज भी थोडा बहुत परिश्रम करके संस्कृतमें उत्तम रीतिसे भाषण दे सकूंगा।"

सभी हो जाती है, उसका चित्रण गीताके १८ वें अध्यायके निम्न श्लोकोंसे हो सकता है—

बुद्धया विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

पण्डितजीके प्रथम दर्शनसे लेकर बातचीत तक मनुष्य पर होनेवाले परिणामोंका वर्णन कुछ इस प्रकार किया जा सकता है—

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यम्,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

पारडीमें आनन्दाश्रमके प्रांगणमें स्थित पण्डितजीका निवास स्थान वेदमहर्षिका आश्रम है। यह आश्रम स्वाध्यायमण्डलके कार्यसे सजा हुआ है। पण्डितजीमें गुण परखनेकी योग्यता अनोखी है। वे किसी भी मनुष्यमें निहित सूक्ष्मतम योग्यताको भी आसानीसे पहचानकर उसे बढ़ावा देनेका प्रयास करते हैं।

वैदिक वाङ्मयके सतत अध्ययनके कारण पण्डितजीका जीवन वेदमय हो गया है। पण्डितजीमें परिश्रम भरपूर है। आतिथ्यमें भी ये अग्रणी हैं। १९४८ सन्में औंध छोडकर पारडीमें आने पर उन्होंने सर्वप्रथम भूमिकी सेवा की। आज जहां सुन्दर उद्यान और उसमें रंगबिरंगे फूल लहलहा रहे हैं, वहां आजसे बीस वर्ष पहले झाडझंकाडोंका साम्राज्य था। उन्हीं झाडझंकाडोंमें पण्डितजीने पसीना बहाकर सुन्दर उद्यान तैय्यार कर दिया।

"विद्या विनयेन शोभते" की उक्तिके अनुसार विद्वान्का रहन सहन बहुत सीधा-सादा होता है। जरूरतके मुताबिक कपडे, उतनी ही अन्य चीजें, पर ज्ञानमात्र विपुल होता है। पण्डितजीका भी ग्रंथसंग्रह तत्त्वचिन्तनको परिपुष्ट करनेवाले और अनेक अनुपलब्ध पुस्तकोंसे भरा पडा है।

पण्डितजीके अक्षर साफ, अत्यन्त सुन्दर थोडे टेढे रहते हैं। उनमें अर्थाविर्भाव स्पष्ट रूपसे होता है। लिखावट व्यक्तित्वका द्योतक है। लिखावट बताता है कि पण्डितजी व्यवस्था और अनुशासन प्रिय हैं। उनकी पंक्तियां समानान्तर पर होनेके कारण वे विवेकशील, महत्त्वाकांक्षी और आशावादी हैं।

पण्डितजीका मत है कि जिसप्रकार घर, पर्व, विश्व, राष्ट्र, चक्र, आर्द्र और न्हस्वमें

: २२ :

चित्रकार पण्डितजी

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।

यह संस्कृत सुभाषित, अतिशयोक्तिको छोडकर सर्वांशमें सत्य है ।

महर्षि पं. सातवलेकर वेदमूर्ति और पुरुषार्थ आदि मासिकोंके सम्पादकके रूपमें जितने विख्यात हैं, उतने ही वे निपुण चित्रकारके रूपमें प्रसिद्धिको पाये हुए एक कलाकार भी हैं । उन्होंने बचपनसे ही कपड़ों और कागजोंपर प्राकृतिक दृश्य उतारनेका प्रारंभ किया था । बम्बईके जे. जे. स्कूलमें विद्यार्थी और कुछ समयतक शिक्षकके रूपमें भी रहे । वहां प्राविण्यमें पदक प्राप्त करके उन्होंने चित्रकलाको ही अपने योगक्षेमका व्यवसाय और आजीविकाका साधन निश्चित किया था ।

औंधके पंत प्रतिनिधि बालासाहेबने आत्मकथामें लिखा है- "मैं बम्बईमें कानूनका अध्ययन कर रहा था तभी लक्ष्मणराव किर्लोस्कर और बाजीराव गुत्तीकरने जे. जे. स्कूलमें अध्ययन करनेवाले श्रीपाद दामोदर सातवलेकरका मुझसे परिचय करवाया । इस प्रकार ये हमारे परिचित चित्रकार बन गए थे । हमने उनसे पत्र लिखकर पूछा कि क्या आप औंधमें आकर ड्रॉप्स और तीन चार पर्दे रंग सकेंगे ? यदि स्वीकार हो तो कितना वेतन लेंगे और उस प्रबंधमें कितना खर्च हो जाएगा ? वेतन कितना मांगा था, यह अब याद नहीं । पर हमने निश्चय किया कि कपड़ा लेकर पर्दे बनाये जाएं और श्रीपाद उन पर्दोंको रंग दें । उसके साथ यह भी निश्चित हुआ कि श्रीपाद बम्बईसे रंग आदि सभी पदार्थ लाकर महीने भर तक औंधमें रहें और पर्दे रंग कर दें । उसके अनुसार श्रीपाद औंध आए । उस समय उन्हें लक्ष्मणराव किर्लोस्कर और बाजीराव गुत्तीकर आदि "सोनबा" कहते थे, अतः हम भी उन्हें इसी नामसे पुकारने लगे । सोनबा बम्बईसे सभी तरहके रंग और

+

सफेद रंग ले आए थे। हम कपडे पर कभी भी सफेद रंग न लगाकर वैसे ही उसे चित्रित कर देते थे, इस कारण पर्देपरके दृश्य उठावदार और चमकीले नहीं लगते थे। सोनबाने पहले पर्दे लकडीके पट्टों पर ठोककर बडे बडे ब्रशसे उन पर सफेद रंग फेर दिया, तब हमें ज्ञात हुआ कि परदे रंगनेके लिए पहले क्या करना चाहिए। हमारे पास भी चित्र काढनेके बहुतसे काम पडे हुए थे, इसलिए परदे रंगनेके काममें हम उनकी प्रत्यक्ष सहायता नहीं कर पाये, पर गणेशकी मूर्ति बनानेके काममें व्यस्तता होनेपर भी कभी कभी दत्तोपंत चितारी उनके पास जाकर थोडी बहुत मदद कर दिया करते थे।"

दत्तोपंत चितारी औंध रियासतके चितेरे थे, उनका वेतन सर्वप्रथम सात रु. था, जो बढकर पन्द्रह रु. तक पहुंच गया था। वे मिट्टी और खडियासे चित्र और मूर्तियां बनाया करते थे। दत्तोपंत चितारीने औंधमें अंबाबाईके शिखर पर चूनेसे अनेक चित्र अंकित किए थे। उन्होंने खडियेकी मिट्टीसे कई मनुष्योंकी मूर्तियां भी तैय्यार की थीं। गणेशकी मूर्ति तो वे हमेशा ही बनाते थे। कॅनवास पर आँइलपेंटिंगके भी चित्र तैय्यार किए। वाटर कलरकी चित्रकारी भी उन्हें ज्ञात थी। चित्रकलाके समान ही वे एक कुशल तबलची भी थे।

औंध महाराजने कुकुडवाडके कुशल चित्रकार श्री बंडोपंत हुद्देदारको यमाईके शिखरको बनानेके लिए औंध बुलाया था, और उसे वेतन देकर औंधका चित्रकार नियुक्त कर दिया। ये दत्तोपंत उन्हींके पुत्र थे। दत्तोपंत १९०५ सनमें अपनी मृत्यु तक औंधमें रहे। सातवलेकर नाटकोंके परदे रंगने आते थे तब महाराजने दत्तोपंतको ही सातवलेकरके सहकारीके रूपमें नियुक्त किया था। श्रीमन्त बालासाहब पंत-प्रतिनिधिके बडे भाई श्री तात्यासाहब महाराज नाटकोंके बडे शौकीन थे, इस कारण औंधमें प्रतिवर्ष नये नये नाटक होते थे। इन नाटकोंमें नये नये दृश्योंका उपयोग होनेके कारण प्रतिवर्ष एकबार तो परदे नये करवाने पडते थे।

श्रीमन्त बालासाहब आगे लिखते हैं—

" हमारे पास संगम-माहुलीके विश्वेश्वर मन्दिर तथा नदी आदि दृश्योंसे युक्त एक फोटो थी, उस फोटो परसे सोनबाने शाकुन्तल नाटकके लिए ड्रापका परदा चित्रित किया। यह परदा, ४५ वर्ष हुए, आज भी (१९४१) हमारे पास है। बागके, रास्तेके, महलके जगलके दृश्य परदे पर उस वर्ष अंकित किए। एक मासमें तीन परदे सोनबाने चित्रित किए। उन परदोंने नाटकमें चार चांद लगा दिए। एक मासके बाद सोनबा बम्बई चले गए। "

" इस प्रकार दो तीन वर्षतक सोनबा एक महिनेके लिए औंध आते और परदे चित्रित करके चले जाते थे। "

इस प्रकार श्रीपादरावका आत्मविश्वास बढता गया। बम्बई आर्ट सोसायटी जर्नलके अंकमें १९९६के अंकके लिए अपनी पुत्रवधू सौ कुसुमबाई सातवलेकरको

इण्टरव्यू देते हुए पण्डितजीने कहा था– " यह सत्य है कि उन दिनों चित्रकारी का बहुत मर्यादित काम मिल पाता था। मुट्ठीभर राजा ही चित्रकारके पोषक थे और प्रत्येक राजाके पास अपना अपना चित्रकार होता था। इसके अलावा अंग्रेज राज्याधिकारियोंके एक शब्दकी बहुत कीमत होती थी। इसलिए यदि कोई यह चाहता कि ये राज्याधिकारी उसकी सिफारश करें, तो उसके लिए यह आवश्यक था कि वह उनका " पिट्ठू " बने।"

चित्रकार सातवलेकर तभीसे यह जानते थे कि हिन्दु विद्यार्थियोंमें बुद्धिका विकास अल्प ही हो पाता है। उन्हें अपनी प्राचीन संस्कृति, धर्मग्रंथ और पुराणोंका बहुत ज्ञान नहीं होता था। उसीप्रकार नवीन युगके नये विचारोंसे भी वे अनभिज्ञ रहते थे। उच्च ध्येयके बिना उच्च विचारोंके ध्येयपूर्ण चित्र तैय्यार किसप्रकार होंगे? उच्च ध्येयके लिए बुद्धि विकासकी जरूरत होती है। सृष्टि सौन्दर्यके कारण चित्रमें भी सुन्दरता आजाती है। लॅण्डस्केप, डेकोरेशन आदिके बारेमें रेखा और रंगके बारेमें बहुत सावधानीसे काम लेना पडता है। चित्र अंकित करते समय इतना तल्लीन हो जाना चाहिए कि अपने कामके सिवाय उसके मनमें और कोई भी विचार न आने पायें।

सन् १९६६ में " पश्चिम भारतमें चित्रकलाके पिचहत्तर वर्ष " नामक प्रदर्शनमें पण्डितजीके भी चित्र शामिल किए गए थे और उनमें इनके चित्रोंकी बडी प्रशंसा हुई थी। आजसे ५०–६० वर्ष पहले पण्डितजीकी कीर्ति पोर्ट्रेट चित्रकारके रूपमें इतनी अधिक थी कि बडे बडे राजा महाराजा, सरदार–नवाब आदि भी पण्डितजीसे अपना पोर्ट्रेट बनवाते थे और प्रसन्न होकर हजार–हजार रु दे देते थे। हैदराबाद, पीठापुरं, जयपुर, जोधपुर, औंध आदि रियासतोंमें आज भी पण्डितजीके चित्र सुरक्षित हैं। सततोद्योगसे हर काममें कुशलता प्राप्त की जा सकती है। इस विषयमें पण्डितजी लिखते हैं—

" पोर्ट्रेट पेंटिंगमें मेरी हमेशाकी नाप चेहरेसे ७॥–८ गुना शरीरकी रही है। (विकसित मनुष्यका चेहरा उसके हाथके एक बीतभरका होता है, और उसका शरीर ७॥–८ बीतका होता है। इसी मापसे पण्डितजी पेंटिंग किया करते थे) राजा रविवर्माने अनेक जगहोंपर पुरुषोंका ९॥–१० गुने और स्त्रियोंके ९–९॥ गुनेके मापसे चित्र अंकित किया है। क्योंकि अत्यन्त विख्यात यूरोपियन चित्रकारोंने भी अपने चित्र इसी मापसे बनाये हैं। रविवर्माने अपने चित्रोंमें सर्वत्र एक विशेषता रखी है। उस विशेषताके बारे रविवर्मा स्वयं कहते हैं– " मैंने भारतमें आसेतु हिमाचल " घूमकर सब प्रान्तोंके पहिनावेको देखा, उनमें साडी पहननेका महाराष्ट्रीय ढंग मुझे बहुत पसन्द आया। वह अत्यन्त उपयोगी है। वह ढंग प्रत्येक अवयवको उभारता है, इसीलिए वह ढंग मुझे बहुत पसन्द आया, और अपने चित्रोंमें मैंने सर्वत्र इसी ढंगका उपयोग किया। "

सफेद रंग ले आए थे। हम कपड़े पर कभी भी सफेद रंग न लगाकर वैसे ही उसे चित्रित कर देते थे, इस कारण पर्देपरके दृश्य उठावदार और चमकीले नहीं लगते थे। *सोनबाने पहले पर्दे लकड़ीके पट्टों पर ठोककर बड़े बड़े ब्रशसे उन पर सफेद रंग फेर* दिया, तब हमें ज्ञात हुआ कि परदे रंगनेके लिए पहले क्या करना चाहिए। हमारे पास भी चित्र काढ़नेके बहुतसे काम पड़े हुए थे, इसलिए परदे रंगनेके काममें हम उनकी प्रत्यक्ष सहायता नहीं कर पाये, पर गणेशकी मूर्ति बनानेके काममें व्यस्तता होनेपर भी कभी कभी दत्तोपंत चितारी उनके पास जाकर थोड़ी बहुत मदद कर दिया करते थे।"

दत्तोपंत चितारी औंध रियासतके चितेरे थे, उनका वेतन सर्वप्रथम सात रु. था, जो बढ़कर पन्द्रह रु. तक पहुंच गया था। वे मिट्टी और खड़ियासे चित्र और मूर्तियां बनाया करते थे। दत्तोपंत चितारीने औंधमें अंबाबाईके शिखर पर चूनेसे अनेक चित्र अंकित किए थे। उन्होंने खड़ियेकी मिट्टीसे कई मनुष्योंकी मूर्तियां भी तैय्यार की थीं। *गणेशकी मूर्ति तो वे हमेशा ही बनाते थे।* कॅनवास पर ऑइलपेंटिंगके भी चित्र तैय्यार किए। वाटर कलरकी चित्रकारी भी उन्हें ज्ञात थी। चित्रकलाके समान ही वे एक कुशल तबलची भी थे।

औंध महाराजने कुरुंदवाडके कुशल चित्रकार श्री बंडोपंत हुद्देदारको यमाईके शिखरको बनानेके लिए औंध बुलाया था, और उसे वेतन देकर औंधका चित्रकार नियुक्त कर दिया। ये दत्तोपंत उन्हींके पुत्र थे। दत्तोपंत १९०५ सनमें अपनी मृत्यु-तक औंधमें रहे। सातवलेकर नाटकोंके परदे रंगने आते थे तब महाराजने दत्तोपंतको ही सातवलेकरके सहकारीके रूपमें नियुक्त किया था। श्रीमन्त बालासाहब पंत-प्रतिनिधिके बड़े भाई श्री तात्यासाहब महाराज नाटकोंके बड़े शौकीन थे, इस कारण औंधमें प्रतिवर्ष नये नये नाटक होते थे। इन नाटकोंमें नये नये दृश्योंका उपयोग होनेके कारण प्रतिवर्ष एकबार तो परदे नये करवाने पड़ते थे।

श्रीमन्त बालासाहब आगे लिखते हैं—

" हमारे पास संगम-माहुलीके विश्वेश्वर मन्दिर तथा नदी आदि दृश्योंसे युक्त एक फोटो थी, उस फोटो परसे सोनबाने शाकुन्तल नाटकके लिए ड्रापका परदा चित्रित *किया। वह परदा, ४५ वर्ष हुए, आज भी (१९४१) हमारे पास है। बागके,* रास्तेके, महलके जंगलके दृश्य परदे पर उस वर्ष अंकित किए। एक मासमें तीन परदे सोनबाने चित्रित किए। उन परदोंने नाटकमें चार चांद लगा दिए। एक मासके बाद सोनबा बम्बई चले गए। "

" इस प्रकार दो तीन वर्षतक सोनबा एक महिनेके लिए औंध आते और परदे चित्रित करके चले जाते थे। "

इस प्रकार श्रीपादरावका आत्मविश्वास बढ़ता गया। बम्बई आर्ट सोसायटी जर्नलके अप्रैल १९६६के अंकके लिए अपनी पुत्रवधू सौ. कुसुमताई सातवलेकरको

इण्टरव्यू देते हुए पण्डितजीने कहा था– "यह सत्य है कि उन दिनों चित्रकारी का बहुत मर्यादित काम मिल पाता था। मुट्ठीभर राजा ही चित्रकारके पोषक थे और प्रत्येक राजाके पास अपना अपना चित्रकार होता था। इसके अलावा अंग्रेज राज्याधिकारियोंके एक शब्दकी बहुत कीमत होती थी। इसलिए यदि कोई यह चाहता कि ये राज्याधिकारी उसकी सिफारश करें, तो उसके लिए यह आवश्यक था कि यह उनका "पिट्ठू" बने।"

चित्रकार सातवलेकर तभीसे यह जानते थे कि हिन्दु विद्यार्थियोंमें बुद्धिका विकास अल्प ही हो पाता है। उन्हें अपनी प्राचीन संस्कृति, धर्मग्रंथ और पुराणोंका बहुत ज्ञान नहीं होता था। उसीप्रकार नवीन युगके नये विचारोंसे भी वे अनभिज्ञ रहते थे। उच्च ध्येयके बिना उच्च विचारोंके ध्येयपूर्ण चित्र तैय्यार किसप्रकार होंगे? उच्च ध्येयके लिए बुद्धि विकासकी जरूरत होती है। सृष्टि सौन्दर्यके कारण चित्रमें भी सुन्दरता आजाती है। लेण्डस्केप, डेकोरेशन आदिके बारेमें रेखा और रंगके बारेमें बहुत सावधानीसे काम लेना पडता है। चित्र अंकित करते समय इतना तल्लीन हो जाना चाहिए कि अपने कामके सिवाय उसके मनमें और कोई भी विचार न आने पायें।

सन् १९६६ में "पश्चिम भारतमें चित्रकलाके विचहत्तर वर्ष" नामक प्रदर्शनमें पण्डितजीके भी चित्र शामिल किए गए थे और उनमें इनके चित्रोंकी बडी प्रशंसा हुई थी। आजसे ५०–६० वर्ष पहले पण्डितजीकी कीर्ति पोर्ट्रेट चित्रकारके रूपमें इतनी अधिक थी कि बडे बडे राजा महाराजा, सरदार–नवाब आदि भी पण्डितजीसे अपना पोर्ट्रेट बनवाते थे और प्रसन्न होकर हजार–हजार रु. दे देते थे। हैदराबाद, पीठापुर, जयपुर, जोधपुर, औंध आदि रियासतोंमें आज भी पण्डितजीके चित्र सुरक्षित हैं। सततोद्योगसे हर काममें कुशलता प्राप्त की जा सकती है। इस विषयमें पण्डितजी लिखते हैं—

"पोर्ट्रेट पेंटिंगमें मेरी हमेशाकी नाप चेहरेसे ७॥–८ गुना शरीरकी रही है। (विकसित मनुष्यका चेहरा उसके हाथके एक बीतभरका होता है, और उसका शरीर ७॥–८ बीतका होता है। इसी मापसे पण्डितजी पेंटिंग किया करते थे) राजा रविवर्माने अनेक जगहोंपर पुरुषोंका ९॥–१० गुने और स्त्रियोंके ९–९॥ गुनेके मापसे चित्र अंकित किया है। क्योंकि अत्यन्त विख्यात यूरोपियन चित्रकारोंने भी अपने चित्र इसी मापसे बनाये हैं। रविवर्माने अपने चित्रोंमें सर्वत्र एक विशेषता रखी है। उस विशेषताके बारे रविवर्मा स्वयं कहते हैं– "मैंने भारतमें आसेतु हिमाचल" घूमकर सब प्रान्तोंके पहिनावेको देखा, उनमें साडी पहननेका महाराष्ट्रीय ढंग मुझे बहुत पसन्द आया। वह अत्यन्त उपयोगी है। वह ढंग प्रत्येक अवयवको उभारता है, इसीलिए वह ढंग मुझे बहुत पसन्द आया, और अपने चित्रोंमें मैंने सर्वत्र इसी ढंगका उपयोग किया।"

पण्डितजीका स्पष्ट कथन है—

" मे स्पष्ट कहूंगा कि आधुनिक चित्रकारी मुझे बिल्कुल नापसन्द है । प्रगतिका मे हार्दिक स्वागत करता हूं, पर आधुनिक आर्टमें मुझे कोई प्रगति नहीं दिखाई देती। मे उसे अधोगति ही कहूंगा। चित्रकार जब आदिवासी या गृहाक (Cave man) के समान चित्र बनाता है, तब स्पष्ट है कि उससे चित्रकारको प्रसन्नता नहीं हो सकती। सभ्यताकी यह विडम्बना न करे इसके विपरीत वह सभ्यताका चमकीला और तेजस्वी दीपस्तंभ बनकर अन्योंको स्फूर्ति दे, उन्नति करे और जन-जीवनको उच्चतर बनावे । "

भारतमें उत्तम चित्रकारोंका अभाव

इसके पूर्व भी पण्डितजीने चित्रकलाके विशेषत: भारतीयचित्रकलाके बारेमें अपनी आकांक्षायें प्रकट की हैं—

" चित्रकलाकी प्रथम श्रेणीका विद्यार्थी प्रकृतिका अनुसरण करनेका प्रयत्न करता है, पर हूबहू उसका अनुसरण नहीं कर पाता, वह केवल प्रयत्नही करता है । हम ऐसे विद्यार्थीको अनुकरणेच्छुकी संज्ञा दे सकते हैं। चित्रकारकी यह बिलकुल पहिली स्थिति है। बम्बईके आर्टस्कूलमें आठ वर्षतक सीखे हुए विद्यार्थियोंको इस वर्गमें रखा जा सकता है।

(२) जो नैसर्गिक चित्र बना सकते हैं, उनका दूसरा वर्ग है । हूबहू चित्र अंकित करनेमें ये बहुत प्रवीण होते हैं। पर इस प्रवीणताको चित्रमें दिखानेके लिए उन्हें भी प्रयत्न करना पड़ता है । यह दूसरे वर्गके चित्रकारोंकी मर्यादा है । इसे हम " अनुकरण प्रवीणोंका वर्ग " कह सकते हैं । इस वर्गमें अनेक वर्षोंतक काम किए हुए चित्रकार ही शामिल हो सकते हैं । इस वर्गके चित्रकारोंमें कलाका प्रारंभ हो चुका होता है ।

(३) जो लीलया या अनायास ही, अधिक प्रयत्न न करते हुए निसर्गके समान ही चित्र अंकित करते हैं, उन चित्रकारोंका समावेश इस तीसरे वर्गमें होता है । प्रयत्न पूर्वक चित्र न बनाने पर भी इनके चित्रोंमें इतनी अधिक नैसर्गिकता आ जाती है कि दूसरे वर्गके चित्रकार यदि महीनोंतक प्रयत्न करते रहें, फिर भी, तीसरे वर्गके चित्रकारोंके समान चित्र अंकित नहीं कर सकते । इस वर्गके चित्रकारोंको हम " अनुकरण पारंगत " की सज्ञा दे सकते हैं । इस वर्गके चित्रकारोंमें कला अवतरित तो हुई होती है, पर उसमें परिपूर्णता नहीं होती ।

उपर्युक्त तीनों वर्गोंके चित्रकारोंको नियमोंके अन्तर्गत रहना पड़ता है ।

इसके अलावा चित्रकारोंका एक चौथा वर्ग भी है, जिसे हम " मुक्तात्मा " कह सकते हैं । ये चित्रकार नियमोंके बंधनसे अतीत होते हैं, इस लिए उनका दर्जा बहुत ऊपरका है ।

(४) जो अपनी कल्पनासे रेखा विन्यास, वर्णविन्यास आदि पर ऐसा प्रभुत्व दिखाते हैं कि ऊपरके वर्गके चित्रकार इनके चित्रकी नकल भी नहीं कर सकते। ऐसे चित्रकार चौथे वर्गमें आते हैं। ये मुक्त होनेके कारण स्वैरविहारी, नियमोंकी परवाह न करनेवाले होते हैं (यह भी संभव है कि इनके पीछे ही नियम चलते हों) । ये चित्रकार जडसृष्टिमें स्वर्गीय चैतन्य खिलानेवाले और जडचित्रोंमें सजीवताकी सृष्टि करनेवाले होते हैं। ये जो निश्चय करते हैं वही नियम होते हैं, ये जो प्रयोग करते हैं, वही वर्णविन्यास होता है। इसलिए इन्हें " चित्रकला सम्राट् " भी कहा जा सकता है। इन्हींके चित्रोंमें वास्तविक " कला-विकास " दिखाई देता है। जिन्हें " चित्रकला सम्राट् " की पदवी दी जा सके और इस चौथे वर्गमें जिनका समावेश हो सके, ऐसे चित्रकारोंका भारतमें सर्वथा अभाव है। भारतके प्रायः सभी चित्रकारोंको मैं पहचानता हूँ, पर उनमें कोई भी चौथे वर्गका चित्रकार नहीं है। हिन्दुस्तानमें आज जो चित्रकार हैं वे दूसरे या तीसरे वर्गमें ही समाविष्ट होने योग्य हैं। सुविख्यात राजा रविवर्मा भी तीसरे वर्गमें रखे जा सकते हैं या नहीं सन्देहास्पद है। मेरे विचारसे दूसरे वर्गके उत्तम चित्रके चित्रकारोंमें उनकी गणना की जा सकती है। औंधेके चित्रकार ठाकुरसिंह प्रसिद्ध चित्रकार हैं, पर वे भी दूसरे वर्गके सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किए जा सकते हैं। बस ! ! इससे ज्यादा नहीं। "

" मैंने यहां जो वर्गविभाजन किया है, वह विभाजन मैंने योरोपके सभी चित्रकारोंको भी ध्यानमें रखकर किया है।

आज फ्रांसमें वर्णविन्यासकी दृष्टिसे चौथे वर्गमें गण्य चित्रकार हैं और आकार-विन्यासकी दृष्टिसे चौथे वर्गमें समाविष्ट होनेवाले कतिपय चित्रकार इटलीमें हैं। पर हमारे पास ऐसा एक भी चित्रकार नहीं है, जो उनका पासंग भी हो सके। "

(पं. सातवलेकर कृत " जीवन प्रकाश ")

पण्डितजीके चित्रोंमें वास्तविकता, सौन्दर्य और स्पष्टताका सुन्दर सम्मिश्रण है। पण्डितजी लैंडस्केप, स्टिल लाइफ, पोर्ट्रेटपेंटिंगमें बहुत प्रवीण थे।

फोटोग्राफरके रूपमें प्रसिद्ध

औंध, मद्रास, हैदराबाद, पीठापुर, जयपुर, और जोधपुरके संग्रहालयमें चित्रकार सातवलेकरके चित्र आज भी देखे जा सकते हैं। लाहौर और शिमलेमें उन्होंने एक प्रसिद्ध फोटोग्राफरके रूपमें भी काम किया है।

पण्डितजीकी चित्रकारिताके बारेमें सावंतवाडीके सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री सा. ल. हलदणकरने लिखा है– " पण्डित सातवलेकरकी चित्रकला स्वतन्त्र और मनोवेधक पद्धतिकी है। बम्बईमें सीखते हुए वे जब छुट्टीमें सावंतवाडी आते थे, तब हमें उनकी चित्रकला देखनेके लिए मिलती थी और हम उनकी कुशलता देखकर चकित हो जाते थे। " पण्डितजी अपनी तूलिकासे निर्जीव चित्रोंमें जीव डाल देते थे।

सर जे. जे. स्कूलके चित्रकला शिक्षक प्रा. श्री श्री. ह. दाहाणे लिखते हैं—

" सर जे. जे. की कलाशालामें आजकलके डिप्लोमा श्रेणीमें पाउडरमें काले और सफेद रंगमें रंगे हुए कतिपय तात्कालीन (१८९२ से १९००) व्यक्तिचित्र हैं। पण्डितजीका काम उसी रूपका था। रेखायें उत्तमतासे खींचना, छाया और प्रकाशका योग्य चित्रण, चित्र पूर्ण करनेकी कुशलता और स्वच्छता ये पण्डितजीकी विशेषतायें थीं। "

" व्यावसायिक चित्रकारके रूपमें पण्डितजीके जो चित्र आज उपलब्ध हैं, उनमें प्रमुख रूपसे व्यक्ति चित्र और प्राकृतिक दृश्यके चित्र हैं। ये सभी तैलरंगोंमें हैं। उनके द्वारा अंकित प्रसंगचित्र (Composition) देखनेमें नहीं आई। उनके शीघ्र चित्रणमेंसे कुछ ही चित्र आज उपलब्ध हैं। पण्डितजीने एक बार जब चित्रकारीको व्यवसायके रूपमें स्वीकार कर लिया, तब व्यक्तिचित्रोंको अंकित करना स्वाभाविक ही था। उन दिनों भारतीय चित्रकार पाश्चात्य चित्रकलाकी पद्धतिसे थोडासा ही परिचित हो पाए थे। छाया प्रकाशके चित्रणके कारण चित्रोंमें आई हुई चमकने जनता और विशेषकर धनिकोंका ध्यान आकृष्ट कर लिया था। सरकारके द्वारा स्थापित कलाशालाओंमें पाश्चात्य पद्धतिके चित्रकलाकी शिक्षा दी जाती थी। राजा रविवर्मा ने उन्हीं दिनों बिल्कुल भारतीय ढंग पर धार्मिक–पौराणिक और सामाजिक विषयोंपर चित्र बना करके सम्पूर्ण भारतमें उस पद्धतिके बारेमें औत्सुक्य और रुचि पैदा कर दी थी। पण्डितजीने भी अपने व्यक्तिचित्रोंमें छायाचित्रण और यथार्थदर्शनका उपयोग किया था, इसीलिए उन्हें बहुत प्रसिद्धि और धन मिला। सादृश्य और वास्तववादी चित्रण पण्डितजीके चित्रोंकी विशेषता रही है। पर केवल बाह्य सादृश्य पर ही उनका बल नहीं रहा। चित्रको देखकर चित्रकारके मनमें जो भाव उत्पन्न होते हैं, उन्हीं भावोंको अपने व्यक्तिचित्रोंमें पण्डितजीने व्यक्त किया है। इस दृष्टि से उनकी शैली इम्प्रेशनिस्ट पद्धतिके बहुत नजदीक है। उनके व्यक्तिचित्रोंमें दूसरी विशेषता है उनके व्यक्तिचित्रोंमें व्यक्तिके चेहरेके अनुसार भावप्रदर्शन और तदनुसार रंगोंका उपयोग। "

पण्डितजी प्राकृतिक दृश्योंको चितारना बहुत पसन्द करते थे। उन्होंने नगाधिराज हिमालयकी बहुत बार यात्रा की। वहांके अनुपम सृष्टि सौन्दर्यका अनेक बार निरीक्षण किया। उनके आधारपर चित्र भी बनाये। उनमेंसे अनेक चित्र आज भी औंधके श्री भवानी म्युजियममें सुरक्षित हैं। जिस प्राकृतिक दृश्यका चित्रण करना हो, उस दृश्यके स्थानका योग्य चुनाव करना पडता है। पण्डितजीने प्राकृतिक दृश्योंके लिए जिन स्थानोंका चुनाव किया है, वह बहुत योग्य और निर्दोष हैं। भारतकी प्रकृति रंगोंके विषयमें बहुत समृद्ध है। विपुल सूर्यप्रकाशके कारण भारतकी प्रकृतिमें रंग अपनी चमकदार आभामें व्यक्त होते हैं। उत्तरीय पाश्चात्य देशोंमें प्राप्त होनेवाला हलका फुलका रंग यहां भारतमें कहीं कहीं ही दिखाई देता है। पण्डितजीके निसर्ग चित्रोंमें प्रकृतिका याथातथ्य प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। योग्य और शोभित होनेवाले रंगोंकी क्रीडा पण्डितजीके चित्रोंमें देखी जा सकती है। "

" तैलरंगोंसे चित्र रंगनेकी उनकी पद्धति दो प्रकारकी दिखाई देती है। कुछ चित्र जानबूझकर सावधानीसे चित्रित किए हुए दिखाई देते हैं, तो कुछ चित्र ऐसे दिखाई देते हैं कि मानों इनमें पण्डितजीने कूंचियोंको फेर सा दिया हो। दोनों पद्धतियोंमें वातावरणको स्पष्ट करनेकी अप्रतिम कुशलता पण्डितजीमें रही है। इसकी साक्षी औंधम्युजियममें सुरक्षित एवरेस्ट (गौरीशंकर) शिखरके दो भव्य, अनुपम पर अपूर्ण चित्र दे रहे हैं। बड़ी कूंचीसे अंकित किए चित्रोंमें सफेद, नीले और हरे रंगोंकी चौडा देखनेवालेको भौचक्का कर देती है। दूसरे एक चित्रमें उन्होंने अमृतसरके सुवर्णमन्दिरको चित्रित किया है। उसमें मन्दिरके सोनेके पत्रपर सूर्य-किरणोंके पड़नेके कारण उसकी दिव्य शोभा, नीचे नीले और पारदर्शक पानीमें उस मन्दिरका प्रतिबिम्ब, रंगोंका मिश्रण और वातावरणकी पवित्रता सभी कुछ अपूर्व है।"

१९१८ में औंध आनेके बाद पण्डितजीने चित्रकलाका त्याग कर दिया। फिर भी दाहाणे लिखते हैं—

" चित्रकलासे संन्यास ग्रहण करनेके बीस वर्ष बाद भी अपने पुत्रको चित्रकारीकी शिक्षा देते हुए उनका काम देखनेका संयोग अनेक औंधवासियोंको मिला। इतने प्रदीर्घकालके बाद भी पण्डितजी उसी आत्मविश्वास और सफाईसे तूलिकाका प्रयोग करते रहे। करीब १८" × २४" के आकारका चित्र एक ही बैठकमें पूर्ण कर देते थे। औंधके विशालबागमें उनके द्वारा चित्रित निसर्ग चित्र अनेक दृष्टियोंसे संस्मरणीय है। पण्डितजीके अनेक उत्कृष्ट चित्रोंको श्री शं. वा. किर्लोस्करने अपने कारखानेके कैलेण्डर पर छापे थे। औंधके महाराजके साथ उन्हींके बंगलेमें महाबलेश्वरमें पण्डितजी वहांके प्राकृतिक दृश्योंको चितारनेके लिए चार पांच दिन रहे थे। १८" × २४" के आकारके तीन रंगोंमें तैलचित्र वे एक दिनमें पूरा कर देते थे। उनमेंसे बागके फूलोंका एक रमणीय चित्र १९६५ सालमें बम्बई आर्ट सोसायटीके स्वर्णमहोत्सवके अवसर पर सम्पन्न प्रदर्शनीमें लगाया गया था।

अपना एक संस्मरण सुनाते हुए श्री दाहाणे लिखते हैं—

एकबार फोटोपरसे हाथीके दांतपर व्यक्ति चित्र बनाने वाला एक कलाकार दिल्लीसे औंधमहाराजके पास आया। सधारणतया ३" × २" आकारके सपाट हाथीदांत पर वह रंगोंमें एक व्यक्ति चित्रको २-३ दिनोंमें हूबहू तैय्यार कर देता था। लोगोंको आश्चर्य होता था कि वह इतना अल्पावधिमें ही चित्रोंको कैसे बना देता है। उस समय रा. ब. धुरन्धर भी वहीं थे। कई लोगोंको यह सन्देह था कि फोटोग्राफीका उपयोग करके वह चित्र बनाता होगा। एकदिन पण्डितजी, धुरंधर और औंधके चित्रकार धुरंधर राजासाहबके पास बैठे हुए थे, उसी समय हाथीदांतके चित्रकी परीक्षा करनेका निश्चय हुआ। उनमेंसे एक चित्रको खरोंचकर देखा, पर

उसके नीचे फोटोप्रिंट आदि कुछ भी नहीं था। पर वह चित्र खराब हो गया। इसलिए राजासाहब थोडा नाराज हो गए। पर किया भी क्या जासकता था। वह दिल्लीवाला चित्रकार तो कभीका चला गया था। फिर दुरुस्त कौन करता? अन्तमें पण्डितजीने यह काम हाथमें लिया और बहुत छोटी कूंची लेकर उसे पहलेके समानही सुन्दर बना दिया। मिनियेचर चित्रमें सूक्ष्मताको जो जानते हैं, उन्हें पता चल सकेगा कि ६० वर्षके बाद उसप्रकार सूक्ष्म चित्र रंगना कितना कठिन काम है।

" पण्डितजी कलाके बाबतमें जरा भी रूढीवादी नहीं हैं। बम्बईमें सम्पन्न योरोपियन चित्रकारोंकी प्रदर्शनीसे औंधके म्यूजियमके लिए चित्र खरीद कर ले आनेके लिए औंधके राजाने पण्डितजीको भेजा। उन्होंने एक सूर्यास्त और दूसरा जलाशयके दृश्योंवाले दो चित्र खरीदे... ये आज भी औंधके म्यूजियममें हैं। उन चित्रोंकी उत्कृष्टताके बारे में किसीके भी दो मत नहीं हो सकते। अध्ययन करते समय पण्डितजीसे प्रि. ग्रिफिथने अजन्ताके चित्रोंकी प्रतिकृतियां तैयार करवाईं और भारतीय चित्रकलाका महत्त्व संसारमें फैलाया। उसका पण्डितजीकी चित्रकला पर परिणाम हुआ, इससे पण्डितजीके हृदयमें भारतीय चित्रकलाके प्रति अभिमान हुआ।"

व्यक्तिचित्र अंकित करनेमें पण्डितजीकी निपुणताके बारेमें औंधमहाराज अपनी आत्मकथामें लिखते हैं—

" उन्होंने अनेकोंको अपने सामने बैठाकर उनके पोर्ट्रेट बनाये। परशुराम सखाराम, दफ्तरदार दत्तात्रेय मेहेंदळे, नारायण गोसावी, संत भटजी जोशी, दत्तोपंत चितारी और सोनबा सातवलेकरका भी पोर्ट्रेट्स। इस पोर्ट्रेटपेंटिंगका आगेके अध्ययनमें अच्छा उपयोग हुआ।"

पण्डितजीका कहना है– " किसी भी चित्रमें बीचका अन्तर रंगोंसे दिखलानेका अभ्यास करना चाहिए।" पण्डितजीका मत है कि अभिजात चित्रकारमें यदि सौन्दर्य दृष्टि हो, तो उसके लिए एक छोटासा दृश्य भी पर्याप्त हो जाता है। किसी पुराने पेड, घर या जगह भी चित्रकार अपनी तूलिका और रंगोंसे सौन्दर्यकी सृष्टि कर सकता है। इसीमें चित्रकारका नैपुण्य है। माइकिल एंजेलो और राफाइल इन दो इटालियन चित्रकारों पर पण्डितजीकी बडी निष्ठा है। अजन्ता और एलोराके चित्रोंकी आकृतियोंके छोटे और बडेपनको उन्होंने " स्पिरिचुअल पर्स्पेक्टिव "संज्ञा दी है।

दर्शकके मनको आनन्दित करनेवाले चित्र पण्डितजीके पिता बनाया करते थे। दीवारपर अपने पिताके द्वारा बनाये गए चित्रोंको देखकर छै वर्षका श्रीपाद भी चित्र बनाने लगा। वही विद्या विकसित होकर बम्बईके स्कूलमें अध्ययन करते समय लाभदायक सिद्ध हुई। पॅरिस जाकर चित्रकला सीखनेकी पण्डितजीकी बडी इच्छा थी, पर अर्थाभावके कारण उनकी यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी।

कला आत्माकी लीला है। पण्डितजीका कथन है–" कलाप्रेमी चित्रकारोंका समय महाराष्ट्रमें अभी आना बाकी है।…यदि प्रयत्न करना हो तो इसी प्रकारका प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे चित्रमें उच्च ध्येय प्रतिबिम्बित हो। "

" राष्ट्रीय कलाकी पवित्रताको सुरक्षित रखनेके लिए जिसप्रकार भारतीय चित्रकलामें चित्रकारोंने अपने व्यक्तित्वकी भी आहुति दे डाली, वैसा उदाहरण और कहीं नहीं दिखाई देता। भारतीय चित्रकलामें, राजपूत, मुगल, कांगडा आदि शाखायें हैं पर इन शाखाओंमें भेद आंखोंकी बनावट, रेखाओंका अंकन आदि पर ही अवलम्बित है। "

"घरमें ही शिष्योंको चित्रकला सिखाई जा सकती है। फोटोग्राफी भी घरमें ही सिखाई जा सकती है। इन दोनों कलाओंकी शिक्षा मैंने घरपर ही अनेक शिष्योंको दी है और वे इन कलाओंपर अपनी आजीविका उत्तम रीतिसे चला रहे हैं। यह देखकर मुझे बहुत आनन्द होता है। पंजाबमें लाला हंसराज सबरवालने फोटोग्राफीकी मेरी दूकान खरीद ली और उसे उत्तम रीतिसे चलाकर उन्होंने हजारों रु. कमाये। वे अब एक प्रतिष्ठित नागरिकके रूपमें पेरिसमें सुखसे रहते हैं। श्री नारायणराव बोरकर नामके एक दूसरे शिष्य बम्बईमें अपना व्यवसाय उत्तम रीतिसे चला रहे हैं। तीसरे शिष्य म. रूपकृष्ण भारतीय चित्रकलामें प्राविण्यता प्राप्त करके विलायत चले गए, वहां एक फ्रेंच स्त्रीसे विवाह करके अपनी कलाके द्वारा उन्होंने बहुत यश कमाया। इसप्रकार पंजाबमें अनेक शिष्य थे। विभाजन हो जानेके कारण उनका पता लगाना आज कठिन हो गया है। "

" अजमेरके अनाथालयसे आनन्द और गोवर्धन नामके १५–१६ वरसके दो अनाथ बच्चोंको लाकर उन्हें फोटोग्राफीकी शिक्षा दी। वे दोनों पंजाबमें अपना व्यवसाय उत्तम रीतिसे चलाते थे। पर आज उनका पता नहीं है। आनन्द पेशावरका अनाथ था, वह रावलपिण्डीमें व्यवसाय करता था और आगे जाकर वहांकी म्युनिसिपलिटीका सदस्य भी हो गया था। गोवर्धनने फोटोग्राफीके साथ साथ पौरोहित्य भी सीख लिया था। इसकारण आर्यसमाजमें उसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। इसप्रकार पंजाबमें मेरे २० शिष्य थे। उनमें एक डॉक्टर बनकर दिल्लीमें डॉक्टरीका धंधा करने लगा, और वह डॉ. नीलाम्बर जोशीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। मेरे सब शिष्योंमें वाटर कलरसे चित्र तैय्यार करनेमें इन्होंने बहुत प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। विभाजनके झगडेमें एक मुसलमान डॉक्टरने उनके उत्कर्षको न सह सकनेके कारण उन्हींके दवाखानेमें रोगियोंकी सेवा करते समय गोलीसे मार डाला। यह सुनकर मुझे इतना दुःख हुआ कि मानों मेरा भाई ही चल बसा हो। "

" श्री शंकरराव किर्लोस्कर मेरे महाराष्ट्रीय शिष्योंमें अत्यन्त बुद्धिमान्, चित्रकला और फोटोग्राफीमें बहुत कुशल और नये प्रयोगोंमें बहुत प्रवीण हैं।

+

लाहोरमें वे मेरे पास करीब दो वर्ष रहे। उनकी बुद्धि कुशाग्र और सर्वतोगामी थी। उनकी रेखाओंमें कला स्वयंसिद्ध थी। किर्लोस्करवाडीके किर्लोस्कर कारखानेके मॅनेजरके रूपमें उन्होंने उपद्रव (१९४८) के समयमें भी अपनी कुशलतासे कारखानेको सुरक्षित और सुव्यवस्थित रखा।

" शिष्योंमें कुछ शिष्य धूर्त भी निकले। शर्मा नामक एक पंजाबी शिष्य था। यह हमारे घर दो बरस रहा। वाटर कलर, ऑइल कलर और शेडिंगका काम उसने सीखा। कलामें कुशल हो गया, पर वह सारे लाहोरमें यह प्रचार करने लगा कि मैं पं. सातवलेकरके व्यवसायमें पार्टनर हूँ। मैं ऑर्डर लाता हूँ, काम करता हूँ, इसीलिए पण्डितजीकी दूकान चलती है।" अन्तमें हमने उसे घरसे निकाल बाहर करनेका प्रयत्न किया, पर यह उससे सहन न हुआ। मारपीट तक की नौबत आ गई। वह अपने भाई और मित्र ले आया। लाहोरमें मेरे परिचित कम और उसके ज्यादा। उसका उसे फायदा मिला। आखिरकार पंचोंने दूकानकी कीमत ठहरा कर उसके आधे हिस्सेके रूपमें दसहजार रु. दिलवाकर यह झगडा मिटाया।"

" वस्तुतः उसने किया कुछ भी नहीं था। पर उसने मेरे घरमें रहते हुए मेरे अनजाने ऐसी परिस्थितिका निर्माण कर दिया था कि आखिरकार इतनी रकम देकर ही उससे पिण्ड छूटा।"

" मेरे अबतकके जीवनमें मुझे ऐसे धूर्त शिष्य ४–५ ही मिले। पर इन सबके कारण भी मुझे १८००० रु की हानि उठानी पडी। पर इनके लिए मैं उन्हें कसूरवार नहीं ठहराता। इसमें वास्तविक दोष तो मेरी व्यवहार शून्यताका ही है। मैंने निश्चित कर लिया था कि चाहे कुछ भी हो मैं अंग्रेज सरकारकी अदालतमें कदम नहीं रखूंगा। इसी कारण मुझे यह नुकसान सहना पडा। पर मुझे इसका कभी दुःख नहीं हुआ। प्राप्त हुए धनको मैंने सदा अपने ध्येयके लिए ही खर्च किया, इसलिए मुझे इस विषयमें कभी भी बुरा नहीं लगा।"

" युवावस्थासे ही मैंने यह निश्चय कर लिया था कि मैं अदालतमें जाकर अंग्रेजोंसे न्यायकी याचना कभी नहीं करूंगा। अंग्रेजोंकी नौकरी भी कभी नहीं करूंगा और अंग्रेजी पोशाक भी नहीं पहनूंगा। आगे जाकर मैं अपने चित्रोंके लिए फ्रेंच रंग पॅरिससे मंगवाने लगा। पर यथासंभव मैं अंग्रेजीमालका उपयोग नहीं करता था।"

" लाहौर आर्यसमाजमें किन्हीं कारणोंसे मारपीट हो गई। आर्यसमाजके सभी सदस्य निर्णयके लिए कलेक्टरके पास गए। सिर्फ मैं ही नहीं गया। मैंने सब सदस्योंसे कहा कि आर्यसमाजके सदस्योंका कोर्टमें जाना ठीक नहीं। आपसमें ही पंचोंके द्वारा निर्णय करा लेना चाहिए। अंग्रेजोंकी अदालतोंमें आर्योंका निर्णय होना शोभा नहीं देता।"

" मेरे शिष्योंमें श्री रामकृष्ण वामन देऊस्कर एक उत्तम और समप्राण मित्र थे,

ये भी हैदराबादमें एक चित्रकार थे। वे उत्तम और निष्कपट स्नेही थे, और एक उत्तम चित्रकार भी थे। उन्होंने इटलीमें जाकर चित्रकलामें कुशलता प्राप्त की। वहां उन्होंने एक बंगाली लडकीसे विवाह किया और वहांसे आकर वे हैदराबादमें स्थायी हो गए।"

पण्डितजी अपने चित्रकलाके व्यवसायको छोडकर वेदोंकी तरफ क्यों मुड गए, इस प्रश्नका उत्तर देते हुए उन्होंने आर्टजर्नलके लिए इण्टरव्यू देते हुए कहा था—

"मैंने चित्रकलाको क्यों छोड दिया, इसकी भी कहानी अलग है। जब मैं चित्रकारी करता था, तब भी मैं फुरसतके समय वैदिक वाङ्मयका अध्ययन करता था। लाहौरमें रहते हुए मैं स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्दके सम्पर्कमें आया। मेरे भविष्यकी वह पृष्ठभूमि थी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि चित्रकलासे मेरी कर्तृत्वशक्ति बिल्कुल कुंठित हो जाएगी। चित्रकलाके द्वारा, जो मेरे चित्रोंकी कीमत दे सकते थे, ऐसे मुट्ठीभर लोगोंकी ही सेवा मैं कर सकता था। पर वैदिक वाङ्मय एक महासागर है। उसके लिए मैं जितना कुछ भी करूं, अल्प ही होगा। इसलिए मैं आज जो बन पाया हूँ, वह वैदिक महासागरमें डुबकी लगाकर ही बन सका हूँ। मैंने अपना जीवन वैदिक वाङ्मयको सर्वसाधारण तक पहुंचानेके कार्यके लिए समर्पित कर दिया।"

"अब मेरी अपेक्षा केवल यही है कि मुझे वेद पढनेवाले शिष्य मिलें। पर वैसा अध्ययनशील शिष्य मुझे आजतक नहीं मिला। जो भी आये वे मेहनतसे तंग आकर चले गए। परिश्रमके बिना ही वेद पढनेके लिए उपयोगी पुस्तकें अभी तैय्यार नहीं हुई हैं। इस कारण कुछ वर्षोंतक तो वेदाध्ययन कष्टदायक ही होगा। पर परिश्रमी विद्यार्थी वेदोंका अध्ययन करनेके लिए प्राप्त हों यही मेरी एक महती अभिलाषा है।

☐ ☐ ☐

: २३ :

स्वाध्यायमण्डलका कार्य

लाहोरमें रहते हुए पण्डितजीने वहां एक अध्ययनमण्डल (Study Circle) स्थापित किया था, उससे अनेकोंने फायदा उठाया। औंधमें आनेके बाद वैदिक वाङ्मय और वैदिक जीवनका अनुसंधान करनेके लिए उन्होंने १९१८ में स्वाध्याय मण्डलकी स्थापना की और १९४८ में उसे पारडीमें स्थलान्तरित भी किया।

१९१८ में सर्वप्रथम पण्डितजीने स्वाध्यायमण्डलके मार्फत प्रथम दस वर्षोंमें वेदग्रंथ प्रकाशित किए। चारों वेदोंकी उत्कृष्ट संहिता छापकर उसे कमसे कम मूल्यमें जनताके लिए उपलब्ध बनाया।

पण्डितजीके स्वाध्यायमण्डलके वेदप्रकाशनके क्षेत्रमें किए गये कार्यकी उपमा ही नहीं है। वेदोंके सर्वशुद्ध मुद्रणके लिए पण्डितजी भारतभर घूमे और वेदमूर्ति श्री सखाराम येडूरकरकी सहायतासे चारों वेदोंकी संहितायें प्रकाशित कीं और ये संहिता यें पांच पांच रु. में जनताको दीं। पण्डितजीने आजतक हिन्दीमें, मराठीमें और गुजरातीमें लेखनकार्य किया है। इस कारण स्वाध्यायमण्डलकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

वेदोंके दर्शन, सम्पादन, प्रकाशन, मुद्रण और वितरणके कारण पण्डितजीको वेदमूलक भाग्यसम्पत्तिकी प्राप्ति हुई। उनकी भी वेदमूर्तियोंमें गणना होने लगी। वेदोंकी मूलसंहिता छापनेके बाद पण्डितजीने आर्षेयसंहिता, दैवतसंहिता, वेदोंके सुबोध भाष्य आदि ग्रंथोंका सम्पादन एवं प्रकाशन किया। पण्डितजीके स्वाध्याय-मण्डलका कार्य अद्‌भुत है। पण्डितजीने अनुसंधानकर्ताओंके लिए सहाय्यक ग्रंथ भी छापे। गोज्ञानकोष (२ भाग) और दैवतसंहिता (३ भाग) का विशेषतः उल्लेख किया जा सकता है। गोज्ञानकोषमें गौके विषयमें वेदमंत्रोंका संकलन है। इसके अलावा इस ग्रंथसे अन्य पशुओंका महत्त्व भी जाना जा सकता है। दैवतसंहितामें देवोंके क्रमसे मंत्रोंका संकलन है।

वेदों पर सरल और सहजगम्य शब्दोंमें भाष्य लिखकर वेदोंको जनतातक पहुंचानेका प्रयत्न पण्डितजीने किया। वेदोंमें निहित राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय भावोंको व्यक्त किया। वैदिकधर्म (हिन्दी), पुरुषार्थ (मराठी), वेद-संदेश (गुजराती) और अमृतलता (संस्कृत , पत्रिकाओंके सम्पादनके द्वारा वेद-प्रचारका कार्य किया। संस्कृत प्रचारके लिए उन्होंने २४ भागोंकी एक पुस्तकमाला निकाली। संस्कृतकी परीक्षायें भी इस संस्था द्वारा संचालित होती हैं। सम्प्रति इन परीक्षाओंके १३०० केन्द्र हैं, जिनमें प्रतिवर्ष ४२०००–४५००० विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। भारतमें सर्वत्र फैले हुए इन केन्द्रोंकी प्रशंसा महात्माजीने भी की थी।

इतनी बड़ी संस्थाके संचालनकी चिन्ता पण्डितजी पर हमेशा सवार रहती है। पर " तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहं " इस भगवानकी उक्ति पर पण्डितजीका बहुत विश्वास है। औंध महाराजने सर्वप्रथम स्वाध्यायमण्डलके लिए भूमि और वेदप्रकाशनके लिए ६००० रु. दिए और वेदग्रंथके प्रथम प्रकाशनके बाद निराशाके गर्तमें गिर जानेपर एक दिन आकस्मिक रूपसे वेदमुद्रणार्थ दो हजार रु. का एक चेक डाकसे मिला। यह चेक परमेश्वरके प्रसादके समान प्रतीत हुआ। १९४८ में पारडीमें जगह भी ऐसी मिली कि जहां पहले हिन्दुधर्मके नाश करनेका कार्य होता था, वहीं वैदिकधर्म या हिन्दुधर्मकी जागृतिका केन्द्र स्थापित हुआ और वहां वेदध्वनि गूंजने लगी।

" न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः " अर्थात् जबतक मनुष्य भरपूर परिश्रम करके थक नहीं जाता, तबतक देव भी उसकी सहायता नहीं करते। पण्डितजीने इस संस्थाकी मार्फत अबतक २५ हजार हिन्दीमें, २० हजार मराठीमें, दस हजार गुजरातीमें और दो हजार अंग्रेजीमें पृष्ठ लिखकर ४०९ पुस्तकें प्रकाशित की हैं। वेदसंहिताओंका प्रकाशन और अनुवाद पर ज्यादा जोर दिया जाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती और प्रो. मैक्समूलरके बाद वेदोद्धारकके रूपमें पण्डितजीका स्थान हो जाता है।

पण्डितजीकी ग्रंथसम्पदा

पण्डितजीने आजतक अनेक ग्रंथोंकी रचना की है, उनके ग्रंथोंका वर्गीकरण वैदिक, आरोग्यविषयक, गीताविषयक, औपनिषदिकके रूपमें किया जा सकता है। वैदिकमें वैदिकधर्म, तत्वज्ञान और संस्कृतिके अन्तर्गत सभी विषय आ सकते हैं। आरोग्य विषयके अन्तर्गत व्यायाम, योगासन, नमस्कार, ब्रह्मचर्य और योगशास्त्र आ सकते हैं। गीता विषयमें उपनिषदोंका मंथन करके भगवान्‌के द्वारा निकाला गया गीतामृतका स्वरूप कितना पुरुषार्थबोधक है और गीतामें राष्ट्रीयताका स्वरूप कितना जीवित और जागृत है यह बतानेवाले लेख अन्तर्भूत हो सकते हैं। औपनिषद् विषयमें उपनिषदोंका रहस्य विशद किया गया है।

पण्डितजीने अनेक विषयोंपर लेख लिखकर अपनी स्वतंत्र विचार सरणी व्यक्त की है। उनके मतमें हमारे महोत्सव भी राष्ट्रीय विचारोंके प्रवर्तक हैं। वे लिखते हैं–

" हमारे प्रायः सभी त्योहार राजकीय बोध देनेवाले हैं। रामनवमीका महोत्सव हमें यही बताता है कि एक आर्य राजकुमारने किसप्रकार निर्वासित होनेपर भी अपने देशके स्वातंत्र्यको सुरक्षित रखा और लोगोंको पारतंत्र्यके कीचड़में सानने वाले एक परद्वीपस्थ राजाके साम्राज्यका नाश किसप्रकार किया। " गणेशोत्सव " गणेशके द्वारा स्वजातिकी संघटना, स्वदेशबन्धुओंके सांघिक बलकी वृद्धि करना, देशराष्ट्रको बार बार संकटमें डालनेवाले विदेशी शत्रुओंको नष्ट करके अपने राष्ट्रका कल्याण करना आदि बोधोंको प्रदान करनेवाला है। " कृष्णाष्टमी " हमें यह बताती है कि जिसप्रकार हृतराष्ट्रोंने धृतराष्ट्रोंसे अपना हरा स्वराज्य प्राप्त किया। कंस जैसे जुल्मी स्वार्थी राजाओंका कृष्णने वध किया और गोकुलवासियोंको उसके अत्याचारोंसे बचाया। इसप्रकार ये उत्सव हमें राष्ट्रीय बोध किस प्रकार देते हैं, यह स्पष्ट हो सकता है। " (जीवनप्रकाश–विजयोत्सव)

पण्डितजीके द्वारा लिखे गए ग्रंथ सरल, सुबोध और स्पष्ट हैं। उनके प्रत्येक वाक्यमें भावभरे हुए हैं। वे अपने प्रतिपाद्य विषयको समझाकर लिखनेकी कलामें दक्ष हैं। इसकारण उनके लेखोंमें अनेक स्थल पर पुनरुक्ति देखी जाती है।

पण्डितजीने चारों वेदोंकी संहिता शुद्ध छापी हैं। वेदोंके अर्थके लिए सहायकके रूपमें प्रत्येक देवताके मंत्र अलग अलग छांटकर उनकी संहितायें बनाई हैं। उनके वेदभाष्यके रूपमें वैदिक व्याख्यानोंके चार संग्रह भी छपे हैं। अथर्ववेद और सामवेदका स्पष्टीकरण सहित अर्थ भी छापा है। पण्डितजीका वाङ्मय हिन्दी, मराठी, गुजराती, कन्नड और थोडा बहुत अंग्रेजी भाषाओंके माध्यमसे भी छप चुका है।

उपनिषदोंमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय और श्वेताश्वतर इन नौ उपनिषदों पर टीकायें प्रकाशित हो चुकी हैं। रामायण और महाभारत भी सार्थ प्रकाशित हो चुके हैं। गीताका ५० वर्षतक अध्ययन करनेके बाद " पुरुषार्थबोधिनी " टीका लिखी है। संस्कृतका प्रचार करनेके लिए संस्कृत सीखनेवालोंके लिए " संस्कृत पाठमाला " के नामसे २४ भागोंकी एकमाला लिखी और प्रकाशित की है। इसके अलावा योगाभ्यास, योगासन, सूर्यनमस्कार आदि विषयोंपर भी सचित्र पुस्तकें लिखकर छापीं। उनके कतिपय उल्लेखनीयग्रंथ इस प्रकार हैं—

(१) अथर्ववेदका सुबोध अनुवाद– दीर्घजीवन, आरोग्य और शतायु प्राप्तिके उपायोंपर इस ग्रंथमें प्रकाश डाला गया है। बुद्धिका संवर्धन, मनःशक्तिकी वृद्धि, पंचमुखी महादेव, पंचप्राण, यमदूत, ब्रह्मलोकप्राप्ति, अयोध्याका राम, मनुष्य

शरीरमें तैंतीस देव, अमृतशक्ति, दुष्टपरिहार, नृत्य हास्य, दुर्गतिनिवारण रोग-निवारण आदि अनेकों विषयोंका ऊहापोह इस ग्रंथमें पण्डितजीने किया है। इस ग्रंथके पांच भाग हैं।

(२) सामवेद– वेदोंमें सोम शब्द बड़ा ही विवाद्य है। सोम वस्तुत. है क्या ? इस समस्याका समाधान अनेकोंने अनेकों तरहसे किया है। पण्डितजीने भी इस शब्द पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। सामवेदमें सोम शब्दकी बड़ी विस्तृत विवेचना की गई है।

(३) पुरुषार्थ बोधिनी– गीता वाङ्मयमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाली पण्डितजीकी यह टीका बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण और उत्कृष्ट होनेके साथ ही गीताके वास्तविक स्वरूपको प्रकट करनेवाली है। अनेक टीकाकारोंका यह मत है कि कर्मयोगकी शिक्षा देनेवाली गीता पूर्णतया एक अध्यात्मशास्त्र है, यह उपासकको जगसे विमुख करके मोक्षकी तरफ प्रेरित करती है। पर पण्डितजीने इस मतका खोखलापन सिद्ध करते हुए यह बताया कि इस संसारमें व्यवहार करते हुए भी संन्यस्त मन पर कर्तव्य दक्षतासे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। पण्डितजीकी यह टीका एक स्वतंत्र टीका है और उसकी शैली अपनी ही है। जो उसे एक बार पढ लेता है, वह उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करता ही है। करीब हजार पृष्ठोंके इस ग्रंथकी पांच आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं।

(४) भगवद्गीता– गीताके श्लोकोंकी सूची अकरादिक्रमसे दी है।

(५) मंगलमूर्ति गणेश– " भूतजाति " के वीरोंको गणेशने अग्रस्थान प्राप्त करवाया, इसी कारण गणेशको भी अग्रस्थान प्राप्त हुआ है। गणेश वस्तुत. एक प्रभावशाली संघटक हैं। इस पुस्तकमें पुराणके आधार पर गणेशके विनायक, गुणेश और गणेशके रूपोंमें तीन अवतारोंकी कथा कही है। ये तीनों अवतार तरुणावस्थामें ही विलीन हो गए, पर इतनी अल्पावस्थामें भी इन क्रान्तिकारक विभूतियोंने जो अद्वितीय पराक्रम किया, वह सबके लिए स्फूर्तिदायक है। इस संजीवक पुस्तकमें यह बोध दिया गया है कि तरुण पीढी अपने राष्ट्रमें संगठन किस प्रकार करे और राष्ट्रमें ऊर्जावस्था किस प्रकार लाई जाए। भूतानमें वीरोंको सम्मानका स्थान गणेशने प्राप्त कराया।

(५) वाल्मीकि रामायण– बाल, अयोध्या, सुन्दर अरण्य, किष्किन्धा, युद्ध और उत्तर काण्डका अनुवाद और समालोचना लिखकर प्रकाशित की।

(७) वेदपरिचय– पण्डितजीने वेदाध्ययनकी परीक्षाओंके लिए पाठविधि तैय्यार की, वेदोंकी संहितायें तैय्यार कीं। सामवेदके अनेक गानोंको भी प्रकाशित किया।

(८) वेदसुधा– वैदिक परिस्थितिका परिचय करानेवाली पुस्तकोंमें वैदिक

ऋषियोंका महत्व, वैदिककालकी सेना व्यवस्था, वैदिक राज्यशासन, उस शासनके मंत्रियोंके कर्तव्य दक्षता आदि व्याख्यानोंमें भारतीय संस्कृतिकी मीमांसा है। अथर्ववेदके १२ वें काण्डका प्रथम सूक्त ही "वैदिक राष्ट्रगीत" है। उसमें स्पष्ट लिखा है—

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"। शासक अपने अन्दर मातृभूमिको धारण करनेवाले गुणोंको धारण करें उन्हें बढावें। राष्ट्रभक्तकी यह अभिलाषा है– "जो हमसे द्वेष करता है उसका नाश हमारी मातृभूमि करे।" "वैदिक राष्ट्रगीत" के ४५ वें मंत्रमें कहा है–" अनेक भाषायें बोलनेवाले और अनेक धर्मके माननेवाले भी इस मातृभूमिमें एक घरमें रहनेवालोंके समान परस्पर मेल–मिलापसे रहें। वेदोंके अनुवादके अन्तमें सुभाषित सूची और उपमा सूचियोंका देना पण्डितजीकी अपनी विशेषता है।

इसप्रकार पण्डितजीके जीवनमें शास्त्र और कलाका अद्भुत सम्मिश्रण है। पण्डितजीके लेखोंमें व्यवहार और सिद्धान्त, दर्शन और सदाचारका समन्वय है। पण्डितजीके लेखोंमें प्रवाह है, इसका कारण है कि वे वादविवादसे हमेशा दूर ही रहते हैं। पण्डितजीके ४०९ ग्रंथोंमें महत्त्वपूर्ण पुस्तकें निम्न हैं—

वेद संहितायें

१ ऋग्वेद
२ यजुर्वेद
३ सामवेद
४ अथर्ववेद
५ काण्वसंहिता
६ तैत्तिरीयसंहिता
७ मैत्रायणी संहिता
८ काठकसंहिता
९ दैवतसंहिता (३ भाग)

हिन्दी

१ ऋग्वेदका सुबोध भाष्य
२ यजुर्वेदका अनुवाद (कुछ ही अध्याय)
३ सामवेदका अनुवाद
४ अथर्ववेदका अनुवाद
५ गीता–पुरुषार्थबोधिनी
६ ऋषियोंके दर्शन
७ महाभारत

८ वाल्मीकि रामायण
९ उपनिषद् ग्रंथमाला
१० गोज्ञान कोश (२ भाग)
११ देवपरिचय (३ भाग)
१२ वैदिक व्याख्यानमाला
१३ योगसाधन ग्रंथमाला
१४ वैदिकस्वराज्यकी महिमा
१५ इन्द्रशक्तिका विकास
१६ वैदिक अग्नि विद्या
१७ विश्वराज्यमें देवताओंका कार्य
१८ वैदिकराष्ट्रगीत

मराठी

१ अथर्ववेदाचा सुबोध अनुवाद
२ सामवेदाचा सुबोध अनुवाद
३ गीता पुरुषार्थ बोधिनी
४ रामायण
५ आरोग्य साधनेचे ग्रंथ
६ मंगलमूर्ति गणेश
७ पौराणिक गोष्टींचा उलगडा
८ वैदिकधर्म
९ आरोग्य खण्ड
१० गीता खण्ड

गुजराती

१ अथर्ववेदनो सुबोध अनुवाद
२ उपनिषद् ग्रंथो
३ बालकोनो धर्मशिक्षा
४ यौगिक व्यायामना पुस्तको
५ पृथ्वीपरनु अमृत – गायनुं दूध -
६ अक्षर विज्ञान
७ पुरुषसूक्त
८ वैदिक राष्ट्रगीत

अंग्रेजी

1 Purusharth Bodhini Gita
2 Sanskrit Self Teacher
3 Gandhi Readers

स्वाध्यायमण्डकी भावी योजनायें

संस्थामें आजकल ऋग्वेदका हिन्दी अनुवाद और महा भारतका अनुवाद छप रहा है। संस्थाकी भावी योजनाओंमें वेदसंहिताओंपर २० भागोंमें अनुवाद छापनेकी एक योजना है। चारों वेदोंमें अथर्ववेद और सामवेद तो सम्पूर्ण अनूदित होकर छप चुके हैं, ऋग्वेदका अनुवाद छप रहा है, यजुर्वेदके कुछ अध्याय छप चुके हैं, बाकी भी शीघ्र ही छपेंगे।

वेदसंहिताओंके अनुवादके बाद ब्राह्मण, आरण्यक और छान्दोग्य, और बृहदारण्यक उपनिषद् आदि सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मयको सानुवाद छापनेकी योजना है।

मानवताके अस्तित्वको ऊंचा करनेके लिए वेदाध्ययन करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। इस वेदाध्ययनकी पहिली सीढी संस्कृतभाषाका अध्ययन है। संस्थाकी अनेक योजनाओंमें संस्कृत भाषा प्रचारको वेगवान् बनानेके लिए एक संस्कृत-पाठशाला शुरु करनेकी भी एक योजना है। इस पाठशालामें पढनेवाले विद्यार्थियोंके योगक्षेमके लिए छात्रवृत्तियां भी आवश्यक हैं। स्वाध्याय मण्डलकी एक योजना एक विशाल पुस्तकालय निर्माण करनेकी भी है। वेदोंको सुरक्षित रखनेकी दृष्टिसे वेदपाठियोंको तय्यार करनेके लिए एक महाविद्यालय खोलनेकी भी योजना है। सम्प्रति संस्थाकी तरफसे संचालित होनेवाली संस्कृत एवं वेद परीक्षाओंको और विशाल एवं विस्तृत बनानेकी भी योजना संस्थाके आगे है। इस प्रकार स्वाध्याय मण्डलकी अनेकों योजनायें हैं।

◌ ◌ ◌

: २४ :

पण्डित सातवलेकरजीकी वैदिक विचारधारा

अर्वाचीनयुगके वैदिक विचारकोंको पांच वर्गोंमें बांटा जा सकता है—

(१) उनमेंसे एक वर्ग उन वेदपाठियोंका है, जो वेदोंका पाठ मात्र करते हैं, उन्हें कण्ठस्थ करके रोज उनका पाठ किया करते हैं। पर वेदमंत्रोंके अर्थके विषयमें वे विचार नहीं करते। वेदोंके पाठमात्रको ही वे अपना कर्तव्य समझते हैं।

(२) दूसरा वर्ग उन विद्वानोंका है, जो सायणाचार्य आदि प्राचीन वेदभाष्यकारोंके अर्थको शब्दशः स्वीकार कर लेते हैं। वेदोंके राष्ट्रीय और सामाजिक पक्ष पर वे विचार ही नहीं करते। उनके मनमें यह प्रश्न भी कभी उपस्थित नहीं होता कि यदि वेदोंमें उत्कृष्ट और उदात्त विचार हैं, तो फिर वेदोंके विषयमें श्रद्धा रखनेवाले हिन्दुसमाजका यह अधःपतन क्यों हुआ? इस वर्गके विद्वानोंमें वेदाध्ययन बहुत बड़े पैमाने पर होता है, पर इसके साथ ही प्राचीन रूढिवादके अभिमानसे भी यह वर्ग ग्रस्त रहता है।

(३) इस वर्गके विद्वान् किसी विशिष्ट सम्प्रदायके अनुयायी होते हैं। इनके लिए अपने अपने सम्प्रदायके प्रवर्तकके द्वारा किए गए अर्थ ही सर्वतोपरि प्रमाण होते हैं। "गुरुवाक्यं प्रमाणं" के अनुयायी इस वर्गके विद्वान् सम्प्रदायके प्रवर्तकके द्वारा किए गए अर्थमें किसी तरहका परिवर्तन करना या देखना सहन नहीं कर सकते। अपने सम्प्रदायके प्रवर्तकमें इनकी श्रद्धा एवं भक्ति इतनी अविचल होती है कि यदि कोई इनके सम्प्रदायाचार्यके वेदार्थमें कुछ सन्देह या त्रुटि दिखलाता है, तो वह महान् विद्वान् होते हुए भी इनकी नजरोंसे गिर जाता है। इस वर्गके उदाहरण हैं आर्यसमाजी विद्वान्। इसमें सन्देह नहीं कि सायणके बाद महर्षि दयानन्दने वेदोंका बहुत प्रचार किया और अपने भाष्यों द्वारा आगे आनेवाले विचारकोंको

विचारको एक नई दिशा प्रदान की, सायणके द्वारा अपने भाष्यमें प्रतिपादित पशु-मेध, अश्वमेध, अजामेध आदि निकृष्ट पशुबलिके सिद्धांतोंको परिमार्जित कर वेदोंको शुद्ध एवं पवित्र स्वरूप प्रदान किया, पर महर्षिके बाद यदि कोई उन मंत्रोंका दूसरा अर्थ करता है या महर्षिके भाष्यमें विसंगति दर्शानेका प्रयास करता है तो आर्य-समाजी पण्डितोंको गुस्सा आता है।

(४) इसके विपरीत कतिपय आधुनिक विद्वान् ऐसे हैं, जो वेदोंकी शव परीक्षा ही किया करते हैं। जिस प्रकार शवको चीरफाडा जाता है, उसी प्रकार इस चतुर्थ वर्गके आधुनिक विद्वान् वेदकी चीरफाड ही किया करते हैं। इस वर्गके विद्वान् केवल पदवी प्राप्तिके लिए ही वेदाध्ययन किया करते हैं। जिस प्रकार एक चीरफाड करनेवालेके हृदयमें शवके प्रति ममता नहीं रहती और अपने कार्यके बाद कंकालको उठाकर फेंक देता है, उसी प्रकार इन आधुनिक विद्वानोंके हृदयोंमें भी वेदोंके प्रति कोई ममता नहीं होती, वे चीरफाड करनेके बाद वेदोंको उठाकर फेंक देते हैं। १९ वीं शताब्दीके योरोपीय विद्वानोंके सम्पर्कमें आनेके कारण यह चौथा वर्ग अस्तित्वमें आया।

(५) पांचवां वर्ग उन मनीषियोंका है, जो सभी भाष्यकारोंके ग्रंथोंका अध्ययन करते हैं, पर किसी एक भाष्यकारका अनुगमन नहीं करते, अपितु सभी भाष्योंमेंसे उत्कृष्टता लेकर उस पर मनन करते हैं और उस मननसे मथित उत्तम नवनीतको लोगोंके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। ऐसे विद्वानोंके ग्रंथोंमें उनका व्यक्तिगत मनन ज्यादा होता है और अन्यभाष्यग्रंथोंका अनुकरण कम। हम वेदमूर्ति पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरकी गणना इसी वर्गके विद्वानोंमें कर सकते हैं।

पण्डितजीकी धारणा

पण्डितजी स्वतंत्र विचारोंके व्यक्ति हैं। उनकी वेदोंके बारेमें धारणायें भी भिन्न हैं। उन्हें वेदाध्ययन और वेद प्रचारकी प्रेरणा महर्षि दयानन्दसे ही प्राप्त हुई पर वे उनके अन्धानुयायी नहीं बने। पण्डितजी सायणाचार्यके भी ऋणी हैं, पर पण्डितजीके वेदानुवादोंका आधार सायण नहीं हो पाए। लाहौरमें सातवलेकरजी आर्य समाजके दृढ आधार स्तम्भोंमेंसे एक रहे हैं, पर उन्होंने "वाबावाक्यं प्रमाणं" में कभी विश्वास नहीं किया। उन्होंने महर्षिके भाष्यमें भी कई विसंगतियां दिखाई और आर्यसमाजी पण्डितोंके रोषका वे लक्ष्य बने।

वेदोंके पौरुषेयत्व और अपौरुषेयत्वके विषयमें पण्डितजीकी मान्यता मध्यस्थीकी है। उनका कहना है कि वेदोंमें ज्ञान परमात्माका है पर उस अव्यक्त ज्ञानको व्यक्तता प्रदान करने वाले शब्दमात्र ऋषियोंके हैं। "काय म्यां पामरें बोलावीं उत्तरें, परीं त्वां विश्वम्भरें बोलाविलें" (मै अज्ञानी क्या बोल सकता हूं, यह विश्वम्भर परमात्मा ही मुझसे बुलवाता है) सन्त तुकारामकी इस उक्तिकी सत्यता

वेदोंके विषयमें भी अक्षुण्ण है। इस प्रकार पण्डितजी न पूर्णतया अपौरुषेयवादी हैं और न पूर्णतया पौरुषेयवादी ही। वेदोंकी तरफ पण्डितजीने सदासे एक अपूर्व दृष्टिसे देखा है। उनकी मान्यताके अनुसार-वेदोंको केवल अध्यात्मशास्त्र मानना वेदोंके मूल्यको कम करना है। उनकी दृष्टिमें वेद पतित, पराभूत और निर्जीव हुए हमारे समाजमें आत्मविश्वास, विजिगीषा, महत्त्वाकांक्षा, सामर्थ्य, पराक्रम भरकर वैभवसम्पन्न सात्त्विक जीवन निर्माण करनेवाले तथा पराभूत मनोवृत्तिके किल्बिषको नष्ट करनेवाले असाधारण ग्रंथ हैं, यदि उनका अध्ययन, मनन और आचरण किया जाए तो इसी मर्त्यलोकमें स्वर्गकी स्थापना हो सकती है।

पण्डितजीने अबतक अनेकों लेख एवं ग्रंथ लिखे हैं उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१ राष्ट्रीय और राजकीय विचार।
२ वैय्यक्तिक जीवन विषयक विचार।
३ तत्त्वज्ञान विषयक विचार।
४ वेदविषयक सामाजिक विचार।

पण्डितजी यह मानते हैं कि समस्त शास्त्रोंका पर्यवसान मनुष्यकी सर्वांगीण उन्नतिमें ही है। कोई भी ऐसा शास्त्र, जो केवल अध्यात्मज्ञान ही मनुष्यको प्रदान करता हो या उसे अध्यात्मकी तरफ प्रेरित करके उसका ऐहिक जीवन विकृत कर देता हो, मनुष्यके लिए सर्वथा निरर्थक है। मनुष्यके लिए निःश्रेयससे पहले अभ्युदयकी अधिक जरूरत है, जो राष्ट्र अशान्ति, अव्यवस्था, अराजकता और अत्याचारका शिकार हो, उस राष्ट्रमें अध्यात्मके चर्चाकी कल्पना भी असंभव है।

राष्ट्रीय एवं राजकीय विचार

इसीलिए वेदोंने सर्वप्रथम राष्ट्रकी उन्नतिका उपदेश मनुष्योंको दिया। अत्रि, गौतम-कश्यप-वसिष्ठ आदि जितने ऋषि थे, वे सभी राष्ट्रीय ऋषि थे। सभी महत्त्वाकांक्षी, लोगोंकी उन्नति करनेवाले और अच्छे नेता एवं कार्यकर्ता थे। ये सभी ऋषि राजाओंका पौरोहित्य करते थे, पर इन ऋषियोंका पौरोहित्य खाने कमानेके लिए नहीं होता था, अपितु ये उस राष्ट्रको और राजाको उन्नत करनेके लिए ही पौरोहित्य करते थे। ऋग्वेदका एक मंत्र है।

दण्डा इव इत् गो-अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठः आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त॥
(ऋ. ७।३३।६)

इस मंत्रका अर्थ पण्डितजीने इसप्रकार किया है— "गौओंको चलानेवाले कोमल डण्डेके समान कोमल प्रकृतिके भारतके लोग आपसमें झगडनेवाले थे। वसिष्ट इनका पुरोहित हुआ और उनकी उन्नति हुई।"

पुरोहितका एक मात्र लक्ष्य अपने राजा एवं राष्ट्रको बलशाली बनाना ही था। अथर्वका ऋषि स्पष्ट कहता है, " मेरा यह ज्ञान तेजस्वी हो, मेरा यह वीर्य और बल तेजस्वी हो। क्षात्रसामर्थ्य अविनाशी हो। जिनका मैं पुरोहित हूँ उनका तेज बढे। हमारे ज्ञानी और धनी मित्रोंपर जो सेना लेकर हमला करते हैं, वे अवनत हों। जिनका मैं पुरोहित हूँ, उनके शस्त्र अग्नि तथा इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण बनाता हूँ। उनके राष्ट्रको शक्तिशाली बनाता हूँ। उनका क्षात्रतेज अविनाशी हो। सब देव उनका संरक्षण करें। " (अथर्ववेद ३।१९।१-५)

उस समय पुरोहित सब तरहके कामोंमें निष्णात होता था। सैनिक शिक्षा, शस्त्रास्त्रोंकी व्यवस्था, किले तथा नगरकी रक्षा, अपने राष्ट्रकी रक्षा आदि सभी तरहके कामोंमें वह कुशल होता था। कोई भी राष्ट्रका ऐसा काम नहीं था कि जो वेदवित् पुरोहितके लिए असाध्य हो। मनु कहते हैं—

> सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
> सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ (मनु. १२।१००)

" सेनापतिका कार्य, राज्यशासन, दण्डनीतिका कार्य और यहांतक कि सारे लोकोंका शासन एक वेदशास्त्रमें पण्डित पुरोहित कर सकता है। " इसी दृष्टिसे पण्डितजीने अत्रि-वसिष्ठ आदि ऋषियोंका विवेचन किया। असुर राज्यके विरुद्ध अत्रिने क्रान्ति की, परिणामतः असुरोंने उन्हें कारावासमें डाल दिया, और वे वहां अनेक वर्षोंतक कष्ट भोगते रहे। इसीप्रकार पण्डितजीने अपने व्याख्यानोंमें ऋषियोंके क्रान्तिकारक रूपको पाठकोंके सामने प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है।

पण्डितजीने ऋषियोंको उस स्तर पर लानेका प्रयत्न किया है, कि जो सर्वसामान्यके लिए आदर्शरूप ठहर सकें। निरुक्तकारके " यथा कथंचिदपि निर्वक्तव्याः " का आधार लेकर सभी नामोंकी यौगिक व्याख्या कर देनेके पक्षपाती पण्डितजी नहीं हैं। ऋषियोंको वे वास्तविक मानते हैं, वे हमारे लिए आदर्श हैं। इससे वेदोंमें इतिहासका आक्षेप आता है, पर इस आक्षेपसे डरकर पण्डितजी इन्हें यौगिक माननेके लिए तैय्यार नहीं हैं।

मानवजातिकी उन्नतिके लिए ऋषियोंने जो प्रयत्न किए, उसका वर्णन अथर्ववेद में ऋषिने इस प्रकार किया है—

> भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
> ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सं नमन्तु ॥
> (अथर्व. १९।४१)

" सब मानवोंका कल्याण करनेवाले आत्मज्ञानी ऋषियोंने प्रारंभसे तप किया और दक्षतासे आचरण भी किया। उससे राष्ट्र, बल और ओजका निर्माण हुआ। इसलिए सब विद्वान् इस राष्ट्रके सामने विनम्र भावसे सेवाकेलिए उपस्थित रहें। "

प्रजातंत्रीयशासन प्रणाली

ऋषियोंके प्रयत्नसे राष्ट्रका निर्माण हुआ, उन्होंने राज्यशासनकी स्थापना की। पण्डितजीकी मान्यता है कि ऋषियोंका यह प्रथम राज्यशासन प्रजातंत्रीय ही था। " वैदिक राष्ट्रशासन," " प्रजापति संस्था द्वारा राज्यशासन " "ऋषियोंके राज्य-शासनका आदर्श" आदि अपने अनेकों व्याख्यानोंमें पण्डितजीने इस शासन प्रणाली के समर्थनमें वेदमंत्रोंके स्पष्ट प्रमाण दिये हैं।

पण्डितजीका कहना है कि अथर्ववेदके अनुसार सर्वप्रथम वि–राज् अर्थात् राज-हीन अवस्था थी। सब प्रजाएं धार्मिक थीं और धर्मानुसार आचरण करनेके कारण राष्ट्रमें किसीप्रकारकी अव्यवस्था नहीं थी, इसलिए उन प्रजाओंपर शासन करने वाले किसी शासककी भी आवश्यकता नहीं थी, पर आगे चलकर राष्ट्रमें कुछ राष्ट्रविरोधी तत्त्व पैदा हुए, तब प्रजा भयभीत हो गई कि यदि यह राजहीन अवस्था हो हमेशा बनी रही तो हमारी उन्नति कैसे होगी, लिहाजा यह जनशक्ति उत्क्रान्त होकर ग्रामसभामें परिणित हुई, यह ग्रामसभा ही आगे चलकर समिति या लोकसभामें बदली और अन्तमें यह समिति या लोकसभा ही आमंत्रण या मन्त्रिमण्डलमें परिवर्तित हो गई। इसी मंत्रिमण्डलमेंसे एक योग्य नेता चुना जाता था जिसके अधिकारमें सारी सभायें कार्य करती थीं, इसी शासककी संज्ञा वेदमें "प्रजापति" है। (अथर्व. ८।१०।८, १०, १२)

सभाके सदस्योंकी योग्यता

इन सभाओंका सदस्य उन्हींको बनाया जाता था, जो योग्य होता है। इन सदस्योंकी योग्यताका वर्णन ऋग्वेदका निम्न मंत्र करता है—

> आ यद् वां ईयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
> व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥ (ऋ. ५।६६।६)

" हे व्यापक दृष्टिवालो ! हे मित्रो ! हम सभी विद्वान् मिलकर ऐसे विस्तृत स्वराज्यके लिए प्रयत्न करें, जिसमें राष्ट्रका शासन बहुत संरक्षकोंके द्वारा होता हो। "

इस मंत्रमें " बहुपाय्य स्वराज्य " की कल्पना बहुत उत्तम रीतिसे वर्णित है। इस " बहुपाय्य स्वराज्य " की सभाके सदस्य—

१ ईयचक्षाः– संकुचित दृष्टिवाले न हों। दूरदर्शी हों। राष्ट्रकी आगे आनेवाली स्थितिकी पूरी पूरी कल्पना उनकी आंखोंके सामने हो।

२ मित्र– लोकसभा या विधानसभाके ये सभी सदस्य परस्पर मुष्टामुष्टि या केशाकेशी करनेवाले न हों, प्रत्युत सभी परस्पर प्रियतापूर्वक व्यवहार करनेवाले हों। प्रजाओंके भी मित्रके समान हितकारी हों।

३ सूरिः- ये सभी विद्वान् हों। सभी शास्त्रज्ञ हों। अंगूठे बहादुर न हों। स्वराज्यकी इससे बढकर उदात्त और उत्कृष्ट कल्पना और कौनसी हो सकती है। पण्डितजी उनके प्रखर विरोधी हैं, जो कहते हैं कि प्रजातंत्रराज्यकी कल्पना सर्वथा अर्वाचीन है और इसके लिए भारतीय पाश्चात्योंके ऋणी हैं। वेदोंमें राजा या सर्वोपरि शासकके लिए "प्रजापति" शब्द आया है।

प्रजापतिकी कथा

वेदोंमें प्रजाको ही शासक या राजाका अंग या अवयव बताया गया है—

विशो मे अंगानि सर्वतः। (यजु. २०)

प्रजायें ही मेरे अवयव हैं। जिसप्रकार मनुष्य अपने शरीरके सभी अवयवोंको परिपुष्ट रखना चाहता है, उसी प्रकार राजाका कर्तव्य है कि वह अपने अवयवरूपी प्रजाको सर्वतोमना पुष्ट करनेका प्रयत्न करे, क्योंकि—

विशि राजा प्रतिष्ठितः। (वा. यजु. २०)

राजाकी प्रतिष्ठा प्रजामें ही है। प्रजाका सुखदुःख ही राजाका सुखदुःख है। प्रजाकी प्रसन्नतासे ही राजा गद्दीका अधिकारी रह सकता है। प्रजाको यह पूरा अधिकार है कि वह अत्याचारी और निरंकुश शासकको जब चाहे तब पदच्युत करके दूसरेको राज्यपद पर प्रतिष्ठित कर सकती है।

ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मणमें थोडीसी फेरफारके साथ एक कथा आती है कि एक बार प्रजापतिने बलात्कार करनेकी इच्छासे अपनी कन्याका पीछा किया, तब ऋषियोंने रुद्रके द्वारा प्रजापतिका वध करवाया। इस कथामें प्रजापति कौन है, उसकी कन्या कौन है? आदि प्रश्नोंके सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। "दिवं इति अन्ये उषसं इति अन्ये" इसप्रकार इस कन्याके विषयमें ब्राह्मणकारोंने अनेक कल्पनायें की हैं।

पर पण्डित सातवलेकरजीके मतमें इस कथाका स्वरूप भी पूर्णतया राजकीय ही है। उनके अनुसार यह प्रजापति राजा ही है और उसकी कन्या सभा या समिति ही हैं। अथर्ववेदमें मंत्र आया है—

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ॥

(अथर्व. ७।१३।१)

"प्रजापतिकी कन्या सभा और समिति मेरी रक्षा करें।" सभा और समिति दोनों प्रजापति या राजाकी कन्यायें हैं, "कन्या कमनीया भवति" की उक्तिके अनुसार राजाका कर्तव्य है कि इन दोनोंको अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ बनाये, पर जब वही राजा इन दोनोंको भ्रष्ट करनेकी अभिलाषा करता है, तब राष्ट्रके विद्वान् क्षात्रशक्तिकी सहायतासे उस निरंकुश शासकको पदच्युत करवा दे, या वध करवा दे। इसप्रकार पण्डितजीने प्रजापतिकी कथाको राजनैतिक स्वरूप प्रदान किया है।

दीर्घकालीन दासताके कारण पराभूत एवं पतित मनोवृत्तिके हिन्दुसमाजका पुनरुत्थान वेदोंमें श्रद्धा उत्पन्न कराकर और वेदोंमें प्रतिपादित ओजस्वी विचारोंको प्रजाओंमें फैलाकर ही किया जा सकता है।

विश्व-एक विराट् शरीर

वैदिक कालमें समाज व्यवस्था न्यायकी नींव पर खडी की जाती थी। समाजके अधिकारों और आचार विचारोंमें व्यक्तिस्वातंत्र्यके लिए भी पूरा पूरा स्थान था। वेदोंमें समाजको एक विराट् पुरुषके रूपमें माना है। इस विराट् पुरुषका वर्णन पण्डितजीने पुरुषसूक्त–एक अनुशीलनमें किया है। पुरुषसूक्तमें एक मंत्र है—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीद् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ (यजु. ३१।१०)

अर्थात् इस विराट् पुरुषको कितने भागोंमें विभक्त किया? इसका मुख क्या था, बाहू क्या थे और पैर क्या थे? इसका उत्तर इसके अगले ही मंत्रमें इस प्रकारसे दिया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ (यजु. ३१।११)

इस विराट् पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, बाहुओंसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए।"

जो ज्ञानादि श्रेष्ठ गुणोंसे सुशोभित, अध्ययन–अध्यापन करनेवाला और निर्लोभ वृत्तिका होता है, वह ब्राह्मण है। शौर्य और पराक्रमके गुणोंसे युक्त क्षत्रिय होता है। खेती और व्यापार करनेवाले वैश्य होते हैं और जो सेवा करते हैं वे शूद्र होते हैं। इन सबके सहकार और भावनासे समाजका जीवन चलता है। इसी व्यवस्थाको वर्णव्यवस्था कहा गया। है।

सभी समाज, राष्ट्र एवं व्यक्ति इस विराट् पुरुषके शरीरके अंग प्रत्यंग हैं। जिसप्रकार मानवी शरीरमें सभी अंग सहकारसे रहते हैं, उसीप्रकार विराट् शरीरके सभी अंगोंका सहकार अत्यन्त आवश्यक है।

इस विराट् शरीरके बारेमें पण्डितजी अपने दैवतसंहिताकी भूमिकामें लिखते हैं—

" वेदोंमें विश्वका वर्णन एक शरीरके रूपमें है। वह एक विराट् शरीर है। व्यक्ति शरीरमें जिस तरह आत्माका स्थान मुख्य है, उसी तरह विराट् शरीरमें परमात्मा मुख्य है। अथर्ववेदमें इस विराट् शरीरका वर्णन इस प्रकार है --

यस्य भूमिः प्रमा अन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

" भूमि जिसके पैर, अन्तरिक्ष पेट और द्यौ सिर है, उस महान् ब्रह्मको नमस्कार है। सूर्य और चन्द्र जिसकी आंखें हैं, अग्नि जिसका मुख है उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है। वायु जिसके प्राण और अपान हैं, अंगिरस् जिसकी आंखें हैं तथा दिशायें जिसके कान हैं, उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है।"

इसीप्रकार इस विराट् शरीरके सहस्रों मस्तकका भी वेदमें वर्णन है—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्।
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥
ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
चन्द्रमा मनसो जातः चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥

" हजारों सिर, हजारों आंख और हजारों पैरवाला एक विराट् पुरुष इस भूमिको चारों ओरसे व्याप्त किए हुए है। यहां जो कुछ हो चुका है, या जो कुछ होनेवाला है, वह सब पुरुष ही है। ब्राह्मण इस विराट् पुरुषके मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य दोनों जांघें और शूद्र पैर हैं। इस विराट् पुरुषके मनसे चन्द्रमा, आंखसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि और प्राणसे वायु प्रकट हुआ। नाभिसे अन्तरिक्ष, सिरसे द्यौ, पैरोंसे भूमि और कानसे दिशाएं उत्पन्न हुईं।"

" गीताके ११ वें अध्यायमें इस विराट्पुरुषका बडे विस्तारसे वर्णन है। श्रीकृष्णके द्वारा अर्जुनको अपने विराट् स्वरूपको दिखानेका जहां वर्णन है, वहां उसका अभिप्राय इस विश्वके विराट् शरीरसे है। पुराणोंमें भी इस विराट् पुरुषका वर्णन है।"

देवताओंके इस आधिदैविक अध्ययनके आधार पर पण्डितओंके सामने एक नई चीज आई, वह यह कि परमात्माका यह विराट् शरीर वस्तुतः एक विशाल राज्य-शासन भी है। इसमें सभी देव अधिकारीके रूपमें अपना अपना कार्य करते हैं।

ये सभी देवता तीन क्षेत्रोंमें विभक्त होकर अपना कर्म करते हैं। " यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे " की उक्तिके अनुसार शरीरके समान ही सर्वत्र ये देवता काम करते हैं। शरीरके क्षेत्रको अध्यात्म कहा है, समाज या राष्ट्रके क्षेत्रकी संज्ञा आधिभूत

है और विश्वके क्षेत्रको "अधिदेव" संज्ञा प्रदानकी गई है। इसप्रकार आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक क्षेत्रमें इन देवताओंके रूपोंका दर्शन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ शरीर या अध्यात्ममें अग्नि वाणी, है अधिभूत अर्थात् समाज या राष्ट्रमें वक्ता या विद्वान् और आधिदैविक या विश्वमें वह भौतिक अग्नि है। इस प्रकार अन्य देवताओंके भी तीनों क्षेत्रोंके रूपोंकी तालिका इसप्रकार बनाई जा सकती है—

अध्यात्ममें	आधिभूतमें	आधिदैवतमें
वाणी	वक्ता	अग्नि
शौर्य	शूर	इन्द्र
प्राण	प्राणी	वायु
कारीगरी	कारीगर	त्वष्टा

इसप्रकार पण्डितजीने देवोंके स्वरूपको वेदोंके अनुसार व्यक्त किया।

ये सभी देव परस्पर सहकारसे रहते हैं, यह सहकार ही राष्ट्रीय संघटन है। ऋग्वेदके अनेक सूक्तोंमें इस राष्ट्रीय संगठनकी महिमाका वर्णन है। ऋग्वेदके १० वें मण्डलका अन्तिम सूक्त संगठन सूक्तके नामसे ही प्रसिद्ध है। उसके सभी मंत्र बोधप्रद हैं—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥
समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥
समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

"हे मनुष्यो! मिलकर चलो, मिलकर बोलो, तुम्हारे मन ज्ञानयुक्त हों, जिस प्रकार देवगण ज्ञानपूर्वक अपने राष्ट्रकी उपासना करते थे, उसी प्रकार तुम भी करो। तुम्हारे विचार समान हों, तुम्हारी सभायें समान हों, तुम्हारे मन और चित्त समान हों, मैं भी तुम्हारे साथ बैठकर विचार विमर्श करूं और तुम्हारे साथ मिलकर यज्ञ करूं। तुम सबके संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे मन समान हों ताकि तुम परस्पर मिलकर सुशोभित होओ।' आचारों, विचारों और संकल्पोंकी एकात्मता ही राष्ट्रकी शक्तिको दृढ करती है।

इस प्रकार वेद मानवी व्यवहारके लिए दिव्य सन्देश देनेवाले हैं, उनमें शाश्वत सत्य भरा हुआ है। वेदोंका सन्देश युगयुगोंतक कल्याणप्रद होगा। अपनी मासिक पत्रिकाओंके माध्यमसे पण्डितजीने वेदोंमें राजनैतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों पर अनेक लेख लिखे और भारतभरमें व्याख्यान भी दिए। उन्होंने बताया

कि वेद ही धर्मके मूल हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंके मूलमें वेद बैठे हुए हैं। *गणित और विज्ञान सम्बन्धी अनेकों तथ्यवेदोंमें भी पड़े हैं।*

चारों वेदोंमें दीनता दर्शक एक भी मंत्र नहीं है। सभी वेदोंमें आत्माकी अपार शक्तिका भण्डार बताया है। ऋग्वेदका ऋषि कहता है।

अहमिन्द्रो न पराजिग्ये इन्द्रं न मृत्यवे अव तस्थे कदाचन।

"मैं इन्द्र हूँ, कभी भी पराजित या मृत्युके वशमें नहीं होता।" मैं यदि इन्द्र हूँ तो स्पष्ट है कि यह मेरा शरीर इन्द्र सभा है। शरीरके विषयमें यह उदात्त *भावना यदि प्रत्येक मनुष्यमें व्याप्त हो जाए तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं स्वयंका निर्माण* कर सकेगा। समाजके अन्दर दृढमूल हुई हुई धारणायें ही समाजको बना सकती हैं।

पण्डितजीने वेदमंत्रोंमें "सत्यं शिवं सुन्दरं" के दर्शन किए। उसीको उन्होंने जनताके सामने भी प्रस्तुत किया। भारतीय गणराज्यको वैदिक गणराज्यके अनुसार चलानेका मार्ग पण्डितजीने बताया। महर्षि दयानन्दके समान पण्डितजीने भी इस बातका प्रचार किया कि वेद कुछ निश्चित जातियां धर्मावलम्बियोंकी बपौती नहीं है, यह वेदज्ञान सभीके लिए है। वेदमें परमेश्वर स्वयं कहता है—

यथेमां वाचं कल्याणीं मा वदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय स्वाय चारणाय॥ (यजु. २६।२)

"परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्योंके लिए इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्तिके सुखको देनेहारी ऋग्वेदादि चारों वेदोंकी वाणीका उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो। परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य व स्त्रियादि और अतिशूद्रादिके लिए भी वेदोंका प्रकाश किया है *अर्थात् सब मनुष्य वेदोंको पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञानको बढ़ाके अच्छी* बातोंका ग्रहण और बुरी बातोंका त्याग करके दुःखोंसे छूटकर आनन्दको प्राप्त हों।"
(सत्यार्थ प्रकाश पृ. ७५)

पण्डितजी भी इसी मतके अनुयायी हैं। उन्होंने भी इस बातका सर्वत्र प्रचार किया कि वेदोंके अध्ययनका सबको अधिकार है।

पण्डितजीका यह स्पष्ट मत है कि वेदोंमें यज्ञमें पशुबलिका कहीं भी विधान नहीं है। औंधमें बापट दीक्षितके द्वारा यज्ञमें पशुवधके अवसरपर पण्डितजीने अपने पक्षका मण्डन करते हुए कहा था —

(१) यज्ञ वैदिकधर्मका केन्द्र है। यज्ञका बहुत बड़ा सामर्थ्य है। इसका सामर्थ्य अत्यधिक होनेके कारण यह काम बहुत सावधानीसे करना चाहिए।

(२) यज्ञवाचक सभी शब्द हिंसाका निषेध करते हैं। यज्ञका अर्थ "देवपूजा, संगतिकरण और दान" है। देवोंका पूजन, विभिन्न जातियोंका संगठन और

परोपकारका भाव यज्ञ शब्दमें निहित है। यज्ञवाचक शब्दोंमें एक शब्द "प्रजापति" भी है। प्रजापतिका अर्थ "प्रजाका पालन करनेवाला।" इसके अलावा यज्ञवाचक शब्दोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द "अ-ध्वर" है। "अ-ध्वर" का अर्थ है हिंसा-रहित। निरुक्तकारका कथन है– "ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधो अध्वरः" इसप्रकार अध्वर शब्द अहिंसाका वाचक है।

(५) ब्राह्मण ग्रंथमें भी यह स्पष्ट लिखा है कि पशुवधका अभिप्राय पुरोडाशसे पूरा हो सकता है। शतपथ और ऐतरेयमें एक कथा आती है– "पहले देवोंने क्रमशः मनुष्य, घोड़ा, गाय, मेढा और बकरेकी बलि दी। पर बादमें उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यज्ञीय भाग इन पशुओंमेंसे निकलकर भूमिमें प्रविष्ट हो गया और चावल तथा जौके रूपमें उगा। उनके आटेके हवनसे भी उतना ही कार्य हो सकता है जितना कि पशुबलिसे। इसलिए चावल और जौके आटेसे ही हवन करना चाहिए, इसके बाद मांसके हवन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। (शतपथ. १।२।३।६–९) ऐतरेय ब्राह्मणमें भी इसीप्रकार कहा है– (ऐत. ब्रा. २।९) इसका तात्पर्य यह है कि यज्ञमें पशुवधकी आवश्यकता नहीं है, यज्ञका कार्य धान्यके हवनसे भी सम्पन्न हो सकता है।

(६) महाभारतके शान्तिपर्वमें अश्वमेध जैसे महायज्ञ भी पशुवधके बिना ही किए गए (शान्ति. अ. ३३६) यज्ञमें उत्तम खीरकी आहुति दी जाए। वेदोंके मंत्रोंका भाव धान्यकी आहुति देनेका ही है। "अज" का अर्थ धान्य है, बकरा नहीं।

अजसंज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ।
नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः। (महा. शान्ति. ३३७)

"अज संज्ञक बीजोंकी ही आहुति देनी चाहिए, यज्ञमें बकरेका वध करना ठीक नहीं। जहां पशुका वध किया जाए, यह सज्जनोंका धर्म नहीं है।

(७) सोमयागके लिए आजकल सोमवल्ली नहीं मिलती, इसके अभावमें एक प्रकारकी जंगली वनस्पतिका उपयोग होता है।

इसप्रकार पण्डितजीने अनेक वैदिक तथ्योंपर प्रकाश डाला।

उपनिषदोंमें राष्ट्रीयता

पण्डितजीके समयका वातावरण राष्ट्रीयतासे भरपूर था। चारों ओर स्वतंत्रताका शंखनाद हो रहा था। लोग अपनी मातृभूमिको स्वतंत्र करानेके लिए अपना सर्वस्व समर्पित किए दे रहे थे। स्वयं पण्डितजी भी मातृभूमिके सच्चे उपासकोंमेंसे एक थे। देशकी स्वतंत्रता उनका भी उद्देश्य था। वे भारतीयोंमें जागृति उत्पन्न करना चाहते थे। लोगोंके हृदयोंमें देशप्रेम और देशभक्तिके भाव पैदा करके उन्हें राष्ट्रहितके कार्योंमें प्रेरित करना चाहते थे। पण्डितजी सर्वप्रथम देशकी सीमाओंको दृढ और सुरक्षित देखना चाहते थे ताकि कोई भी शत्रु इस देशपर आक्रमण न कर सके।

" शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते " के वचनमें उन्हें पूरा विश्वास था। इसीकारण पण्डितजीने प्रायः सभी भारतीय शास्त्रोंमें राष्ट्रीयताके दर्शन किए। इन शास्त्रोंके राष्ट्रीयताके पक्षको लोगोंके सामने प्रस्तुत करके भारतीय जनताको राष्ट्रीयभावोंसे भरपूर करना चाहते थे।

पण्डितजीका मत है कि वेदोंमें प्रायः सर्वत्र शत्रुओंको मार भगानेका आदेश है। यह कभी भी यह नहीं सिखाता कि न्यायके दिनकी प्रतीक्षा करते हुए हाथ पर हाथ धरे बैठे रहो। उसका आदेश तो ईंटका जवाब पत्थरसे देनेका है। वेद स्पष्ट कहते हैं—

स्थिराः वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥ (ऋ. १।३९।२)

" तुम्हारे हथियार शत्रुदलको हटानेके लिए अटल तथा सुदृढ हों और उनकी राहमें रुकावटें खडी करनेके लिए, प्रतिबन्ध करनेके लिए अत्यधिक बलयुक्त और शक्ति-सम्पन्न भी हों। तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य अतीव प्रशंसार्ह और सराहनीय हों; कपटी लोगोंका बल न बढे। "

वीरपुरुष अपने हथियारों एवं शस्त्रास्त्रोंको बलयुक्त तीक्ष्ण तथा शत्रुओंके शस्त्रोंसे भी अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षम बनावें। सदाके लिए सतर्क एवंसचेष्ट रहें कि वे शत्रु-दलसे मुठभेड या भिडंत करते समय यथेष्ट मात्रामें प्रभावशाली ठहरें (ध्यानमें रखना चाहिए कि कदापि विरोधी तथा शत्रुसंघके हथियार अपने हथियारोंसे बढकर प्रबल तथा प्रभावशाली न होने पायें) और कपटाचरणमें न हिचकनेवाले शत्रुओंका बल कभी न वृद्धिगत हो।

—पं. सातवलेकरकृत " ऋग्वेदका सुबोधभाष्य "
से उद्धृत : पृ. ९५ (प्रथम भाग)

इसप्रकार पण्डितजीने प्रायः अपने सभी ग्रंथोंमें राष्ट्रीयताका ही विचार किया है। यहांतक कि उपनिषदोंमें भी, जिन्हें सभी मोक्षशास्त्र या अध्यात्मशास्त्र मानते हैं, पण्डितजीने राष्ट्रीयताके दर्शन किए। पण्डितजी अपने उपनिषद्के भाष्यकी भूमिकामें लिखते हैं—

" ईशोपनिषद्— के प्रथम मंत्रके " जगत्यां जगत् " पदके द्वारा ईशोपनिषद्के ऋषिने सामाजिक कर्तव्यका बोध दिया है। जगत्यां जगत् " शब्दमें "समुदाय और व्यक्ति " की कल्पना है। " समष्टिव्यष्टिरूपसे जो है, उस सब विश्वमें ईश्वर व्यापता है। " यह आशय प्रथम मंत्रके पूर्वार्धका है। इस ' समष्टि और व्यष्टिवाद " को आगे ८ वें मंत्रमें " संभूति और असंभूति " पदसे व्यक्त किया गया है। उदाहरणार्थ—

(१) सं+भू— मिलना, एक होना, संगठित होना।
(२) संभव— मेल, मिलाप, एकता, सहकार, सहयोग।

(३) संभूत– मिला हुआ।
(४) संभूति– संमेलन, मिलना, एक होना, संघटना।
(५) संभूय– एक होकर, साथ होकर, सहकार्य करके, संघबनाकर।
(६) संभूय समुत्थान– मिलकर ऊपर उठनेका यत्न करना, मिलकर एक होकर शत्रुपर हमला करना।

इन अर्थोंको देखनेसे पाठकोंको पता लग जाएगा कि संभूति शब्दमें संघका भाव है। इसका अधिकार विचार करनेके लिए " सं+भू " धातुसे बने हुए शब्दोंका प्रयोग ही देखिए—

वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म संभूय कुर्वते।
तत्संभूयसमुत्थानं व्यवहारपदं स्मृतम्॥ (नारदस्मृति)

" वैश्य आदि लोग मिलकर (संभूय) सहकारिताके साथ व्यवहार करते हैं, उस व्यवहारको " संभूय समुत्थान " कहते हैं। "

यह संभूय समुत्थान अर्थात् सहकारिताका व्यवहार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंमें अपने अपने कार्यके लिए हुआ करता है। इसप्रकार ईशोपनिषद्के " संभूति " शब्दसे संघभाव की ओर असंभूति शब्दसे व्यक्तिभावकी भावना प्रकट होती है। इसी उपनिषद्के ८-१० मंत्रमें कहा है—

" जो केवल व्यक्ति स्वातंत्र्यके भक्त होते हैं, वे गिरते हैं, परन्तु जो केवल संघशक्तिमें ही रमते हैं, वे उनसे भी अधिक गिरते हैं। व्यक्तिभाव और संघभावका फल भिन्न भिन्न है, ऐसा हम ज्ञानियोंके उपदेशसे सुनते आए हैं। जो व्यक्तिभाव और संघभावको साथ साथ उपयोगी समझते हैं, वे व्यक्तिभावसे दुःखोंको दूर करके संघभावसे अमर होते हैं।

पण्डितजीकी मान्यता है कि ईशोपनिषद्के प्रथम मंत्रमें ही राष्ट्रीय भावनाओंका उपदेश है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।

इस जगत्में जो भी कुछ है, वह सब ईश। अर्थात् बलशालीके द्वारा शासनके योग्य है। जो मनुष्य बलशाली है, वही इस जगत्पर शासन कर सकता है। यह ईश भी अपनी शक्तिसे ही बलवान् हो, दूसरेके बलके जोर पर राष्ट्रपर शासन न करे। यही बात राष्ट्रीय नेताके बारेमें भी लागू है। राष्ट्रका नेता अपनी शक्तिसे ही बलशाली हो।

इसप्रकार पण्डितजीने उपनिषद्में भी राष्ट्रीयताके भावोंको खोजनेका प्रयास किया है।

गीता-एक राष्ट्रीय काव्य

वैदिकधारा पर अनुप्राणित गीताको भी पण्डितजीने आध्यात्मिक ग्रंथकी अपेक्षा राजनैतिक ग्रंथ ही अधिक माना है। गीताका उद्देश्य मनुष्यको इस संसारसे विमुख करना नहीं है, अपितु इसी संसारमें रहकर अपने राष्ट्रकी उन्नति करना है। गीताने कर्मसंन्यासके अभिलाषी अर्जुनको कर्मयोगकी तरफ प्रेरित किया।

पण्डितजीने गीता पर अपनी टीका पुरुषार्थबोधिनीमें धृतराष्ट्र और अर्जुन आदि संज्ञाओंकी व्याख्या ही बड़ी नवीन की है। धृतराष्ट्रका अर्थ करते हुए पण्डितजी अपनी व्याख्यामें लिखते हैं- "यह" धृत-राष्ट्र "है। यह राष्ट्रको "धृत" अर्थात् हड़पकर बैठा हुआ है। जो वास्तविक अपनी चीज नहीं अपितु दूसरेकी है, उस पर अन्यायसे और पाशवी बलसे अपना अधिकार जमानेका यत्न कर रहा है। दूसरेका राष्ट्र पाशवी बलसे अपने आधीन करना, उस पर अपना अधिकार सदाके लिए स्थिर रखनेका यत्न करना, उसके अधिकारी पुरुष अपना स्वराज्य वापस मांगने लगे तो उनको न देनेके लिए प्रयत्न करना और उनको "अनधिकारी" सिद्ध करना, यही "धृत-राष्ट्र" यहां कर रहा है। पाशवी बलसे दूसरोंके स्वत्व पर अधिकार करनेवाले साम्राज्यवादी अन्धे ही होते हैं। और उसके अनुयायी भी अन्धे होते हैं। इसीलिए महाभारतमें धृतराष्ट्रको अन्धा बताया गया है। दूसरी तरफ अर्जुन वस्तुतः अपने राज्यका अर्जन करनेवाला है। धृतराष्ट्रने जो राज्य दबा लिया है। उसे फिर प्राप्त करना चाहता है। स्वराज्यके लिए प्रयत्न करनेवाले हमेशा दुःखमें ही रहते हैं। इस प्रकार एक तरफ साम्राज्यवादी अन्धा धृतराष्ट्र है और दूसरी तरफ अपने राज्यका अर्जन करनेवाला स्वराज्यवादी "अर्जुन" है। साम्राज्यवादी और स्वराज्यवादीका यह युद्ध सनातनकालसे चला आता है।"

इस प्रकार पण्डितजीने अपनी गीता टीकामें तद्गत संज्ञाओंकी एक नवीन ही व्याख्या प्रस्तुत की है।

राजविद्या राजगुह्य

पण्डितजीकी धारणा है कि गीता एक राज्यशास्त्र (Political Treatise) है। उसमें अनेक राजनैतिक सिद्धान्तोंकी विवेचना की गई है। गीताके नवम अध्यायका दूसरा श्लोक राज्यशासनकी रूपरेखा स्पष्ट करता है—

> राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
> प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

इसका अर्थ पण्डितजीने इस प्रकार किया है- "यह राज्यशासनकी विद्या है, यह श्रेष्ठ राजमार्ग है। (राजगुह्य) राज्यशासन चलानेका गुह्यज्ञान है, यह मनुष्यको उत्तम और पवित्र करनेवाला ज्ञान है, (अ-व्ययं) इसमें कोई अधिक व्यय नहीं

होना, इससे उत्तम लाभ होता है. इसका प्रत्यक्ष अनुभव प्रत्येक कर सकता है, यह (कर्तुं सुसुखं) आचरण करनेके लिए अत्यन्त सुगम है। यह राज्यशासन चलानेकी मुख्य विद्या है। इस प्रकार राज्यकार्यसे मनुष्यको अखण्ड कल्याण प्राप्त होता है और कभी मनुष्यकी दुर्दशा नहीं होती। जो लोग इस राज्यशासन पर विश्वास नहीं रखेंगे, वे श्रेष्ठ पुरुष नहीं कहायेंगे और वे अनन्त दुःख भी भोगेंगे।"

इस प्रकार पण्डितजीने गीताको भी एक राजनैतिक शास्त्र ही माना है। पण्डितजी जिस समय कार्यक्षेत्रमें प्रविष्ट हुए, उस समय भारत गुलाम था, उस समयका सारा वातावरण दासताकी भावनाओंसे दूषित हो चुका था। अतः पण्डितजीकी भी यही अभिलाषा थी कि भारत स्वतंत्र हो, वे भारतीयोंमें जोश और उत्साह भरना चाहते थे। संभवतः यही कारण था कि पण्डितजीने वेदों और गीताके स्वराज्यके सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला। वे चाहते थे कि भारतका हर एक व्यक्ति अपने जीवनके प्रति निष्ठावान् और श्रद्धावान् बने, अपने राष्ट्रकी सेवामें वह सदा तत्पर रहे। पण्डितजीके हृदयमें राष्ट्रीयताकी यह धारा बहुत गहराई तक पहुंच गई थी।

विश्वराज्यकी कल्पना

पण्डितजीकी यह कल्पना वैदिक जगत्में सर्वथा नवीन है। "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" की उक्तिके अनुसार जिस प्रकार एक राष्ट्रमें राज्यशासन चलता है, उसी प्रकार विश्वमें भी राज्यशासन चलना चाहिए। विश्वमें सभी अनुशासनबद्ध है, अतः इसके पीछे भी किसी एक शासकका शासन अवश्य होना चाहिए। यह एक सूत्र था जो पण्डितजीके हाथमें एक दिन आ गया, पर अब प्रश्न यह था कि कौनसा देवता इस विश्वराज्यके किस पद पर अधिष्ठित है। इस प्रश्नके समाधान करनेके लिए पण्डितजीने सभी देवताओंके गुणोंका अध्ययन किया। इस अध्ययनके बाद उन गुणोंके आधार पर निश्चित किया कि कौनसा देवता किस पद पर अधिष्ठित है। इस अध्ययनके आधार पर मूर्तरूपमें आई हुई कल्पनाका स्वरूप इस प्रकार है—

परब्रह्म- यह विश्वराज्यका राष्ट्रपति है। जिस प्रकार प्रजातंत्रीय शासनमें राष्ट्रपतिका अधिकार केवल इतना ही होता है कि यह लोकसभाके द्वारा पास किए गए प्रस्तावों पर हस्ताक्षर कर दे, शेष सब अधिकार प्रधानमंत्रीके हाथोंमें होते हैं, उसी प्रकार यह परब्रह्म भी निर्विकार एवं निष्क्रिय होनेके कारण विश्वराज्यमें अत्यन्त न्यून अधिकारोंवाला है—

परमात्मा- यह विश्वराज्यका प्रधानमंत्री है। विश्वराज्यका सब कर्त्ताधर्त्ता और संहर्ता यही है। यही सारे विश्वराज्यके चक्रको चलाता है। गीताके शब्दोंमें—

> ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
> भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

+

यही परमात्मा विश्वराज्यके संचालनके लिए मंत्रिमण्डलका निर्माण करता है। उनमें—

अग्नि– विश्वराज्यका शिक्षामंत्री है। यह ज्ञानका प्रसार करता है। इसकी सहायताके लिए बृहस्पति और ब्रह्मण-स्पति ये दोनों उपशिक्षामंत्रीका कार्य करते हैं।

इन्द्र– रक्षामंत्री है। इसने वलासुर, वृत्रासुर, शुष्णासुर आदि अनेकों असुरोंको मारकर विश्वराज्यकी अनेक बार रक्षा की थी। यह " वज्रभृत् ," " शिप्री " (शिरस्त्राण धारण करनेवाला) और " कवची " है। इसकी सहायता उपेन्द्र या विष्णु उपरक्षामंत्रीके रूपमें करता है। रुद्र और मरुत् इसके सैनिक हैं।

अश्विनौ– ये दोनों देव स्वास्थ्यमंत्री हैं। इनका काम लोगोंके स्वास्थ्यकी देखरेख करना है। ये दोनों ही " देवानां भिषजौ " हैं। इनमें एक औषधि चिकित्सामें प्रवीण है तो दूसरा शल्य चिकित्सामें। इन दोनोंने अन्धे और बूढे च्यवनको कायाकल्पके द्वारा तरुण बनाकर अनेक तरुणियोंका पति बनाया। युद्धमें टांग टूट जानेके कारण चलने फिरनेमें असमर्थ विश्पलाको लोहेकी टांग लगाकर, उसे चलने फिरने योग्य बनाया। अन्धे ऋज्राश्वकी आंखें ठीक कीं। इस प्रकार ये स्वास्थ्य संरक्षणका काम करते हैं। इनकी सहायताके लिए औषधि, अन्न, गौ उपस्वास्थ्य-मंत्री है।

इसी प्रकार पण्डितजीने अन्य देवोंके पदोंकी भी कल्पना की है। ये सभी देव या पदाधिकारी अपने कामोंमें दक्ष, अप्रमादी, ईमानदार है, कभी भी दूसरेके काममें बाधा नहीं डालते। इन देवोंका राज्यशासन मानवोंके लिए आदर्श है। पण्डितजी यही कहते हैं कि यदि इस राज्यशासनके आदर्शोंके अनुसार राष्ट्रीय राज्यशासनका भी व्यवहार चले तो इसी पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना की जा सकती है।

पं. सातवलेकरजीने राष्ट्रवादके साथ साथ व्यक्तिवादको भी उतनी ही महत्ता प्रदान की। वे इस सिद्धान्तके प्रबल पक्षपाती हैं कि राष्ट्रको सुधारनेके साथ ही साथ व्यक्तिको सुधारना आवश्यक है। व्यक्तिमें जबतक अपने शरीर, जीवन और कार्यके प्रति श्रद्धा एवं आस्था नहीं उत्पन्न की जाती, तबतक उसका सामाजिक जीवन भी सुधर नहीं सकता। इसी दृष्टिसे पण्डितजीने अध्यात्मतत्वकी व्याख्या की।

बौद्ध निराशावाद एवं वैदिक आशावाद

अध्यात्मके अन्तर्गत मानवशरीरका अध्ययन पण्डितजीने अपने लेखों एवं ग्रंथोंमें किया है। अपने इन ग्रंथोंमें पण्डितजीने बौद्धदर्शनके निराशावाद पर बड़ा ही प्रखर आक्रमण किया है। उनका कहना है कि यह बौद्धधर्म ही हमारे अधःपतनका कारण बना है। बौद्धोंके " सर्वं दुःखं सर्वं क्षणिकं, सर्वं शून्यं पूयविण्मूत्रमात्रमिदं शरीरं " के सिद्धान्तने सारे भारतवासियोंको कायर बना दिया, उनको इस संसार

एवं जीवनसे विरक्त बना दिया। सभी शरीरसे घृणा करने लगे, परिणामतः बौद्धभिक्षुओंकी संख्या बढ़ती गई और देशकी रक्षा करनेवाला कोई न बचा। चन्द्रगुप्तमौर्यने चाणक्यकी सहायतासे एक विशाल आर्यसाम्राज्यकी स्थापना की, साम्राज्य स्थापनाके बाद चाणक्यने सबसे पहला काम जो किया वह था बौद्धोंको राज्यसे निर्वासित करना। पर चन्द्रगुप्तके पोते अशोकके शासनकालमें इन भिक्षुओंने फिर अपने सिर उठाये और उन्होंने अशोकको भी आत्मसात् कर लिया। उसी दिनसे भारतका दुर्भाग्य शुरु हुआ। बौद्धोंकी अहिंसाने सभी भारतीयोंको निष्क्रिय बना दिया और शत्रुओंने इस अवसरका लाभ उठाकर सारे भारतको पैरोंतले कुचल डाला। भारत सदियोंतक दास रहा। यदि बौद्धधर्म अस्तित्वमें न आता तो भारतीय इतिहासका नक्शा आज कुछ बदला हुआ ही नजर आता।

बौद्धसिद्धान्त निराशावादका प्रचार करता है। वह मानवी शरीरको हेय दृष्टिसे देखता है, इसके विपरीत वैदिक सिद्धान्त पूर्णतया आशावादी है। पण्डितजीने वेदप्रतिपादित इन आशावादी सिद्धान्तोंका अपने ग्रंथोंमें जगह जगह पर उल्लेख किया है। वेदोंका उपदेश है "मनुष्यो! इस संसारमें सौ वर्षतक कर्म करते हुए जीओ। मातृभूमिको अपनी माता समझो और इसकी रक्षाके लिए स्वयंको भी न्योछावर कर दो।"

संसार आनन्दका स्रोत

जिस संसारको बौद्धधर्म दुःखोंका भण्डार मानता है, उसीको वेद आनन्दका स्रोत मानता है। उपनिषद्‌का स्पष्ट कथन है—

आनन्दाद्देव इमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन
जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।

"आनन्दसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्दके आश्रयसे रहते हैं और अन्तमें मरकर आनन्दमें ही लीन हो जाते हैं। परमात्मा आनन्दस्वरूप है फिर उसीसे उत्पन्न यह संसार दुःखमय कैसे हो सकता है। जल प्यास बुझाता है, अग्नि जीवन चलाता है, सूर्य जड़ जंगमकी आत्मा है, फिर इस संसारमें दुःख कहां? पण्डितजी दुःख या सुखको मनोगत (Subjective) मानते हैं वस्तुगत (Objective) नहीं। पदार्थोंमें ऋषियोंने आनन्दके दर्शन किए, उन्हीं पदार्थोंमें बौद्धोंने दुःखके दर्शन किए। अतः यह देखनेवालेके मनपर निर्भर है।

इस प्रकार जिस शरीरको बौद्धोंने अपवित्र मानकर हेय या घृणाकी दृष्टिसे देखा, वही मानव शरीर वैदिक ऋषियोंकी दृष्टिमें देवोंका एक पवित्र मन्दिर है।

ऐतरेय उपनिषद्‌में एक कथा आई है, जो इसप्रकार है—

ताभ्यो गामानयत्, ता अब्रुवन् न वै नोऽयमलमिति।
ताभ्यो अश्वमानयत्, ता अब्रुवन् न वै नोऽयमलमिति।

ताभ्यः पुरुषमानयत्, ता अब्रुवन् सुकृतं वतेति ।
पुरुषो वाव सुकृतम् ।
ता अब्रवीत् यथायतनं प्रविशतेति ।

एक बार देवोंके आगे ईश्वरने एक गाय लाकर खडी कर दी तो देवोंने कहा कि इसकी देह हमारे लिए अनुकूल नहीं है । तब ईश्वरने घोडा लाकर खडा कर दिया, उसे भी देवोंने पसन्द नहीं किया, अन्तमें ईश्वरने एक मनुष्यका शरीर लाकर खडा किया, तब उसे देखकर सब देव हर्षित होकर बोले- " यह उत्तम देह है । " देवोंको मनुष्य शरीर पसन्द आ गया । तब ईश्वरने देवोसे कहा कि- " तुम सब इस शरीरमें अपने अपने योग्य स्थानमें प्रविष्ट हो जाओ । " ये देव इस शरीरमें किस किस जगह पर जाकर प्रतिष्ठित हो गए इसका भी पूरा विवरण ऐतरेय उपनिषद्में दिया गया है—

" अग्नि वाणी बनकर मुखमें प्रविष्ट हुआ, वायु प्राण बनकर नाकमें प्रविष्ट हुआ, सूर्य चक्षु बनकर आंखमें प्रविष्ट हुआ आदि । इस प्रकार यह शरीर देवोंका एक पवित्र मन्दिर है, यही सप्त ऋषियोंका पवित्र आश्रम है—

सप्तः ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।
सप्ताप. स्वपतो लोकमीयुः तत्र जाग्रतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥
(वा. यजु. ३४।५५)

" इस शरीरमें दो आंख, दो नाक, दो कान और एक मुख ये सात ऋषि बैठे हुए है, ये हमेशा इस शरीरकी सुरक्षा किया करते है । इसी शरीरमें प्राण अपान ये दो देव ऐसे है जो हमेशा जागते रहते हैं, कभी नहीं सोते । इन दो देवोंके सोनेका मतलब है मृत्यु । "

शरीर–एक अयोध्या

अथर्वमें इस शरीरका वर्णन एक अयोध्यानगरीके रूपमें आया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रि प्रतिष्ठिते
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ।
(अथर्व. १०।२।३१-३२)

" यह मानव शरीर आठ चक्रों और नौ द्वारोंवाली देवनगरी अयोध्या है । इस नगरीमें एक हिरण्मय कोष है, जो तेजसे व्याप्त स्वर्ग ही है । तीन अरों और तीन आधारोंवाले इस सुवर्णमय कोशमें आत्मारूपी यक्ष रहता है । यह सभी आत्मज्ञानी जानते हैं ।

यह शरीर देवोंकी नगरी है, सात ऋषियोंका पवित्र आश्रम है, अमृतसे युक्त स्वर्गधाम है। इन सबकी स्थितिको जानकर दीर्घजीवन प्राप्त करनेवालोंको पुरुष कहते हैं। देवोंकी एक दूसरी संज्ञा निर्जर है। जहां ये रहते है, वहां जरा या बुढ़ापा फटकता भी नहीं। देवोंका काम अमृत देना है। शरीरमें स्थित इन देवोंसे ब्रह्मज्ञानी अमृत प्राप्त करता है और दीर्घजीवी बनता है।

इन्द्र इन सब देवोंका अधिष्ठाता है। यह हृदय स्थानमें आत्माके रूपमें बैठा हुआ है—

अहं इन्द्रो न पराजिग्ये। (ऋ. १०।४८।५)

"मैं इन्द्र हूँ, कभी मेरी पराजय नहीं हो सकती।" मानव देह सम्बन्धी यह उदात्त कल्पना वेदोंमें प्रतिपादित है। पण्डितजीकी यह निश्चित धारणा है कि जबसे भारतवासी इन सच्चे देवोंको भूलकर अपने शरीरसे विरक्त होने लगे, तभीसे उनका अध:पतन शुरु हो गया। सन्त तुकारामने ठीक ही कहा है—

तुका म्हणे कैसे आंधळे हे जन गेले विसरुन खऱ्या देवा।

ये देव स्फूर्तिदायक हैं। जिस प्रकार महापुरुषोंके जीवन चरित्रको पढ़नेसे स्फूर्ति मिलती है, उसी प्रकार इन देवोंका चरित्र भी स्फूर्तिदायक है। इसी दृष्टिसे पण्डितजी कहते हैं– "वैदिक देवताओंके वर्णन उन उन ध्येयवादी आदर्श पुरुषोंके वर्णन हैं। इसीलिए उन वर्णनोंको पढ़कर मनुष्य अपने सामने उन आदर्शोंको रख सकता है। हमारे समाजमें मानवी जीवनके विषयमें घृणित कल्पनाओंका प्रचार करनेवालोंने समाजकी बहुत बड़ी हानि की है। मनुष्यकी देह अपवित्र है, अत: उपवास और तपस्या आदिके द्वारा उसका नाश करना ही उचित है, इस प्रकारकी घातकी कल्पना वेदोंमें नहीं है। दुर्भाग्यवश इस अवैदिक विचारको आजका हमारा समाज मजबूतीसे पकड़े हो है।"

दैवतसंहिताकी रचना

पण्डितजीके द्वारा वेदसंहिताओंकी यह व्यवस्था सर्वथा नवीन है। पण्डितजीने जब संहिताओंका अध्ययन किया तब यह पाया कि मंत्रोंका कोई क्रम नहीं है। न ये मंत्र ऋषियोंके क्रमके अनुसार ही व्यवस्थित हैं न देवताक्रमसे ही। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें अनेकों ऋषियोंके विभिन्न सूक्त हैं, तो षष्ठ मण्डल केवल वसिष्ठ ऋषिका है और नवम मण्डलके ऋषि विभिन्न हैं पर देवता पवमान ही। वर्तमान संहिताका क्रम पण्डितजीके कुछ समझमें नहीं आया। अत: उन्होंने चारों वेदोंकी संहिताओंको एक क्रमसे व्यवस्थित करनेका निश्चय किया। पर प्रश्न था कि किस क्रमसे लगाया जाए ऋषिवार या देवतावार। इस प्रश्नका समाधान करते हुए पण्डितजी दैवत संहिताकी भूमिकामें लिखते हैं– "ऋषियोंके लिए देव आदर्शरूप हैं। गोतम

ब्राह्मणकारका कथन है " यत् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि " जो देवोंने किया वही मैं भी करूं। देवोंके मार्गपर ऋषि चलना चाहते हैं। ऋषि उपासक हैं और देव उपास्य। उपासक ऋषि उपास्य देवोंके गुणोंकी उपासना करके अर्थात् उन्हें अपने अन्दर धारण करके देववत् बनना चाहते हैं। इसलिए देव बडे हैं और ऋषि छोटे। इसी दृष्टिसे मैंने इन संहिताओंको देवताक्रमसे ही व्यवस्थित करनेका प्रयास किया है"। पण्डितजीकी यही कल्पना उनके ग्रंथ " दैवतसंहिता " की जन्मदात्री थी। कतिपय रूढिवादी विद्वानोंने, जो वेदोंके प्राचीनकालसे चले आनेवाले इस रूपमें कोई फेरफार देखना नहीं चाहते, पण्डितजीके इस कार्यका विरोध किया। पर इस ग्रंथसे वेदोंपर संशोधन कार्य करनेवालोंको बहुत बडा लाभ हुआ। इस ग्रंथमें पण्डितजीने देवोंके चारों वेदोंमें बिखरे हुए मंत्रोंको एक जगह लाकर रख दिया।

पण्डित सातवलेकरजीने इसप्रकार अपने अनेक ग्रंथों द्वारा वेदोंमें राजनैतिक और राष्ट्रीय विचार उत्तम रीतिसे बताये हैं। उन विचारोंके पीछे पण्डितजीका उद्देश्य लोगोंको इसी तथ्यसे परिचित कराता रहा है कि वैदिक ऋषि जटा बढाकर अर्धनग्न अवस्थामें रहकर कन्दमूल फलपर येन केन प्रकारेण जीवन निर्वाह करनेवाले, जगत्को मिथ्या माननेवाले और शरीरको अपवित्र वस्तु माननेवाले नहीं थे। जगत् और शरीरके सम्बन्धमें यह कल्पना तो बुद्धकालके बाद उत्पन्न हुई और पौराणिकोंने इसकी जड़ें और गहराईतक पहुंचा दीं। ऋषियोंका वास्तविक तत्वज्ञान यदि देखना हो तो मूलवेदोंका आधार ही पकडना चाहिए।

अन्तरतमकी पुकार

पण्डितजीका यह निश्चित मत है कि यदि भारतका पुनरुत्थान करना हो तो हमें वैदिक विचारधाराको आत्मसात् करना होगा, हमें वेदोंकी तरफ लौटना होगा। घर घरमें हमें वैदिक विचारधाराका प्रचार करना पड़ेगा। अपने लेखनों एवं ग्रंथों द्वारा हमें वेदोंको सर्वसाधारणतक पहुंचाना पडेगा। उनसे जो कोई मिलने आता है, उससे पण्डितजी वेदोंकी दुरवस्थाकी कहानी कहते हैं। यह वस्तुतः उनकी वाणी नहीं कहती, यह तो उनके अन्तरतमकी पुकार है, जो वैदिक विचारधाराको सब भारतमें प्रचारित होते हुए देखनेके लिए व्याकुल है। उनका अन्तरतम सारे भारतमें वेदभगवान्‌की उपासना देखना चाहता है। यही उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य है, एकमात्र ध्येय है।

कतिपय संस्मरण

बावला सोनवा

पण्डित सातवलेकरजी बचपनमें सावन्तवाडीमें पढते थे। वहां उन्हें लोग "सोनवा" कहते थे। सावंतवाडीमें भीएक चट्टानपर बैठकर प्रकृतिपर टकटकी लगाये रहना और उसके आधारपर चित्रोंका अंकन करना "सोनवा" का प्रतिदिनका काम था। इसलिए लोग सोनवाको "बावला सोन्या" कहा करते थे। इनके गुरु सावा मालवणकर इन्हें "हठयोगी सोन्या" कहा करते थे।

ड्राइंगकी तीसरी परीक्षा देकर सोनबा छुट्टीमें घर आए। उनसे मिलने उनके सावंतवाडीके सहपाठी हलदणकर और चुडेकर कोलगांव आए। उन्होंने एक स्त्रीसे पूछा– "सोनवा सातवलेकरका घर कहां है ?"

स्त्रीने उत्तर दिया–" मुझे नहीं मालूम।"

दूसरी एक स्त्री उधर होसे गुजर रही थी, सुनकर वह बोली– "चित्र बनाता है वही लडका न ?"

हां ! !

तब दूसरी स्त्री पहिलीसे बोली– "अरी ! वही बावला सोन्या ! ! उसीको ये पूछ रहे हैं।"

और पासमें ही सोनवाकी मां खडी हुई यह सब कुछ सुन रही थी।

० ० ०

तुम्हारा "सोनवा" एक पैसा भी नहीं लेगा

आजके सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री शंकरराव किर्लोस्कर लाहौरमें पण्डितजीसे चित्रकला सीखते थे। उनका रहना, खाना, पीना सब पण्डितजीके यहां ही। शंकररावके पिताजीने अपने पुत्रकी शिक्षाके लिए खर्च देना चाहा, पर पण्डितजी बोले- "यह तुम्हारा सोनवा एक भी पैसा नहीं लेगा।"

खर्च भी नहीं और अन्तमें गुरुदक्षिणा भी लेनेसे इन्कार। तब शंकररावकी माताजीने पण्डितजीकी गृहलक्ष्मीके लिए सोनेकी चार चूड़ियां भेजीं, पर उन्हें लेता कौन? वे चूड़ियां वापस कर दी गई और साथ ही पण्डितजीका भी पत्र गया ' किर्लोस्कर–सातवलेकर परिवारमें अपनत्व यह अपनत्व ही रहे, इसमें किसी तरहकी कृत्रिमताकी जरूरत नहीं है।"

चिन्तातुर सातवलेकर

सन् १९४१ की घटना। औंधमें एकदिन पण्डितजीकी धर्मपत्नी सौ. सरस्वतीबाई पेटदर्दसे हैरान थीं। संयोग ऐसा कि उस दिन औंधमें एक भी डॉक्टरका पता नहीं। शामको पेट दर्दने और जोर आजमाया, लिहाजा हाथ पांव ठण्डे हो गए। परिवारके सदस्य सेक करने लगे। इतनेमें ही कम्पाउण्डरको याद आया कि रोगीके बेहोशीकी अवस्थामें डॉक्टर रोगीको एक तरहकी गोली देते थे। याद आते ही उसने सौ. सरस्वतीबाई पर यह प्रयोग कर ही तो डाल । यह एक साहस ही था। पर उसका नतीजा नजर आने लगा और रातको ग्यारह बजेके बाद कहीं जाकर रोगीको होश आया।

इतने लम्बे समय तक पण्डित अपनी धर्मपत्नीकी खाटके पास खड़े रहे। आंखें गीलीं, चितातुर अन्तःकरण।

समाजसेवी पण्डितजी

सन् १९४७ की घटना। उस समय पण्डितजीकी उम्र ८० वर्षकी। एक दिन पण्डितजी पूनाके लक्ष्मी मार्ग पर स्थित हिन्दीप्रचार संघके कार्यालयसे बाहर निकले और उन्होंने एक स्त्रीके पीछे पीछे एक पाँच वर्षकी लड़कीको जाते हुए देखा। देखनेवालोंके लिए यह सामान्य दृश्य था, पर पण्डितजीकी सूक्ष्म नजरोंने ताड़ लिया कि यह मामला कुछ और ही है। उन्होंने ताड़ लिया कि यह लड़की भगा कर लाई गई है। उन्होंने पूछताछ शुरू की। इससे घबराकर वह स्त्री लड़कीको छोड़कर भीड़मेंही कहीं गुम हो गई।

पण्डितजीने उस लड़कीको कंधेपर बैठा लिया और उस लड़कीसे पता पूछने लगे, पर वह भी माँ और बापके सिवाय और कुछ जानती ही नहीं थी। घूमघुमा-कर कर उसे पण्डितजीने शान्त किया और उसके माँ बापकी खोजमें निकल पड़े। बहुत घूमने घामनेके बाद उस लड़कीके घरका पता मिला। लड़की उन्हें सौंप दी।

ɷ ɷ ɷ

तरुणों में तरुण

१९५३ की घटना, पण्डितजीकी उम्र ८६ वर्षकी। आनन्द (गुजरात) में शामके समय कोई समारंभ था, उसमें भाग लेकर पण्डितजी अपने निवासस्थानको तरफ जा रहे थे। मार्गमें एक स्थान पर कुछ तरुण कसरत कर रहे थे। पण्डितजीने देखा कि ये तरुण गलत रीतिसे सूर्यनमस्कारका आसन कर रहे थे। पण्डितजी मोटरसे उतरे और आव देखा न ताव, झट धोती कसकर मैदानमें उतर पड़े और शास्त्र शुद्ध नमस्कारके आसन करके सिखाने लगे।

ɷ ɷ ɷ

स्वयं पण्डितजीके मुखसे

भूतबाधा

कोलगांवमें हमारे घरमें काशीबाई नामकी एक स्त्री भूतबाधासे पीड़ित थी। उसका घर थांबामें था। उसका पति बांदेमें रहता था।

जब उसे आवेश आता था, तो यह बहुत शक्तिका काम करती थी। वह साठ वर्षकी होकर मर गई। मैंने उसका अध्ययन किया, और मेरा मत यह बना कि असन्तोषके कारण उसका मन क्षुब्ध हो जाता था, इसीको लोग भूतबाधा कहते थे।

o o o

बिच्छुका मंत्र

दक्षिण हैदराबादमें डॉ. गंगाधरपंत किर्लोस्करके घरमें एक नोकर था। उसे एक बिच्छुने डंक मार दिया और वह रोता हुआ मेरे पास आया। शामके करीब ७॥ बजे थे। बिच्छुने पीठमें डंक मारा था। मैंने गायत्रीमंत्रका पाठ करके उस डंक मारी हुई जगह पर बहुत जोरसे एक थप्पड मारा।

थप्पड मारते ही वह रोनेवाला नौकर हंसता हुआ चला गया।

o o o

अजंताके जंगलमें भूत

हम सात आठ जन अजन्ताकी गुफा देखनेके लिए गए हुए थे। उस समय एक ऊंचे स्थानपर रहनेके लिए हमारी व्यवस्था की गई थी। रातके समय सामनेके पर्वतपर बीस पच्चीस मिनटमें छोटीबड़ी ज्वालायें दिखाई देने लगीं। वहांके नौकरोंने कहा कि यह भूतचेष्टा है। यह ज्वाला कभी तीन चार फुट ऊंची दिखाई देती थी, तो कभी पन्द्रह बीस फुट ऊंची।

हममेंसे दोतीन मनुष्य मेरे साथ उस पर्वततक चलनेके लिए तैय्यार हो गए। बारह तेरह मील चलकर हम वहां जा पहुंचे। तब ज्ञात हुआ कि कपास दबानेके लिए वहां भाप की एक मशीन रातदिन चलती रहती थी। वह हर बीस पच्चीस मिनटके बाद जला हुआ कोयला बाहर फेंकती थी, उसीकी यह ज्वाला दिखाई देती थी।

० ० ०

एक और भूत

हैदराबादमें गौलीगुडामें एक तेलंग ब्राह्मणके घर भूत दिखाई देता था। उस घरमें एक डेढसौ फुट लम्बी गली सी थी। वहां रातको करीब एक बजे भूत आया। अन्धेरेमें तीनपुरुषकी इतनी ऊंचाई पर एक चेहरा दिखाई दिया। दांत और दांतसे बाहर निकलनेवाली ज्वालाओंका प्रकाश दिखाई दिया। हिः हिः आवाज भी सुनाई दी।

प्रथम दर्शन में मुझे भी डर लगा। मैं मन ही मन गायत्रीका जप करने लग गया। मैंने दो तीन बार कहा कि दिया लाओ। उसके बादसे ही उस भूतका चेहरा नीचे होने लगा और मनुष्य जितनी ऊंचाई पर आते ही वह अदृश्य हो गया।

दूसरे दिन घरमें मैंने मुंहसे जलती हुई अगरबत्ती पकड़कर अंधेरेमें खड़े होकर हिः हिः किया, तो लोगोंको पिछले दिनके भूत जैसा ही नजर आया। गौलीगुडामें कोई बदमाश ही ऐसा करता होगा।

बादमें खोज करनेपर पता चला कि हैदराबादके उस घरमें दो मंजिलोंमें वह भूतकी लीला करनेवाला खड़ा होता था, इसलिए उसका मुंह तीन पुरुषकी जितनी ऊंचाई पर दिखाई देता था।

० ० ०

जीवनभरमें एक ही प्याला चायका

जीवन भरमें मैंने सिर्फ एक ही बार चाय पी थी। वह भी कोल्हापुर महाराजके खातिर। उन दिनों मैं कोल्हापुरके कैदखानेमें था। इस कैदीसे मिलनेकी महाराजकी इच्छा हो गई। मेरे पास सन्देश आया कि महाराज तुमसे मिलना चाहते हैं। मैं कैदीके वेशमें। महाराज मुझसे मिले। बहुत देरतक बातचीत हुई। उन्होंने मुझसे कहा कि कोई अच्छा सा वकील-मुकर्रिर करके मुकदमा लडो और यह कहकर उन्होंने चायका प्याला मेरे आगे कर दिया।

मैं था कैदी। मेरे आगे महाराज हाथमें प्याला लेकर स्वयं आग्रह कर रहे थे। बस, उसी समय मैंने चाय पी। जीवन भरमें सिर्फ एक बार। राजशाहीमें राजहठको भी बालहठके समान ही पूरा करना पडता था।

❂ ❂ ❂

रेलगाडीमें बिच्छु

मैं लाहौरसे दिल्ली जा रहा था। तीसरे दर्जेका प्रवास। भयंकर भीड। ऊपरके बर्थ पर रखी हुई गठरीमेंसे एक छोटा सा बिच्छु गिरा। वह भी नीचे बैठे हुए एक यात्रीके पैर पर। गिरते ही उसने डंक मारा। थोडी सी देरमें ही उसका विष चढने लग गया और चढते चढते वह जांघ तक पहुंच गया। वह यात्री तडपने लगा।
मैंने उसे खडा किया और मनमें गायत्री मंत्रका जप करते हुए कहा कि पैर झटकारो। २०-२२ बार पैर झटकारते ही बिच्छुका विष उतर गया। इसका प्रभाव लोगों पर पडा और मुझे बैठनेके लिए जगह मिल गई।

❂ ❂ ❂

परमेश्वरकी कृपा

२१ मई सन् १८९५ का दिन। सावंतवाडीसे ४००० रु. के सिक्के बम्बई ले जाने थे। श्री... पर एक अधिकारीने झूठा आरोप लगाकर उसे कस्टम ऑफीसमें कामसे निकाल दिया। इस विषयमें कचहरीमें मुकदमा चल रहा था। श्री...की तरफसे श्री फिरोजशाह मेहता पैरवी कर रहे थे। रोजकी फीस उनकी १२०० रु. थी। इसलिए समय पर उस रकमका पहुंचना आवश्यक था। इसलिए अन्तके जहाजसे जाना अनिवार्य था।

सावंतवाडीसे मैं और डॉ. पुरोहित दोनों ट्रंकोंमें रु. भरकर निकले। सावंतवाडीमें गोविन्द पै नामका एक साहूकार था। उसके पास सिक्के ही रहते थे। उसकी ताकत इतनी थी, कि दस बीस हजार रु. तो वह एक ही समयमें कर्ज दे सकता था। उसके पास नोट नहीं थे। इसकारण उससे चार हजार रु. के सिक्के ही लेने पड़े। दो दो हजार रु. एक ट्रंकमें इसप्रकार दो ट्रंकोंमें उन सिक्कोंको भरा गया।

जब रु. हम गिनने लगे तो सेठजीने कहा– " रु. इस प्रकार आवाजके साथ नहीं गिने जाते। यदि कोई इनकी आवाज सुन लेगा तो रातमें डाका भी डाल सकता है। इसलिए दस बीस रु. हाथमें रखकर आवाज न करते हुए गिनने चाहिए। सेठजीने इसप्रकार सब रुपये आवाज न करते हुए गिनकर हमारी थैलियोंमें भर दिए और हम रवाना हो गए।

यह कर्ज श्री बलवन्तराव लुकतुकेने अपनी जमीन गिरवी रखकर लिया था। हमारी जिम्मेदारी इसे बम्बई तक पहुंचानेकी ही थी।

हम दोनों वेंगुर्लेसे रातको १२ बजे वेंगुर्ला बन्दरगाह पर पहुंचे। डाकेके डरसे हम रातभर जागते रहे। रातको १२ बजे हम बन्दरगाह पर उतरे। खलासियोंने सूचना दी कि स्टीमर आनेमें अभी दो तीन घण्टेकी देर है। तो भी तुम्हें अभीसे नावमें बैठ जाना चाहिए, क्योंकि नावको स्टीमरतक पहुंचनेमें २ घण्टे तो लग ही जायेंगे। " साधारण दिनोंमें यह दस मिनटमें पहुंच जाता था।

उसके कथनानुसार हम नावमें बैठ गए। हम सब करीब ४० जन थे। स्टीमरका पता नहीं था। तो भी दो तीन घण्टे पहले ही हमारी नाव चल पड़ी। तूफानी हवा चल रही थी। क्षणक्षणमें हमारी नाव नीचे आती और दोनों तरफसे लहरें आकर टकरातीं। दूसरे ही क्षण हमारी नाव लहरोंके सिर पर जाकर बैठ जाती। एक एक लहरकी ऊंचाई १५–२० फुटकी तो रही ही होगी। उफनते हुए समुद्रको देखनेकी यह हमारी पहिली ही बारी थी।

हमारी नाव तीन बजे स्टीमरसे जाकर लग गई। पर स्टीमरमें चढना संभव नहीं था। क्योंकि हमारी नाव स्टीमरसे टकराकर २००-३०० फुट दूर चली जाती थी। स्टीमर भी बहुत हिल रहा था। १५ मिनटतक तो खलासियोंने यह स्थिति देखी, फिर चार खलासियोंने रस्सियां स्टीमरसे बांध दीं और लहरोंके अनुसार उन रस्सियोंको ढीली करते और खींचते और इसप्रकार नावकी स्थिति संभालते थे। नावके अन्दर खड़े होकर चार चार खलासी एक एक यात्रीको उठाकर ऊपर उछाल देते और स्टीमरके अन्दर खड़े हुए खलासी उसे लपक लेते, इसप्रकार सभी यात्री स्टीमरमें पहुंचा दिए गए। पर अभीतक हमारे द. वाले ट्रंकोंके साथ सब सामान नावमें ही था, और हमें भी बम्बई पहुंचना आवश्यक था।

इस समय स्टीमरमें खड़ा होना भी हमारे लिए अशक्यसा हो रहा था। स्टीमर भी इतना हिल रहा था कि बीच बीचमें दोनों तरफसे लहरोंके कारण पानी भी स्टीमरमें आकर गिरता था। इस स्थितिमें भी हमारी दृष्टि ट्रंकोंपर ही लगी हुई थी। अन्तमें उन कुशल खलासियोंने वे ट्रंक हमारे पास पहुंचा दिए। पर इस तूफानके कारण निश्चित समयसे १२ घण्टे देरसे हमारा स्टीमर बम्बई पहुंचा और हम भी सब धनके साथ सुरक्षित रूपसे पहुंच गए। यह परमेश्वरकी कृपा ही थी, इसमें हमारा कोई पुरुषार्थ नहीं था।

❦ ❦ ❦

कप्तानका अत्याचार

सन् १८९७ में मैं गोवासे बम्बई जानेके लिए चल पड़ा। मुरगांवमें आकर मैं स्टीमरमें बैठ गया। मैं सर्वप्रथम स्टीमरमें चढ़ा। दूसरे यात्री तबतक नहीं आये थे, इसलिए मुझे स्टीमरमें अच्छी जगह मिल गई। टिकिट सेकेण्डक्लास का था। उन दिनों बम्बईतकका भाड़ा १।। रु. था। मैं अपना बिस्तरा बिछाकर लेट गया। स्टीमर रातको १२ बजे वहाँसे चलकर मालवण तक आई। मालवणमें जहाजके कैप्टनकी एक वेश्या स्टीमरमें चढ़नेवाली थी।

उन दिनों हाजी कासिमकी स्टीमरें चला करती थीं। इसलिए कैप्टन भी मुसलमान ही होता था। मालवणमें वह वेश्या चढ़ी। उसके लिए सर्वोत्तम जगहकी खोज शुरु हुई। सबसे अच्छी जगह पर तो मैं सो रहा था।

कैप्टनने आदेश दिया कि मेरे लिए दूसरी जगहकी व्यवस्था करके मेरी जगह उस वेश्याको दे दी जाए। उसके अनुसार टिकिट कलक्टर मेरे पास आकर सभ्यतासे बोला " आप यहाँसे उठकर दूसरी जगह जाकर बैठें, यह जगह स्त्रियोंके लिए सुरक्षित है। " मैंने कहा- " मैं इसीजगह ३-४ घण्टेसे यात्रा करता चला आया हूँ, इसलिए मैं यहाँसे नहीं उठूंगा। "

यह सुनकर वह गया और कैप्टनसे उसने सारा हाल कह सुनाया। १०-५ मिनटमें वह फिर आकर मुझसे उसीप्रकार बोला और मैंने भी वैसा ही उत्तर दिया। तब वह नाराजगीसे बोला- " हम तुम्हें उठाकर दूसरी जगह धर देंगे। "

मैंने भी कहा- " धर दो। "

स्टीमरके सभी यात्री हमारी बातचीत सुन रहे थे। पर कोई भी मेरा पक्ष लेनेके लिए आगे नहीं आया। मैं अपने बिस्तरे पर लेटा हुआ था कि इतनेमें ही छै खलासी आए। उनमेंसे चारने मुझे दरी सहित उठा लिया और दोने मेरा ट्रंक और सामान उठा लिए। बिस्तरेपर मैं लेटा ही रहा इस प्रकार यह जुलूस स्टीमरमें चल पड़ा। सब यात्री देख रहे थे। मुझे क्रोध भी आया और आश्चर्य भी हुआ। पर छै खला-सियोंसे झगड़नेमें मैं समर्थ नहीं था। उन्होंने एक जगह जाकर मुझे रख दिया और मेरी जगह उस वेश्याको दे दी।

इसके विरुद्ध मैं रिपोर्ट देना चाहता था। पर मेरे बातकी साक्षी देनेके लिए भी कोई तैय्यार नहीं था, मैंने कईयोंसे कैप्टनका और टिकिटकलक्टरका नाम पूछा, पर किसीने मुझे उसका नाम नहीं बताया। इसके विपरीत वे सब यही कहते थे कि " शान्त रहो "।

० ० ०

दिल्ली स्टेशन पर

सन् १९१६ के अक्टूबरमें मैं बम्बईसे लाहोरके लिए जारहा था। लाहोर जानेके लिए मुझे दिल्लीमें गाडी बदलनी थी। मैं दिल्ली स्टेशनपर उतरा और कुलीके द्वारा बताये गए एक इण्टर क्लासके डिब्बेमें बैठ गया। यही डिब्बा दूसरी गाडीमें जुडकर लाहोर जानेवाला था। मुझसे भी पहले ३०-४० यात्री इस डिब्बेमें आकर बैठ गए थे। इस कारण मुझे दरवाजेके पासही बैठना पडा। १-२ घण्टे के बाद पेशावर जानेवाली गाडी आई और हमारा डिब्बा उसमें जुड गया।

इतनेमें हो दो अंग्रेज दम्पति इण्टर क्लाससे यात्रा करना चाहते थे। स्टेशन-मास्टरको उनके लिए इण्टरक्लासमें जगह देना जरूरी था। क्योंकि उस गाडीमें इण्टरका दूसरा डिब्बा नहीं था। इसलिए स्टेशन मास्टरने निश्चय किया कि एक थर्ड क्लासका आधा डिब्बा खाली करवा कर उस में इण्टर क्लासको मे भेट भर दी जाएं यह डिब्बा उन चार अंग्रेजोंके लिए खाली कर दिया जाय।

उसकी आज्ञाके अनुसार टिकिट कलक्टर आया और यात्रियोंसे बोला- "यह डिब्बा अंग्रेज यात्रियोंके लिए सुरक्षित है, इसलिए तुम सब उतरकर पासके डिब्बेमें जाकर बैठो।"

मेरे डिब्बेमें मारवाडी और युक्तप्रान्तके स्त्रीपुरुष ज्यादा थे। युक्तप्रान्तके २-३ प्रोफेसर भी उनमें थे। उपर्युक्त आज्ञाके सुनते ही प्रथम मारवाडी जानेके लिए तैय्यार हो गए। मैंने उनसे कहा कि तुम सब यहीं बैठे रहो। जो कुछ कहना सुनना होगा मैं स्टेशनमास्टरसे कह सुन लूंगा। पर मारवाडियोंमें साहस नहीं हुआ। इतनेमें स्टेशनमास्टर आया और उसने सबसे एकदम उतर जानेसे लिए कहा। उस समय स्टेशनके अधिकाश कर्मचारी अंग्रेज ही थे। स्टेशन मास्टरके कहते ही मारवाडी अपने स्त्री बच्चोंके साथ डिब्बेमेंसे उतर गए और पासके थर्ड क्लासके डिब्बेमें जाकर बैठ गए। इस डिब्बे पर खडियेसे इण्टर लिख दिया था, पर था थर्डक्लासका डिब्बा। मारवाडियोंके उतर जानेसे आधा डिब्बा खाली हो गया और उसके अनुसार मेरा पक्षबल भी कम हो गया।

इतना सब होने पर भी १० १५ यात्री बैठे ही रहे। तब मैंने स्टेशन मास्टरसे कहा- "अब जगह हो गई है। अंग्रेज यात्री आकर बैठ सकते हैं। हम एक बर्थ उनके लिए खाली कर देते हैं।" पर मेरा कथन उसे पसन्द नहीं आया। भला अंग्रेज हिन्दुस्तानियोंके साथ कैसे बैठ सकते थे?

अब तक दर्शकोंकी भीड हमारे डिब्बेके पास इकट्ठी होने लग गई थी। गाडी छूटनेमें देरी हो रही थी और स्टेशनमास्टर और उनके सहकारियोंका बोलनेका जोर बढता रहा था।

इतनेमें ही एक योरोपियन मिलिटरी अधिकारी आया और उसने कहा कि तुम्हें उतरना ही पड़ेगा। आरामसे खुद उतर जाओ तो अच्छा है, नहीं तो जबर्दस्ती उतरना पड़ेगा। उसके इस सैनिकी आविर्भावको देखकर रहे सहे यात्री भी उतर कर दूसरे डिब्बोंमें चले गए। रह गया मैं अकेला ही। उस सैनिक अधिकारीने आकर कहा– " तुम डिब्बा खाली करो।"

मैंने कहा– " मुझे और मेरे सामानको उठाकर जहां रखना हो, रख दो। मैं स्वयं यहां से नहीं हिलूंगा।"

उसने तीन बार मुझसे कहा और मैंने भी तीनोंबार यही उत्तर दिया। इस पर स्टेशनमास्टर आकर बोला– " तुम डिब्बेमें पहले ही आकर बैठ गए। प्लेटफार्म पर आनेके पहले ही डिब्बेमें आकर बैठना अपराध है। मैं तुमपर दावा करूंगा।" उसके ऐसा कहते ही मैंने अपना नाम और पते का कार्ड उसके आगे कर दिया और कहा– "तुम जरूर दावा करो मुझे जो कुछ कहना होगा, कोर्टमें कहूंगा। अब डिब्बा खाली हो गया है। तुम्हारे अंग्रेज यात्री यहां बैठ सकते हैं। चार अंग्रेजोंके लिए ४० यात्रियोंके डिब्बेको खाली करानेका तुम्हें अधिकार है या नहीं, इसका निर्णय मैं अदालतमें करा दूंगा। मुझ पर मुकदमा जरूर चलाओ।"

इस पर उन स्टेशनके अधिकारियोंने दूर जाकर क्या सलाह किया कौन जाने। उन्होंने इस डिब्बेको निकाल कर दूसरा डिब्बा जोडनेका निश्चय किया। तदनुसार उन्होंने रिकॉर्डमेंसे डिब्बेका नम्बर निकाल डाला। जब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे सहित ही यह डिब्बा और कहीं ले जाया जायगा, तो मैं सामानसहित उतर कर पासके डिब्बेमें जाकर बैठ गया। यह मेरा आग्रह देखकर दर्शक भी आश्चर्यचकित हो गए।

इस कारण गाडी एक घण्टे देरसे छूटी। दूसरे डिब्बेमें जाने पर वहांके लोगोंने मुझसे पूछा– " आप कहांके हैं ?"

मैंने कहा– " पूनाका हूं।"

वे बोले– " तभी तो आपने इतना झगडा किया।"

अन्तिम अध्याय

(अनुवादक)

था पं. सातवलेकरजीका सारा जीवन संघर्षमय रहा है। इन्हीं संघर्षोंने उनका जीवन कुन्दन बना दिया। संघर्षोंकी दुनिया वह भट्टी है कि जिसमें मानवजीवन का-सोना पड़कर कुन्दन बनकर ही निकलता है। साधारण मनुष्य इन संघर्षोंसे घबराकर पीछे हट जाता है, पर अलौकिक पुरुष इन्हींमेंसे अपना मार्ग बनाता हुआ अपनी मंजिलकी तरफ कदम बढ़ाये चला जाता है। उसका सारा जीवन कर्ममय हो जाता है और अन्तिम क्षण तक वह कर्म करता रहता है। यही कर्म उसे अमरता प्रदान करता है।

पण्डित सातवलेकरजी भी इसी पंथके अनुयायी थे। वे कर्म करनेके लिए ही जीवित रहे। यजुर्वेदका मन्त्र—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।

(इस संसारमें मनुष्य कर्म करते हुए ही सौ वर्षतक जीनेकी इच्छा करे) पण्डितजीके जीवनमें पूरी तरहसे उतर चुका था। गीताके शब्दोंमें वे एक कर्मयोगी बन चुके थे। अपना और अपनी संस्थाका सारा योगक्षेम उन्होंने ईश्वरके हाथों सौंप दिया था और ईश्वरने भी अपने गीतोक्त " योगक्षेमं वहाम्यहम् " के वचनके अनुसार इन दोनोंका योगक्षेम निभाया।

पण्डितजीका दर्शन

पण्डित सातवलेकरजीका जीवनदर्शन अनेक अजीबोगरीब घटनाओंसे भरा पड़ा है। वे हमेशा भारत राष्ट्रको एवं राष्ट्रनिवासियोंको कर्म करते हुए ही देखना

चाहते थे। वे भाग्यवादी नहीं थे, निष्क्रिय नहीं थे, पुरुषार्थवादी थे। नेपोलियनकी तरह उनके लिए तो " देयर इज नो आल्प्स " था। पुरुषार्थके द्वारा हर संकटोंको वे जीतना चाहते थे। इसीलिए वे कभी कभी भारतीयोंकी निष्क्रियताको देखकर बडे निराश हो जाते थे। ब्रिटिश साम्राज्यके जुवेको बिना किसी प्रतिकारके चुपचाप ढोये जानेवाले निष्क्रिय भारतीयोंको पण्डितजीने अपने " वैदिक प्रार्थनाओंकी तेजस्विता " लेखमें इतनी बुरीतरहसे फटकारा था कि उससे सारा ब्रिटिश साम्राज्य हिल गया था। जीवनभर अपनी लेखनी और वाणी द्वारा जनतामें देशप्रेम और पुरुषार्थवादके भाव भरनेवाले इस ओजस्वी लेखक एवं वक्ताका स्वयंका जीवन भी तद्वत् ही था। " पर उपदेश कुशलता " के विचारसे उनका जीवन कोसों दूर था। जिस बातको वे दूसरोंके सामने रखते थे, उसको वे प्रथम अपने जीवनमें उतारते थे।

वे यही चाहते थे कि जबतक वे जियें तबतक कर्म करते हुए ही जियें। वे प्रायः कहा करते थे– " यदि परमेश्वर मुझे जीवित रखना चाहता है, तो वह मुझसे काम लेता रहे। मैं कर्म करते हुए २०० वर्ष भी जीना पसन्द करूंगा, पर निष्क्रियताकी अवस्थामें रहकर एक दिन भी जीना पसन्द नहीं करूंगा। " यह उनका दृढसंकल्प था।

पण्डितजीने अपने जीवनमें निराश होना कभी सीखा ही नहीं था। ८०–८२ वर्षकी अवस्थामें अपने जीवनधन संस्थाको औंधसे पारडी लाते समय भी उनका हृदय कभी विचलित नहीं हुआ, वे डगमगाये नहीं। बडी ही कुशलतासे सारा सरजाम पारडी ले आए। पारडीमें भी, जहां आज तपोवनका वातावरण गूंज रहा है, मनोहारी उपवनोंके दृश्य अनायास ही अभ्यागतके चित्त चुरा लेते हैं, उस समय सारा जंगल ही जंगल था। बडे बडे घास तथा अन्य वनीय वनस्पतियां मानों सिर उठाकर इस नवीन आगन्तुकको चुनौती दे रही थीं। ८०–८२ वर्षके तरुण पण्डितजीने इस चुनौतीको स्वीकार किया और वे उस जंगलको मंगलमय बनानेके कार्यमें जुट गए। इस जंगलमें भयंकर विषधरोंकी कमी नहीं थी, पर वे शिवरूप पण्डितजीके गण बन गए। यथेच्छ घूमने वाले पण्डितजीको उनसे कभी बाधा नहीं पहुंची। जंगलको नयनाकर्षक उपवनमें बदलनेके लिए वे सर्वतोमना जुट गए और अन्तमें प्रकृतिको उनके आशावादी दृढसंकल्पके आगे सिर झुकाना ही पडा। यह दृढसंकल्प ही पण्डितजीके जीवनकी विशेषता थी।

गतिमय जीवन

उनका जीवन सदासे गतिमय रहा है। यह गतिमयता ही जीवनके पावित्र्यको बनाये रखती है। तालाबका पानी स्थिर होनेके कारण सडांध पैदा करता है, पर वही पानी जब नदीमें मिलकर गतिमय हो जाता है, तो पवित्र और निर्मल हो जाता है।

इसी प्रवाहमयताने उनके जीवनको पवित्र एवं निर्मल बनाये रखा। पण्डितजीने इस गतिमयताके कारण रोगोंकी भी कभी परवाह नहीं की।

आश्चर्य तो यह कि उन्हें जीवन भर इस बातका कभी अनुभव नहीं हुआ कि आखिर सिरदर्द क्या बला है ? मैं हर तीसरे चौथे दिन सिर पर हाथ धर कर बैठता, तो प्रश्न होता कि "क्या हो रहा है ?" मेरा वही रटा रटाया उत्तर होता "सिरमें दर्द हो रहा है।" सुनकर पण्डितजी आश्चर्य व्यक्त करते "हर तीसरे चौथे दिन आपके सिरमें यह दर्द क्यों होता है ? मैंने तो आज तक यह भी नहीं जाना कि सिरदर्द क्या बला है।" मैं उन्हें इस "क्यों" का उत्तर देता भी तो क्या ? सिर्फ अपनी झेंप मिटानेके लिए कह देता कि यही तो आपमें एक कमी है कि आपने अबतक सिरदर्दका अनुभव नहीं लिया, इस विषयमें मैं आपसे ज्यादा अनुभवी हूँ। सुनकर पण्डितजीके चेहरे पर मुस्कान खेल जाती थी। मैं समझता हूँ कि यह पण्डितजीके जीवनकी गतिमयताका ही परिणाम है कि वे इस आम रोगसे हमेशा बचे रहे। मुझे उन्होंने अपना शिष्य और उससे भी बढ़कर पुत्रवत् मानकर स्नेह दिया; पर दोनोंके जीवनमें कितना विपर्यास !! मेरा जीवन गतिहीन, उनका जीवन गतिमय, मैं यदि दिन २–३ बार चाय न पीऊं तो सिर दर्द; यदि वे जरा भी चाय पी लेते तो नींद हराम। पर किया भी क्या जाए, "प्रकृतिं यान्ति भूतानि" वाली बात यहां भी लागू थी।

जीवनकी इस गतिमयताने उन्हें कभी भी शान्त बैठने नहीं दिया यहां तक कि रुग्णावस्थामें भी। कभी कभी जब रोगी हो जाते तो उनके परिवारके सदस्य जबर्दस्ती बिस्तर पर ले जाकर लिटा देते और आराम करनेके लिए कहते, डॉक्टर आकर निरीक्षण करता और कहता कि पण्डितजी आप २–३ दिन आराम कीजिए पण्डितजी सिर हिलाकर स्वीकार कर लेते। उधर डॉक्टरकी पीठ फिरती और इधर पण्डितजी बिस्तरेसे गायब !! खोज होती, खोज क्या होना था, सब जानते ही थे कि मियांकी दौड़ मस्जिदतक ही होती है, अतः आकर कार्यालयमें देखते, कि पण्डितजी भोलेबाबाकी तरह कुर्सी पर बैठे हुए हैं। फिर लोग नाराज होते और उन्हें उनकी इस नासमझी (?) के लिए कुछ कहते सुनते भी, पर उनकी मुस्कान विश्वामित्रके शस्त्रास्त्रोंके लिए वसिष्ठके ब्रह्मदण्डके समान साबित होती। उनके चेहरे पर मुस्कानके उदय होते ही सबका गुस्सा काफूर हो जाता, और यदि न भी होता तो थोड़ी देरतक बड़बड़ाकर और अपनी शक्तिका व्ययमें ही ह्रास करके शान्त हो जाते, पर उसका पण्डितजी पर कुछ असर ! ! नारायण, नारायण, भला कभी भोलेबाबा पर भी साधारण मनुष्योंकी इस चंचलताका प्रभाव पड़ सकता है ? अन्तमें उनके पुत्र श्री वसन्तराव अपना अन्तिम अस्त्र चलाते "ठीक है, आप हमारी बात नहीं सुनना चाहते, लीजिए, मैं सपरिवार यहांसे चला जाता हूँ, आप अकेले बैठकर जो करना चाहे, करें," पर पण्डितजी इस बन्दर-घुड़कीमें कब आनेवाले

थे ? वे यह जानते थे कि जो उनका पुत्र अच्छी अच्छी नौकरियोंको छोडकर उनके साथ चला आया उनके जीवनके साथ समरस होने, वह उन्हें इस अवस्थामें छोडकर थोडे ही चला जाएगा ! !

उनकी शारीरिक दुर्बलता पर मनकी सबलता कब्जा जमाये रहती थी। शरीर भले ही आराम करनेके लिए कहता, पर मन कहे तब न ! ! वह तो हरदम पण्डितजीको फेरे जाता था, फिर भला वे शान्त कैसे बैठ सकते थे ? यदि बिल्लीके भाग्यसे छींका कभी टूट भी जाता और पण्डितजी विश्राम करनेके लिए राजी भी हो जाते, तो पूजा करने देव- गृह अवश्य जाते, दूध पीने और भोजन करनेके लिए डाइनिंग टेबल तक चलकर अवश्य जाते, डाक देखने, पत्रोंका उत्तर देने और आए हुए अखबार पढ़ने कुर्सीतक चलकर अवश्य जाते, भला यह भी कोई विश्राम हुआ ? सारा दिन चलते फिरते और कहते यह कि मैं तो विश्राम कर रहा हूँ, गोया यह चलना ही उनके लिए विश्राम था। यदि यही विश्राम था, तो फिर काम करना किसे कहेंगे ? विश्राम वे सिर्फ उसीको कहते थे कि आज मैं वेदमंत्रोंके अर्थ नहीं लिखूंगा, बाकी सब काम करूंगा। विश्रामकी इस दुरवस्थाको देखकर फिर लोगोंका गुस्सा चढना, पण्डितजीका फिर हंसते चेहरेसे उसका प्रतिकार करना, यह एक रोजमर्रेकी बात हो चल थी। आखिर ठण्डे लोहे पर कोई कितना घन चलाये? घन चलाते चलाते लोहार थक गया, पर लोहा जैसेका तैसा ही बना रहा।

पण्डितजीका कहना था कि इस जगत्का प्रत्येक परमाणु गतिमय है, प्रतिक्षण बडी तेजीसे भागा जा रहा है अपनी पूर्णता प्राप्तिकी ओर, फिर मनुष्य जैसा चेतन और ज्ञानवाला प्राणी हाथ पर हाथ धरे क्यों बैठा रहे ? वे प्रायः यह कहा करते थे कि ईसाईयोंके बाइबिलमें यह जो लिखा है कि ईश्वरने मनुष्यको अपने समान ही बनाया, यह सर्वांशमें सत्य है, पर ईसाई इस वाक्यका मर्म नहीं समझ पाए। ईश्वर इस विश्वको यज्ञवेदी बनाकर प्रतिक्षण यज्ञ कर रहा है, इसमें आहुति दे रहा है, इसी आहुतिके कारण सूर्य चमकता है, चन्द्रमा प्रकाश देता है, अग्नि जलती है, जिस दिन या जिस क्षण वह आहुति देना बन्द कर दे, उसी क्षण सूर्यका गोला एक ठण्डा पिण्ड हो जाए, अग्नि जलना बन्द कर दे। जब ईश्वर भी गतिमय जीवनके बिना अपना गुजारा नहीं कर सकता, तो उसका प्रतिरूप यह मनुष्य आराम करके अपना गुजारा कैसे कर लेगा ? अपना जैसा बनाकर उसने मनुष्यको इसी बातकी शिक्षा दी है कि जिस प्रकार मेरा जीवन गतिमय है, उसी प्रकार मनुष्यका जीवन भी गतिमय हो।

इस जीवनकी गतिमयताके सिद्धान्तने उन्हे इस कदर प्रभावित कर रखा था कि उससे छुटकारा पाना उनके लिए असंभव हो गया था। ईसाईयोंका गॉड भी ६ दिन काम करके थक गया तो सातवें दिन उसने भरपूर आराम किया, यही दिन रविवारके नामसे सबके आरामका दिन है। पर वैदिकधर्मियोंका ईश्वर सतत

गतिशील है, उसके लिए न रविवार है न सोमवार, सभी दिन उसके लिए कामके दिन हैं और पण्डितजी भी वैदिकधर्मके ईश्वरमें विश्वास करनेवाले थे, न कि ईसाईयोंके गॉडमें, इसलिए मेरे अँशोंके लिए आरामका दिन रविवार भी उनके लिए कामका दिन ही होता था। उस दिन भी सवेरे ८ से १२ तक और दोपहर १॥ से ५॥ तक कार्यालयमें उनके दर्शन किए जा सकते थे। कई अतिथि उनसे मिलने आते थे, उनमें कुछ तो दर्शन और चरणस्पर्श करके ही चले जाते थे, पर कई ऐसे होते थे कि घंटों बैठकर माथापच्ची करते रहते थे। अन्तमें जब वे अतिथि स्वयं बोल बोलकर थक जाते, तो उठकर चलते समय कहते– "माफ कीजिए, हमने आपको बहुत कष्ट दिए।" तो पण्डितजी हँसकर कहते– "अभी तक तो मुझे आपसे कष्ट नहीं मिले, हां, यदि आपके पास हों, तो घर जाकर उन्हें पोस्ट पार्सलसे मेरे नाम भिजवा दीजिए, मैं उसे छुड़ा लूंगा।" इस प्रकार उनका सारा जीवन मुस्कराहटोंसे भरा हुआ था।

बालसुलभ स्वभाव

उनके जीवनमें मुस्कराहटोंके फूल इसीलिए हमेशा खिले रहते थे, कि उन पौधोंकी जड़में हमेशा आनन्दका रस बहता रहता था। वे सर्वदा आनन्दकी स्थिति में ही रहते थे, उनका मोटो ही यह था कि—

आनन्दादिमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि
जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। (उपनिषद्)

जब आनन्द ही आनन्द हो सर्वत्र है। फिर दुख मनानेके लिए अवकाश कहाँ? उनका कहना था कि "आनन्द तो मनुष्य उस समय खो बैठता है, जब वह क्रोध करता है। जिसके जीवनमें क्रोधका रस बहता रहता है, उसके जीवनमें मुस्कराहटों के फूल भी नहीं खिल सकते।" जबसे मैं उनके सम्पर्कमें आया तबसे मैंने उनके मुंह पर क्रोध की छाया भी नहीं देखी। इसके विपरीत मैं ही वक्त बेवक्त क्रोधका शिकार हो जाता था, और क्रोधावेशमें उनसे बहुत कुछ बोल जाता था (गोकि बादमें मुझे अपने व्यवहार पर पश्चात्ताप होता था) पर उन्होंने कभी भी कुछ नहीं कहा। अधिक क्या? उनकी आयु मेरी आयुसे तिगुनी या इससे भी ज्यादा होते हुए भी मुझे उन्होंने कभी "तू" कहकर नहीं पुकारा, हमेशा "आप" ही कहा करते थे, मेरे विरोधके बावजूद भी उनका यह व्यवहार नहीं बदला। मैं गुस्से में आकर बड़बड़ाया करता और वे बैठे बैठे हंसा करते और अन्तमें उनके बालसुलभ स्वभाव पर मुझे भी हंसी आ जाती थी।

उनके इस क्रोधविरहित सरल स्वभावने अनेक संकटोंसे उन्हें बचाया। औंधकी एक घटना तो उन्होंने स्वयं सुनाई थी। "औंधमें कोई वेदसंशोधक जर्मन विद्वान् पण्डितजीके पास आया और उसने ब्राह्मणोंके मुखसे वेदपाठ सुननेकी अभिलाषा

व्यक्त की। पण्डितजीकी संस्थामें अनेक वेदपाठी पण्डित कार्य करते थे, अतः उन्होंने यह प्रस्ताव उन वेदपाठियोंके सामने रखा। यह प्रस्ताव सुनकर तो पण्डितवर्ग ज्वालामुखी बन गया, शिव, शिव ! ! एक म्लेच्छ पवित्र वेदवाणीका श्रवण करे, असंभव। तब क्या हो, एक तरफ एक विदेशी विद्वान् की वेदोंके प्रति आसक्ति, दूसरी तरफ कूपमंडूककी वृत्तिवाले ये ब्राह्मण। पर पण्डितजीने भी इस समस्याका समाधान खोज निकाला ही। अगले दिन उन्होंने उस जर्मनको एक कमरेमें बिठला दिया और उसीके बगलवाले कमरेमें पण्डितोंको बैठाकर वेदपाठ करनेकी प्रार्थना की। पण्डितगण बडे जोरजोरसे वेदपाठ करने लगे। करीब आधे घण्टे तक जर्मन सस्वर वेदपाठ सुनकर, झूमता रहा, फिर उससे न रहा गया,और भावावेशमें वह दौड कर पण्डितोंके चरणोंपर लोट गया, पण्डितवर्ग पर तो मानों गाज ही गिर पडी, सब अवाक् रह गए। बादमें क्रोधाभिभूत होकर उन्होंने पण्डितजीका अपशब्दोंसे अभिषेक करना शुरु कर दिया, पर पण्डितजी अपने निर्लेप नारायण। किसी प्रकारकी शिकन उनके चेहरे पर नहीं थी। मौन साधे रहे। थोडी देरतक पण्डितवर्ग "मुखं अस्तीति वक्तव्यं" का उपयोग करके चला गया और अगले दिन फिर अपने समय पर कार्यालय आ गया।" इस प्रकार पण्डितजीने मौनके द्वारा एक बडे भारी संकटको टाल दिया। निश्चित था कि यदि पण्डितजी भी दो चार शब्द कह देते तो सारे पण्डित उसी समय संस्थासे राम राम ठोककर चले जाते और उस अवस्थामें पण्डितजीके वेदमुद्रणका काम ही ठप्प हो जाता। पर "सर्वार्थ-साधक मौन" ने उन्हें एक बडे भारी संकटसे उबार लिया।

इसीप्रकार उनके जीवनमें कई ऐसे व्यक्ति मिले भी जो उनके मुंह पर उन्हें भला बुरा कह गए, पर उन सबको वे महात्मा बुद्धकी तरह चुपचाप सह गए। पर इतने मात्रसे उन्हें महात्मा बुद्धका अनुयायी समझना एक बडी भारी भूल होगी। इसके विपरीत वे महात्मा बुद्धके सिद्धान्तोंके बडे कट्टर विरोधी रहे हैं। अपने लेखों और ग्रंथोंमें यत्र तत्र उनके सिद्धान्तोंकी धज्जियां उडाई हैं। वे इस मतके पोषक थे कि बौद्धधर्मने अहिंसाका सर्वत्र प्रचार करके देशको कायर और निष्क्रिय बना दिया। उनकी यही धारणा थी कि जिस जिस देशमें यह धर्म गया, उसका पतन ही हुआ, क्योंकि उस देशके निवासी बिल्कुल डरपोक और निष्क्रिय हो गए। सब भिक्षु होने लगे, सर्वत्र विहार खडे होने लगे और वह देश विदेशी आक्रान्ताओं से पददलित हो गया। "ॐ मणि पद्म हुं" का चक्र घुमानेवाले ये क्रियाहीन बौद्ध भिक्षु भला देश की रक्षा करेंगे भी तो किस तरह ? और ऐसे भिक्षुओंसे भरा हुआ देश दासताकी शृंखलाओंमें न जकडा जाए, यह कैसे हो सकता है ? भारत जो सदियोंतक गुलाम रहा, उसके लिए भी पण्डितजी बौद्धधर्मको ही दोषी ठहराते थे। वे कहते थे कि बौद्धधर्मने इस बार देशका सत्यानाश कर दिया। उसने इस देशके वासियोंको आलसी बना दिया। इसीसे प्रेरित होकर उन्होंने अपनी लेखनी

और वाणीके द्वारा क्रियाशीलता और गतिमय जीवनका सन्देश देनेवाले वैदिकधर्मका प्रचार एवं प्रसार किया और अपने जीवनमें भी उसे पूरी तरहसे उतारा। पर उनकी इस अत्यधिक या सीमातीत क्रियाशीलताने ही उन्हें क्षीण कर दिया। उनकी जन्मशताब्दीके अवसर पर प्रजाने उनका जगह जगह सत्कार किया और उन सत्कारोंमें पण्डितजी भी सोत्साह भाग लेते रहे। दिल्लीमें होनेवाला सत्कार उनके जीवनमें अन्तिम सत्कार सिद्ध हुआ। इन सत्कारोंमें बार बार जानेके कारण उनकी शारीरिकशक्ति बहुत ही क्षीण हो गई। प्रवास करके आने पर फिर काम करने बैठ जाना, अपने आरामका ख्याल न करना, इन सभी बातोंने पण्डितजीको बहुत निशक्त बना दिया। पर इसकी तरफ उनकी कभी नजर नहीं गई। दिल्लीमें ही सत्कारके अवसर पर वे बीमार हो गए थे, और फिर वहांसे आकर संस्थाके कामोंमें जुट गए और आठ जून तक यथाशक्ति काम करते रहे, पर......

अर्धांगवायुका आक्रमण

९ जूनका प्रातःकाल उनके जीवनके लिए कुछ और ही सन्देशा लेकर आया था। उस दिन भी वे प्रतिदिनकी तरह पांच बजे प्रातःकाल शौच जानेके लिए उठे। पण्डितजी रक्तचाप (Blood Pressure) और मधुमेहके रोगसे पहले ही पीडित थे, उस दिन भी रक्तचापने अधिक जोर मारा और पण्डितजी चक्कर खाकर गिर पडे, गिरनेके साथही उनके शरीरके वाम भागको लकवा मार गया। उस अवस्थामें भी पासमें रखी कुर्सीको थामकर उठनेका प्रयास करने लगे, इतनेमें उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री वसन्तराव अपने शयनकक्षसे बाहर आये और उन्होंने किसी वस्तुसे निकलनेवाले लगातार खटखट की आवाज सुनी और जाकर देखा तो सन्न रह गए। पण्डितजी जमीनपर पडे हुए थे और उठनेका प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने पण्डितजीको उठाकर बिस्तरपर लिटाया और डॉक्टरोंको बुलानेके लिए आदमी दौडाये गए, डाक्टर आए, इन्जेक्शन्स दिए गए। उस दशामें भी पण्डितजीकी जीवनेच्छा (Will-Power) अजेय थी।

मौतसे टक्कर

मैंने गुरुकुलमें अध्ययन करते हुए गुरुमुखसे " मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः " (हे मनुष्यो ! अपने ऊपरसे मृत्युके पैरोंको दूर करते हुए तथा आयुको दीर्घ करते हुए आगे बढते जाओ) की वेदवाणी सुनी थी, और एम. ए. में अध्ययन करते हुए मनोविज्ञानमें जीवनेच्छा (Will Power) की महिमा भी सुनी थी, पर उस समय यह बात कुछ समझमें नहीं आ सकी थी। पर पण्डितजीके जीवनने इन दोनों बातोंकी सत्यता सिद्ध कर दी।

पण्डितजीके जीवनमें एक महान् आदर्श वाक्य था—

अहमिन्द्रो न पराजिग्ये न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन।

मैं इन्द्र हूं, मेरा विनाश या पराजय नहीं हो सकता, मृत्यु भी मेरा कुछ नहीं

बिगाड सकती।" अर्धांगवायुके आक्रमणके बाद जब बिस्तरपर पण्डितजीको लिटाया गया, तो उनके ओठ फडफडा रहे थे, ध्यानसे देकर सुना तो उपर्युक्त मंत्र-भागका जाप चल रहा था। इससे पण्डितजीकी जीवनेच्छाशक्तिका अन्दाजा सहज लगाया जा सकता है। इसी इच्छा शक्तिके बलपर उन्होंने तीन बार मौतसे टक्कर ली और उसे पीछे धकेल दिया।

१९ जूनको उनके पेशाबमें शक्करकी मात्रा कम करनेके लिए इन्सुलिनका इन्जेक्शन दिया गया, उसे उनका शरीर सह न सका, धीरे धीरे उनके श्वास प्रश्वास क्षीण होने लगे, लिहाजा ऑक्सीजन पर उन्हें रखा गया, उस दिन उनके जीवन-दीपकी लौ लपलपा रही थी, पर अदम्य इच्छाशक्तिने फिर जोर मारा, और आशा त्यागे हुए लोगोंने ताज्जुबसे देखा कि पण्डितजी फिर अपनी साधारण दशामें आ चुके थे।

१३ जुलाईको भी जब इन्सुलिन उनके शरीरमें प्रवेश कराया गया, तब भी उनकी शारीरिक शक्तिका ह्रास होने लगा, और क्रमशः वे उस अनन्तलोककी तरफ बढने लगे। एक तरफ पण्डितजीकी इच्छाशक्ति थी दूसरी तरफ मृत्युकी शक्ति, दोनों शक्तियोंमें थोडी देरतक खींचातानी होती रही, अन्तमें जीवनशक्तिने मृत्युशक्ति पर विजय पायी और पण्डितजी फिर विजेताका मुकुट पहनकर सही सलामत इस संसारमें लौट आए।

इन दोनोंके बीचमें तीसरी टक्कर हुई २० जुलाईको। यह टक्कर पिछले दोनों टक्करोंकी अपेक्षा भयंकर और जोरदार टक्कर थी। क्योंकि पिछले दोनों टक्कर इन्सुलिन की प्रतिक्रियास्वरूप थे, पर यह *तीसरी टक्कर स्वतंत्र थी।* उस दिन दोपहरके बाद अचानक ब्लैडप्रेशर तेजीसे गिरने लगा, नाडियोंकी गति धीमी होने लगी हृदयकी धडकन अस्तव्यस्त हो गई और लोग भी आशा हार बैठे। पर थोडी देरके बाद डॉक्टरने ताज्जुबसे रक्तचापके यंत्रकी तरफ देखा कि उनका ब्लडप्रेशर धीरे धीरे ऊपर सरक रहा था, नाडीकी गति भी ठीक हो रही थी और साथ ही हृदयकी धडकन भी। लोगोंके रातभर जागरण की तथा चिन्ताकी व्यथा प्रभातके प्रथम सूर्य किरणके उगनेके साथ ही विलीन हो गई। इसप्रकार *तीन तीन बार मौत उनसे टकराकर लौट गई, पर उस अविनाशी इन्द्रका कुछ* बिगाड न सकी।

इसके बादसे उनकी तबीयत सुधरती चली गई। अर्धांगवायुसे ग्रस्त उनके पैरमें मचालन शक्ति आ गई, पैर उठाने लगे और हाथकी अंगुलियां भी हिलाने लगे। यह देखकर सबको आशा बंध चली थी। उनकी अवस्था जरा सी सुधरी कि उनकी प्रकृतिने फिर अपना करिश्मा दिखाना शुरू किया। उन्हें भी महसूस होने लगा था कि उनका स्वास्थ्य सुधर गया है। अतः उनका आशीष शुरू हो गया— "मुझे उठाओ, मैं पूजा करने देवगृह जाऊंगा, मैं ऑफिस जाऊंगा"। उनकी क्रियाशीलता उन्हें इस अवस्थामें भी शान्तिसे बैठने नहीं दे रही थी। पर शरीर बहुत निर्बल

हो गया था। इस रोगावस्थाके दौरान अन्नका एक कण भी पेटमें नहीं गया था, दूध तथा अन्य रसोंपर ही उन्हें रखा गया था। वह भी मुंहसे न पी सकनेके कारण नाकसे नली द्वारा पहुंचाया जाता था। डॉक्टरोंने भी जरा भी हिलने डुलनेसे मनाकर दिया था। पर स्वयं चलकर शौचगृह जानेकी, स्वयं जाकर पूजा करनेकी मनीषा उन्हें बैचेन किए दे रही थी। योंतो एक परिचारिका हरदम उनके पास तैनात रहती थी, पर उसकी भी जरासी नजर चूकी कि ये नीचे उतरनेकी कोशिशमें लग जाते। इसप्रकार उनकी जिन्दगी बड़ी कशमकशमें गुजर रही थी।

यथापूर्व उठकर चलने और काम करनेकी भावना उन्हें इस कदर बेचैन किए रहती थी कि वे हरदम " उठाव, उठाव " चिल्लाते रहते थे। जब श्री वसन्तराव आकर कहते कि डॉक्टरोंने उठनेके लिए मना कर दिया है, तो वे अपना माथा ठोकते, और इसप्रकार अपने दुर्भाग्यको दर्शाते थे।

पर आखिरमें...

इसप्रकार वे धीरे धीरे स्वास्थ्यकी तरफ कदम बढ़ाये जा रहे थे और सभी आशा भी करते थे कि पण्डितजी २-३ महीनोंमें यथापूर्व हो जाएंगे। पर ३१ जुलाईका दिन कुछ और ही योजना बनाकर आया था। प्रतीत होता था कि तीन बार मुंहकी खानेवाले मृत्युदेवता अबकी बार पूरे सजधजके साथ आये हैं। तीन चार-दिनों तक बराबर मौसम गीला, हरदम बादल आकाशको घेरे रहते थे, सर्द हवा, इस प्रतिकूल वातावरणके कारण पण्डितजी यथेष्ट प्रगति नहीं कर पाये। पर इतनी स्थितितक तो वे पहुच ही गए थे कि स्वयं अपने हाथोंसे दूध पी लेते थे, अपने परिवारके सदस्योंसे अच्छी तरह बोलचाल लेते थे, इसप्रकार पूरी तौरसे सचेतन थे। यह अवस्था ३१ जुलाईके सबेरे सातबजे तक रही, पर ७॥ बजे फिर अचानक उनकी तबीयत बिगड गई। फेफड़ोंमें बलगम रहनेके कारण श्वासावरोध होने लगा, गलेमेंसे घर्रकी ध्वनि निकलने लगी। डाक्टरोंने आकर ऑक्सिजन दिया और फिर थोड़ी तबीयत सुधर गई। पर अरिष्टके लक्षण पूरी तौरसे गायब नहीं हुए थे, दोपहरके करीब १। बजे उनके मुंहसे ऊं ऊंकी दो बार ध्वनि निकली और वह पवित्र आत्मा अनन्त आत्मामें विलीन हो गई।

मेरा यही ख्याल है कि यह ध्वनि ओं प्रणवकी ही रही होगी। महर्षि दयानन्द भी अन्तिम समयमें " हे ईश्वर, तेरी लीला अपरम्पार है, तेरी इच्छा पूर्ण हो " के शब्दोंमें उस सर्वनियन्ताका स्मरण करके अनन्त तत्त्वमें लीन हो गए, वही बात पण्डितजीके बारेमें सत्य हुई। महापुरुषोंको अन्तिम समयमें उसी एक तत्त्वकी लगन लगी रहती है। इस प्रकार तीन बार पराभूत होकर भी मृत्युदेव आखिरकार उन्हें छीन ले जानेमें सफल हो ही गए।

हो गया था। इस रोगावस्थाके दौरान अन्नका एक कण भी पेटमें नहीं गया था, दूध तथा अन्य रसोंपर ही उन्हें रखा गया था। वह भी मुंहसे न पी सकनेके कारण नाकसे नली द्वारा पहुंचाया जाता था। डॉक्टरोंने भी जरा भी हिलने डुलनेसे मनाकर दिया था। पर स्वयं चलकर शौचगृह जानेकी, स्वयं जाकर पूजा करनेकी मनीषा उन्हें बेचैन किए दे रही थी। यों तो एक परिचारिका हरदम उनके पास तैनात रहती थी, पर उसकी भी जरासी नजर चूकी कि ये नीचे उतरनेकी कोशिशमें लग जाते। इसप्रकार उनकी जिन्दगी बड़ी फदामकशमें गुजर रही थी।

यथापूर्व उठकर चलने और काम करनेकी भावना उन्हें इस कदर बेचैन किए रहती थी कि वे हरदम "उठाव, उठाव" चिल्लाते रहते थे। जब श्री वसन्तराव आकर कहते कि डॉक्टरोंने उठनेके लिए मना कर दिया है, तो वे अपना माथा ठोकते, और इसप्रकार अपने दुर्भाग्यको दर्शाते थे।

पर आखिरमें...

इसप्रकार वे धीरे धीरे स्वास्थ्यकी तरफ कदम बढ़ाये जा रहे थे और सभी आशा भी करते थे कि पण्डितजी २-३ महीनोंमें यथापूर्व हो जाएंगे। पर ३१ जुलाईका दिन कुछ और ही योजना बनाकर आया था। प्रतीत होता था कि तीन बार मुंहकी खानेवाले मृत्युदेवता अबकी बार पूरे सजधजके साथ आये हैं। तीन चार दिनों तक बराबर मौसम गीला, हरदम बादल आकाशको घेरे रहते थे, सर्द हवा, इस प्रतिकूल वातावरणके कारण पण्डितजी यथेष्ट प्रगति नहीं कर पाये। पर इतनी स्थितितक तो वे पहुंच ही गए थे कि स्वयं अपने हाथोंसे दूध पी लेते थे, अपने परिवारके सदस्योंसे अच्छी तरह बोलचाल लेते थे, इसप्रकार पूरी तौरसे सचेतन थे। यह अवस्था ३१ जुलाईके सबेरे सातबजे तक रही, पर ७॥ बजे फिर अचानक उनकी तबीयत बिगड गई। फेफड़ोंमें बलगम रहनेके कारण श्वासावरोध होने लगा, गलेमेंसे गर्राहटकी ध्वनि निकलने लगी। डाक्टरोंने आकर ऑक्सिजन दिया और फिर थोड़ी तबीयत सुधर गई। पर अरिष्टके लक्षण पूरी तौरसे गायब नहीं हुए थे, दोपहरके करीब ११ बजे उनके मुंहसे ॐ ॐकी दो बार ध्वनि निकली और वह पवित्र आत्मा अनन्त आत्मामें विलीन हो गई।

मेरा यही ख्याल है कि यह ध्वनि ओं प्रणवकी ही रही होगी। महर्षि दयानन्द भी अन्तिम समयमें "हे ईश्वर, तेरी लीला अपरम्पार है, तेरी इच्छा पूर्ण हो" के शब्दोंमें उस सर्वनियन्ताका स्मरण करके अनन्त तत्त्वमें लीन हो गए, वही बात पण्डितजीके बारेमें सत्य हुई। महापुरुषोंको अन्तिम समयमें उसी एक तत्त्वकी लगन लगी रहती है। इस प्रकार तीन बार पराभूत होकर भी मृत्युदेव आखिरकार उन्हें छीन ले जानेमें सफल हो ही गए।

उनकी हार्दिक अभिलाषा

समय समय पर उनके द्वारा सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूपसे व्यक्त किए गए विचारोंसे उनकी हार्दिक अभिलाषाका अनुमान लगाया जा सकता है। उन्हें कोई पारिवारिक चिन्ता नहीं थी, क्योंकि उन्हें पूरी तरहसे मालूम था कि उनके सुयोग्य पुत्र उनके बाद भी परिवारकी परवरिश करनेमें कोई कसर न करेंगे।

अपनी मृत्युसे १ दिन पूर्व उन्होंने अपनी ९२ वर्षीया पत्नी श्री. सरस्वतीबाईसे कहा था- "तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करना। प्रसन्नतासे रहो।" अतः इतना तो निश्चित था कि उन्हें कोई पारिवारिक चिन्ता नहीं सताये थी।

उन्हें सिर्फ चिन्ता यही थी कि उनके बाद भी आजीवन चलाया गया वेदोद्धारका काम आगे भी चलता रहे, स्वाध्याय मण्डल वृक्ष दिन ब दिन फूलता फलता रहे और उससे निकला हुआ सौरभ दिगदिगन्तको सुरभित करता रहे। इसीके लिए वे जिए और मरे। वे अपनी असमर्थताको जान गए थे अतः वे कई बार कह चुके थे कि "अब तो मुझसे काम होता नहीं है, अतः यह संस्था तो अब तुम्हारे और वसन्त (उनके ज्येष्ठ) के सुपुर्द है।" अपने ज्येष्ठ पुत्र पर उन्हें पूरा भरोसा था कि वह उनकी संस्थाको हर हालतमें चलायेगा। प्रसन्नता तो यह है कि उनके सुयोग्य पुत्र श्री वसन्तराव भी कृतसंकल्प हैं कि उनके महान् पिता द्वारा चलाए गए इस व्रतका वे आजीवन पालन करते रहेंगे और यही लक्षण है एक महान् पिताके एक महान् पुत्र होनेका।

पण्डितजीका सारा जीवन वेदमय बन चुका था, अपने नामके पहले लगनेवाले वेदमूर्ति, वेदमहर्षि आदि विशेषणोंको उन्होंने सार्थक कर दिया। जबतक इस धरतीतल पर वेदोंका नाम रोशन रहेगा, तबतक सायण, दयानन्द, और सातवलेकर ये तीनों मूर्तियां स्मरणीय रहेंगी।

पण्डितजीकी मृत्यु स्वाध्याय-मण्डलके इतिहासमें एक महत्त्वपूर्ण अध्यायकी समाप्ति है और एक दूसरे नवीन अध्यायकी शुरुआत। इस नवीन अध्यायमें उसका इतिहास और चमके, यही एकमात्र कर्तव्य शेष रह गया है। यह ऊर्जस्वल अध्याय ही वियुक्त आत्माको आनन्द एवं शान्ति प्रदान कर सकेगा।

उस महान् आत्माके पवित्र चरणोंमें हम सबका हार्दिक और श्रद्धाभावभरित प्रणाम।